प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नही किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए 'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग' की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पांच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थो का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक दो सौ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी डॉ गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति आभारी है।

(चन्दनमल बैद)
अध्यक्ष

(गौरीशंकर सत्येन्द्र)
निदेशक

प्राक्कथन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजपूतों का एक अनूठा ही स्थान रहा है। एक ओर तो कर्नल टॉड ने अपनी वीर गाथाओं द्वारा राजपूतों का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसके आधार पर वीरता और बलिदान में उनके समान भारत में और कोई जाति थी ही नहीं दूसरी ओर ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी मे जिस सुगमता और तीव्रता से तुर्क आक्रमणकारियों ने भारत में सफलता प्राप्त की, वह हमें आश्चर्यचकित कर देती है। यह विरोधाभास आज तक पहेली बना हुआ है। फिर दिल्ली में तुर्कों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक तुर्क अफ़ग़ान एवं मुग़ल शासक राजस्थान पर अधिकार जमाने का प्रयास करते रहे, परन्तु उन्हें निरन्तर असफलता मिलती रही। वही राजपूत जो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में भारत में तुर्कों का प्रवेश रोकने में पूर्णतया असफल रहे, अगले साढ़े तीन सौ वर्षों तक दिल्ली सल्तनत और अफ़ग़ान एवं मुग़ल साम्राज्य के विस्तार को रोकने में सफल सिद्ध हुए, यह पहेली की दूसरी कड़ी है। तत्पश्चात् सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मुग़ल शासकों ने इस विरोधी शक्ति को किस प्रकार अपनी सहायक शक्ति बना ली और इसके बल पर कैसे एक अपूर्व विशाल साम्राज्य की स्थापना की, यह उस पहेली की तीसरी कड़ी है। राजपूतों के इतिहास की इन उलझी गुत्थियों के कारण हमारा मध्यकालीन इतिहास अभी तक पूर्ण प्रकाश में नहीं आ सका है।

राजपूतों के इतिहास पर प्रकाश डालने का जो प्रयास महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और पंडित विश्वेश्वर नाथ रेउ ने किया, वह प्रशंसनीय है; परन्तु उनके ग्रन्थ इतिहास की आधुनिक मान्यताओं के अनुकूल नहीं हैं। राज्याश्रय में लिखे गए इन इतिहासों से भी वही ध्वनि निकलती है जो मुग़ल काल के राजकीय इतिहासों से निकलती है। हमारी स्वतन्त्रता के पश्चात् राजपूत राज्यों के विलयन के बाद उनके पुस्तकालयों, संग्रहालयों एवं राजकीय पुरालेखागार में संग्रहीत प्राचीन ग्रन्थों, सनदों, पत्रो तथा अन्य सरकारी काग़ज़ो को शोध कार्य के लिए उपलब्ध कराने की जो चेष्टा की गई है, उससे प्रेरित होकर इस दिशा में कुछ इतिहास प्रेमियों ने प्रयास आरम्भ किया है। विभिन्न राजपूत राज्यों के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ अब धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ अछूता पड़ा है।

प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में सन् १९५० ई० में इस क्षेत्र में कार्य आरम्भ करने की एक योजना बनी। जिसके अन्तर्गत विभिन्न राजपूत राज्यों के मध्यकालीन इतिहास को सुविधाजनक खण्डों में विभाजित कर उनका

अध्ययन करने, और तत्पश्चात् उन सब के आधार पर राजपूतों के मध्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डालने की चेष्टा आरम्भ हुई। मिर्जा राजा जयसिंह पर एक शोध-प्रबन्ध सन् १६५३ ई० में ही पूरा हो चुका था। परन्तु अर्थाभाव के कारण योजना की प्रगति धीमी रही। शोध-छात्रों के व्यक्तिगत प्रयास के फलस्वरूप जोधपुर राज्य के मुग़लकालीन इतिहास को पूरा करने का प्रयास अंशतः सफल हो रहा है। महाराजा जसवन्तसिंह पर एक शोध-प्रबन्ध चार वर्ष पूर्व पूरा हो चुका है। यह शोध-प्रबन्ध उसी कार्य को आगे बढ़ाने का अकिंचन प्रयास है।

जोधपुर राज्य के इतिहास में महाराजा अजीतसिंह का राज्यकाल विशेष महत्त्व रखता है। उसके जीवन का उत्थान एवं पतन एक रुचिकर विषय है। जसवन्तसिंह के निःसन्तान मरने के उपरान्त जोधपुर में जो समस्या उठ खड़ी हुई, और औरंगजेब ने उसे सुलझाने के जो प्रयत्न किये, उसका आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक था। राठौड़ सरदारों तथा राजपूत शासकों के पारस्परिक सम्बन्धो की समस्या तथा अजीतसिंह का अपने बाल्यकाल के संरक्षक दुर्गादास के साथ किया गया व्यवहार सूक्ष्म अध्ययन की माँग करता था। अजीतसिंह तथा सवाई जयसिंह के पारस्परिक सम्बन्धों में जो उतार-चढ़ाव हुए तथा अजीतसिंह ने मुग़ल राजनीति में सक्रिय भाग लेकर उस पर अपना जो गहरा प्रभाव डाला, उसका सम्यक् अध्ययन भी आवश्यक था। अजीतसिंह के दुःखद अन्त के कारणों का विवेचन जोधपुर राज्य के इतिहास की महत्त्वपूर्ण समस्या थी। इसके साथ ही इस काल में जोधपुर राज्य की प्रशासनिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति को भी प्रकाश में लाना आवश्यक था। इस शोध ग्रन्थ में लगभग सभी प्राप्य फारसी तथा राजस्थानी ग्रन्थों के आधार पर इन समस्याओं को निष्पक्ष रूप से सुलझाने का प्रयास किया गया है।

इस शोध ग्रन्थ के लिये राजकीय पुरालेखागार बीकानेर, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी जोधपुर, पुस्तक-प्रकाश जोधपुर, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी जोधपुर, जोधपुर पुरालेखागार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, तथा प्रयाग विश्वविद्यालय लाइब्रेरी से सामग्री एकत्र की गई है। इन सभी पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति मैं विशेष अनुगृहीत हूँ।

अपने निर्देशक डा. चन्द्रभूषण त्रिपाठी (रीडर, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय) की मैं चिरऋणी हूँ, जिन्होंने विषय के चुनाव से लेकर अन्त तक सदैव मेरा पथ-प्रदर्शन किया। उनकी असीम अनुकम्पा के बिना यह कार्य पूर्ण होना सम्भव न था। इनके साथ ही साथ इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्री ओ० पी० भटनागर तथा अन्य सभी गुरुजनों ने समय-समय पर मेरी कठिनाइयों को दूर करके मेरे उत्साह को जिस प्रकार सम्वर्द्धित किया, उसके लिये मैं उन सबकी अनुगृहीत हूँ। राजकीय पुरालेखागार के निदेशक स्वर्गीय श्री नाथूराम खडगावत के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ। उन्होंने न केवल बीकानेर में मेरे निवास की समुचित व्यवस्था की वरन् समय-समय पर मेरी सम-

स्याओं का समाधान भी किया। राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी के श्री नारायणसिंह भाटी की भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने उदारतापूर्वक अपने पुस्तकालय की नामावली में न लिखे गये हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन की मुझे सुविधा दी और अपने संग्रह में से महाराजा अजीतसिंह के चित्र के उपयोग की भी अनुमति सहर्ष प्रदान की। जोधपुर के श्री बालमुकुन्द खींची ने मुझे अपनी व्यक्तिगत ख्यात के अध्ययन की सुविधा दी। इनके अतिरिक्त जोधपुर में श्री पुरुषोत्तम लाल मेनारिया ने समय-समय पर मेरी समस्याओं को सुलझाकर जो सहायता की, उसे मैं कभी नहीं भूल सकती।

अन्त में, मैं अपने पूज्य माता-पिता श्रीमती रामप्यारी बेदी तथा डा. अमरनाथ बेदी, भाई जितेन्द्र, सत्येन्द्र तथा देवेन्द्र एवं भाभी कमला व निशि का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकती जिनके सहयोग एव आशीर्वाद के बिना इस शोध-ग्रन्थ की पूर्णता असम्भव थी। इसका प्रकाशन मेरे पति श्री देशमित्र जी (लेक्चरर दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय) की प्रेरणा एवं मेरी सास श्रीमती कृष्णा देवी तथा ससुर श्री अतरचन्द जी के सहयोग से ही हो सका है।

दिनांक १५ नवम्बर, १९७३

मीरा मित्र

विषय-सूची

संक्षिप्त-संकेत

अहवाल—अहवाल-उल-ख़वाकीन ।
आईन—आईन-ए-अकबरी ।
आदाब—आदाब-ए-आलमगीरी ।
आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास ।
इबरतनामा—ले० सैयद मुहम्मद कासिम हुसैनी लाहौरी ।
इम्पीरियल—इम्पीरियल गैज़ेटियर ।
इरादत ख़ाँ—तज़किरा इरादत ख़ाँ ।
इरविन—लेटर मुग़ल्स ।
उमराये—उमराये हनूद ।
ओझा—राजपूताने का इतिहास (पाँचो भाग) ।
ओहदा—ओहदा बही नं. १ ।
कामराज—इबरतनामा ।
कामवर—तज़किरात-उस्सलातीन-ए-चग़तई ।
कविराजा—कविराजा मुरारिदान री ख्यात ।
ख़फ़ी ख़ाँ—मुन्तखब-उल-लुबाब ।
खोज—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज ।
खोज (देवी)—राजपूताने मे हिन्दी पुस्तको की खोज व उनकी सूची ।
ख्यात—जोधपुर राज्य की ख्यात ।
गहलोत (मारवाड़)—मारवाड़ राज्य का इतिहास ।
गहलोत (राजपूताने)—राजपूताने का इतिहास ।
गैरोला—भारतीय-चित्रकला ।
गोपीनाथ—राजस्थानी पेन्टिग्ज़ एण्ड मुग़ल इम्पैक्ट, लेखक गोपीनाथ शर्मा ।
ग्लोरीज़—ग्लोरीज़ आव् मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौरस् ।
जयसिंह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् मिर्जा राजा जयसिंह ।
जसवन्तसिंह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् महाराजा जसवन्तसिंह ।
जुनी—पुस्तक-प्रकाश री जुनीबही में लिखियो तीरा री बीगत ।
टाड—एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज़ आव् राजस्थान ।
डिंगल—डिंगल में वीर रस ।
डि साहि—डिंगल साहित्य।
दस्तूर—दस्तूर री बही ।
दानेश्वर—राठौड़ दानेश्वर-ग्रन्थ-मुक्तावली ।

दिलकुशा—नुस्ख़ा-ए-दिलकुशा ।
देवीप्रसाद—औरंगज़ेबनामा ।
पंचोली —पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ ।
पिंगल—राजस्थान का पिंगल साहित्य ।
पूर्व—पूर्व-आधुनिक-राजस्थान ।
प्राचीन राजवंश—भारत के प्राचीन राजवंश ।
फ़ारूक़ी—औरंगज़ेब एण्ड हिज टाइम्ज़ ।
फ़ुतूहात—फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी ।
फ्रायर—न्यू एकाउन्ट आव् ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया बीइन्ग नाइन ईयरस ट्रैवल्स ।
बहादुर—बहादुरशाहनामा ।
बहादुरशाह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् बहादुरशाह प्रथम ।
बाम्बे गैज़े—गैज़ेटियर आव् दि बाम्बे प्रेसिडेन्सी ।
मनूची—स्टोरिया डो मोगोर ।
मआसिर—मआसिर-उल-उमरा ।
मारवाड़—मारवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स ।
मिश्र—मिश्र-बन्धु-विनोद
मीरात—मीरात-ए-अहमदी ।
मुस्ताद ख़ाँ—मआसीर-ए-आलमगीरी ।
मूँदियाड़—मूँदियाड़ री ख्यात ।
मूल—मारवाड़ का मूल इतिहास ।
मेवाड़—मेवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स ।
रतलाम – रतलाम का प्रथम राज्य ।
राज, गैज़े—राजपूताना गैज़ेटियर ।
राज भाषा—राजस्थानी भाषा और साहित्य ले० मोतीलाल मेनारिया ।
राज. साहि.—राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा ।
राठौड़ा—राठौड़ा री ख्यात ।
रिपोर्ट—सर्च रिपोर्ट्स ।
रुस्तम अली—तारीख़-ए-हिन्दी ।
रेउ—मारवाड़ का इतिहास ।
लालस—राजस्थानी सबद कोस ।
वंश—वंशभास्कर ।
वाक़्या—वाक़्या सरकार अजमेर व रणथम्भोर ।
वार्ता—जसवन्तसिंघ री वार्ता व अजीतसिंघ री वार्ता ।
वारिद—मीरात-उल-वारिदात ।
विजय—राजस्थानी-चित्रकला ।

विवरण—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण।
वीर—वीर विनोद।
शिवदास—मुनव्वर-उल-क़लाम।
शिवसिंह—शिवसिंह-सरोज।
शर्मा—राजस्थानी पेन्टिंग्ज़ एण्ड देयर इमपैक्ट आन सोसायटी एण्ड कल्चर, लेखक गोपीनाथ शर्मा।
शर्मा (एडमिनिस्ट्रेशन)—मुग़ल गवर्नमेन्ट एन्ड एडमिनिस्ट्रेशन।
शर्मा (स्टडीज़)—स्टडीज़ इन मिडीवल इण्डियन हिस्ट्री।
सरकार—हिस्ट्री आव् औरंगज़ेब।
सत्य—राजस्थानी पेन्टिंग्ज़ लेखक सत्य प्रकाश।
सरन—प्राविन्शियल गवर्नमेन्ट आव् दि मुग़ल्स।
स्काट—औरंगज़ेब्स सक्सैसर्स।
सीयर—सीयर-उल-मुताख़रीन।

कुछ अन्य शब्द—

रा० प्रा० वि० प्र०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
रा० पु० बी०—राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर।
रा० शो० सं० चौ०—राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर।

।। अजीतसिघजी ।।

१
विषय-प्रवेश

सन् १६७८ ई० में राजस्थान

भारतवर्ष में २३ अंश ३ कला से ३० अंश १२ कला उत्तर अक्षांश तथा ६९ अंश ३० कला से ७८ अंश १७ कला पूर्व देशान्तर[1] के बीच के विस्तृत प्रदेश पर बहुत समय पहले से ही राजपूतों का प्रभुत्व रहा है। इस प्रदेश में विभिन्न छोटे-बड़े राज्य थे, जिन पर भिन्न-भिन्न राजपूत वंशों का अधिकार था। इन सभी राज्यों के अपने-अपने नाम थे; परन्तु समग्र रूप से यह राज्य बादशाह अकबर के शासन काल से पूर्व कभी भी एक नाम से नहीं पुकारा गया। सन् १५८० ई० में अकबर ने प्रान्तीय शासन का संगठन करते हुए इन राज्यों के कुछ भागों को संगठित करके 'अजमेर-सूबा' नाम दिया।[2]

उल्लिखित प्रदेश के प्रथम इतिहासकार कर्नल टॉड ने इसे सर्वप्रथम 'राय-थान' अथवा 'रजवाड़ा' नाम से अभिहित किया। यह नाम विभिन्न राजाओं अथवा उनके राज्यों के स्थान का सूचक है। कालान्तर में अंग्रेजों ने सम्पूर्ण प्रदेश में राजपूत शासकों का आधिपत्य देख कर इसे 'राजपूताना' नाम दिया। धीरे-धीरे यही नाम इस प्रदेश के लिये प्रचलित हो गया।[3]

राजपूताना के पश्चिम व उत्तर के भाग में जैसलमेर, जोधपुर तथा बीकानेर, उत्तर-पूर्व के भाग में शेखावटी व अलवर तथा पूर्व-दक्षिण के भाग में जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बूँदी, कोटा व झालावाड़ के प्रदेश हैं। प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर व उदयपुर के प्रदेश राजस्थान के दक्षिणी भाग में हैं, सिरोही का प्रदेश दक्षिण-पश्चिम में और अजमेर मेरवाड़ा, किशनगढ़, शाहपुरा तथा टोंक के प्रदेश मध्य में स्थित हैं।[4]

महाराजा जसवन्तसिंह के अन्तिम दिनों में सन् १६७८ ई० में राजपूताने में मारवाड़ राज्य के अतिरिक्त बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, उदयपुर, डूँगरपुर, प्रताप-गढ़, बाँसवाड़ा, बूँदी, आम्बेर, किशनगढ़ व रतलाम के राज्य प्रमुख थे। इन राज्यों में विभिन्न वंशों के राजपूत शासक राज्य कर रहे थे। जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़

---

१. इम्पीरियल भाग २१, ८२-३, ओझा. भाग १, ३, जसवन्तसिंह १।

२. आईन, भाग २, १२९ व २७३: सरन १२६-८; पूर्व ६७-८; जयसिंह १३; जसवन्तसिंह ६।

३. टॉड भाग १, १; ओझा भाग १, १-२; पूर्व-६७-८ टि; जयसिंह १३, जसवन्तसिंह १।

४. इम्पीरियल-भाग २१, ८३: ओझा भाग १, ४।

और रतलाम में राठौड़, उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ तथा बाँसवाड़ा में सीसोदिया, बूँदी व सिरोही में चौहान, आम्बेर में कछवाहा तथा जैसलमेर में भाटी वंश के राजपूतों का प्रभुत्व था।[५]

राजस्थान की उत्तरी सीमा पर मारवाड़ राज्य के ठीक उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य पर इन दिनों महाराजा अनूपसिंह का शासन था। उसके पिता राव कर्णसिंह को सन् १६६७ ई० में बादशाह औरंगजेब ने चांदा व देवगढ़ के विरोधी राजाओं को दबाने के लिये दिलेर खाँ के साथ नियुक्त किया था; परन्तु उसकी दिलेर खाँ से पट न सकी। कर्णसिंह मुगल सेनापति की अवज्ञा करने लगा तथा उसके सैनिक लूटमार करने पर उतारू हो गये। उसके इस विरोधी व्यवहार से मुगल–सम्राट् असन्तुष्ट हो गया और उसने दण्ड स्वरूप रावकर्ण को गद्दी से हटाकर उसके पुत्र अनूपसिंह को दो हजार जात डेढ़ हजार सवार का मनसब और 'राव' की पदवी देकर २७ अगस्त, सन् १६६७ ई० को बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया। अनूपसिंह ने आजीवन दक्षिण में रह कर मरहठों एवं गोलकुण्डा के विरुद्ध लगभग सभी युद्धों में जिस तत्परता और वीरता के साथ मुगल साम्राज्य की सेवा की, उससे प्रभावित होकर औरंगजेब ने सन् १६७५ ई० में उसे 'महाराजा की पदवी देकर सम्मानित किया। सन् १६७७-८ ई० में दक्षिण के सूबेदार बहादुर खाँ ने उसे औरंगाबाद की देख-रेख का कार्य सौंपा था। उसकी अनुपस्थिति में बीकानेर का शासन यद्यपि विश्वस्त सरदारों के हाथ में रहा, तथापि गम्भीर समस्याओं के समाधान के लिये वह दक्षिण से ही निर्देश भेजा करता था। उसका विवाह मेवाड़ के राणा राजसिंह की बहिन के साथ हुआ था और इन दोनों राजघरानों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे थे। मारवाड़ के शासक जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त १६७९ ई० उसके पुत्र अजीतसिंह के अधिकार का अनूपसिंह ने समर्थन किया था, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जसवन्तसिंह तथा अनूपसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे होंगे।[६]

मारवाड़ राज्य के उत्तर-पश्चिम में, राजस्थान की पश्चिमी सीमा-पर स्थित जैसलमेर राज्य पर पिछले उन्तीस वर्षों से (सन् १६४९ ई० से) भाटी वंश का महारावल अमरसिंह राज्य कर रहा था। उससे तीन पीढ़ी पूर्व के शासक महारावल मनोहरदास की पुत्री का विवाह सन् १६३६ ई० में मारवाड़ के महाराजा जसवन्त–सिंह के साथ हुआ था। महारावल मनोहरदास के उत्तराधिकारी भाटी रामचंद्र के कुशासन एवं उद्दंडता से जैसलमेर के सरदार अप्रसन्न थे और उन्होंने रामचन्द्र के चचेरे भाई सबलसिंह को निमंत्रण दिया। तब सबलसिंह ने जसवन्तसिंह से सहायता माँगी और उसके सहयोग से जैसलमेर पर अधिकार कर लिया। इस उपकार के

५. ओझा भाग १, ३।

६. मआसिर (हिन्दी) ९०; ओझा भाग ५, खंड १, २४४, २५४-२६०. २६३; पूर्व १२४-५; टॉड भाग २, १४६।

बदले में सबलसिंह ने पोकरण का प्रदेश, जोकि राव चन्द्रसेन के समय से (सन् १५७६ ई० से) जैसलमेर के भाटी शासकों के अधिकार में था, जसवन्तसिंह को वापस कर दिया।[७] सन् १६४९ ई० में उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अमरसिंह जैसलमेर का शासक हुआ। उसने पश्चिमी-सीमा पर बलोचियों का सफलता पूर्वक दमन करके तथा उत्तर–पश्चिम में चन्ना राजपूतों[८] से भविष्य में विरोध न करने का लिखित आश्वासन लेकर अपने राज्य को सुदृढ़ किया। सन् १६५९ ई० में उसने पोकरण पर पुनः अधिकार करने का भी प्रयत्न किया, परन्तु महाराजा जसवन्तसिंह ने राठौड़ सबलसिंह तथा मुहणोत नैणसी के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजकर उनका पीछा किया और जैसलमेर राज्य की सीमा में घुस कर लूटमार आरम्भ कर दी। तब बीकानेर के राव कर्ण ने इन दोनों राज्यों में मेल कराया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध के बाद दोनों राज्यों में आपस में तनातनी चलती रही। अमरसिंह की महत्त्वाकांक्षा के फलस्वरूप जैसलमेर का बीकानेर से भी संघर्ष हुआ। जैसलमेर राज्य की पूर्वी-सीमा पर बीकानेर के कांधलोत जाति के राठौड़ अक्सर उपद्रव किया करते थे। उन्हें दबाने के लिए अमरसिंह के आदेशानुसार जब बीकमपुर के अधिकारियों ने उन पर आक्रमण किया और बीकानेर की पश्चिमी-सीमा पर स्थित झज्झू नामक स्थान को लूट लिया, तब बीकानेर के शासक अनूपसिंह ने कांधलोतों को पूरी शक्ति के साथ जैसलमेर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। परन्तु रावल अमरसिंह ने उनके आक्रमण से पूर्व ही बीकानेर के सीमा प्रान्तों को लूटना आरंभ कर दिया था। फलतः इन दोनों राज्यों में संघर्ष चलता रहा। अमरसिंह ने पूगल[९] तथा अपने राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित कोटड़ा व बाड़मेर के बाड़मेरा राठौड़ों पर भी अपना प्रभुत्त्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार जैसलमेर राज्य की शक्ति इस समय काफी बढ़ गई थी।[१०]

राजपूताना के दक्षिण–पश्चिम में, मारवाड़ राज्य के ठीक दक्षिण में स्थित सिरोही नामक राज्य पर पिछले लगभग चार पाँच वर्षों से (सम्भवतः सन् १६७४ ई० से)[११] राव बैरीसाल शासन कर रहा था। राव बैरीसाल एवं उसके पूर्ववर्ती

---

७. गहलोत राजपूताने भाग १,६७४–६, रेउ. भाग १,१५७, २१७-८, जसवन्तसिंह ३६, ५८–९।

८. टॉड (भाग १, २१०) ने लिखा है कि चन्ना राजपूतों का उपद्रव उत्तर-पूर्व में हुआ था। चूंकि पश्चिम में बलोची उपद्रव कर रहे थे अतः उन्ही के निकटवर्ती स्थान पर उपद्रव होना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसी कारण चन्ना राजपूतों का उत्तर-पश्चिम में होना स्वीकार किया गया है।

९. पूगल जैसलमेर के उतर में तथा बीकानेर व मुल्तान के मध्य में स्थित है।

१०. गहलोत राजपूताने, भाग १, ६७६-८; टॉड भाग २, २१०–१; रेउ भाग १, २३१ टि; जसवन्तसिंह १०६–७।

११. राव अखैराज की मृत्यु सन् १६७३ ई० में हुई थी। उसके बाद कुछ समय के लिए उदयसिंह शासक रहा, तब बैरीसाल शासक हुआ। (राज. गैजे. २४३)।

शासक उदयसिंह का राज्य-काल विशेष महत्त्वपूर्ण न था। इनसे पूर्व राव अखैराज के समय में सिरोही में चांदा तथा उसके पुत्र अमरसिंह[१२] के विद्रोहों के कारण आन्तरिक अशान्ति बनी रही। इस कारण अखैराज ने पड़ौस के अन्य सशक्त राज्यों से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखकर अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया। मेवाड़ के राणा जगतसिंह ने एक बार किसी कारणवश अप्रसन्न होकर सिरोही में सेना भेज कर लूट–मार करवाई तथा कुछ प्रदेशों पर अधिकार भी कर लिया, तो अखैराज ने उससे संधि कर ली। ३० मार्च, सन् १६५६ ई० को उसने अपनी कन्या आनंद-कुंवर का विवाह मारवाड़ के शासक जसवन्तसिंह के साथ कर दिया। इस प्रकार सिरोही व मारवाड़ के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। फिर भी गृह–कलह एवं आन्तरिक विद्रोहों के कारण सिरोही राज्य विशेष उन्नति न कर सका।[१३]

राजस्थान के दक्षिण में तथा मारवाड़ के दक्षिण-पूर्व में स्थित राजपूतों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राज्य उदयपुर पर राणा जगतसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् सन् १६५२ ई० से उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह शासन कर रहा था। राजसिंह दिखावे के लिए मुगल साम्राज्य के साथ अच्छे सम्बन्ध रखते हुए भी हृदय से सदैव उसका विरोधी था। अपने युवराज को बार-बार मुगल दरबार में भेजने पर भी जब वह पूर, मांडल और बदनोर के परगने वापस न पा सका तब शाहजहाँ और दारा का विरोधी हो गया। सन् १६५७ ई० के उत्तराधिकार-युद्ध में राजपूत शासकों में केवल राजसिंह ही ऐसा शासक था जिसने औरंगज़ेब के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रक्खा। औरंगज़ेब ने उससे पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था और भावी युद्ध में उसकी सहायता माँगी थी। इस सहयोग के बदले में शासनाधिकार मिल जाने पर उसने बदनोर तथा मांडल के परगने राणा को देना स्वीकार किया था। परन्तु राजसिंह ने धरमत के युद्ध में किसी प्रकार की सैनिक सहायता दी हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। इस युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता पर राणा ने अपना दूत भेज कर उसे शुभकामनाएँ भेजीं। कुछ महीनों के बाद राणा का पुत्र सुल्तानसिंह तथा भाई अरिसिंह सलीमपुर नामक स्थान पर औरंगज़ेब से मिले और उन्होंने राणा की ओर से उसे सिंहासनारूढ़ होने पर बधाई दी। औरंगज़ेब ने भी ७ अगस्त, सन् १६५८ ई० को राणा के मनसब में वृद्धि करके बदनौर व मांडल के परगने उसे लौटा दिए और साथ ही उसे यह भी आदेश दिया कि वह अपने निकटवर्ती

---

१२. राव अखैराज के पिता राजसिंह के प्रधानमंत्री पृथ्वीराज के पुत्र का नाम चांदा था। पृथ्वीराज का प्रभुत्व राजसिंह के समय में बहुत बढ़ गया था और उसने अवसर पाकर राजा का वध करवा दिया था, बालक अखैराज को भी कठिनाई से बचाया जा सका। जब अखैराज शासक हुआ तो उसने पृथ्वीराज को मरवा कर अपने पिता की हत्या का बदला लिया। फलतः पृथ्वीराज के पुत्र चांदा व पौत्र अमरसिंह राज्य में निरन्तर उपद्रव करते रहे।

१३. राज. गैजे २४२-३; जसवन्तसिंह १०७।

डूंगरपुर, प्रतापगढ़ व बाँसवाड़ा के राज्यों पर अपना अधिकार कर ले। जब राणा ने इन राज्यों पर अपनी सेनाएँ भेजीं तो, चूँकि वहाँ के शासकों के पास उसका सामना करने के लिए पर्याप्त सैनिकशक्ति नहीं थी, अतः उन्होंने मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करली। परन्तु वे मन ही मन राणा से अप्रसन्न हो गए और इस प्रकार इन राज्यों से राणा के सम्बन्ध बिगड़ गए। चूँकि मुगल सम्राट् से राजसिंह के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे, फलतः जब दारा ने उसे पत्र लिखकर सहायता का अनुरोध किया तो उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। कहा जाता है कि किशनगढ़ की राजकुमारी चारुमती से बादशाह स्वयं विवाह करने का इच्छुक था और जब सन् १६६० ई० में राणा राजसिंह ने उससे विवाह कर लिया तो वह अप्रसन्न हो गया और उसने गयासपुर व बसाड़ नामक दो परगने उदयपुर से निकाल कर देवलिया के शासक महारावल हरिसिंह को दे दिए। कुछ इतिहासकारों का मत है कि जब औरंगज़ेब ने कुछ धर्म बिरोधी आज्ञाएं प्रसारित कीं और मन्दिरों को ध्वंस करने का आदेश दिया तो राणा ने कई मन्दिरों की मूर्तियों को अपने राज्य में प्रश्रय देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की। फलतः राणा व बादशाह के सम्बन्ध बिगड़ गए। परन्तु उक्त घटनाओं के बाद भी राणा का पुत्र लालसिंह बादशाह से कई बार मिला और अरिसिंह बिना किसी रुकावट के श्राद्ध के लिए गया नामक तीर्थस्थान को गया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १६७८ ई० के आसपास मुगल सम्राट् और राणा के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। जोधपुर राज्य के साथ भी उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। सन् १६७६ ई० में जब राणा ने राजसमुद्र नामक तालाब की प्रतिष्ठा की तो उसने महाराजा जसवन्तसिंह को काबुल में हाथी, घोड़े व वस्त्र भेजे। सन् १६७८ ई० में जब जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई तब उसके बाद उसके नवजात पुत्र अजीतसिंह को राणा ने अपने राज्य में आश्रय दिया। यह उसके मैत्रीपूर्ण व्यवहार की पुष्टि करते हैं।[१४]

राजपूताने के दक्षिणी भाग में डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और बाँसवाड़ा के राज्य थे। मेवाड़ राज्य के दक्षिण की ओर स्थित डूंगरपुर राज्य का शासन पिछले सत्रह वर्षो से (सन् १६६१ ई० से) महारावल जसवन्तसिंह के हाथ में था। सन् १६५८ ई० में जब औरंगजेब से अधिकार पाकर राणा राजसिंह ने डूंगरपुर पर आक्रमण किया था तो जसवन्तसिंह के पिता महारावल गिरिधरदास ने मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करली थी। पिता की मृत्यु के उपरान्त जसवन्तसिंह ने भी अपने पिता की ही नीति का अनुसरण किया और मेवाड़ से अच्छा सम्बन्ध रक्खा। अन्य राज्यों से भी उसके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे।[१५]

---

१४. मेवाड़ १५६-१६३; ओझा भाग २, खंड १, ५३४-५४२ व ५४६-७; गहलोत राजपूताने भाग १, २५०-५; पूर्व ११०-२, ११२, ११५, ११८, १२४ व १३०; जसवन्तसिंह १४१।

१५. ओझा भाग ३, खंड १, ११३-७; गहलोत राजपूताने भाग १, ४१२-३।

डूंगरपुर से पूर्व की ओर देवलिया-प्रतापगढ़ का राज्य था, जहाँ महारावल हरिसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् १६७३ ई० से उसका ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह शासन कर रहा था। उसके पिता ने सन् १६३३ ई० में बादशाह शाहजहाँ से प्रतापगढ़ का अधिकार प्राप्त किया था और शाही सेना के सहयोग से ही जब वह अपने राज्य की ओर गया तो राणा जगतसिंह ने चुपचाप अपनी सेना वहाँ से हटा लीं। सन् १६५८ ई० में औरंगजेब ने पुनः यह राज्य मेवाड़ के अधीन कर दिया। हरिसिंह इससे बहुत अप्रसन्न हुआ परन्तु राणा का विरोध करने की शक्ति उसके पास नहीं थी, अतः वह चुप रहा। केवल दो ही वर्ष बाद बादशाह ने ग़यासपुर व बसाड़ नामक दो परगने उसे वापस कर दिए। इस प्रकार मेवाड व प्रतापगढ़ के शासकों के पारस्परिक सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण न हो सके और यह स्थिति प्रतापसिंह के शासन-काल में भी ज्यों की त्यों बनी रही। परन्तु जोधपुर, जयपुर व बीकानेर के शासकों से प्रतापसिंह ने अच्छे सम्बन्ध रक्खे। उसके समय में प्रतापगढ़ राज्य की शक्ति एव समृद्धि में पर्याप्त वृद्धि हुई।[१६]

प्रतापगढ़ राज्य के पश्चिम में राजपूताने के बिल्कुल दक्षिण में स्थित बाँसवाड़ा राज्य पर सन् १६६० ई. से महारावल कुशलसिंह शासन कर रहा था। प्रतापगढ़ राज्य की ही भाँति बाँसवाड़ा राज्य भी कभी मेवाड़ के अधीन रहा और कभी स्वतन्त्र। सन् १६५६ ई. में जब औरंगज़ेब से शाही अधिकार पाकर राणा राजसिंह ने बाँसवाड़ा पर आक्रमण किया तो महारावल ने दो लाख रुपया, एक हाथी, एक हथिनी, व दस गाँव देकर सन्धि कर ली। परन्तु उसके उत्तराधिकारी कुशलसिंह ने मेवाड़ के प्रभुत्व की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया। उसे दबाने के लिये राणा ने सन् १६७४ ई. में एक सेना भेजी। कुशलसिंह इस सेना का सामना न कर सका और बाध्य होकर उसे मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मेवाड़ से मुक्ति पाने के लिए उसने धीरे-धीरे बादशाह को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया और सुअवसर की प्रतीक्षा करता रहा। सन् १६७६ ई. में अवसर पाते ही उसने औरंगज़ेब से बाँसवाड़े का अधिकार प्राप्त कर लिया। मेवाड़ राज्य से सदैव तनावपूर्ण स्थिति बनी रहने के कारण इस राज्य की विशेष उन्नति न हो सकी।[१७]

मेवाड़ के पूर्व में स्थित बूँदी के हाड़ा वंशी शासकों ने आम्बेर के कछवाहों की भाँति अकबर के समय से ही मुगल साम्राज्य के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इन राजाओं ने निरन्तर मुगलों की सेवा कर सम्मान प्राप्त किया और अपने राज्य के गौरव को बढ़ाया। बूँदी में पिछले बीस वर्षों से (सन् १६५८ ई. से) भावसिंह शासन कर रहा था। उसके पिता राव छत्रसाल ने औरंगजेब के साथ दक्षिण में रह कर विभिन्न युद्धों में अपनी वीरता एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया

१६. ओझा भाग ३, खंड ३, १३१, १४३-४, १५४, १५५-८ व १७७; गहलोत राजपूताने भाग १. ५२२-४।

१७—ओझा भाग ३, खंड २, ९४-६ व १०४-५; गहलोत राजपूताने भाग १, ४६८-९।

था। शाहजहाँ के अन्तिम दिनों में जब उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ तो छत्रसाल न केवल औरँगज़ेब की अवज्ञा करके शाहजहाँ के पास चला आया वरन् उसने औरँगज़ेब के विरुद्ध दारा को सक्रिय सहयोग भी दिया और सामूगढ़ के युद्ध में मई, सन् १६५८ ई. में दारा की ओर से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु हो गई। छत्रसाल के इस विरोधी आचरण के कारण औरंगजेब ने उसके उत्तराधिकारी भावसिंह को स्वीकार नहीं किया और शिवपुर के गौड़ राजा आत्माराम को बूँदी पर आक्रमण करने का आदेश दिया। परन्तु बूँदी के सरदारों ने परस्पर मंत्रणा करके आत्माराम का विरोध किया और उसको न केवल बूँदी से ही भागना पड़ा वरन् शिवपुर में भी उसका पीछा किया गया और वह भागकर औरँगज़ेब की शरण में चला गया। उसकी असफलता का समाचार पाकर बादशाह ने भावसिंह को बूँदी का शासक स्वीकार कर लिया। सन् १६६७ ई. में उसे मुअज्ज़म के साथ दक्षिण भेजा गया, जहाँ उसने कई युद्धों में वीरतापूर्वक भाग लिया और जसवन्तसिंह की मृत्यु के केवल तीन-चार वर्ष उपरान्त औरँगाबाद में सन् १६८२ ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी एक बहिन कर्मावती का विवाह छत्रसाल के जीवन-काल में ही सन् १६३७ ई. के लगभग महाराजा जसवन्तसिंह से हुआ था।[१८]

मारवाड़ राज्य के उत्तर-पूर्व में राजस्थान की पूर्वी सीमा पर स्थित कछवाहों का आम्बेर राज्य इस समय तक यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुका था। मुगल सत्ता की छाया में धीरे-धीरे पनपते हुए इस राज्य को भगवन्तदास, मानसिंह तथा मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने इतना समृद्ध एवं शक्तिशाली बना दिया था कि वह अन्य राजपूत घरानों की ईर्ष्या का कारण बन चुका था। परन्तु इसके चरमोत्कर्ष के दिन लगभग पूरे हो चले थे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह के अन्तिम दो वर्ष दक्षिण-युद्ध में बीते जहाँ उसे अपने कोष से एक करोड़ से अधिक रुपया लगाकर भी केवल सामरिक विफलता, निराशा तथा मुगल सम्राट् औरंगज़ेब का असन्तोष ही मिल सका। अपनी असफलता के गहरे धक्के को वह सहन न कर सका और सन् १६६७ ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी रामसिंह पर शिवाजी को आगरे के बन्दीगृह से भगाने का पहिले ही सन्देह हो चुका था। फलतः आम्बेर पर दुर्दिन के बादल मंडराने लगे थे, वैभव व समृद्धि का स्वर्णयुग समाप्त हो चुका था। यद्यपि रामसिंह को चार हजार जात तीन हजार सवार का मनसब मिला हुआ था फिर भी मुगल राजनीति में आम्बेर धीरे-धीरे अपना महत्त्व खो रहा था। रामसिंह का जीवन अपने राज्य से दूर तथा मुगल राजधानी से दूर आसाम तथा अफ़गानिस्तान जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशों में ही बीता। आम्बेर की इस हीनावस्था से इसके प्रतिद्वन्द्वी जोधपुर के शासक महाराजा जसवन्तसिंह को अपना प्रभाव बढ़ाने का अच्छा अवसर मिला था, परन्तु इस अवसर से वह

१८. टॉड भाग २, ३८८–३९०; जसवन्तसिंह, ३१।

कोई विशेष लाभ न उठा सका। सम्भवतः वह भी मुगल सम्राट् औरंगज़ेब का सन्देह-भाजन हो चुका था। आम्बेर का भविष्य पूर्णतया अंधकार में था।[१९]

मारवाड़ के पूर्व, राजपूताना के मध्य में स्थित किशनगढ़ नामक छोटे से राज्य पर पिछले बीस वर्षों से (सन् १६५८ ई. से) महाराजा मानसिंह शासन कर रहा था। अपने पिता रूपसिंह की ही भाँति मानसिंह भी आजीवन मुगलों का सहयोगी बना रहा। औरँगज़ेब ने सन् १६५८ ई. में अपने सिंहासनारोहण के समय उसे तीन हजार जात, तीन हजार सवार का मनसब दिया था। उसने दक्षिण के विभिन्न युद्धों में भाग लेकर मुगल साम्राज्य की यथा-शक्ति सेवा की थी।[२०]

राजपूताने की सीमा से बाहर बाँसवाड़ा के पूर्व में रतलाम नामक छोटा-सा एक और राजपूत राज्य था। सन् १६५८ ई. में यहाँ के शासक रत्नसिंह की मृत्यु हो जाने के बाद यहाँ उसका पुत्र रामसिंह शासन कर रहा था। सन् १६५९ ई. में जब अवध सूबे के अन्तर्गत बैसवाड़ा प्रदेश में बैस राजपूतों ने उपद्रव किया तो बादशाह ने बहादुरखाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना उधर भेजी। रामसिंह भी इस सेना में नियुक्त था। उसके बाद सन् १६६४ से १६६७ ई. तक उसने दक्षिण में रहकर मरहठों तथा बीजापुर के विरुद्ध किए गए विभिन्न शाही आक्रमणों में भाग लिया। सन् १६७८ ई. में वह पुनः शाहज़ादा मुअज़्ज़म के साथ दक्षिण की ओर गया और जब बादशाह का मेवाड़ से युद्ध छिड़ गया तो शाही आज्ञा पाकर शाहज़ादे के साथ ही वह दक्षिण से लौटा। जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिंह उसका ताऊ था।[२१] अतः उसकी मृत्यु के बाद रामसिंह ने औरंगजेब के पास अपने वकील से प्रार्थना करवाई कि शिशु राजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे दिया जाए। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मारवाड़ एवं रतलाम के शासकों के पारस्परिक सम्बन्ध काफी घनिष्ठ थे।[२२]

इस प्रकार महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय लगभग सभी राजपूत राज्यों से मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध अच्छे थे। इन राज्यों में से बूँदी, सिरोही व रतलाम के राजवंशों के साथ जसवन्तसिंह का पारिवारिक सम्बन्ध था। उदयपुर के राणा राजसिंह ने जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को प्रश्रय देकर तथा बीकानेर के अनूपसिंह ने अजीतसिंह को राज्य देने के लिए बादशाह से

---

१९. पूर्व, १२७–२८; टॉड भाग २, २८८।

२०. पूर्व, ११७; प्राचीन राजवंश, ३७३–४।

२१. रामसिंह के दादा महेशदास का पिता दलपत जोधपुर के शासक मोटाराजा उदयसिंह का चौथा पुत्र था। इस सम्बन्ध के अनुसार, उदयसिंह का पोता गजसिंह व महेशदास आपस में भाई-भाई थे। चूँकि महेशदास आयु में कुछ छोटा था, अत; उसका पुत्र रतनसिंह, गजसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह का चचेरा भाई लगता था। (रतलाम, १६ व १०९) इस प्रकार जसवन्तसिंह रतनसिंह के पुत्र रामसिंह का ताऊ था।

२२. रतलाम, १९२–२२३, पूर्व, ११७; प्राचीन राजवंश ३९५।

प्रार्थना करके जोधपुर राज्य के प्रति अपनी सद्‌भावना का परिचय दिया। शेष राज्यों में से डूंगरपुर, प्रतापगढ़ व बाँसवाड़ा के राज्यों के साथ भी मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध अच्छे थे। केवल जैसलमेर के साथ जसवन्तसिंह की तनातनी हो गई थी। सन् १६५६ ई. में जब जैसलमेर के रावल अमरसिंह ने पोकरण छीनने का प्रयास किया था, उस समय से इन दोनों राज्यों में मेल न हो सका था।

सन् १६७८ ई. तक लगभग सभी राजपूत शासक मुगल सम्राट् की शक्ति एवं सामर्थ्य से परिचित हो चुके थे और उन्हें विदित हो गया था कि मुगल साम्राज्य से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना ही उनके राज्य के लिए हितकर है। फलतः बिना किसी विशेष कारण के वे औरंगज़ेब से अपना सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहते थे। उदयपुर के राणा राजसिंह एवं बादशाह में उत्तराधिकार युद्ध के समय से ही मैत्री थी। बीकानेर में औरंगजेब ने पिता को हटाकर पुत्र को शासक बनाया था, फलतः अनूपसिंह ने दक्षिण में रहकर निरन्तर मुगल साम्राज्य की सेवा की। बूँदी में औरंगज़ेब ने यद्यपि नियमित उत्तराधिकार का उल्लंघन करने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सका और उसने वास्तविक उत्तराधिकारी को ही शासक स्वीकार कर लिया। तब बूँदी के शासक भावसिंह ने भी, किशनगढ़ के राजा मानसिंह तथा रतलाम के राजा रामसिंह की भाँति दक्षिण के युद्धों में शाही सेना की ओर से अपूर्व वीरता दिखाई, और जयपुर के रामसिंह ने आसाम व अफ़गानिस्तान में रहकर मुगल साम्राज्य की सेवा की। अन्य राज्यों ने भी औरंगज़ेब के साथ मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध रखा।

प्रशासनिक दृष्टि से कुछ राजपूत राज्य पिछली लगभग एक शताब्दी से मुगल साम्राज्य के अंग माने जाते थे। अकबर ने सन् १५८० ई. में उन्हें संगठित करके अजमेर सूबे का निर्माण किया था। परन्तु इन राज्यों की स्थिति साम्राज्य के अन्य प्रदेशों से नितान्त भिन्न थी। साम्राज्य का एक अंग होते हुए भी ये अपने आन्तरिक प्रशासन में पूर्ण स्वतन्त्र थे। मुगल-दरबार से निकट सम्पर्क रहने के कारण इन राज्यों की शासन-व्यवस्था पर मुगल शासन प्रणाली का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। लगभग सभी राज्यों में उसी प्रकार के कर्मचारी नियुक्त होने लगे थे, जिस प्रकार मुगल शासन पद्धति में हुआ करते थे। शासक व सामन्त के पारस्परिक सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन हो गया था और पहले की सी भाईचारे की भावना उतनी नहीं रही थी।[२३]

व्यापार व वाणिज्य की दृष्टि से राजपूताना महत्त्वपूर्ण था। खनिज पदार्थों में ताँबा प्रचुर मात्रा में मिलता था। इसी कारण नागौर व रणथम्भोर में टकसालें थीं। ताँबे के अतिरिक्त लोहा, चाँदी, अभ्रक, जस्ता व सीसा थोड़ी बहुत मात्रा में पाया जाता था। नमक राजस्थान की प्रमुख व्यापारिक वस्तु थी। नमक के उत्पादन

---

२३. प्रशासन सम्बन्धी विस्तार के लिए देखिए अध्यायाय ६, खंड १।

के लिए साँभर झील प्रमुख थी। सूरत व खंभात मुगल-काल के प्रमुख बन्दरगाह थे। इन स्थानों के लिए राजपूताना से होकर जाने वाले मार्ग थे। इस कारण राजपूताना में भी व्यापारिक लेन-देन चलता रहता था। मुगल सम्राट् बहुधा अजमेर जाया करते थे। उनके साथ बड़ी-बड़ी सेनाएँ व हरम होते थे तथा वे काफी लम्बे समय तक वहाँ रुका करते थे। शाही माँगों की पूर्ति के लिए वहां बाजार खुल जाते थे। इस प्रकार स्थानीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलता रहता था।[२४]

सन् १६७८ ई. तक सामाजिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए थे। अकबर के समय से ही कुछ राजपूत कन्याओं का विवाह मुगल सम्राट् व शाहजादों के साथ होने लगा था। आम्बेर, जोधपुर, जैसलमेर व बीकानेर के राजवंशों की कन्याएँ मुगल हरम में जा चुकी थी। इन वैवाहिक सम्बन्धों के कारण राजपूत मुगलों के निकट सम्पर्क में आए। न केवल राजपूत राजाओं को वरन् उनके सम्बन्धियों को भी मुगल सेवा में नियुक्त किया गया। उन्हें राज्य में विभिन्न पदों पर नियुक्त किया गया, उच्च मनसब दिए गए तथा अन्य सुविधाएँ भी दी गईं। अकबर ने अपने अंगरक्षक भी इन्हीं में से नियुक्त किए थे। इससे राजपूतों के सामाजिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। मुगल-दरबार उनका आदर्श बन गया था। वे उसी का अनुकरण करते थे। फारसी भाषा का मुगल-दरबार के पत्रों में अधिकाधिक प्रयोग होने लगा था। इतना ही नहीं, राजकीय वेश-भूषा तथा आचार-विचार पर भी मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा था।[२५]

साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि बारहठ नरहरिदास ने भक्ति प्रधान रचनाओं द्वारा धार्मिक साहित्य की परम्परा को बनाए रखा तथापि शान्ति एवं समृद्धि के कारण ऐश्वर्य एवं विलास की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा था। फलतः साहित्य में भी अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। मतिराम का 'ललित-ललाम', जसवन्तसिंह का 'भाषा-भूषण', कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' इस प्रवृत्ति की द्योतक अद्वितीय रचनाएं हैं। जसवन्तसिंह के आश्रय में रहकर नवीन कवि ने 'नेहनिधान' व 'श्रृंगार शतक' तथा निधान ने 'जसवन्तविलास' नामक ग्रन्थों की रचना की। राजदरबार में संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का लेखन हुआ। दयालदास कृत 'राणा रासो' तथा मानकवि कृत 'राजविलास' के द्वारा वीर काव्य रचना के पुनः आरम्भ का आभास मिलता है। 'राजप्रशस्ति' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य भी इसी काल की कृति है। दलपति मिश्र ने 'जसवंत-उद्योत' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। इसी समय मुहणोत नैणसी ने 'ख्यात' की रचना की, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अद्वितीय है।[२६]

---

२४. आईन, भाग २,१२८-३०; मोरलैण्ड इण्डिया एट दि डैथ ऑफ अकबर, १४७, १४९; सरन, १३१; ओझा भाग ४, खंड १, ५; जयसिंह, २०; जसवन्तसिंह ८।

२५. पूर्व, ४३; जयसिंह. २१-२; जसवन्तसिंह. ८-६।

२६. पूर्व, १३३-५; जसवन्तसिंह, १६१-७।

औरंगजेब कला-प्रेमी सम्राट् न था। अतः कलाकारों को मुगल-दरबार में प्रश्रय मिलना समाप्त हो गया। मुगल-दरबार का आश्रय खोकर वे अन्यत्र राज्याश्रय ढूँढ़ने लगे। राजस्थान के नरेशों ने इन कलाकारों को आश्रय प्रदान किया। अधिकतर राजपूत शासक इस काल में अपनी राजधानियों से दूर रहे। फिर भी इस काल के प्राप्य स्थापत्य एवं चित्रकला के नमूनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक एवं सामाजिक क्षेत्रों की भाँति इन क्षेत्रों पर भी मुगल-शैली का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। स्थानीय शैली पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई, परन्तु दोनों में सुन्दर समन्वय स्थापित हो गया था।[२७]

---

२७. पूर्व, १६५ जसवन्तसिंह; १८८ व १६१।

२

जसवन्तसिंह की मृत्यु : अजीतसिंह का जन्म : औरंगज़ेब की प्रतिक्रिया

(सन् १६७८ ई० से सन् १६७९)

(क) जसवन्तसिंह की मृत्यु : अजीतसिंह का जन्म :–सन् (१६७८–९ ई०)

मारवाड़ राज्य के राठौड़ शासकों ने मुगल सम्राट् अकबर के समय से निरन्तर मुगलों की सेवा में रहकर अपने राज्य को पर्याप्त सुदृढ़ बना लिया था। मई, सन् १६३८ में महाराजा गजसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका द्वितीय पुत्र जसवन्तसिंह जोधपुर का शासक हुआ। जोधपुर के पूर्ववर्ती शासक मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री का विवाह जहाँगीर से हुआ था इस प्रकार जसवन्तसिंह शाहजहाँ के ममेरे भाई का पुत्र था। इस पारिवारिक सम्बन्ध के कारण तथा सम्भवतः आम्बेर के विरुद्ध जोधपुर की शक्ति बढ़ाकर दोनों राज्यों में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ाने के विचार से शाहजहाँ जसवन्तसिंह पर असीम अनुकम्पा रखता था। जसवन्तसिंह के मनसब में निरन्तर वृद्धि होती गई और उसके बीस वर्षों के शासनकाल में केवल ३२ वर्ष की अवस्था में ही सन् १६५८ ई० में उसका मनसब चार हजार ज़ात चार हजार सवार से बढ़कर सात हजार ज़ात सात हजार सवार पाँच हजार सवार दो अस्पा से अस्पा हो गया, जोकि अन्य सभी राजपूत राजाओं के मनसब से अधिक था। धरमत के युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने, दारा के लिए रुझान की भावना रखने तथा खजुवा के युद्ध में शुजा के साथ मिलकर औरंगज़ेब को हानि पहुँचाने का विचार रखने के संदेह से औरंगज़ेब अपने शासनारम्भ में जसवन्तसिंह से प्रसन्न न था। परन्तु वह राजपूतों से झगड़ा नहीं मोल लेना चाहता था, अतः सन् १६५९ ई० में उसने जसवंतसिंह को उसका पुराना मनसब देकर गुजरात जैसे महत्त्वपूर्ण सूबे पर नियुक्त किया, जहाँ उसने तीन वर्ष तक (सन् १६५९ से १६६१ ई०) सफलतापूर्वक शासन किया। इसके उपरान्त भी वह आजीवन मुगल–साम्राज्य की सेवा करता रहा। वह सन् १६६२ ई० से १६६५ ई० तक तथा सन् १६६६ ई० से सन् १६७१ तक दो बार दक्षिण में तथा सन् १६७१–२ ई० में कुछ समय के लिए गुजरात में सैनिक एवं प्रशासनिक कार्यों में रत रहा। २१ मई सन् १६७१ ई० को उसकी नियुक्ति जमरूद की थानेदारी पर की गई, जहाँ उसने सुरक्षा एवं व्यवस्था

का समुचित प्रबन्ध करके अपनी योग्यता का परिचय दिया। परन्तु २२ फरवरी सन् १६७६ ई० को अपने एकमात्र जीवित पुत्र महाराजकुमार जगतसिंह की मृत्यु के गहरे धक्के को वह सहन नहीं कर सका।[1] अपने राज्य के भविष्य की चिन्ता लिये हुए ही केवल ५२ वर्ष की अवस्था में बृहस्पतिवार, १८ नवम्बर सन् १६७८ ई० (पौष बदि १०, संवत् १७३५) को पेशावर में उसकी मृत्यु हो गई।[2]

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय उसकी दो रानियाँ तथा कुछ उपस्त्रियां पेशावर में उपस्थित थीं। रानी जादम[3] (जादमरा अथवा जादवाणी) तथा रानी नरूकी गर्भवती थीं। रानी जादम को चार मास का गर्भ था तथा रानी नरूकी को छः मास का।[4] जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर जब इन दोनों रानियों ने सती होने की तैयारी आरम्भ की तो राठौड़ सरदार चिन्तित हो उठे क्योंकि महाराजा की मृत्यु के समय उसका कोई भी उत्तराधिकारी जीवित न था।[5] उसके दोनों पुत्रों—पृथ्वीसिंह तथा जगतसिंह—की मृत्यु क्रमशः सन् १६६७ ई० तथा सन्

---

१. विस्तार के लिये डॉ० एन० सी० राय की अप्रकाशित थीसिस 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑव महाराजा जसवन्तसिंह' देखिये।

२. पंचोली २४अ व १५४अ; राजरूपक १७; ख्यात भाग १, २५६; भाग २, १; मूंदियाड़ १७४; फौजचन्द १; बाँकीदास ३३; वीर भाग २, ८२७; कविराजा ६६३; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात ६ब; रेउ भाग १, २४१; ओझा भाग ४ खंड १, ४६७; मारवाड़ ११०; जसवन्तसिंह १४३।

विशेष विवरण के लिये देखिये परिशिष्ट 'क'।

३. रानी जादम का पीहर का नाम जसकँवर था। वह करौली के राजा छत्रमणि के छोटे पुत्र राजकुमार भूपाल की पुत्री थी। यही जोधपुर के भावी महाराजा अजीतसिंह की माँ थी। (वाक्या २१७; जूनी ६१; खरड़े की ख्यात ३२४; सरकार (हिन्दी) २१७; गहलोत भाग १, ६०५)।

ओझा (भाग ४ खंड १, ४६७) ने रानी जादम को छत्रमणि की पुत्री कहा है, जो स्वीकार नहीं किया जा सकता।

४. पंचोली १५४अ व १६८अ; ख्यात भाग २, १६; जुनी ६२; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक १०; अजितविलास २०७ब; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात ६ब; वार्ता ३२ब।

प्राथमिक ग्रन्थों में केवल राजरूपक (२०) ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके अनुसार रानी जादम की गर्भावस्था के सात मास व्यतीत हो चुके थे। टॉड (भाग २, ४४) ने भी इसका समर्थन किया है। परन्तु पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ, ख्यात, जूनी बही, अजितोदय व अजितविलास आदि लगभग सभी समकालीन ग्रन्थ यही लिखते हैं कि रानी जादम को चार मास का गर्भ था, अतः इसी मत को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

५. केवल खफ़ी खाँ (मुन्तखब-उल-लुबाब भाग २, २५६); भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा भाग १, १६४); मनूची (भाग ३, २३३) व फ्रायर (१६०-१) ने स्वीकार किया है कि जसवन्तसिंह दो नाबालिग पुत्रों को छोड़कर मरा था। परन्तु चूँकि अन्य सभी इतिहासकारों ने स्पष्ट रूप से जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों के जन्म का उल्लेख किया है अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

१६७६ ई० में हो चुकी थी।[6] चूंकि मारवाड़ राज्य का भविष्य भावी सन्तान पर ही निर्भर था, अतः चांपावत उदयसिंह लाखधीरोत, के नेतृत्व में राठौड़ रणछोड़दास गोविन्ददासोत, राठौड़ संग्रामसिंह जुझारसिंहोत, कूंपावत सूरजमल नाहरखांनोत, राठौड़ राजसिंह बलरामोत, जेतावत प्रतापसिंह देवकरणोत तथा राठौड़ दुर्गादास आसकरणोत[7] आदि ने रानियों को बहुत समझाया और कहा कि भावोद्रेक में शीघ्र प्राण विसर्जन से कोई लाभ नहीं है; अपने राज्य की सुरक्षा के लिए थोड़े दिन प्रतीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।[8] इस प्रकार रानियों को तो सती होने से रोक लिया गया परन्तु जसवन्तसिंह के शव के साथ उसकी आठ उपस्त्रियाँ (गाइणें तथा खवासें) सती हुईं।[9]

जसवन्तसिंह की मृत्यु के दूसरे दिन २६ नवम्बर (पौष बदि ११) को राठौड़ सरदारों ने परस्पर विचार-विमर्श करके महाराजा के अन्तिम संस्कार के लिए पेशावर में ही रुकने का निश्चय किया और विभिन्न स्थानों पर यह दुःखद समाचार भेजा गया। राघोदास नामक पत्रवाहक यह समाचार लेकर जोधपुर गया। उसके साथ ही स्वर्गीय महाराजा की पगड़ी भेजी गई तथा जोधपुर में उपस्थित राठौड़ सरदारों के लिए एक पत्र भी भेजा गया जिसमें उन्हें धैर्य व शान्ति से कार्य करने की सलाह दी गई थी। इस पत्र में यह भी लिखा गया कि यदि बादशाह जोधपुर के प्रशासन के लिए शाही अधिकारी भेजे तो उन्हें भी स्वीकार करके औरंगजेब को प्रसन्न बनाये रखना ही तात्कालिक परिस्थिति के लिए उपयुक्त होगा। उस समय जोधपुर राज्य का वकील श्यामदास दिल्ली में उपस्थित था। राठौड़ों ने उसे भी आदेश भेजा कि वह बादशाह को महाराजा के स्वर्गवास की सूचना दे दे तथा यदि मुगल सम्राट् राज्य का उत्तराधिकारी न होने के कारण जोधपुर न दे तो उससे

---

६. जसवन्तसिंह १२८ व १४२; रेउ भाग १, २३७–८ व २४१; ओझा भाग ४ खंड १, ४५६ व ४६६।

७. लगभग सभी राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में दुर्गादास को दुर्गदास के नाम से सम्बोधित किया है।

८. पंचोली १५४अ; जूनी ६२; अजितोदय सर्ग ४ श्लोक २६; राजरूपक १८; अजितविलास २०७ब; वीर भाग २, ८२८; टॉड भाग २, ४४; रेउ भाग १, २४८; ओझा भाग ४ खंड १, ४६८।

९. पंचोली २४अ ब व १५४अ; ख्यात भाग २, १६; राजरूपक १८।
पंचोली (१५४अ) ने एक चाकर के भी आग में कूदकर मरने का उल्लेख किया है।
जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात (६ब) तथा टॉड (भाग २, ४४) ने एक रानी तथा सात उपस्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। मूंदियाड़ (१७४) तथा आसोपा (२२७) के अनुसार जसवन्तसिंह के साथ पन्द्रह स्त्रियां सती हुई थीं। सरकार (भाग ३, ३१६) ने पांच रानियाँ तथा सात उपस्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। परन्तु प्रामाणिक नहीं हैं।

सोजत व जैतारण के परगने के लिए ही प्रार्थना करे; क्योंकि रानियों के प्रसव तक बादशाह से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना ही हितकर है। इसके साथ ही सन्देशवाहक भेजकर शाही वाक़ानवीस काबुल के सूबेदार अमीर खाँ,[१०] जलालाबाद के फौजदार रामसिंह तथा मेवाड़ के राणा राजसिंह को भी जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार भेजा गया।[११]

औरंगज़ेब को जब जोधपुर के शासक की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने अमीर खाँ के एक निकट सम्बन्धी सैफ़ुल्ला खाँ को यह आदेश भेजा कि वह स्वर्गीय महाराजा की समस्त सम्पत्ति का निरीक्षण करे, उस पर शाही मुहर लगाये तथा जब राठौड़ सरदार पेशावर से शाही सेवा में प्रस्थान करें तब वहाँ का कार्य-भार सम्भाले। कुछ दिन उपरान्त इन राठौड़ सरदारों के नाम एक शाही फरमान आया, जिसमें सोजत एवं जैतारण के अतिरिक्त जसवन्तसिंह के अधीन सभी परगनों को शाही अधिकार में लेने की सूचना दी गई। साथ ही औरंगज़ेब ने राठौड़ों को यह भी आश्वासन दिया कि जब स्वर्गीय महाराजा के पुत्र उत्पन्न होगा, तो उसे समस्त प्रदेश वापस दे दिया जायेगा। इस फरमान के साथ ही अटक पार उतरने की दस्तक (परवाना) तथा खर्चे के लिए बीस हजार रुपये भी भेजे गये।[१२]

कहा जाता है कि बादशाह को जिस समय जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार मिला था, उस समय शाही दरबार में उपस्थित जोधपुर राज्य के वकील श्यामदास ने उसे बताया कि स्वर्गीय महाराजा की दो रानियाँ गर्भवती हैं। बादशाह ने इस बात की सत्यता जानने के लिए एक दूत को कुछ सेना देकर राठौड़ों के पास भेजा। यह गुप्तचर लाहौर में राठौड़ों से अत्यन्त नम्रता पूर्वक मिला और अनुनय-विनय करके अपने लिए मर्दानी ड्योढ़ी पर तथा अपनी पत्नी के लिए जनानी ड्योढ़ी पर नौकरी पाने में सफल रहा।[१३]

बादशाह द्वारा भेजा गया फरमान व दस्तक राठौड़ों के पास शनिवार ३१

---

१०. खलीलुल्ला खाँ के पुत्र मीर खाँ को सन् १६७४ ई० में अमीर खाँ की पदवी मिली थी (मुस्ताद खाँ ८६)। ख्यातों में इसका मीरखाँ के ही नाम से उल्लेख है।

११. पंचोली १५४अ ब; ख्यात भाग १, २७६; भाग २, १; जुनी ६२; अजितोदय सर्ग ४ श्लोक ३५-६; वीर भाग २, ८२८; वाक़या. ९०-१; ओझा भाग ४ खंड २, ४७७-८।

१२. पंचोली १६१ब; ख्यात भाग २, ९; जुनी ६२: मूंदियाड १७४-५; अजितविलास २०८अ; वाक़या १०८; आसोपा २३५।

केवल वाक़या को छोड़कर अन्य किसी समकालीन अथवा परवर्ती फ़ारसी आधार ग्रन्थों में इस फरमान का कोई उल्लेख नहीं है।

१३. अजितोदय सर्ग ५, श्लोक २२-८।

दिसम्बर (माघ १ कृष्णा ११) को पहुँचा।[१४] इससे पूर्व ही वहाँ उपस्थित राठौड़ सूरजमल, राठौड़ रणछोड़दास, चन्द्रसेण, उदयसिंह, प्रतापसिंह, श्यामसिंह, विट्ठलदास, मोहकमसिंह, राठौड़ दुर्गादास, भारमल, चन्द्रभाण द्वारकादासोत, भंडारी भीव गिरधरदासोत, भंडारी सूरजमल नाहरदासोत, राठौड़ महासिंह, राठौड़ सबलसिंह, किशनसिंहोत, गौड़ सुग्रामसिंह, कछवाहा नारायणदास भाखरोत, राठौड़ जुझारसिंह, राजसिंहोत, पंचोली हरकिशन, रघुनाथ, जगन्नाथ, धांधल उदयकरण, खीची मुकुन्ददास, गूजर लक्ष्मण, पंचोली दुर्गादास, हरीदास, पंचायणदास आदि सरदारों ने परस्पर विचार-विमर्श करके बादशाह से मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखने का निश्चय किया और सैफुल्ला खाँ तथा काजी और वाकयानवीस आदि मुगल अधिकारियों को बुलाकर समस्त सम्पत्ति दिखा दी और शाही मुहरें लगवा लीं। महाराजा के घोड़ों व ऊँटों को भी दाग दिया गया। फ़रमान व दस्तक पाते ही वे पेशावर से प्रस्थान की तैयारी करने लगे।[१५]

उस समय काबुल के सूबेदार अमीर खाँ का भाई लाखा खाँ दिल्ली में था। उसे जब यह समाचार मिला कि बादशाह ने राठौड़ सरदारों को पेशावर से दिल्ली आने की अनुमति दे दी है तो वह कुछ चिन्तित हुआ। उसने मुगल सम्राट से प्रार्थना की कि अभी तक उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अफ़गानों का विद्रोह पूर्ण रूप से शान्त नहीं हुआ है, और ऐसी परिस्थिति में राठौड़ सरदारों एवं सैनिकों को वापस बुला लेने से मुगलों की सैनिक शक्ति क्षीण हो जायेगी जिसके फलस्वरूप सम्भव है वहाँ की समस्या और भी गम्भीर हो उठे। परिस्थिति पर विचार कर औरंगज़ेब ने अपना दस्तक वापस लाने के लिए एक दूत भेजा, परन्तु उसे यह भी स्पष्ट निर्देश कर दिया गया कि यदि दस्तक राठौड़ों के पास पहुँच गई हो तब तो उसे वापस न लिया जाय, पर यदि अभी तक न मिली हो तो उसे वापस मंगा लिया जाय। सम्भवतः उसका उद्देश्य यह था कि यदि राठौड़ वहाँ रुक जायँ तो अच्छा ही है, परन्तु उनके मन में किसी प्रकार का क्षोभ या आशंका उत्पन्न कर उनको वहाँ रोकना वह उचित न समझता था। परन्तु उसके आदेश का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया गया। १ जनवरी सन् १६७९ ई० (माघ बदि १४, सम्वत् १७३५) को जिस

---

१४. पंचोली १६१ब।

यह फरमान व दस्तक राठौड़ों को किस दिन मिला इस विषय में मतभेद है। ख्यात (भाग २, ६) व जुनी (६२) में इस घटना का उल्लेख २८ दिसम्बर (माघ बदि १०) को तथा पानेश्वर (१७२-३) में २५ दिसम्बर (माघ बदि ७) को किया गया है। वास्तव में औरंगजेब ने इस दूत को भेजने के बाद जल्दी ही दूसरा दूत दस्तक वापस लाने के लिये भेजा था। सभी ग्रन्थों में दूसरे दूत के पेशावर पहुँचने की तिथि २ जनवरी (माघ बदि १४) ही स्वीकार की गई है। पहले भेजा गया दूत अवश्य ही इससे एकाध दिन पूर्व आया होगा, इसी कारण ३१ दिसम्बर को फ़रमान व दस्तक पहुँचना स्वीकार किया गया है।

१५. पंचोली १५४ब; ख्यात भाग २, १; ओझा भाग ४, खंड २, ४७७-८।

समय राठौड़-दल आगे बढ़ने की तैयारी कर रहा था। शाही दूत ने वहाँ पहुंच कर उनसे अटक पार करने की दस्तक वापस ले ली।[१६] इस दूत ने सम्भवतः अपनी स्वामिभक्ति और कार्य तत्परता दिखाने के उद्देश्य से ही ऐसा कदम उठाया था। शाही आज्ञा का उल्लघंन करने के नाते उसे क्या दण्ड मिला अथवा दण्ड मिला भी या नहीं, उससे प्रमुख समस्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। औरंगजेब जिस परिस्थिति को बचाना चाहता था वह इस राजदूत की विवेकहीनता से अकस्मात् उठ खड़ी हुई। महाराजा जसवन्तसिंह के परिवार एवं अन्य सहयोगियों को पेशावर में रोकने का उसका कोई विचार नहीं था। उनको वापस आने की आज्ञा ही नहीं, बल्कि मार्ग-व्यय के लिए बीस हजार रुपया भी भेजा गया था। काबुल की विषम परिस्थिति के नाते ही उसने लाखा खाँ के सुझाव को स्वीकार किया था, फिर भी राठौड़ों को किसी भी प्रकार असन्तुष्ट कर उन्हें पेशावर में रोकने का उसका बिल्कुल भी इरादा नहीं था। स्पष्ट है कि वह उस समय राठौड़ों के सन्तोष एवं सहयोग को अधिक महत्व दे रहा था।

इधर दस्तक वापस लिये जाने से राठौड़ों के हृदय में सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। उत्तराधिकारी के अभाव में स्वदेश से सैंकड़ों मील दूर रोके जाने से वे शंकित हो उठे। केवल पांच दिन उपरान्त मंगलवार ७ जनवरी (माघ सुदि ५) को जब जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर अमीर खां पेशावर आया तो राठौड़ों ने उसका स्वागत किया व दिल्ली के लिये प्रस्थान करने की अनुमति चाही। परन्तु अमीर खां को सम्भवतः सारी परिस्थिति का ज्ञान नहीं था, और उसने शाही आदेश के बिना उन्हें अनुमति देना उचित नहीं समझा।[१७] इससे राठौड़ों का और भी सशंक हो जाना स्वाभाविक था।

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय पंचोली हरराय उसकी ओर से जमरूद की देखभाल कर रहा था। महाराजा की मृत्यु का समाचार पाकर उसने ढाई हजार सवारों के साथ पेशावर के लिये प्रस्थान किया, जहां वह बृहस्पतिवार ९ जनवरी (माघ सुदि ८) को पहुंचा।[१८]

जब बादशाह को पता चला कि उसका दूत राठौडों के पास से दस्तक वापस लेकर आया है तो उसने रोहितासगढ़ के फौजदार नवाज बेग[१९] को आदेश भेजा कि

---

१६. पंचोली १६१ ब; ख्यात भाग २, ९।

१७. पंचोली १६२ ब।

ख्यात (भाग २, ९) में लिखा है कि अमीर खाँ २८ दिसम्बर (माघ बदि १०) को पेशावर पहुँचा था। लेकिन यह तिथि ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि राठौडों ने उससे प्रस्थान करने की अनुमति माँगी थी अतएव यह स्वीकार करना अधिक समीचीन जान पड़ता है कि वह शाही दस्तक वापस लिये जाने के बाद पेशावर पहुँचा था।

१८. पंचोली १६२ ब; ख्यात भाग २, ९।

१९. राजस्थानी ग्रन्थों में इसका नाम निवाज बेग लिखा गया है।

वह राठौड़ों को साथ लेकर दिल्ली आए। यह आज्ञा उसके पास शुक्रवार, ११ जनवरी (माघ सुदि १०) को पहुँची। उसने अमीर खाँ से राठौड़ों को अटक पार जाने देने के लिए स्वीकृति माँगी परन्तु अमीर खाँ को इस प्रकार का आदेश अभी तक नहीं मिला था, इसलिए उसने नवाज़ बेग की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। तब नवाज़ बेग ने राठौड़ सरदारों को यह सुझाव दिया कि वे अमीर खाँ को समझा बुझा कर उससे दस्तक प्राप्त करें। राठौड़ों ने रविवार, १२ जनवरी (माघ सुदि ११) को नवाब अमीर खाँ से भेंट की और उनके अग्रणी राठौड़ संग्रामसिंह[२०] ने निवेदन किया कि राठौड़ों के पास अन्नाभाव है, ऐसी दशा में यदि उन्हें दस्तक न मिली तो वे निश्चय ही उपद्रव करेंगे और उन्हें अनुशासन में रखना कठिन हो जाएगा। फिर अनुशासन भंग करने का आरोप हम पर लगेगा। अतः उचित यही है कि राठौड़ों को प्रस्थान करने की अनुमति शीघ्र दे दी जाय। सोमवार, १३ जनवरी (माघ सुदि १२) को जब यह लोग पुनः अमीर खाँ से मिले, तब उसने उन्हें अटक पार करने की दस्तक दे दी। इस प्रकार राठौड़ों ने अगले दिन १४ जनवरी (माघ सुदि १३) को पेशावर से प्रस्थान किया।[२१]

राठौड़ों ने पहला पड़ाव केवल आधे कोस की दूरी पर डाला। अगले दिन बुधवार, १५ जनवरी (माघ सुदि १४) को अमीर खाँ ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए राठौड़ों के पास शराब व अन्य भोजन सामग्री भेजी। बृहस्पतिवार, १६ जनवरी (माघ सुदि १५) को भोजनोपरान्त पाँच कोस की यात्रा करके राठौड़ खानेदौराँ की

---

२०. ख्यात में संग्रामसिंह के स्थान पर स्यामसिंह नाम लिखा है; परन्तु संग्रामसिंह ही इस समय प्रमुख सरदार था।

२१. पंचोली १६२ब, १६३अ व १६३ब; ख्यात भाग २, ९ व १०।

फुतूहात (७३ब); जुनी (६२) दानेश्वर (१७३); एवं अभयविलास (१०अ) में शाही आज्ञा मिल जाने के बाद राठौड़ों का यात्रारम्भ करना स्वीकार किया गया है।

मुन्तखब-उल-लुबाब (भाग २, २५९); अजितोदय (सर्ग ४, श्लोक ३९); वीर (भाग २, ८२८) में लिखा है कि राठौड़ों ने बिना आज्ञा प्राप्त किये यात्रारम्भ कर दिया था। चूंकि उनके पास अटक पार करने की दस्तक नहीं थी, अतः वहाँ पहुँचने पर मीर-बहर ने उन्हें रोका। इस पर राठौड़ों ने शाही अधिकारियों से युद्ध किया और मीर-बहर व उसके कुछ साथियों को घायल करके बलपूर्वक अटक नदी को पार किया। मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए ९८); फ़ारूकी (२११-२ व २२३); रेउ (भाग १, २४८); ओझा (भाग ४, खंड २, ४७८); गहलोत (मारवाड़ १५७) आसोपा (मूल १९२) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु इस मत को स्वीकार करना ठीक नहीं है, क्योंकि पंचोली ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि अटक पार करने के लिये नावों का प्रबन्ध करने में स्थानीय दारोगा ने राठौड़ों को सहायता दी थी और नदी पार कर लेने के बाद अटक का फौजदार भी राठौड़ सरदारों से मिला था। इस बात की पुष्टि जोधपुर राज्य की ख्यात और अन्य ग्रन्थो से भी होती है।

टॉड (भाग २, ४४) ने लिखा है कि राठौड़ो ने अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त अपनी यात्रारम्भ की थी जो बिल्कुल गलत है।

सराय में रुके। कुछ सामग्री एवं घोड़ों पर शाही मुहर न लग पाई थी, अतः राठौड़ दुर्गादास, पंचोली, हरिकिशन, तथा रघुनाथ यहीं रुक गए। शेष सरदारों ने यात्रा जारी रक्खी तथा नौशेरा[२२] होते हुए शनिवार, १८ जनवरी (फाल्गुन बदि 2) को आँकोड़ा नामक स्थान पर पहुंचे।

अगले दो दिन १९ व २० जनवरी (फाल्गुन बदि ३ व ४) अटक पार करने के लिए नावों के प्रबन्ध में व्यतीत हुए। स्थानीय दारोगा की सहायता से जब समुचित प्रबन्ध हो गया तो मंगलवार २१ जनवरी (फाल्गुन बदि ४) को राठौड़ों ने अटक पार करके नदी के दूसरी ओर खेमे डाल दिए। यहीं पर अटक का फ़ौजदार भी राठौड़ों से मिलने आया यहाँ से बुधवार, २२ जनवरी (फाल्गुन बदि ५) को सांहणी जोगीदास द्वारा जोधपुर के सरदारों के पास यह सन्देश भेजा गया कि वे औरंगज़ेब का विरोध न करें और उससे अच्छे सम्बन्ध बनाए रक्खें।

अटक से चलकर यात्रा करता हुआ यह दल रविवार, २६ जनवरी (फाल्गुन बदि ९) को हसन अब्दाल पहुँचा। रोहितासगढ़ का फ़ौजदार भी शाही आज्ञानुसार राठौड़ों के साथ यात्रा कर रहा था। इस पड़ाव पर उसके पास हस्बुलहुक्म आया कि वह राठौड़ सूरजमल को लेकर आगे आ जाएं। उसके स्थान पर राठौड़-दल को राजधानी तक पहुँचाने के लिए अजमेरी खाँ की नियुक्ति की गई। हसन अब्दाल में ही जोधपुर से राघोदास वापस आया और उसने जोधपुर में रानी चन्द्रावत के साथ स्वर्गीय महाराजा की बीस उपस्त्रियों के सती होने का समाचार दिया। साथ ही उसने राज्य में स्थान-स्थान पर होने वाले विरोध का भी विवरण दिया। इसी दिन राजगुरु पुरोहित गांगजै, कल्याण दास कायस्थ, पंचोली जयसिंह सादूलोत तथा राठौड़ सादूलोत गहलोत को महाराजा जसवन्तसिंह की अस्थियाँ प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार भेजा गया।[२३]

सोमवार, २७ जनवरी (फाल्गुन बदि १०) को हसन अब्दाल से चलकर राठौड़ों ने काला पाणी पार किया और सात कोस की यात्रा करके खरबूजा की सराय में रुके।[२४] यहां से चलकर रावलपिण्डी होते हुए ये लोग रविवार, २ फरवरी (फाल्गुन सुदि २) को गाखड़ के तालाब पर रुके, जहाँ उन्हें बादशाह का दूसरा फ़रमान मिला जिसमें उसने राठौड़ों को पुनः सांत्वना दी थी। अगले पड़ाव रोहितासगढ़ पर दुर्गादास तथा रघुनाथ भी आ पहुँचे। अब केवल पंचोली हरिकिशन पीछे रह गया था। दो दिन तक वर्षा के कारण यात्रा स्थगित रही।

---

२२. राजस्थानी ग्रन्थों में इस स्थान का नाम 'नवसैर' अथवा 'नवेसहर' लिखा है।

२३. पंचोली १६३ ब से १६६ अ; ख्यात भाग २, १०; जुनी ६२; दानेश्वर १७२-३, १८५-६।

२४. पंचोली. १६६ अ; ख्यात भाग २, १०; दानेश्वर १८६। इन ख्यातों में लिखा है कि मार्ग में ही नवाज बेग की पालकी के कहारों द्वारा कुछ कटु वचन कहे जाने पर वह अप्रसन्न होकर काला पाणी पर ही रुक गया था। मंगलवार, २८ जनवरी (फाल्गुन बदि ११) को जब पंचोली जयकरण उसे मना न सका तो अगले दिन राठौड़ संग्रामसिंह उसे मनाकर लाया और उसने उसे अपने शिविर में ही रक्खा।

बृहस्पतिवार, ६ फरवरी (फाल्गुन सुदि ६) को पुनः यात्रारम्भ की गई। निरन्तर आगे बढ़ते हुए यह दल चिनाब नदी पार करके मंगलवार, ११ फरवरी (फाल्गुन सुदि ११) को वज़ीराबाद[२५] पहुँचा। तीन ही दिन उपरान्त शुक्रवार, १४ फरवरी (फाल्गुन सुदि १४) को ये लोग नबी की सराय में रुके। यहीं पर जोधपुर से एक दूत आया जिससे राठौड़ों को पता चला कि बादशाह ने अब्दुल्ला खाँ को जोधपुर के किले का निरीक्षण करने के लिए भेजा था। राठौड़ों ने पहले उसे किले को दिखाना स्वीकार नहीं किया, पर बाद में वकील श्यामदास का पत्र पाकर किला दिखा दिया गया। इस दूत ने यह भी बताया कि शाही अधिकारी जब जोधपुर पर अधिकार नहीं कर पाए तो उन्होंने बादशाह से सहायता माँगी। औरंगज़ेब तब स्वयं अजमेर की ओर गया और उसने मार्ग से ही खाँनेजहाँ बहादुर को जोधपुर की ओर रवाना किया। खाँनेजहाँ जोधपुर के निकट प्रमुख राठौड़ सरदारों से मिला और उसने वचन दिया कि जसवन्तसिंह के पुत्र उत्पन्न होने पर जोधपुर राज्य लौटा दिया जाएगा। तब राठौड़ सरदारों ने जोधपुर में शाही अधिकारियों को स्वीकार कर लिया।

अगले दिन रावी नदी पार करके राठौड़ शनिवार, १५ फरवरी (फाल्गुन सुदि १५) को लाहौर की हवेली में पहुँचे। यहीं पर होली का त्यौहार मनाया गया।[२६] लाहौर में इस दल में ५३ सरदार, ४६ कामदार, ३६ खास-पासवान, २२ ब्राह्मण, ३१ हीडागर तथा ११ मुसलमान उपस्थित थे।[२७]

लाहौर में ही रानी नरुकी को प्रसव-पीड़ा आरम्भ हुई। सन्तानोत्पत्ति का समय निकट जानकर राठौड़ यहीं रुक गए। रानी जादम को दूसरी रानी का कष्ट देखकर मन ही मन चिन्ता हुई कि यदि नरुकी ने अपने पुत्र को पहले जन्म दिया तो वही मारवाड़ का अधिपति होगा।[२८] संयोगवश, नरुकी से पूर्व ही रानी जादम ने बुधवार, १९ फरवरी (चैत्र बदि ४, संवत् १७३६) को एक सतमासिया पुत्र को जन्म

---

२५. राजस्थानी ग्रन्थों में इस स्थान को 'उजीराबाद' के नाम से लिखा गया है।

२६. पंचोली १६६ अ, ब; ख्यात भाग २, १०-१; जुनी. ६२; दानेश्वर १८८; आसोपा. २३६।

२७. ख्यात-भाग २, ११-६; पंचोली-१५५ ब–१५६ ब।

दोनों ग्रन्थो की संख्या में कहीं-कहीं कुछ भिन्नता है, परन्तु उससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

२८. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक १-४; वार्ता. ३२ ब।

अजितोदय में लिखा है, कि हिंगलाज देवी रानी जादम को स्वप्न में दिखाई दीं और उन्होंने कहा कि तुम्हारा ही पुत्र बड़ा होगा एवं जीवित रहेगा और प्रतापी शासक होगा।

दिया जिसका नाम अजीतसिंह रक्खा गया।[२९] कुछ घड़ी के उपरान्त रानी न रुकी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जो दलथम्भन के नाम से पुकारा गया।[३०]

इन दोनों राजकुमारों के जन्म से राठौड़ों के हर्ष का पारावार न रहा। राघोदास, गोवर्धन तथा तुलसी नामक पत्रवाहकों को अगले ही दिन बृहस्पतिवार, २० फरवरी (चैत्र बदि ५) को यह समाचार पहुँचाने के लिए जोधपुर भेजा गया। बादशाह के पास उपस्थित वकील श्यामदास को सन्देश भेजा गया कि वह दो सौ मुहरें भेंट करके बादशाह को दोनों राजकुमारों के जन्म का समाचार दे दे। नवाब अमीर खाँ तथा राजा रामसिंह के पास भी सन्देशवाहक भेजकर यह समाचार पहुँचाया गया।[३१] वज़ीर असद खाँ, बख्शी सरबुलन्द खाँ आदि विभिन्न शाही अधिकारियों के लिए भी उपयुक्त उपहार भेजे गए।[३२] इसी दिन पेशावर से मिर्ज़ा अजमेरी खाँ राठोड़ों के पास आ पहुँचा। इसे बादशाह ने राठौड़ों को दिल्ली लाने के लिए नवाज़ बेग के स्थान पर नियुक्त किया था।[३३]

---

२९. पंचोली १६८ अ; ख्यात भाग २, १ व १९; राजरूपक. २६; अजितोदय. सर्ग ६२ श्लोक १–१०; जुनी. ६१-२; मूंदियाड़. १७४; आजित चरित्र सर्ग ७ श्लोक ६; फौजचन्द १; दानेश्वर १७२ व १८६; अजितविलास. २०८ ब; वीर–भाग २, ८२८; राठौड़ाँ-१; रेउ–भाग १, २४८; ओझा-भाग ४ खंड २, ४७८; रतलाम-२२२; मल-१९२; फारूकी. २११-;२ गहलोत. मारवाड़) १५६; मारवाड़ ११९।

विशेष विवरण के लिये देखिये परिशिष्ट 'ख'।

३०. ख्यात-भाग २, १९; पंचोली. १६८ अ; जुनी६१ ; मूंदियाड, १७५; अजितोदय. सर्ग ६ श्लोक १५; दानेश्वर. १७२ व १८२; अजितविलास २०८ ब; वीर. भाग २, ८२८; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात. ६ ब. मुस्ताद खाँ. १०७; फ़ुतूहात. ७३ ब; देवीप्रसाद. ८४; सरकार ३, ३२९; रेउ. भाग १, २४८, ओझा. भाग ४ खड २, ४७८।

३१. पंचोली १६८ ब व १७० ब; ख्यात. भाग २, १९-२०; जुनी-६३; दानेश्वर. १८७ अजित-विलास. २०८ ब; आसोपा. २३६।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १८) में जोधपुर भेजे जान वाले दूत का नाम हरिकिशन लिखा है। अजितविलास (२०८ ब) के अनुसार इसी समय इन राठौड़ सरदारों ने जोधपुर में उपस्थित् सरदारों को एक पत्र भी लिखा जिसमें बताया कि वे लोग दिल्ली की ओर जा रहे हैं और उन्हे भी दिल्ली पहुंचने की राय दी। साकी मुस्ताद खाँ (१०९) ने यह लिखा है कि राठौड़ सरदारों ने बादशाह को समाचार देने के साथ-साथ बड़े राजकुमार को मनसब व जोधपुर का राज्य देने की प्रार्थना भी की थी। परन्तु इन मतों की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

३२. पंचोली (१६८ अ) ने तथा जुनी (६३) में विभिन्न अधिकारियों को भट भेजने का उल्लेख इस प्रकार है :—

५०,००० रु० सरबुलन्द खाँ; २५,००० रु० असद खाँ; ४०,००० रु० काबली खाँ; २,००० रु० दाराब खाँ; २०,००० रु० इनायत खाँ; ७,००० रु० काजी; २०० रु० निहाल बेग।

३३. पंचोली. १६८ ब।

लाहौर में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि राठौड़ों ने महाराजा जसवन्त सिंह की जीवितावस्था के कागज जला डाले।[३४] उन्होंने ऐसा क्यों किया इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इससे एक सन्देह अवश्य उत्पन्न होता है कि सम्भवत: स्वर्गीय महाराजा के पास उपस्थित राठौड़ सरदार महाराजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति का ठीक-ठीक विवरण मुगल सम्राट को नहीं देना चाहते थे।

राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में अनेक उत्सव हुए और एक सप्ताह तक विभिन्न व्यक्तियों की ओर से लापसी[३५] की दावतें होती रहीं। शेष भोज यात्रा के कारण स्थगित कर दिये गये।[३६] दस दिन बीत जाने पर जच्चा व बच्चा को स्नान कराने का 'दसौठन' [३७] नामक उत्सव शुभ मूहूर्त के अनुसार शुक्रवार. २८ फरवरी (चैत्र बदि १३)[३८] को उत्साहपूर्वक मनाया गया चूँकि इसी दिन यात्रारम्भ करने

---

३४. ख्यात. भाग २, २०; दानेश्वर. १८७।

३५. राजस्थान में प्रत्येक शुभ अवसर पर 'लापसी' बनाने का प्रचलन अब भी है। यह थोड़े घी में बनाया गया पतला हलवा होता है।

३६. पंचोली. १६८ ब १६६ अ

रावली तरफ री कढ़ाई हुई लापसी री-रा।
संगरामसिंघ जी कटक मां सारै गुल दिया। मण ३६

....

बार (दलिया)	गुल (गुड़)	घिरत (घृत)	आसामी (व्यक्ति)
११)	८)	६)	चै/बदि ५ गुरु राउली तरफ री हुई।
१४॥)	८॥)	६)	चै/बदि ६ शुक्र नागा चै बदि ७ सन्य बहु जी जादम री तरफ री हुई।
१५)	८॥)	६)	चै/बदि ८ रऊ बहु जी श्री कछवाही जी री तरफ री हुई।
१२)	७॥)	५)	चै/वदि ९ सोम रा/सूरजमल री तरफ री।
१२)	८॥)	५)	चै/बदि १० भोम रा/प्रतापसिंघ जी री तरफ री
१३)	८॥)५	५॥।)	चै/बदि ११ बुध रा/रिणछोड़दास जी री तरफ री।
१२॥)	७॥)	५)	चै/बदि १२ गुरु रा/उदैसिंघजी री तरफ री।

ख्यात (भाग २, २०) व जुनी (६२) पर भी लगभग यही विवरण मिलता है।

३७. राजस्थानी ग्रन्थों में इस उत्सव का नाम 'दशोटण' लिखा गया: परन्तु ठीक शब्द 'दसौठन' ही है।

३८. ख्यात (भाग २, २०) में २६ फरवरी (चैत्र बदि ११) को 'दसौठन' का उत्सव मनाने का उल्लेख हैं। परन्तु इस दिन राजकुमार के जन्म के केवल सात दिन ही बीते थे और 'दसौठन' सम्भवत: दस दिन के बाद होने वाला स्नान था। अत: इस तिथि को मानना ठीक प्रतीत नहीं होता।

का भी मुहुर्त था, अतः इस उत्सव के उपलक्ष में होने वाला भोज स्थगित कर दिया गया तथा सात-आठ घड़ी दिन शेष रहने पर राठौड़ों ने सतीबाग[३९] के पास पहुंच कर पड़ाव डाला। यहीं पर 'दसौठन' के उपलक्ष्य में दावत हुई, जिसमें राजकुमारों के लिये भी थाल परोसे गये और उन थालों के पीछे यथाविधि सरदार बैठे। ब्राह्मणों बनियों तथा काम करने वाले व्यक्तियों को उनकी स्थिति के अनुसार गेहूँ, चावल, दाल आदि खाद्यान्न दिये गये, जिसे 'पेटिये' कहा जाता था। राठौड़ संग्रामसिंह की अस्वस्थता के कारण अगले दो दिन तक सब लोग इसी स्थान पर रुके रहे।[४०]

मंगलवार, ४ मार्च (चैत्र सुदि २) को पुनः यात्रा आरम्भ हुई। प्रतिदिन आठ-नौ कोस की यात्रा करते हुए यह लोग रविवार, ९ मार्च (चैत्र सुदि ८) को नूरमहल[४१] की सराय में रुके : अगले दिन १० मार्च (चैत्र सुदि ९) को इसी स्थान पर देशरावा नामक उत्सव हुआ।[४२] इस अवसर पर सरदारों ने राजकुमारों के दर्शन किये। इसी समय से राठौड़ों ने ज्येष्ठ महाराजकुमार अजीतसिंह को महाराजा जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार करके यथोचित सम्मान देना प्रारम्भ कर दिया था। इस दिन सभी सरदारों ने उसके पाँव छुए तथा मुहरें व रुपया भेंट किया। शाही अधिकारी नवाज़ बेग व अजमेरी खाँ भी उससे मिले। इसी दिन भोज भी हुआ जिसमें सभी सरदार अपने-अपने निर्धारित स्थान पर बैठे। सायंकाल पुनः दरबार लगाया गया, परन्तु इस समय अजीतसिंह को बाहर नहीं लाया गया। इस वक्त नौबत बजाई गई, घोड़े की पूजा की गई तथा चार भैंसों की बलि दी गई।[४३]

यहाँ से चलकर राठौड़ फलौर होते हुए बुधवार, १२ मार्च (चैत्र सुदि ११) को लुधियाना पहुँचे।[४४] यहीं पर उन्हें बुधवार, ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) का अजमेर से लिखा गया एक हस्बुलहुक्म मिला जिसमें लिखा था कि मुगल सम्राट अजमेर से दिल्ली की ओर प्रस्थान कर रहा है, अतः वे लोग भी यथाशीघ्र दिल्ली पहुँचें।

---

३९. ख्यात (भाग २, २०) में इस स्थान का नाम ततीवाघ बताया गया है परन्तु पंचोली द्वारा उल्लिखित नाम को ही स्वीकार किया गया है।

४०. पंचोली १९९ अ; ख्यात-भाग २, २०-१।

४१. पंचोली (१९९ अ) ने इसका उल्लेख नूरमोहर नाम से किया है; परन्तु ठीक शब्द नूरमहल ही है।

४२. दानेश्वर (१८७) में यह उत्सव एक दिन पूर्व होना लिखा है। राठौड़ों के यहाँ चैत्र सुदि १ से ९ तक नवरात्रि का पूजा होती हैं और चैत्र सुदि १० को चैती दशहरा मनाया जाता है। यहाँ इसी चैती दशहरा का उल्लेख है।

४३. पंचोली १९९ अ; ख्यात. भाग २, २०-१; दानेश्वर. १८७।

४४. इस स्थान का उल्लेख लैधांणा नाम से किया गया है, परन्तु शुद्ध रूप लुधियाना ही है।

वहाँ पर महाराजा जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को नाम, मनसब व राज्य देकर सम्मानित किया जायेगा।[४५]

दूसरे दिन बृहस्पतिवार, १३ मार्च (चैत्र सुदि १२) को दुराहे की सराय पर अजमेरी खाँ को बादशाह की आज्ञा मिली कि वह राठौड़ों को छोड़कर दिल्ली चला आये। अजमेरी खाँ के विदा होते समय अजीतसिंह को बाहर लाया गया और उसकी ओर से खाँ को भेंट स्वरूप पाँच सौ रुपये नकद तथा दो घोड़ों के स्थान पर उनके मूल्य स्वरूप दो सौ रुपये और दिये गये। उनकी यात्रा पूर्ववत् चलती रही। १७ मार्च (चैत्र सुदि १५) को अलुणा की सराय में एक हस्बुलहुक्म द्वारा उन्हें विदित हुआ कि वकील श्यामदास द्वारा राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में भेंट की गई दो सौ मुहरें बादशाह ने स्वीकार करली हैं।[४६]

इसके उपरान्त इन्होंने अम्बाला, शाहाबाद, कुरुक्षेत्र थानेसर व कसाल होते हुए सोनीपत (सुंनपत) नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। नवाज बेग अभी तक राठौड़ों के साथ-साथ यात्रा कर रहा था, सोनीपत से उसे आगे भेज दिया गया। इसके उपरान्त २ अप्रेल (वैशाख सुदि 2) को मनोहरपुर नामक स्थान पर एक व्यक्ति जोधपुर से आया जिसने यह सन्देश दिया कि जोधपुर से भी कई राठौड़ सरदार दिल्ली की ओर आ रहे हैं और वे १५ अप्रेल (वैशाख सुदि १४) तक वहाँ पहुँच जायेंगे। अगले दिन ३ अप्रेल (वैशाख सुदि ३) तथा पुनः ४ अप्रेल (वैशाख सुदि ४) को कुछ राठौड़ सरदार दिल्ली जाकर बख्शी सरबुलन्द खाँ से मिले।[४७]

---

४५. पंचोली १६६ ब; ख्यात-भाग २,११; राजरूपक-२७; जुनी. ६३; दानेश्वर. १८७; सूरजप्रकाश भाग २,२५; वीर-भाग २,८२८; मनूची भाग ३,२३३; ओझा-भाग ४, खंड २,४८०; मेवाड़ १६६; आसोपा २३७; गहलोत (मारवाड़) १५७।

साकी मुस्ताद खाँ (१०६) के अनुसार बादशाह ने राजकुमारों को दरबार में बुलाया था और यह भी संदेश भेजा था कि जब वे बड़े हो जायेगे तो उन्हे मनसब व राज्य दे दिया जायेगा। अधुनिक इतिहासकार फारुकी (२१४-५) तथा रामकर्ण आसोपा (मूल. १६३) ने भी इस मत का समर्थन किया है। फ़ारुकी का विचार है कि औरंगजेब के मन में यह सन्देह था कि दोनों नवजात बच्चे स्वर्गीय महाराजा के वास्तविक बच्चे नहीं हैं, राजपूतों ने किन्ही दो बच्चों को राजकुमार घोषित कर दिया है। अतः सत्यता जानने के लिये उसने राज परिवार और राठौड सरदारों को दिल्ली बुलाया था।

यह जगजीवन (अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक ५२) का मत है कि बादशाह जब अजमेर से दिल्ली की ओर लौट रहा था तो मार्ग में इस राठौड़-दल से उसकी भेंट हुई और वह उन्हें अपने साथ दिल्ली ले गया। परन्तु समस्त यात्रा विवरण को देखते हुये इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आसोपा (२३७) का मत है कि बादशाह ने राजकुमारों को मुसलमान बनाने का निश्चय करने के बाद दिल्ली बुलाया था; परन्तु इसकी पुष्टि किसी फ़ारसी अथवा राजस्थानी के आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

४६. पंचोली. १६६ ब १७० अ; ख्यात-भाग २,२१।

४७. पंचोली १७० अ ब, १७३ अ; ख्यात-भाग २,२२; जुनी ६३।

राठौड़ों ने ५ अप्रेल (वैशाख सुदि ५) को इस अन्तिम पड़ाव से चलकर दिल्ली में प्रवेश किया और जसवन्तपुरा में महाराजा जसवन्तसिंह की हवेली में पड़ाव डाला।[४८]

(ख) औरंगजेब की प्रतिक्रिया:—(सन् १६७८-६ ई०)

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार लेकर राघोदास रविवार १५ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० (पौष सुदि १३) संवत्-१७३५ को सायंकाल मेड़ता पहुँचा।[४९] उसने पंचोली केसरीसिंह तथा भंडारी रघुनाथ को जसवन्तसिंह की दुःखद मृत्यु का समाचार सुनाया तथा पेशावर में उपस्थित राठौड़ सरदारों का पत्र दिया। इन दोनों ही सरदारों ने अगले ही दिन १६ दिसम्बर (पौष सुदि १४) को प्रातःकाल जोधपुर पहुँचकर जब जसवन्तसिंह के रनिवास को यह समाचार दिया, तब रामपुरे के राव अमरसिंह की बेटी रानी चन्द्रावत तथा स्वर्गीय महाराजा की बीस उपस्त्रियां राजा की पगड़ी के साथ मंडोर में सती हुईं। परन्तु बूँदी के राव भावसिंह की बहिन हाड़ी रानी कर्मावती को राठौड़ सरदारों ने सती नहीं होने दिया और उसी की सलाह से भावी कार्यक्रम की योजना आरम्भ हुई।[५०] रानी व राठौड़ सरदारों ने राघोदास द्वारा लाए गए पत्र पर विचार किया, जिसमें रानियों के प्रसव तक शान्ति की नीति का ही पालन करने की राय दी गई थी। हाड़ी रानी

---

४८. फुतूहात ७४ ब; पंचोली १७३ अ; ख्यात-भाग २,२२; आसोपा २३७।

सर जदुनाथ सरकार (भाग ३,३२९) ने लिखा है कि जसवन्तसिंह का परिवार जून के अन्त में दिल्ली पहुँचा था, जो ठीक नहीं है।

कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि राठौड़ों पर दिल्ली पहुँचते ही पहरा लगा दिया गया था (फुतूहात ७४ ब; मुन्तखब-उल-लुबाब, खफी खाँ भाग २,२५९; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक ७७; वार्ता ३२ ब: उमराए ९८; मेवाड़ १६६; मूल १९३ प्राचीन राजवंश २०६–७)। परन्तु यह घटना कुछ महीने बाद की है।

राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के लिये देखिये परिशिष्ट 'ग'।

४९. ख्यात (भाग २,१) इव जुनी (६३) के अनुसार जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर में रविवार १ दिसम्बर (पौष बदि १३) को पहुँचा। महाराजा की मृत्यु २८ नवम्बर को हुई थी। अतः सन्देशवाहक का केवल तीन दिन में पेशावर से जोधपुर पहुँचना उस समय सम्भव नहीं था। सम्भवतः लिपिक की भूल से 'सुदि' के स्थान पर 'बदि' लिखा गया है।

५०. पंचोली २४ अ ब १७० ब; ख्यात-भाग २,१; जुनी ६३; राजरूपक १८–९ अजितोदय सर्ग ५ श्लोक १; मूंदियाड़ १७४; अजितविलास २०८ अ; कविराजा ६९४; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात ६ ब; वाकया ७४, ७७,७८।

यह जगजीवन (अजितोदय-सर्ग ५ श्लोक ११–३); टॉड (भाग २,४४) तथा आसोपा (२२७) ने केवल रानी चन्द्रावत के सती होने का उल्लेख किया है। वाकया (८०) में रानी के साथ बाईस उपस्त्रियों के सती होना वर्णित है। परन्तु लगभग सभी ख्याते व राजस्थानी ग्रन्थ रानी व बीस उपस्त्रियों के सती होने का उल्लेख करते हैं, अतः इस मत को स्वीकार किया गया है।

व उसके सहयोगी राठौड़ सरदार भी इसी नीति से सहमत थे । तदर्थ रानी ने सभी राठौड़ों को पूर्ववत् काम करते रहने की आज्ञा दी । इन्ही दिनों भंडारी रघुनाथ, राठौड़ रूपसिंह तथा पचोली केसरीसिंह आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों को बादशाह का एक फरमान मिला, जिसमे उसने लिखा था कि वे लोग पूर्ववत् अपने-अपने पदों पर कार्य करें, उन्हें उनकी सेवाओं के लिए अनुकूल मनसब दिया जाएगा । सरदारों ने पूर्व निश्चय के अनुसार प्रत्युत्तर मे लिखा कि वे बादशाह के सेवक है, उन्हें जो भी कार्य सौंपा जाएगा वे करेंगे । बादशाह उनकी सेवाओ के लिए जो कुछ भी देना चाहें, स्वर्गीय महाराजा के भावी राजकुमार को ही दे ।[४१]

लेकिन जोधपुर में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनी न रह सकी ।[४२] सम्भवत: इस अव्यवस्था का कारण यह था कि एक ओर तो जोधपुर में यह समाचार पहुँच गया था कि औरंगजेब ने स्वर्गीय महाराजा की पेशावर की सम्पत्ति का निरीक्षण करके उस पर शाही मुहर लगाने की आज्ञा दे दी है । साथ ही जोधपुर की सम्पत्ति पर भी शाही अधिकार हो जाएगा, इसकी पूर्ण आशंका थी ।

इधर दिल्ली में बादशाह औरंगजेब को महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार सन् १६७८ ई. के दिसम्बर के पूर्वार्द्ध में मिला । मृत्यु के समय जसवन्तसिंह सात हजार जात सात हजार सवार पांच हजार दो अस्पा से अस्पा का मनसबदार था । तदनुसार जोधपुर राज्य में तथा बाहर भी एक बड़ी जागीर उसके वेतन में निश्चित थी । मुगल साम्राज्य के प्रचलित नियमानुसार औरंगजेब ने तत्काल ही पेशावर के शाही कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे महाराजा की सम्पत्ति का निरीक्षण करके उस पर शाही मुहर लगा दें ।[४३]

उधर औरंगजेब ने अजमेर के सूबेदार इफ्तिखार खाँ[४४] को एक फरमान भेजा

---

४१. वाकया. ७८; पंचोली १६२ अ ब ।

आसोपा (४३८) के अनुसार पेशावर से जो पत्र आया था उस में लिखा था कि ऊपर से मित्रता दिखाते हुए गुप्त रूप से सैन्य संगठन किया जाय । इसी कारण राठौड़ों ने इसी समय से जोधपुर में एकत्रित होना आरम्भ कर दिया था । परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी आधार ग्रन्थ से नहीं होती ।

४२. पंचोली १६२ व तथा १६५ अब; वाकया ७८, ८०, ८१, ६८, १०५, १०७, ११०, १३१, १३६, १४१ व १५४ ।

४३. मुगल शासन में किसी सामन्त का मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी वंशानुगत रूप से जागीर प्राप्त नहीं कर सकता था । जागीर का स्वामित्व तत्काल ही बादशाह के अधिकार में चला जाता था और यह केवल उसी की इच्छा पर निर्भर था कि वह उसके वंशजों को कितनी जागीर दे । (अतहर अली ६३-७) ।

४४. मीरात (फारसी) भाग १, २७७; अतहरअली ६७ ।

अजितोदय (सर्ग ५, श्लोक २६) में सूबेदार का नाम इख्तियार खाँ लिखा हुआ है परन्तु यह ठीक नहीं है । ८ जुलाई सन् १६७८ ई. से ८ मार्च १६७९ ई. तक अजमेर का सूबेदार इफ्तिखार खाँ ही था । (मुस्ताद खाँ १०२ व १०७) ।

जिसमें उसे यह आज्ञा दी कि वह स्वर्गीय महाराजा की जागीर का प्रबन्ध करे। बादशाह की आज्ञा पाकर इफ्तिखार खाँ ने अजमेर के कानूनगों राजरूप व चार अन्य व्यक्तियों के द्वारा राठौड़ सरदारों के लिए एक पत्र जोधपुर भेजा जिसमें उसने यह सूचित किया कि वह जोधपुर व मेड़ता पर शाही अधिकार करने के लिए उस ओर प्रस्थान करने वाला है, साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिया कि राठौड़ों पर शाही कृपा पूर्ववत् बनी रहेगी, वे किसी प्रकार की शंका न करें। कुछ दिन उपरान्त उसने पुनः मुहम्मद कायम कम्बू के द्वारा राठौड़ों को इसी आशय का एक दूसरा पत्र तथा मौखिक सन्देश भी भेजा। इसके अतिरिक्त इफ्तिखार खाँ ने शाही आज्ञानुसार अजमेर के अमीन मुहम्मद कायम तथा किरोड़ी इस्लाम मुहम्मद को आज्ञा दी कि वे स्वर्गीय महाराजा के अधिकृत परगनों पर अपने गुमाश्ते भेज कर जो वसूली शेष हो, उसे तुरन्त ही पूरी करलें। इफ्तिखार खाँ ने स्वयं भी अजमेर में जोधपुर के लिए प्रस्थान किया और मार्ग मे २७ दिसम्बर (माघ बदि ९) को मेड़ता शहर के बाहर एक बाग में स्थित तालाब पर रुका। यहां पर जोधा रामसिंह व ऊदावत किशनसिंह ने छः सौ सवारों के साथ आकर उसका स्वागत किया।[५५]

जोधपुर में उपस्थित राठौड़ों ने इफ्तिखार खाँ से मिलकर बातचीत करने का निश्चय किया। इस कार्य का नेतृत्व पंचोली केसरीसिंह को सौंपा गया वह मंगलवार, २४ दिसम्बर (२० जिलकाद १०८९ हि.) को जोधपुर से रवाना हुआ। भाटी रघुनाथ सिंह तथा राठौड़रूपसिंह आदि अन्य बीस सरदारों ने भी अपनी-अपनी सेनाएं बुलाईं और अगले ही दिन बुधवार, २५ दिसम्बर (२१ जिलकाद) को उन्होंने मेड़ता जाने का निश्चय किया। इफ्तिखार खाँ को भी केसरीसिंह के मेड़ता आने का समाचार स्वयं पंचोली केसरीसिंह के पत्र तथा राजरूप कानूनगो और मुहम्मद कायम कम्बू के पत्रों द्वारा मिल गया था, अतः वह जोधपुर की ओर न बढ़कर मेड़ता में ही रुका रहा।[५६]

पंचोली केसरीसिंह, राठौड़ रूपसिंह तथा भाटी रघुनाथसिंह मेड़ता पहुँच कर इफ्तिखार खाँ से मिले। भेंट के समय उन्होंने जोधपुर राज्य के खालसा किए जाने पर दुःख प्रकट किया और कहा कि चूंकि जोधपुर राठौड़ों का वतन है और स्वर्गीय महाराजा का परिवार भी वहीं हैं, अतः वहाँ शाही अधिकार हो जाने से राठौड़ों की

---

५५. वाकया ७४, ७५, ७६, ७८, ७९; अजितोदय-सर्ग ५, श्लोक २९–३०; ख्यात भाग २, २; जुनी ६३; दस्तूर १४२।

राजविलास (१०८–११०) में अजमेर के सूबेदार का उल्लेख नहीं है; केवल बादशाह द्वारा दूत भेजकर राठौड़ों से राज्य, धन व सम्पत्ति माँगने तथा राठौड़ों द्वारा अभिमान पूर्वक इन्कार करने की चर्चा है।

५६. वाकया, ७९, ८० व ८१।

मानहानि होगी ।[५७] इसलिए जोधपुर पर शाही अधिकार न किया जाय । उन्होंने बार-बार केवल जोधपुर की माँग की और कहा कि शेष मारवाड़ में से अन्य जो भी परगने उन्हें दिए जाएगे, वे उसे स्वीकार करेंगे तथा जिस कार्य पर उनकी नियुक्ति की जाएगी, उसे पूरा करेंगे । इन्हीं दिनों रानी हाड़ी का भी एक पत्र इफ्तिखार खाँ को प्राप्त हुआ, जिसमें रानी ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक जोधपुर की माँग की थी और यहाँ तक लिखा था कि उसे जोधपुर के बदले में सोजत व जैतारण के परगने वापस देने में कोई-आपत्ति नहीं है ।

इफ्तिखार खां ने जब जसन्वतसिंह की सम्पत्ति के विषय में पूछताछ की तो राठौड़ सरदारों ने दो-तीन दिन पश्चात् समस्त सम्पत्ति की सूची देने का वचन दिया ।[५८] बहियों का अध्ययन करके समस्त विवरण तैयार किया गया तथा समस्त सम्पत्ति की सूची बना कर इफ्तिखार खाँ को सौंप दी गई । इसके अनुसार जोधपुर में जसन्वतसिंह की सम्पत्ति में केवल ११६ मुहरें, २१८०० रुपये नकद तथा १६ हाथी थे । इसके अतिरिक्त राठोड़ों ने कुछ अन्य वस्तुओं का मूल्य निश्चित करके सूचित करने का आश्वासन दिया था । यह राशि जसवन्तसिंह की विस्तृत जागीरों को देखते हुए बहुत कम थी । अतः इफ्तिखार खाँ राठौड़ों के विवरण पर सहसा विश्वास न कर सका । उसे सन्देह हुआ कि राठौड़ों द्वारा दिया गया विवरण अपूर्ण है । इस पर राठौड़ों ने अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए जोधपुर व अन्य किलों की तलाशी देना स्वीकार कर लिया ।[५८]

इफ्तिखारखाँ को अपने उद्दश्य की पूर्ति में विशेष सफलता न मिल सकी । वह जोधपुर तक न जाकर मेड़ता ही रुका रहा । इधर जोधपुर में धीरे-धीरे राठौड़ सैनिक एकत्र हो रहे थे । दिसम्बर सन् १६७८ ई. (जिलकाद १०८९ ई) में जोधपुर में लगभग तीन हजार राजपूत सैनिक थे, परन्तु अगले दो महिनों में उनकी सख्या पाँच-छः हजार हो गई । इसी प्रकार जनवरी, १६७९ ई. तक मेड़ता में लगभग पाँच-छः हजार राजपून सैनिक एकत्र हो गए थे । इफ्तिखार खाँ ने यह देखकर अपनी

---

५७. वाकया. ८२, ८३, ८५, ८६, ९६, ९९ व १२३ ।

५८. वाकया. ९४; अजितोदय सर्ग ५ श्लोक ३०–३६; जुनी ६३ । वाकया के अनुसार इफ्तिखार खाँ ने जब-जब जोधपुर जाने का विचार किया, राठोड़ सरदारों ने उसे रोक दिया और कहा कि यदि वह जोधपुर गया तो वहाँ के राठौड़ अप्रसन्न हो जायेगे और अव्यवस्था फैल जायेगी ।

अजितोदय में लिखा है कि इफ्तिखार खाँ राठौड़ों की तैयारी देखकर आगे बढ़ने का साहस न कर सका था ।

शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। वह प्रतिदिन तीन सौ प्यादे और तीन सौ सवार भर्ती करने लगा। इस प्रकार स्थिति दिन प्रतिदिन गम्भीर होती गई।[५९]

इसी बीच बादशाह को जब स्वर्गीय महाराजा की सम्पत्ति का विवरण विदित हुआ तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, क्योंकि जसवन्तसिंह के एक सेवक ख्वाजा फरासत ने उसे बताया था कि जोधपुर के राज्य-कोष में सत्तावन हजार रुपया पूर्व संग्रह का हैं और जसवन्तसिंह ने अपने समय में भी पर्याप्त धन संग्रह किया है। राठौड़ों द्वारा दिए गए विवरण की सम्पत्ति उसके अनुपात में बहुत कम थी। अतः औरंगजेब ने सैयद अब्दुल्लाखाँ को दो सौ सवार देकर जोधपुर के किले का निरीक्षण करने और वहाँ की सम्पत्ति का पता लगाने के लिए नियुक्त किया।[६०]

इधर जोधपुर में निरन्तर अव्यवस्था फैलती जा रही थी; यत्र-तत्र उपद्रव हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये शाही अधिकारियों को भेजना आवश्यक हो गया। औरंगजेब के पास इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं था। अतः उसने १३ जनवरी (१० जिल्हिज) को ताहिर खाँ को

---

५९. वाकया, ८०, ८२, ८३ ८५, ८६ आदि ९१, ९५, १०९, ११७-९, १४५-६।
इस समय मारवाड़ में निम्नलिखित प्रमुख राठौड़ सरदार उपस्थित थे।

१. पंचोली केसरीसिंह	२. भाटी रघुनाथसिंह सुरताणोत
३. ऊदावत रूपसिंह प्रयागदासोत	४. ऊदावत राजसिंह बलरामोत
५. ऊदावत नरसिंह दयाल दासोत	६. भाटी रामसिंह कुंभावत
७. ऊदावत किशनसिंह प्रयागदासोत	८. झालो भावसिंह रायसिंहोत
९. राठौड़ दूदो राजसिंहोत	१०. चांपावत अजबसिंह राजसिंहोत
११. चांपावत कान्ह गिरधर दासोत	१२ भाटी किशोरदास महेशदासोत
१३. भाटी अर्जुन (अरजन) जगन्नाथोत	१४. चांपावत सांवतसिंह जोगीदासोत
१५. चांपावत हरनाथ गिरधरदासोत	१६. भंडारी जीवराज जगन्नाथोत
१७. उगरो सांवलदासोत	१८. चांपावत सोनग विट्ठलदासोत
१९. मेड़तिया आनन्दसिंह भीवोत	२०. जोधा मुकुन्ददास सादूलोत मालदोत
२१. कूपांवत सबलसिंह दलपतोत	२२. ऊहड़ भगवानदास सुन्दरदासोत
२३. ऊहड़ भगवानदास का छोटा भाई	२४. सांहणी दांणीदास रतनसिंहोत
२५. राठौड़ रामसिंह मोहकमसिंहोत	२६. ऊदावत सूरजमल भीवांत
२७ प्रोहित अखेराज दलपतोत	२८. व्यास पुष्करण द्रोणाचार्य (द्रोणाचारण) नाथावत जगन्नाथोत
२९. राठौड़ प्रतापसिंह पृथ्वीराजोत करमसोत	३०. सोबायत खोजो फरासत
३१. मुहणोत खींवसी	३२. खीची मानकरण
३३. धांधल पृथ्वीराज	३४. गेहलोत हरदास
३५. पड़िहार रतन	

६०. पंचोली १६२ अ; ख्यात-भाग २, २-३, जुनी ६३; दानेश्वर १८३; वाकया ८७।
ख्यात व जुनी के अनुसार बादशाह ने अब्दुल्ला खाँ के साथ केवल पचास सवार भेजे थे। लेकिन जोधपुर में चूंकि उपद्रव हो रहे थे अतः इतने कम सवारों को वहाँ भेजना ठीक नही जान पड़ता। इसी कारण पंचोली द्वारा उल्लिखित संख्या को ही स्वीकार किया गया है।

जोधपुर का फौजदार, खिदमतगुजार खाँ को किलेदार, शेख अनवर को अमीन तथा अब्दुर्रहीम को कोतवाल नियुक्त किया[६१]।

सैयद अब्दुल्ला खाँ २५ दिसम्बर (माघ बदि ७) को अब्दुर्रहीम खाँ, किरोड़ी कासिम खाँ तथा काजी हामिद के साथ दिल्ली से विदा हुआ और जनवरी में मेड़ता पहुँचकर राजा के बाग में रुका। केसरीसिंह, रूपसिंह व रघुनाथसिंह आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों ने एक हजार सवारों के साथ आकर उनका स्वागत किया। इन लोगों ने अब्दुल्ला खाँ से भी जोधपुर दिलाने की प्रार्थना की। जब अब्दुल्ला खाँ ने उनसे कहा कि उनके पेशावर वाले, साथियों ने केवल सोजत व जैतारण की माँग की थी और बादशाह ने उदारता पूर्वक दोनों परगने दे दिये हैं, तब राठौड़ों ने उत्तर दिया कि जोधपुर तो उनका वतन है और उनके साथियों को आशा थी कि जोधपुर तो उन्हें स्वत: ही मिल जायेगा, उसको माँगने की कोई आवश्यकता ही नहीं है[६२]।

पंचोली केसरीसिंह तथा राठौड़ रूपसिंह को साथ लेकर अब्दुल्ला खाँ मेड़ता से जोधपुर के लिये रवाना हुआ और शनिवार, १८ जनवरी (फाल्गुन बदि २) को वहाँ पहुँचकर नौदडा नामक स्थान पर रुका। जोधपुर में उपस्थित सरदारों ने उसे किला दिखाना स्वीकार नहीं किया। तीन दिन उपरान्त मंगलवार, १२ जनवरी (फाल्गुन बदि ४) को सायंकाल दिल्ली से राठौड़ वकील श्यामदास का पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था कि वे लोग अब्दुल्ला खाँ को किला दिखा दें। फलत: अगले दिन बुधवार, २२ जनवरी (फाल्गुन बदि ५) को कुछ राठौड़ सरदार अब्दुल्ला खाँ को किले पर ले गये।[६३] परन्तु तब भी जोधपुर का किलेदार ऊहड़ भगवानदास गढ़ दिखाने को तैयार न हुआ। अन्त में सबके समझाने बुझाने पर उसने अब्दुल्ला-खाँ को इस शर्त पर किला दिखाना स्वीकार किया कि वह केवल बीस सैनिकों के साथ अन्दर प्रवेश करे। शेष सैनिकों को नागौरी दरवाजे पर छोड़कर अब्दुल्ला खाँ

६१. मुस्ताद खाँ १०६; सरकार भाग ३, ३२६; ओझा भाग ४, खंड २, ४७७–८; रेउ भाग १, २४६।

जोधपुर मे शाही अधिकारियों की नियुक्ति की तिथि के विषय में इतिहासकारो मे मतभेद है। वाकया (१०२, १२७ व १५६) में निश्चित तिथि का उल्लेख नही है, केवल जनवरी-फरवरी के महीनों में इनकी नियुक्ति किये जाने का वर्णन है। आधुनिक इतिहासकार फारूकी (२१२) ने यह लिखा है कि जनवरी के महीने में इन कर्मचारियों की नियुक्ति हुई थी। कामवर (१९२) ने इस घटना की तिथि १९ जनवरी (१९ जिल्हिज) तथा कविराजा श्यामलदास (वीर भाग २, ८२८) ने १३ फरवरी (फाल्गुन सुदि १३) स्वीकार की है। आधुनिक इतिहासकार गहलोत (मारवाड़ १५७) ने भी कविराजा श्यामलदास के मत का समर्थन किया है। चूंकि निश्चित तिथि का उल्लेख करने वाले दोनों इतिहासकार समकालीन नहीं है, अत: औरंगजेब के समय के राजकीय इतिहासकार साकी मुस्ताद खाँ द्वारा स्वीकृत तिथि को मान्यता दी गई है।

६२. पंचोली. १६२ अ; १६६ ब; वाकया ९०–१।

६३. पंचोली. १६७ अ; ख्यात भाग २; ३, जुनी ६३;।

ने किला देखा। अगले दिन बृहस्पतिवार, २३ जनवरी (फाल्गुन बदि ६) को वह जोधपुर से मेड़ता के लिये चल पड़ा।[६४]

अब्दुल्ला खाँ ने बादशाह को सूचना की कि राजपूत पूरी तरह सुसज्जित हैं तथा उन्होंने साँभर व डीडवाना पर आक्रमण करने की योजना बनाई है। बादशाह को यह भी सूचना मिली थी कि मारवाड़ में बीस हजार राजपूत सैनिक एकत्र हो चुके हैं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इधर इफ्तिखार खाँ तथा अब्दुल्ला खाँ ने समाचार भेजा था कि राठौड़ उन्हें अधिकार नहीं सौंप रहे हैं। फलतः बादशाह ने स्वयं अजमेर जाकर स्थिति संभालने का निश्चय किया। सैन्य-संगठन के लिये उसने मुलतान से शाहजादा अकबर, आगरा से शायस्ता खाँ गुजरात से मुहम्मद अली खाँ, तथा उज्जैन से असद खाँ को बुलवाया। खाने जहाँ बहादुर, हसनअली खाँ आदि बड़े-बड़े सरदारों की भी नियुक्ति जोधपुर जाने वाली सेना में की गई। इसी समय जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह के पोते इन्द्रसिंह को भी दक्षिण से आने की आज्ञा दी गई। २४ जनवरी को औरंगजेब ने दिल्ली से अजमेर के लिये प्रस्थान किया।[६५] उसने मार्ग से ही खाँनेजहाँ बहादुर को अन्य बड़े-बड़े

---

६४. वाक़या (११२-३ व ११५-६) में इस घटना का कुछ भिन्न वर्णन मिलता है। इसमें लिखा है कि केसरीसिंह ने जोधपुर से एक कोस पूर्व ही अब्दुल्ला से वहीं रुकने का अनुरोध किया और कहा कि वह स्वयं जोधपुर जाकर रानी हाड़ी से किला दिखाने के लिये अनुमति लेकर शीघ्र वापस आ जायेगा। लेकिन अब्दुल्ला खाँ ने केसरीसिंह के लौटने की प्रतीक्षा नहीं की और २३ जनवरी (२० जिल्हिज) को आगे बढ़ा। वह केवल आधा ही कोस चल सका था कि राजपूतों ने उसे भगा दिया और वह भागकर लुणवाल नामक स्थान पर आकर रुका। उधर केसरीसिंह ने रानी हाड़ी से अब्दुल्ला खाँ को किला दिखाने की अनुमति प्राप्त कर ली और जोधपुर से वापस लौटा और अब्दुल्ला खाँ को साथ ले गया। अब्दुल्ला खां को केवल चार सैनिकों के साथ किला दिखाया गया। रानी हाड़ी ने उसे खिलअत दी और रात्रि में ही वह लुणवाल लौट आया और अगले दिन २४ जनवरी (२१ जिल्हिज) को वापस चल दिया। परन्तु इस मत की पुष्टि अन्यत्र कही नही होती अतः इसे स्वीकार नहीं किया गया है।

६५. पंचोली. १६७ अ :

औरंगजेब की यात्रारम्भ करने की तिथि के विषय में विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद है। मआसीर-ए-आलमगीरी (मुस्ताद खां १७६) में लिखा है कि बादशाह ने बृहस्पतिवार, ९ जनवरी (६ जिल्हिज) को दिल्ली से अजमेर के लिये प्रस्थान किया था। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग, ३, ३२६) व डा. गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) इत्यादि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी तिथि को मान्यता दी है। परन्तु मआसीर-ए-आलमगीरी से स्पष्ट है कि बादशाह ने जोधपुर के शासन के लिये अधिकारियों को नियुक्त करने के उपरान्त दिल्ली से प्रस्थान किया था। अतः उसकी यात्रा १३ जनवरी से पूर्व आरम्भ नहीं हो सकती। इसलिये उक्त तिथि को स्वीकार करना उचित प्रतीत नहीं होता।

सरदारों के साथ ७ फरवरी (६ मुहर्रम १०९० हि०) को मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये भेजा। बुधवार १९ फरवरी सन् १६७९ ई० (१८ मुहर्रम, १०९० हि०=चैत्र बदि ४, संवत् १७३६) को औरंगजेब अजमेर पहुँचा। इससे दो दिन पूर्व किशनगढ़ के पड़ाव पर १७ फरवरी (१६ मुहर्रम) को वजीर असद खाँ भी आ पहुँचा था। शुक्रवार, २८ फरवरी (२७ मुहर्रम) को शायस्ता खाँ अजमेर आया और सोमवार, १० मार्च (७ सफर) को शाहजादा अकबर भी मुल्तान से चलकर अजमेर आ पहुँचा[६६]।

मुगल सम्राट के ससैन्य आने का समाचार सुनकर भाटी रघुनाथसिंह ने उसके विरुद्ध तैयारी करने के विचार से मेड़ता से लगभग एक हजार सवार जोधपुर भेजे। परन्तु रानी हाड़ी ने उसे शाही आज्ञा में रहने के लिये लिखा और जोधपुर में एकत्रित सेना को भी तितर-बितर कर दिया। होली के अवसर पर अधिकांश राजपूत अपने-अपने घर चले गये, हाडी रानी ने उन्हें भी रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। फलस्वरूप जोधपुर में केवल पाँच सौ व्यक्ति किले में तथा एक हजार के लगभग शहर में उपस्थित थे[६७]।

राठौड़ सरदारों ने इस समय भी इफ्तिखार खाँ से अपना सम्बन्ध पूर्ववत् रक्खा और वे असद खाँ से भी पत्र-व्यवहार किया करते थे। इफ्तिखार खाँ ने उन्हें सलाह दी कि वे स्वयं बादशाह से मिलकर बातचीत करें। राठौड़ों ने परस्पर विचार विमर्श करके उसकी बात स्वीकार कर ली और राम भाटी तथा राठौड़ नरसिंहदास को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। इनके साथ दूदो राजसिंहोत, डूगरो सांवलदासोत, ऊदावत राजसिंह बलरामोत तथा रूपसिंह व उसके भाई किशनसिंह एवं अन्य दो सौ सवारों को भेजा गया[६८]।

कुछ ही दिन बाद इफ्तिखार खाँ ने राठौड़ों को यह भी बताया कि औरंगजेब केवल उतने समय के लिये जोधपुर का प्रबन्ध करना चाहता है जब तक जसवन्तसिंह की दोनों गर्भवती रानियों में से कोई भी किसी उत्तराधिकारी को जन्म नहीं दे देती। यह जानकर राठौड़ सरदारों ने जोधपुर में शाही अधिकारियों की नियुक्ति के लिये अपनी स्वीकृति दे दी और कुछ समय के लिये इन्द्रसिंह को भी राजा मानना स्वीकार कर लिया। राठौड़ों की स्वीकृति पाकर, इफ्तिखार खाँ ने मंगलवार ११ फरवरी (१० मुहर्रम) को मुहम्मद रहीम कोतवाल तथा मुहम्मद हादी किरोड़ी को जोधपुर

---

६६. मुस्ताद खाँ १०७; ख्यात-भाग २, ३; पंचोली १६७ ब; दानेश्वर १८३; रेउ-भाग १, २५१; ओझा-भाग ४, खंड २, ४७९-८०।

६७. वाक़या १०३, १५५-६।

६८. वाक़या १४०, १४९ व १५२; अजितोदय-सर्ग ४, श्लोक ३९-४४; दस्तूर १४२; रेउ-भाग १, २५०।

के लिये विदा किया। पंचोली केसरीसिंह ने इन्हें जोधपुर तक पहुंचाने के लिये कुशलसिंह तथा किशनसिंह को साथ भेजा।[६९]

बादशाह से विदा होकर खानेजहाँ बहादुर, जब जोधपुर की ओर जा रहा था तो मार्ग में उसे रामभाटी व अन्य राठौड़ सरदार मिले जो बादशाह से मिलने के लिये जा रहे थे। उन्हें दिलासा देकर वह अपने साथ वापस ले आया। ये लोग शुक्रवार, २१ फरवरी (चैत्र बदि ६) को मेड़ता पहुंचे। इफ्तिखार खाँ ने तीन कोस आगे बढ़कर खानेजहाँ का स्वागत किया।[७०] मेड़ता से चलकर खानेजहाँ जोधपुर से सोलह कोस दूर पीपाड़ नामक स्थान पर ठहरा। यहाँ पर केसरीसिंह, रघुनाथसिंह, तथा राजसिंह आदि उससे मिले। इन्हें उसने भी पूरा आश्वासन दिया कि जसवन्तसिंह की रानियों से कोई यदि पुत्र को जन्म देगी, तो राज्य उन्हें लौटा दिया जायेगा। केवल इस मध्यान्तर के लिये वे शान्तिपूर्वक जोधपुर राज्य पर शाही अधिकार हो जाने दें। राठौड़ सरदार इस बात को कुछ दिन पूर्व इफ्तिखार खाँ के सम्मुख स्वीकार कर चुके थे; अब उन्होने जो सेना एकत्र की थी उसे हटा देने का आश्वासन दिया। खानेजहाँ ने भी खिलअत आदि उपहार देकर उनका सम्मान बढ़ाया। तत्पश्चात जब कोतवाल और किरोड़ी जोधपुर पहुंचे तो राठौड़ों ने उन्हें शान्तिपूर्वक अधिकार सौंप दिया।[७१]

बृहस्पतिवार, २७ फरवरी (चैत्र बदि १२) को राघोदास लाहौर से दो राजकुमारों के जन्म का समाचार लेकर जोधपुर से केवल नौ कोस पूर्व की ओर स्थित पालासणी नामक गांव में खानेजहां व उसके साथ के राठौड़ सरदारों के पास पहुँचा। राठौड़ यह समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। खानेजहाँ, ताहिर खां तथा

---

६९. वाकया १४४-५; १५१ व १५४।

७०. पंचोली १६७ ब तथा १७१ ब; ख्यात भाग २,३; वाकया १५६-७; दस्तूर १४२; अजितोदय सर्ग ५, श्लोक ४५।

७१. पंचोली १६७ ब; ख्यात भाग २, ३-४; राजरूपक २४-५; जुनी ६३; अजितविलास २०८ अ; दानेश्वर १८४; दस्तूर १४२; वाकया १५७, १६२; रेउ-भाग १, २५०।

ख्यात व जुनी के अनुसार, खाँनेजहाँ ने कुरान पर हाथ रखकर शपथ खाई थी कि जब जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी का जन्म हो जायेगा तो जोधपुर राज्य वापस दे दिया जायेगा। राजरूपक के अनुसार खानेंजहाँ ने इसी आशय का बादशाह के पंजे का फरमान राठौड़ों को दिखाया था। मूंदियाड (१७४-५) के अनुसार राठौड़ सरदार बादशाह से मिले थे और उसने स्वयं उक्त आश्वासन दिया था। परन्तु इन तथ्यों की सत्यता संदिग्ध है।

वाकया १६२।

राठौड़ सरदारों ने राघोदास को इस शुभ समाचार लाने के उपलक्ष्य में बहुमूल्य उपहार दिये।[७२]

औरंगजेब को अजमेर में ही बुधवार, २६ फरवरी (२५ मुहर्रम=चैत्र बदि ११) को जोधपुर राज्य के वकील ने सूचना दी कि स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह की दो रानियों ने लाहौर पहुँच कर कुछ घड़ी के अन्तर से एक-एक पुत्र को जन्म दिया है।[७३]

औरंगजेब को ख्वाजा फरासत ने ही सम्भवतः यह बताया था कि जसवन्तसिंह की सम्पत्ति जोधपुर व सिवाना के किले में है। जब जोधपुर के किले से कुछ प्राप्त न हो सका, तब उसने खिदमतगुजार खाँ को सिवाना का किलेदार नियुक्त किया और उसे महाराजा की सम्पत्ति का पता लगाने की आज्ञा दी। खिदमतगुजार खाँ शनिवार, १ मार्च (२८ मुहर्रम) को सिवाना पहुँचा, परन्तु उसे वहाँ केवल थोड़े से पुराने वस्त्र व साधारण वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ भी न मिला। बादशाह को इससे सन्तोष न हुआ। उसे सन्देह था कि राठौड़ों ने जसवन्तसिंह की सम्पत्ति को कहीं

---

७२. पंचोली १६८ अ, १७० ब, १७१ अ; ख्यात-भाग २,४; जुनी ६३-४; अजितोदय सर्ग ६, श्लोक १८-२०; दानेश्वर-१८४; आसोपा २३९।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १८–९) में लिखा है कि राधोदास पीपाड़ नामक गांव में खानेजहां व राठौड़ सरदारों से मिला था। परन्तु पीपाड़ जोधपुर से लगभग सोलह कोस दूर हैं। चूंकि खांनेजहाँ को बादशाह से विदा हुए लगभग बीस दिन हो गये थे अतः यह स्वीकार करना अधिक उचित जान पड़ता है कि वह जोधपुर के समीप पहुँच चुका था।

पंचोली ने शाही अधिकारियों तथा राठौड़ सरदारों द्वारा राधोदास को भेंट देने का वर्णन इस प्रकार किया है:—

नवाब बहादर खां १ मोहर वादलाई पाग	रा/सोनग	–१ ऊंट
ताहर बेग २ पावंडी ७ रुपये	अणदसिंह भीवसिंहोत	—१ ऊंट
महल से ६० रुपये २ पांवडी	तेजकरण दुर्गदासोत	—१ ऊंट
पं/केसरीसिंह २० रुपये १ मोहर १ ऊंट	ऊहड़ भगवानदासोत	—१ ऊंट
भं/रुघनाथ १०० रुपये १ ऊंट	सॉंहणी दाणीदास	—१ ऊंट
भाटी राम जी ३०० रुपये सोने की सांकल	अजबसिंह	—१ ऊंट
उदेसिंह चांपावत ३०० रुपये	नरसिंहदास	—१ ऊंट
मीया फरासत १० रुपये २ पाग	रा/रूपसिंह, ऊदावत प्रागदासोत,	
रा/संग्रामसिंह चांपावत १ घोड़ा	झालो भावसिंह, राठौड राजसिंह.	
	राठौड़ दूदो ने भी बधाइयां दी।	

जोधपुर राज्य की ख्यात एवं जुनी बही में भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ ऐसा ही विवरण मिलता है। अजितोदय में लिखा है कि खाने जहां ने पचास मुहरें, कपड़ा व गहना भेंट दिया था। परन्तु इससे प्रमुख तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

७३. मुस्ताद खाँ १०७; फुतूहात ७३ ब; ख्यात-भाग २, ५; दानेश्वर-१८४; सरकार–भाग ३, ३२७; रेउ भाग १, २५१; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०।

छिपा दिया है । अतः उसने रविवार ९ मार्च (६ सफ़र) को सैयद अब्दुल्ला खाँ को पुनः सिवाना जाकर वहाँ के किले की नींवें, नई इमारत व जमीन खोदकर महाराजा की सम्पत्ति का पता लगाने की आज्ञा दी । इस कार्य के लिए उसके साथ मुहम्मद अली खाँ नामक राजगीर को भी भेजा गया ।[७४]

इसी बीच ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) को लोहौर में उपस्थित राठौड़ सरदारों के लिए एक हस्बुलहुक्म भेजा गया, जिसमें बादशाह ने उन लोगों को सूचित किया कि औरंगजेब स्वयं दिल्ली वापस जा रहा है अतः वे लोग राजकुमारों को लेकर वहीं आये । दिल्ली में ही राजकुमार को पद, मनसब व राज्य दिया जायेगा ।[७५] जब बादशाह अजमेर से दिल्ली के लिए रवाना होने लगा, उस समय शायस्ता खाँ ने यह प्रस्ताव रक्खा कि राठौड़ों के नियन्त्रण के लिये अजमेर में किसी उच्चाधिकारी को नियुक्त करना आवश्यक है । उसकी बात स्वीकार करके औरंगजेब ने खानेजहाँ बहादुर को जोधपुर से लौटने पर अजमेर में ही ठहरने की आज्ञा दी । सोमवार, १० मार्च (७ सफर चैत्र सुदि ९) को औरंगजेब ने दिल्ली की ओर कूच किया । प्रथम पड़ाव से ही शायस्ता खाँ को आगरे की सूबेदारी पर भेज दिया गया ।[७६] मार्ग में मंगलवार, १८ मार्च (बैशाख बदि १) को शाही आज्ञानुसार इन्द्रसिंह दक्षिण से आ पहुँचा और उसने बादशाह को एक सौ मुहर तथा एक हजार रुपया भेंट दिया और बुधवार, २ अप्रेल (१ रबी उलअव्वल बैशाख सुदि २) को वह शाही लश्कर के साथ दिल्ली पहुँचा ।[७७] इसी दिन बादशाह ने मारवाड़ में जजिया कर लगाने की घोषणा की ।[७८]

---

७४. अखबारात, लन्दन संग्रह भाग १, ९८५-६; वाकया १५९; सरकार भाग ३, ३२७ ।
मुस्ताद खाँ (१०७) ने अब्दुल्ला खाँ की नियुक्ति की तिथि १० मार्च (७ सफर) स्वीकार की है । रेउ (भाग १,२५१) ने भी इसी तिथि का समर्थन किया है । परन्तु शाही कर्मचारियों की नियुक्ति के विषय में चूंकि अखबारात पूरा-पूरा विवरण देते हैं अत; अखबारात में उल्लिखित तिथि को ही स्वीकार किया गया है ।

७५. पीछे देखिये पृ. ।

७६ मुस्ताद खाँ १०८; पंचोली १७२ अ; ख्यात भाग २, ६; दानेश्वर १८४; जुनी ६४; फ़ुतूहात ७४ अ; राजरूपक २५; अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ५२; अजितविलास २०८ ब; ओझा भाग ४, खंड २, ४८१ ।

७७. पंचोली १७३ अ; ख्यात भाग १, ६ व २२; राजरूपक २५-६; मुस्ताद खाँ १०८; सरकार भाग ३, ३२८; ओझा भाग ४ खंड २, ४८१; रतलाम २२३ ।
इन्द्रसिंह किस स्थान पर बादशाह से मिला, यह कहना कठिन है । पंचोली ने इस स्थान का नाम रामसर स्वीकार किया है तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में किशनगढ़ का उल्लेख है । आसोपा ने लिखा है कि इन्द्रसिंह मनोहरपुर के पार सीकर में इन्द्रसिंह से मिला था । फारुकी के अनुसार औरंगजेब ११ अप्रेल को दिल्ली पहुँचा था, जो ठीक नहीं है ।

७८. मुस्ताद खाँ १०८; फ़ुतूहात ७४ अ; दानेश्वर १८८; सरकार भाग ३; ३२८; रतलाम २२२; पूर्व १४१; उमराए १६; रेउ भाग १, २५१ ।

यह कहना कठिन है कि जजिया के सम्बन्ध में औरंगजेब की निश्चित आज्ञा क्या थी और उसने किस-किस प्रदेश में जजिया लगाया था। मआसीर-ए-आलमगीरी में लिखा है कि बादशाह ने यह आज्ञा दी कि राजधानी और प्रान्तों की गैर मुस्लिम जनता पर जजिया लगाया जाय। इससे ऐसा प्रतीत होता है, कि जजिया सम्पूर्ण साम्राज्य में लगाया गया था। परन्तु अन्य प्रान्तों में तो क्या, शेष राजपूत राज्यों में भी जजिया वसूला गया हो इसका कोई उल्लेख नही मिलता। यदि अन्य राजपूत राज्यों में भी यह करारोपण किया गया होता तो वहाँ विरोध अवश्य होता, परन्तु ऐसा संकेत तत्कालीन इतिहास में कहीं नहीं मिलता। आम्बेर व बीकानेर तथा अन्य राज्यों के शासक पूर्ववत् शाही सेवा में रत रहे। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो बादशाह ने केवल सैद्धान्तिक रूप से सम्पूर्ण साम्राज्य में जजिया लगाया था और उसका व्यावहारिक पालन पहले केवल मारवाड़ में और बाद में मेवाड़ में किया गया। अथवा यह भी सम्भव है, कि मारवाड़ के राठौड़ों के विरोधी आचरण तथा उन्हें दबाने और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए भेजी गई सेना के व्यय को पूरा करने के लिए औरंगजेब ने केवल मारवाड़ में ही जजिया लगाया हो और बाद में जब मेवाड़ ने भी युद्ध में प्रवेश किया और वहाँ भी सेनाएँ भेजनी पड़ीं तो वहाँ भी कर लगा दिया गया।

उधर खाँनेजहाँ बहादुर अपने चार हजार मुगल सैनिकों को लिए हुए पंचोली केसरीसिंह, भाटी रघुनाथसिंह, राठौड़ नरसिंहदास, राठौड़ राजसिंह तथा ख्वाजा-फरासत के साथ ३ मार्च (चैत्र सुदि १) को जोधपुर पहुँचा और रातानाडा में रुका।[७९] विट्ठलदास का पुत्र चाँपावत सोनग खाँनेजहाँ को जोधपुर का अधिकार सौंपने के पक्ष में नहीं था; अतः वह खाँनेजहाँ के स्वागतार्थ उपस्थित नहीं हुआ। राठौड़ों ने अत्यन्त अनुनय-विनय से उसकी सहमति प्राप्त की। इतने पर भी जब वह खाँनेजहाँ से मिला तो उसने उद्दंडता का व्यवहार किया।[८०]

बुधवार, ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) को खाँनेजहाँ बहादुर ने ताहिर खाँ तथा शाही वाक़ानवीस को रामभाटी तथा केसरीसिंह के साथ जोधपुर के किले में भेज दिया। इनके साथ ही रानियों के लिए बादशाह द्वारा भेजे गए तीन सिरोपाव तथा

---

७९. पंचोली १७१ अ व १७२ अ; ख्यात भाग २, ५; जुनी ६३; दस्तूर १४२; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक २१; रेउ भाग १, २५०; आसोपा २३९।

अजितोदय के अनुसार खाँनेजहाँ ने शेखावत के तालाब पर पड़ाव डाला था। रेऊ ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। परन्तु चूँकि अन्य सभी आधार ग्रन्थ रातानाडा में खाँनेजहाँ के रुकने का उल्लेख करते है, अतः उसे ही स्वीकार किया गया है।

८०. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक २२ ४२; रेउ भाग १, २५०।

अपनी ओर से महाराजा के सम्बन्धियों के लिए छः तोड़े भेजे। रानी हाडी ने भी इन लोगों के साथ अत्यन्त उदारता का व्यवहार किया।

ताहिर खाँ ने जोधपुर के किले में पहुँचकर वहाँ की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। उसे वहाँ २१,००० रुपया नकद, २७ तोपें, २००० लोहे के गोले, २००० पत्थर के गोले, ३२ बन्दूकें, धनुष-बाण, महाराजा के गहनों का एक सन्दूक, आदि वस्तुएं मिलीं। सिन्दूर खाँ ने भण्डार–घर पर शाही मुहर लगा दी।[८१]

रविवार, ९ मार्च (चैत्रसुदि ८) को खाँनेजहाँ बहादुरगढ़ में रुका। उसने बल पूर्वक मुगल शासनाधिकार स्थापित करने के विचार से जोधपुर के कई मन्दिर तुड़वाये। शहर के बाहर पहरेदार नियुक्त किए गये, ताकि बिना आज्ञा के कोई भी व्यक्ति शहर में प्रवेश न कर सके। उसने शहर में मादक वस्तुएँ—विशेषकर भांग व मदिरा-पीने की मनाही कर दी तथा पूरे प्रदेश में चुंगी की दर तथा तोल में एकता स्थापित की। चुंगी की दर दो पैसा प्रति रुपया निश्चित हुई तथा बयालीस पैसों के तौल का एक सेर निश्चित किया गया। ताहिर खां को जोधपुर की फौजदारी व दीवानी दी गई तथा शहर की सुरक्षा के लिए अब्दुर्रहीम को कोतवाल नियुक्त किया गया। अबुल कासिम शुजाई जोधपुर का किरोड़ी तथा शेख अनवर वहाँ का अमीन बनाया गया। कुछ ही दिन बाद जोधपुर की अमीनी भी ताहिर खां को ही सौंप दी गई। इस आशय का फरमान १७ मार्च (१४ सफर) को मुहम्मद आकिल खाँ लेकर आया था। दीनदार खां कायमखानी वाकानवीस तथा हामिद खां काजी नियुक्त हुआ। फलोदी में तीन सौ सवार व एक किरोड़ी तथा पोकरण में दो सौ सवार व एक किरोड़ी भेजा गया। सिवाना के लिए गूजर खां को तीन सौ सवारों के साथ नियुक्त किया गया और सोजत व जैतारण पर भी शाही अधिकार कर लिया गया।

---

८१. ख्यात भाग २, ५–६; जुनी ६४; पंचोली १७१ ब; वाकया १६२, १६५ व १६६; आसोपा २३९।

पंचोली (१७० ब) ने २५ फरवरी (चैत्र बदि १०) को ताहिर खाँ को जोधपुर के किले की ओर भेजना स्वीकार किया है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जब राजकुमारों के जन्म का समाचार लेकर २७ फरवरी (चैत्र बदि १२) को राघोदास आया था, तब ताहिर खाँ खानेजहाँ के साथ ही था।

जोधपुर के किले से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में थोड़ा बहुत अन्तर है।

इस प्रकार जोधपुर राज्य की शासन व्यवस्था का भार मुगल कर्मचारियों को पूर्णरूप से सौंप दिया गया।[८२]

यह व्यवस्था पूरी करके खाँनेजहाँ ने अजमेर की ओर लौटने का विचार किया और उसने राठौड़ सरदारों के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि वे लोग भी उसके साथ चलें। साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिया कि वह बादशाह से सिफारिश करके उन्हें जोधपुर दिला देगा। राठौड़ों ने परस्पर विचार विमर्श करने के उपरान्त उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। खाँनेजहाँ बहादुर ने राठौड़ों को साथ लेकर रविवार ९ मार्च (चैत्र सुदि ८) को अजमेर की ओर प्रस्थान किया। साथ जाने वाले राठौड़ सरदारों में पंचोली केसरीसिंह, भाटी रघुनाथ, भंडारी देवराज, नरसिंह व राजसिंह प्रमुख थे। मार्ग में जोधपुर, सिवाना व जालोर में अपने गुमाश्ते नियुक्त करता हुआ वह मेड़ता पहुंचा और वहाँ भी एक गुमाश्ता रखकर उसने शुक्रवार, १४ मार्च (११ सफर) को मेड़ता छोड़ा।

खाँनेजहाँ बहादुर के चले जाने के उपरान्त ताहिर खाँ ने शासन की बागडोर सम्भाली। बृहस्पतिवार, १३ मार्च को ताहिर खाँ रानी हाडी से मिला और उसने उससे प्रार्थना की कि वह राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये उसे

---

८२. ख्यात भाग २, ५ व ६; पंचोली १७१ ब, १७१ अ व १७३ ब; जुनी ६४; दानेश्वर १८४; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक ४३-४, ४६-७; वाकया १६७, १७५ व १८१; मासीर ७८६; रेउ भाग १, २५०; आसोपा २३९।

अजितोदय में ताहिर खाँ के स्थान पर तहवर खाँ नाम का उल्लेख किया गया है जो ठीक नहीं है। तहव्वुर खाँ इन्हीं दिनों अजमेर का सूबेदार नियुक्त हुआ था (मुस्ताद खाँ १०७)।

पंचोली (१७१ ब) ने लिखा है कि बादशाह ने खाँनेजहाँ को जोधपुर पहुँचने पर वहाँ के मन्दिरों को तोड़ने की आज्ञा दी थी, अतएव जब उसने जोधपुर का शासन अपने हाथ में ले लिया तब उसने कुछ राठौड़ सरदारों को बुलाकर आज्ञा दी कि वे कुछ व्यक्तियों को प्रमुख मन्दिरों के समक्ष दीवार बनवाने के लिये नियुक्त कर दें। उसकी आज्ञानुसार सीकदार महेशदास ने गंगस्याम जी तथा मूलनायक जी के मन्दिर के आगे दीवार चुनवा दी।

खाँनेजहाँ ने जोधपुर मे कुछ मन्दिर अवश्य तुड़वाये होंगे, क्योंकि जब वह दिल्ली गया था तो अपने साथ मन्दिरों के ध्वंसावशेष भी साथ लेकर गया था। (मुस्ताद खाँ १०८-९; मआसिर ७८६; दानेश्वर १८८) परन्तु हिन्दू अधिकारियों ने मन्दिरों के मार्ग बन्द करवाने में सक्रिय सहयोग दिया हो, इसमें सन्देह है।

पंचोली १७२ अ; ख्यात भाग २, ६; जुनी ६४; अजितोदय, सर्ग ६ श्लोक ४८-५०; रेउ. भाग १, २५०।

अजितोदय में सिवाना में नियुक्त होने वाले व्यक्ति का नाम चकवेग दिया है, परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती।

सहयोग दे।[८३] रविवार, १६ मार्च (चैत्र सुदि १४) को लगभग एक हजार सवारों के साथ वह तलहटी के महलों में आ गया। जोधपुरमें राठौड़ सोनग, भाटी राम, झाला-भावासिंह, राठौड़ सूरजमल, राठौड़ प्रतापसिंह, राठौड़ वाघ, राठौड़ सबलसिंह दलपतोत, राठौड़ सबलसिंह खानावत, भंडारी जीवराज, सिंघवी दीपमल आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों ने उसकी सहायता करना स्वीकार किया। शासन की सुविधा की दृष्टि से ताहिर खां ने कई नियुक्तियां कीं। जवाहिरमल को उसने अपनी ओर से जोधपुर का फौजदार और मुहम्मद मुहसिन को बागों का दारोगा नियुक्त किया। किले के पूर्वी भाग की मुन्शीगीरी आनन्दरूप को सौंपी गई। राठौड़ सुजानसिंह ने शाही सेवा स्वीकार कर ली थी, अतः उसे जालोर तथा उसके भाई रामसिंह को सांचोर का अधिकार सौंपा गया। अब्दुल हादी को सिवाना का किरोड़ी और सूरतसिंह को वहां का तहसीलदार नियुक्त किया गया। ताहिर खाँ ने शाही प्रभुत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए जोधपुर तथा मेड़ता परगने के कई मन्दिरों को तोड़ा और कुछ मन्दिरों के मार्ग बन्द करवा दिए। इसके अतिरिक्त उसने जोधपुर में कुछ नई मस्जिदें भी बनवाईं। इस प्रकार जोधपुर में पूर्णरूप से शाही अधिकार हो गया।[८४]

औरंगजेब ने अब्दुल्ला खाँ को सिवाना जाकर जसवन्तसिंह की सम्पत्ति की खोज करने की आज्ञा ६ मार्च (६ सफर) को दी थी, अतः वह बुधवार, २६ मार्च

---

८३. वाकया १७१-२।

पंचोली (१७२ ब) के अनुसार ताहिर खाँ १६ मार्च (चैत्र सुदि १४) को रानी से मिला था।

वाकया (१७१-२) में लिखा है कि ताहिर खाँ जब रानी से मिला तो उसने उसे परामर्श दिया कि वह बादशाह को प्रसन्न करने के लिये मन्दिर तुड़वाये। राठौड़ सरदार यह सुनकर क्रोधित हो उठे, परन्तु रानी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया कि यदि बादशाह नवजात शिशु को राज्य देना स्वीकार कर ले तो वह इस बात को भी मानने के लिये तैयार है। ताहिर खाँ ने उसे आश्वासन दिया कि वह उसकी माँग के विषय में खाँनेजहाँ को लिखेगा। यह कहना कठिन है कि उक्त कथन में सत्य का अंश कितना है। परन्तु साधारण रूप से किसी राजपूत रानी से इस प्रकार के उत्तर की आशा नहीं की जा सकती। सम्भव है ताहिर खाँ ने इस प्रकार की सूचना अजमेर में केवल यह प्रदर्शित करने के लिये भेजी हो कि वह जोधपुर में शाही प्रभुत्व स्थापित करने में सफल रहा है और रानी हाड़ी भी उसकी बात को मानने के लिये तत्पर हैं।

८४. वाकया १६७, १७५, १८२, १९०, २०९-१०, व २१९।

दस्तूर (१६७) में ताहिर खाँ द्वारा श्री संतनाथ जी, श्री मनसोव्रत जी, श्री पारसनाथ जी, श्री महावीर जी और श्री सीसीमुनाथु जी के मन्दिरों को तोड़ने का उल्लेख मिलता है। परन्तु इसमें इन मन्दिरों को तोड़ने की तिथि दिसम्बर सन् १६८० ई. व जनवरी सन् १६८१ ई. बताई गई है जो ठीक नहीं है। ताहिर खाँ इस समय से पूर्व ही जोधपुर की फौजदारी से हटाकर सोजत जैतारण में नियुक्त कर दिया गया था (वाकया २४७ व २७६)।

(वैशाख बदि ६=२३ सफर) को जोधपुर से चलकर मंगलवार, १ अप्रैल (२६ सफर) को सिवाना पहुँचा। अगले दिन (२ अप्रैल=१ रबीउलअव्वल) मुहम्मद आकिल, ख्वाजा, अकबर तथा खिदमतगुजार खाँ को साथ लेकर उसने किले का निरीक्षण किया; परन्तु उसे वहां कोई खजाना न मिला। शनिवार, ५ अप्रैल (४ रबीउलअव्वल) को वह सिवाना से वापस जोधपुर के लिये चल पड़ा। इन्हीं दिनों औरगजेब ने खिदमतगुजार खां के स्थान पर अबूतालिब को सिवाना की किलेदारी पर नियुक्त किया। वह बुधवार, ९ अप्रैल (८ रबीउलअव्वल) को जोधपुर से चलकर सोमवार, १४ अप्रैल (१३ रबीउलअव्वल) को सिवाना पहुँचा, जहाँ खिदमतगुजार खां ने अगले दिन मंगलवार, १५ अप्रैल (१४ रबीउलअव्वल) को उसे समस्त अधिकार सौंप दिये।[८५]

उधर खाँनेजहाँ बहादुर राठौड़ सरदारों को लिए हुए अजमेर पहुँचा। वहाँ जब उसे यह विदित हुआ कि औरंगज़ेब ने उसे अजमेर में ही रहने का आदेश दिया है तो उसने राठौड़ों के सम्मुख अपनी लाचारी प्रकट करते हुए यह, प्रस्ताव रक्खा कि वे लोग उसके पुत्र नौशेर खाँ के साथ दिल्ली चले जाएं। राठौड़ों ने उसकी बात मान ली[८६] और सोमवार, २४ मार्च (वैशाख बदि ७) को नौशेर खाँ के साथ वे दिल्ली के लिए रवाना हुए। इस दल में छियासठ राठौड़ सरदार थे। बृहस्पतिवार, २७ मार्च (वैशाख बदि १०) को यह दल सांभर पहुँचा और एक महीने की यात्रा के बाद मंगलवार ८ अप्रैल (वैशाख सुदि ८) को दिल्ली पहुँचा।[८७] उनके पहुँचने

८५. वाकया १६४ व १६६; पंचोली १७३ ब।

८६. ख्यात भाग २, ६-७; पंचोली १७२ ब १७३ अ ब; जुनी ६४; दानेश्वर १८४; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०।

फुतूहात (७५ अ) में लिखा है कि खाँनेजहाँ स्वयं ही राठौड़ों को लेकर दिल्ली गया था। रेऊ (भाग १, २५२) ने भी इस मत का समर्थन किया है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि खाँनेजहाँ इस राठौड़ दल के लगभग डेढ़ महीने बाद २५ मई को दिल्ली पहुँचा था। (मुस्ताद खाँ १०८)।

८७. पंचोली १७२ ब व १७३ ब; ख्यात भाग २, ७ व २२; जुनी ६४; दानेश्वर १८५; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०; आसोपा २४०।

जोधपुर से दिल्ली जाने वाले राठौड़ों की संख्या में विभिन्न ग्रन्थों में भिन्नता है। पंचोली ने इनकी संख्या पांच-छः सौ बताई है और जुनी बही में लिखा है कि केवल पचास राठौड़ दिल्ली गये थे। चूँकि ख्यात में राठौड़ों की निश्चित संख्या दी गई है और इनके नाम भी वर्णित है, अतः ख्यात की संख्या को ही स्वीकार किया गया है।

ख्यात एवं जुनी में अजमेर से राठौड़ों के प्रस्थान करने की तिथि वैशाख बदि के स्थान पर वशाख सुदि लिखी गई है जो स्पष्ट ही लिपिक की भूल है। इसी प्रकार दिल्ली पहुँचने की तिथि में भी एक दिन का अन्तर है। ये ग्रन्थ इस दल का ७ अप्रैल (वैशाख सुदि ७) को दिल्ली पहुँचना लिखते हैं। परन्तु चूँकि पंचोली ने अजमेर से प्रस्थान करने तथा सांभर में पड़ाव करने की निश्चित तिथि एवं दिन का उल्लेख किया है, अतः उसकी तिथियों को ही मान्यता दी गई है।

से तीन ही दिन पूर्व ५ अप्रेल (वैशाख सुदि ५) को लाहौर, से राजपरिवार, को साथ लेकर राठौड़ सरदार राजधानी में पहुँच चुके थे।[८८]

जमरूद एवं जोधपुर से आए राठौड़ सरदार औरंगज़ेब से स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी के लिए मान्यता प्राप्त करने के लिए एकत्रित हुए थे। सोमवार, १३ अप्रेल (वैशाख सुदि १३) को नौशेर खाँ के साथ जोधपुर से आए हुए राठौड़ सरदार बादशाह से मिले और अगले दिन मंगलवार, १४ अप्रेल (वैशाख सुदि १४) को दोनों दल एक साथ औरंगज़ेब के पास गए। इनके नेता राठौड़ रणछोड़दास तथा राठौड़ सूरजमल को दरबार-ए-खास में बुलाया गया। इन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि महाराजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य प्रदान कर दिया जाय। औरंगज़ेब ने उन्हें सिरोपाव दिया और सांत्वना दी कि वह उनकी प्रार्थना पर विचार करेगा।[८९]

राठौड़ सरदार दिल्ली में ही रुककर बादशाह की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने वज़ीर असद खाँ तथा बख्शी सरबुलन्द खाँ से भी बार-बार मिलकर सहायता की प्रार्थना की। इनके अतिरिक्त काबुली खाँ, इनायत खाँ तथा रोहिल्ला खाँ आदि विभिन्न शाही अधिकारियों से भी मिलकर इन्होंने अपना अभीष्ट सिद्ध करने की चेष्टा की।

कुछ दिन उपरान्त बादशाह ने असद खाँ तथा सरबुलन्द खाँ के द्वारा यह सन्देश भेजा कि वह सोजत व जैतारण के परगने देने के लिए इस शर्त पर तैयार है कि इसके बदले में वे पाँच सौ सवार मुगल सेवा में भेजें। उसने इस बात का भी आश्वासन दिया कि अन्य प्रमुख सरदारों को भी मनसब और जागीर दिया जाएगा। परन्तु उसका यह प्रस्ताव राठौड़ों को रुचिकर न लगा।[९०]

---

८८. पीछे देखिये।

८९. मुस्ताद खाँ १०९; पचोली १७४ अ; ख्यात भाग २, २२; मूंदियाड़ १७५; राजरूपक २७; दानेश्वर १८९; फौजचन्द 1; अजितविलास २०८ ब; आसोपा २१७।

९०. पंचोली १७४ ब; ख्यात भाग २, २२; ओझा भाग ४, खंड २, ४८१; आसोपा २१७-८।

अजितोदय (सर्ग ६, ५९-६२) एवं सूरजप्रकाश (भाग २, २५) में लिखा है कि जब राठौड़ों ने औरंगजेब से प्रार्थना की कि वह महाराजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे दे तो बादशाह ने उनसे कहा कि वे जसवन्तसिंह के पुत्रों को उसे सौंप दें। उनका पालन-पोषण उसके संरक्षण में किया जायेगा और महाराजकुमार के बालिग हो जाने पर उन्हें राज्य दे दिया जायेगा। इसके साथ ही उसने राठौड़ सरदारों को जागीरें एवं मनसब देने का भी आश्वासन दिया। टॉड (भाग २,४४) सरकार (भाग ३, ३२९-३०) व रेउ (भाग १,२५२) ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु बादशाह ने इस समय नहीं, बरन् कुछ दिनों बाद राठौड़ों के विद्रोही आचरण की सूचना पाकर राजकुमारों को बुलाया था। (अध्याय ३)।

समकालीन इतिहासकारों में केवल भीमसेन बुरहानपुरी ने लिखा है कि औरंगजेब ने राठौड़ो से कहा था कि यदि राजकुमार इस्लाम स्वीकार कर लें तो वह उन्हें जोधपुर का राज्य वापस देने के लिये तैयार है। (दिलकुशा भाग १,१६४) सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३,३३०); डा० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६-७) तथा डा० रघुवीरसिंह (पूर्व. १४१) ने इसी मत को स्वीकार किया है।

सूरजप्रकाश (२५) में लिखा है कि राठौड़ों ने बादशाह की बात सुनकर भरे दरबार में उसका अपमान किया। परन्तु यह सम्भव नहीं है और केवल कवि के मस्तिष्क की उपज ही प्रतीत होता है।

औरंगजेब को अभी तक जसवन्तसिंह की सम्पत्ति का पूरा-पूरा हिसाब नहीं मिला था। उसने फिर राठौड़ सरदारों से जसवन्तसिंह की व्यक्तिगत सम्पत्ति की माँग की। फलस्वरूप पंचोली केसरीसिंह तथा भण्डारी रघुनाथसिंह ने हाथी, घोड़े, ऊँट, तोप, धनुष व बची खुची सम्पत्ति उसे सौंप दी। लेकिन बादशाह इससे सन्तुष्ट न हुआ। इन्हीं दिनों सिंघवी सुन्दरदास नामक एक व्यक्ति इन्द्रसिंह के माध्यम से बादशाह से मिला और उसने बताया कि राठौड़ों के पास काफी धन है, जिसे उन्होने छिपा रक्खा है, और वे आसानी से उसे नहीं देंगे एक बार पहले भी ख्वाजा फरासत से उसे ऐसी ही सूचना मिली थी। हाडी रानी ने भी अपने एक पत्र में पहले लिखा था कि महाराजा की सम्पत्ति के विषय में केसरीसिंह, जीवराज भंडारी व ख्वाजा फरासत को सब कुछ ज्ञात है। पुनः मार्च के महीने में जब खाँनेजहाँ बहादुर ने जोधपुर के किले का निरीक्षण किया तो वहाँ दो कमरों में ताले लगे थे, जिसके विषय में केसरीसिंह ने केवल यह कह कर टाल दिया कि इन कमरों में रक्खी हुई वस्तुओं की सूची दे दी गई है।[९१]

इन परिस्थितियों में बादशाह को सम्पत्ति के विषय में सन्देह होना स्वाभाविक था। उसने राठौड़ों पर दबाव डाला और आज्ञा दी कि सभी राठौड़ सरदार उससे मिलें और जसवन्तसिंह की सम्पत्ति का पूरा विवरण दें। राठौड़ सरदार औरंगजेब को सन्तुष्ट न कर सके। जसवन्तसिंह के धन का ठीक-ठीक हिसाब नहीं दिया जा सका। अन्त में पंचोली केसरीसिंह ने सम्पत्ति के विवरण देने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। परन्तु वह बादशाह को सन्तुष्ट न कर सका, इसलिये उसे मंगलवार, ६ मई (प्रथम ज्येष्ठ सुदि ७) को बन्दी बना लिया गया। इस मान-हानि से उसे इतना गहरा धक्का लगा कि २५ दिन बाद शनिवार, ३१ मई, (द्वितीय ज्येष्ठ सुदि २) को उसने विष खाकर आत्महत्या करली।[९२]

---

९१. ख्यात-भाग २,२४; राजरूपक २८-९; मूंदियाड १७५; दानेश्वर १८६; रेउ भाग १, २५२।

अजितोदय-(सर्ग ६, श्लोक ५३) के अनुसार इन्द्रसिंह ने स्वयं ही बादशाह को सूचित किया था कि राठौडो के पास महाराजा की बहुत सी सम्पत्ति है। राजरूपक (२८-९) में लिखा है कि औरगजेब ने स्वयं ही अनुमान लगाया कि महाराजा की काफी सम्पत्ति सरदारों के पास होगी। पदन्तु यह मत अधिक तर्क सम्मत नही जान पडते। वाकया. १६४ व १६६; पीछे दि. ६७।

९२. पंचोली. १७४ अ; ख्यात-भाग २,२४-५; मूंदियाड़ १७५; जुनी ६४; राजरूपक २८; दानेश्वर १९०; अजितविलास २०८ ब; वार्ता ३३ ब ३४ अ; रेउ भाग १,२५२; ओझा भाग ४, खंड २, ४८२; मूल १६३।

अजितोदय में इस घटना का कुछ भिन्न विवरण मिलता है। उसमें लिखा है कि बादशाह ने केसरीसिंह को मनसब देने का लालच देकर महाराजा की सम्पत्ति माँगी। केसरीसिंह ने उसे बताया कि जसवंतसिंह के पास सम्पत्ति थी ही नही, जितना भी धन उसने अपने जीवन काल में एकत्र किया था उसे अपनी सेना बढाने में लगा दिया था। औरगंजेब को इस पर विश्वास नही हुआ और उसने केसरीसिंह को कैद कर लिया। कुछ दिन बाद उसने राठौड सरदारों को आज्ञा दी कि वे स्वर्गीय महाराजा के परिवार को सलेमकोट में भेज दें। जब यह समाचार कैद में केसरीसिंह को मिला तो उसने अन्न-जल त्याग कर आत्महत्या कर ली (सर्ग ६ श्लोक ६२-४ व ६७)।

राठौड़ सरदारों ने अब खाँनेजहाँ बहादुर की सहायता लेने का प्रयत्न किया और उसे लिखा कि तुमने राजकुमारों के जन्म होने पर बादशाह से जोधपुर दिलाने का वचन दिया था; परन्तु बादशाह अब जोधपुर नहीं दे रहा है। खाँनेजहाँ यह पत्र पाकर उद्विग्न हो उठा। उसने तत्काल बादशाह को एक प्रार्थना पत्र लिखा कि मैंने शाही आज्ञानुसार राठौड़ों को वचन दिया था कि राजकुमारों का जन्म होने पर उन्हें जोधपुर वापस दे दिया जायेगा; परन्तु अब उसका पालन नहीं हो रहा है। यदि आज्ञा हो तो मैं आपके पास आऊं और स्थिति स्पष्ट करूं। इसके साथ ही खाँनेजहाँ ने राठौड़ सरदारों को भी एक पत्र लिखा और आश्वासन दिया कि वह स्वयं दिल्ली आकर उनकी ओर से औरंगजेब से प्रार्थना करेगा। यह पत्र राठौड़ों को रविवार, १८ मई (द्वितीय ज्येष्ठ बदि ३) को मिला।

बादशाह ने काबुली खाँ की सलाह ली और खाँनेजहाँ को यह आज्ञा दी कि वह अकेले दिल्ली आ जाय। अतएव खाँनेजहाँ रविवार, २५ मई (ज्येष्ठ बदि ११=२४ रबी उस्सानी) को दिल्ली पहुँचा और दरबार में पहुँच कर उसने प्रार्थना की कि जोधपुर का परगना राजकुमार को दे दिया जाय। परन्तु उसकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई।[६३] इन्हीं दिनों बीकानेर के शासक राजा अनूपसिंह तथा

---

६३. पंचोली १७४ अ; ख्यात भाग २, २३-४; मुस्ताद खाँ १०८; फुतूहात ७५ अ; रेउ भाग १, २५१-२; ओझा-भाग ४, खंड २, ४८१, रतलाम २२३ आसोपा २१८।

फुतूहात (७५ अ) में लिखा है कि खाँनेजहाँ बहादुर शाही आज्ञा के बिना ही राठौड़ सरदारों को लेकर बादशाह से गुसलखाने में मिला और राठौड़ सरदारों के अपराध क्षमा करने और राजकुमारों को राज्य देने की प्रार्थना की। उसकी इस उद्दंडता पर बादशाह ने कुपित होकर उसका मनसब व उसकी जागीर जब्त करली थी। परन्तु किसी शाही अधिकारी द्वारा इस प्रकार का दुस्साहस करना समीचीन नहीं जान पड़ता, न ही इसकी पुष्टि किसी अन्य ग्रन्थ से होती है। कुछ दिन पूर्व जून सन् १६७८ ई० में जब खाँने जहां दक्षिण की सूबेदारी से हटाये जाने पर दिल्ली लौटा था, तब औरंगजेब ने उसका मनसब व उसकी जागीर जब्त की थी (मुस्ताद खां १०४)।

फुतूहात-ए-आलमगीरी के विपरीत मआसीर-ए-आलमगीरी (मुस्ताद खाँ १०८-९); मआसिर-उल-उमरा (७८६); राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली (१८८); औरंगजेब नामा (देवीप्रसाद ८३) तथा हिस्ट्री आव औरंगजेब (सरकार भाग ३, ३२८) में खाँनेजहाँ का अपने साथ गाड़िया भर कर सोने चांदी, पीतल, तांबा, तथा पत्थर की मूर्तियां लाने का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों के अनुसार बादशाह ने प्रसन्न होकर इन ध्वंसावशेषों को जलूखाने तथा जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकने की आज्ञा दी।

रतलाम के शासक राजा रामसिंह ने भी अपने-अपने वकीलों के द्वारा बादशाह से प्रार्थना की कि जोधपुर का परगना राजकुमारों को दे दिया जाय।[६४]

परन्तु औरंगजेब ने इन लोगों की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जोधपुर में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी और राठौड़ सरदारों ने जिस प्रकार उपद्रव प्रारम्भ किया था, उसको तत्काल दबाना और जोधपुर में तुरन्त शान्तिपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना आवश्यक था। न तो स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह की किसी रानी मे ही यह योग्यता थी और न कोई ऐसा योग्य राठौड़ सरदार ही था जो उत्तराधिकार की समस्या का समाधान होने तक वहाँ शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर सकता। ऐसी परिस्थिति में औरगजेब ने जोधपुर के राजघराने के निकटतम सम्बन्धी इन्द्रसिंह को ही राज्य सौंपना उचित समझा। सोमवार, २६ मई (द्वितीय ज्येष्ठ बदि १२=२५ रबीउस्सानी) को जोधपुर का राज्य अमरसिंह के पोते तथा रायसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह, को सौंप दिया गया। इस अवसर पर उसे राजा की उपाधि, खिलअत खासा जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज युक्त घोड़ा, हाथी, झंडा, तुग व नक्कारा दिया गया।[६५] तथा तीन हजार जात तीन हजार सवार, एक हजार सवार दो अस्पा से अस्पा का मनसब दिया गया।[६६] इन्द्रसिंह ने बादशाह को नजराना के रूप में छत्तीस लाख रुपया भेंट दिया।[६७]

कुछ इतिहासकारों[६८] का मत है कि इन्द्रसिंह ने छत्तीस लाख रुपया उत्तराधिकार शुल्क देकर जोधपुर की गद्दी प्राप्त की थी। इससे ऐसा जान पड़ता है कि जोधपुर की गद्दी केवल रुपये के आधार पर इन्द्रसिंह को मिली किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि इन्द्रसिंह जोधपुर के राजघराने का ही था और उस परिवार के जितने सदस्य जीवित थे उन सबमें जोधपुर की गद्दी पर बैठने का हक उसको सबसे अधिक प्राप्त था। उत्तराधिकार के समय बादशाह को नजराना देने की परम्परा बहुत पुरानी थी। इन्द्रसिंह के नजराने की धन-राशि थोड़ी अधिक इसलिये थी कि उसे अपने पूर्वजों के खोये हुए अधिकार को फिर से प्राप्त करना था।

इन्द्रसिंह शाही मनसबदार था और शाही सेना में रह कर अनुभवी भी हो गया था। इसलिये औरंगजेब ने यदि उसे इस आशा से जोधपुर की गद्दी पर बैठाया कि

---

६४. ख्यात भाग २,२४; ओझा भाग ५, खंड १, २६३; रतलाम २२१; आसोपा २१८।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इन्ही दिनों पंचोली रामचन्द्र के पुत्र जगन्नाथ ने क़ाज़ी से मिलकर बातचीत की और तय किया कि बाईस लाख रुपया पेश करा देने पर वह राजकुमारों को जोधपुर दिला देगा। परन्तु जब जगन्नाथ ने अन्य राठौड़ सरदारों का यह निर्णय सुनाया तो उन्होंने इसे स्वीकार नही किया और पंचोली रघुनाथसिंह ने काजी के पास जाकर उसे इस बात की सूचना दे दी (ख्यात भाग २, २४)। परन्तु अन्य किसी ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नही होती।

वह तत्कालीन परिस्थिति को सम्भाल सकेगा तो उसका ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। इसके लिए उस पर किसी प्रकार का आरोप लगाना उचित नहीं जान पड़ता। यह उसका दुर्भाग्य था कि इन्द्रसिंह जोधपुर की परिस्थिति सम्भालने में असफल रहा और अन्त में उसको गद्दी से हटाना पड़ा। यदि इन्द्रसिंह ने समस्या को सुलझा लिया होता तो सम्भवतः सारा झगड़ा वहीं समाप्त हो गया होता।

---

९५. मुस्ताद खाँ १०६; ख्यात भाग २. २५; पंचोली १७४ अ; राजरूपक २६; जुनी ६४; गुटका ३२२; ओझा भाग ४, खंड २, ४८१-२; सरकार भाग ३, ३२८; रतलाम-२२३; आसोपा २१६।

मूंदियाड़ १७५; अजितविलास २०८ ब; बाकीदास ७२-३; वीर भाग २, ८२८-६; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक ६६ व सर्ग ७ श्लोक ८१; सूरज प्रकाश ३३ राठौड़ां ५; दस्तूर १३७ दिलकुशा १६५; मआसिर २३६; मेवाड १६६; उमराए ६५; पूर्व १४२; मूल १६५; रेउ भाग १,२५३; में इन्द्रसिंह के राज्यारोहण की तिथि नहीं लिखी गई है। दानेश्वर (१६०) तथा फौजचन्द (१) ने शनिवार. १७ मई (ज्येष्ठ बदि २) को यह घटना लिखी है फारूकी (२१५) ने जुलाई के महीने में इन्द्रसिंह को राज्य देना स्वीकार किया है। परन्तु इनकी पुष्टि किसी समकालीन आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

फ़ुतूहात (७४ ब) में इन्द्रसिंह को टीका देने का उल्लेख भी है; परन्तु यह प्रथा इस समय तक बन्द कर दी गई थी। (मुस्ताद खाँ १०६)

९६. जयपुर अखबारात, औरंगजेब. वर्ष २४ भाग २, ५४-५; मआसिर २३६ टि.।

इन्द्रसिंह के मनसब के विषय में विभिन्न मत मिलते हैं। दिलकुशा (१६५) में तीन हजार जात तीन हजार सवार का मनसब देना लिखा है पंचोली (१७४ ब) तथा जुनी (६४) न लिखा है कि इन्द्रसिंह को तीन हजार जात चार हजार सवार का मनसब दिया गया था। परन्तु मनसब के विषय में अखबारात ठीक-ठीक उल्लेख करते है अतः उसी को स्वीकार किया गया है।

९७. मुस्ताद खाँ १०६; वीर भाग २; ८२८-६; ओझा भाग ४ खंड २,४८२।

९८. मूंदियाड़ १७५; अजितविलास २०८ ब; उमराए ६५; सरकार भाग ३ ३२८; फारूकी २१५; रेउ-भाग १, २५३।

राठौडा री ख्यात (५) में इन्द्रसिंह द्वारा दस लाख रुपया देने का वर्णन हैं तथा मेवाड (१६६) में इस धनराशि को तीस लाख बताया है। परन्तु अन्य सभी ग्रन्थ छत्तीस लाख रुपये का ही वर्णन करते हैं अतः इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।

३

राठौड़-मुगल-संघर्ष

(सन् १६७६ ई० से सन् १६८७ ई०)

(क) मारवाड़ में युद्धारम्भ (सन् १६७६-८० ई०):—

राठौड़ सरदार एक ओर पेशावर से तथा दूसरी ओर जोधपुर से केवल इसी आशा से दिल्ली आये थे कि औरंगजेब महाराजा जसवंतसिंह के पुत्र को जोधपुर का शासक स्वीकार करके उसे राज्य व यथोचित मनसब दे देगा। परन्तु २६ मई सन् १६७६ ई० (द्वितीय ज्येष्ठ बदि १२ संवत् १७३६=२५ रबीउस्सानी १०६० हि०) को जब बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर का अधिपति स्वीकार कर लिया, तब उनकी समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया।

इधर मुगल-सम्राट् ने राठौड़ सरदारों को यह सन्देश भेजा कि वो लोग जोधपुर के महाराजा की हवेली को खाली कर दें और किशनगढ़ के शासक राजा रूपसिंह की हवेली में जाकर निवास करें। राठौड़ों ने असन्तुष्ट होते हुए भी एक ओर तो बादशाह की आज्ञा का तत्काल पालन किया ताकि वह उनसे रूष्ट न हो जाये, और दूसरी ओर वे परस्पर विचार-विमर्श करके भावी योजनाएँ बनाने लगे। सोच विचार के उपरान्त यह निश्चित हुआ कि दिल्ली में चुपचाप पड़े रहना व बादशाह से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। इसलिये एक ओर तो उन्होंने बादशाह से अपना मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना उचित समझा, और दूसरी ओर इन्द्रसिंह के प्रतिनिधि के पहुंचने से पूर्व ही जोधपुर पहुँचकर वहाँ के शाही अधिकारियों को भगाकर अपना अधिकार स्थापित करने का निश्चय किया। सम्भवतः इसी समय राठौड़ों ने राजकुमारों को भी किसी न किसी प्रकार दिल्ली से निकालकर मारवाड़ ले आने का निश्चय किया। इस प्रकार योजना बनाकर राठौड़ों ने औरंगजेब से प्रार्थना की कि उनमें से कुछ लोग, जिनके परिवार साथ हैं, स्वदेश वापस जाना चाहते हैं। बादशाह ने सम्भवतः यह सोचकर कि इनमें से कुछ लोगों के चले जाने से उनकी शक्ति कम हो जायेगी और उपद्रव की आशंका घट जायेगी, यह आज्ञा दी कि रानियों एवं राजकुमारों को छोड़कर जो सरदार जोधपुर जाना चाहें जा सकते हैं।[१]

---

१. अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ६६-७६; खफी खाँ भाग २,२५६; वीर भाग २;८२८; ख्यात भाग १,७४; जुनी ६४ रेउ भाग १,२५३।

इसी बीच छोटे राजकुमार दलथम्भन की मृत्यु हो गई।[२] इससे राठौड़ सरदार महाराजकुमार अजीतसिंह की सुरक्षा के लिये अधिक व्यग्र हो गये। जब उन्हें यह पता चला कि औरंगज़ेब ने उन्हें स्वदेश जाने की अनुमति दे दी है तो, केवल तीन सौ व्यक्तियों को छोड़कर, शेष राठौड़ों ने जोधपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। इस दल में प्रमुख सरदार राठौड़ सूरजमल, संग्रामसिंह, राजसिंह, चांपावत, उदयसिंह, जैतावत प्रतापसिंह, ऊदावत नरसिंहदास तथा ख्वाजाफरासत थे।[३] सम्भवतः इन्हीं लोगों के साथ अजीतसिंह को भी गुप्त रूप से निकाल दिया गया। बलुन्दे के ठाकुर चांदावत मोहकमसिंह की एक कन्या थी, जिसकी आयु राजकुमार के बराबर थी। मोहकमसिंह की पत्नी ने अपनी कन्या को दिल्ली में छोड़ दिया और राजकुमार को लेकर जोधपुर की ओर चली गई। खीची मुकन्ददास को उनकी सुरक्षा के लिये विशेष रूप से नियुक्त किया गया।[४]

उधर बादशाह को जब यह पता चला कि राठौड़ सरदार उसकी दी गई अनुमति का अनुचित लाभ उठाकर राजपरिवार सहित निकल भागने का प्रयत्न कर रहे हैं और जोधपुर पहुंचकर अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं, तो उसने मंगलवार, १५ जुलाई (१६ जमादिउस्सानी) को रानियों तथा राजकुमारों को नूरगढ़ में भेजने की आज्ञा दी और इस आज्ञा को कार्यान्वित करने के लिये उसने दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल फुलादखाँ को नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये खास चौकी के

---

२. अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ८१; मुस्ताद खाँ १०६; रेउ. भाग १,२५४।

ख्यात (भाग२,४४); मूंदियाड़ (१७५–६); दानेश्वर (१६१); राठौडां (२) आदि लगभग सभी ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर की ओर जाते हुये मार्ग में दलथम्भव की मृत्यु हुई थी। परन्तु चूंकि अजितोदय और मआसीर-ए-आलमगीरी दोनों समकालीन ग्रन्थ ह, अतः इन्हीं के मत को स्वीकार कियां गया।

३. अजितोदय. सर्ग ६, श्लोक ८०; सर्ग ७, श्लोक १ व ७; राजरुपक. ३१; ख्यात. भाग २,४४; मूंदियाड १७६; बांकीदास. ३५; अजितविलास. २०६ अ; दस्तूर १४२; फुतूहात. ७५ अ; वाकया. ३१६; रेउ. भाग १,२५४; ओझा. भाग ४, खंड २, ४८२–३।

राजरूपक (३१) में लिखा है कि दिल्ली में पांच सौ राठौड़ रुके थे, परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

४. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक ८२–३; ख्यात भाग २,४४; जुनी. ६६; रेउ. भाग १,२५४।

महाराजकुमार अजीतसिंह को किस प्रकार दिल्ली से निकाला गया, इस विषय में विभिन्न मत मिलते हैं।

राजस्थानी ग्रन्थों में से राजरूपक (३०); मूंदियाड़ (१७५); अजित चरित्र सर्ग ८ श्लोक १३; सूरजप्रकाश (२६); अभयविलास (१० अ); फौजचन्द री तवारीख (२) जूनी बही. (६६) तथा अजितविलास (२०६ अ) आदि में केवल यह लिखा है कि राजकुमार को गुप्त रूप से निकाला गया था। यह कार्य किस प्रकार हुआ, इसका कोई विवरण नहीं दिया गया।

आदमियों सहित सैयद हामीद खाँ, हमीद खाँ (दाऊद खाँ का पुत्र), कमालुद्दीन खाँ (दिलेर खाँ का पुत्र) तथा ख्वाजा मीर को भेजा गया। उनके साथ ही स्वर्गीय शाहजादे सुल्तान मुहम्मद के रिसाले के नौकर भी नियुक्त किये गये। बादशाह ने

वीर विनोद (भाग २,८२६) में लिखा गया है कि राठौड़ दुर्गादास व राठौड़ सोनग अजीतसिंह को लेकर जोधपुर चले आये थे। आधुनिक इतिहासकार ओझा (भाग ४, खंड २, ४८२–३) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। राठौड़ाँ री ख्यात (१) में राठौड़ सोनग का उल्लेख नहीं है, केवल दुर्गादास के द्वारा राजकुमार को पिटारी में रखकर निकालने का वर्णन है। लेकिन लगभग अन्य सभी राजस्थानी व फारसी ग्रन्थ इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि दुर्गादास ने दिल्ली मे राठौडो व शाहीसेना के बीच होने वाले संघर्ष में भाग लिया था।

फुतूहात (७५ ब) व मआसिर (१७३-४) के अनुसार जब युद्धारम्भ हो गया और शाही दबाव बढ़ गया तो राठौड़ रणछोड़दास और रघुनाथ ने दुर्गादास से कहा कि वह राजपरिवार को लेकर आगे चला जाय। परन्तु चूँकि राठौड़ो को स्वदेश जाने की अनुमति बादशाह से मिल चुकी थी, अतः यह अधिक तर्क सम्मत जान पड़ता है कि राठौड़ों ने इस अवसर का लाभ उठाकर राजकुमार को निकाला हो। पुनः दुर्गादास के साथ राजपरिवार का स्वदेश जाना अविश्वसनीय है।

वंश (भाग ३, २८४७-८ व भाग ४; २९४२-३) के अनुसार गोबिन्ददास भाटी नामक एक सरदार ने सँपेरे का वेष धारण किया और साँपों के स्थान पर राजकुमारों को रखकर वह बाहर ले गया। दानेश्वर (१९१) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है, परन्तु इसमें गोबिन्ददास के स्थान पर मुकुन्ददास खीची तथा ख्वाजा फरासत का वेष बदलने का वर्णन है। आधुनिक इतिहासकारो में रेऊ (प्राचीन राजवंश २०७); आसोपा (मूल. १९३-४) तथा गहलोत (मारवाड़ १५७-८) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। वार्ता (३३ अ) में लिखा गया है कि अजीतसिंह को तरकारी की टोकरी में रखकर निकाला गया था। टॉड (भाग २, ४५) के अनुसार अजीतसिंह को मिठाई की टोकरी में रखकर निकाला गया था और इस टोकरी को एक मुसलमान को सौप दिया गया जिसने उसे निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ से दुर्गादास ने उसे ले लिया। परन्तु ये सभी ग्रन्थ उत्तरकालीन हैं, किसी समकालीन ग्रन्थ से इनकी पुष्टी नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि घटना को रोचक बनाने के विचार से ही सबने अपने-अपने ढंग से इसका वर्णन किया है।

समकालीन ग्रन्थ वाक़या. (५५३) के अनुसार राठौडों ने यह निश्चय किया था कि दोनों राजकुमारों के स्थान पर दो नकली बच्चे रख दिये जायें। इसके लिये जब बच्चों की खोज हुई तब तत्काल दो बच्चे नहीं मिल सके, केवल एक ही मिला। परन्तु सौभाग्यवश उसी समय किसी राठौड सरदार की एक छोटी सी बच्ची की मृत्यु हो गई। राठौडों ने तत्काल ही यह प्रसारित कर दिया कि एक राजकुमार की मृत्यु हो गई है। दो दासियों को भी रानियों का वेष पहना दिया गया। तब दोनो राजकुमारों व दोनो रानियों को निकाल दिया गया। जब संघर्ष की तीव्रता बढ़ गई तो राठौड नकली राजकुमार को एक अहीर के घर में छोडकर भाग गये। परन्तु यह सूचना चूँकि राठौड सरदारों ने ही दीनदार खाँ कायमखानी को दी थी, अतः यह अनुमान करना उचित नहीं जान पड़ता कि उन्होंने शाही अधिकारी को सत्य समाचार दिया होगा।

चूँकि अजितोदय समकालीन ग्रन्थ है और उसके उल्लेख की पुष्टि ख्यातों से भी होती है, अतः उस मत को ही स्वीकार किया गया है।

फुलाद खाँ को आज्ञा दी कि यदि राठौड़ शाही आज्ञा का उल्लंघन करें और लड़ाई-झगड़ा करें तो वह भी शस्त्र का प्रयोग करे।[५]

इधर राठौड़ भी यह भली भांति जानते थे कि औरंगजेब को शीघ्र ही यह सूचना मिल जायेगी कि राजकुमार को दिल्ली से निकाल दिया गया है और तब वह शक्ति का प्रयोग करके उन्हें दबाने तथा राजकुमार का पता लगाने का प्रयत्न करेगा। चूंकि राठौड़ों की शक्ति सीमित थी, अतः उन्हें स्पष्ट था कि वे अधिक देर तक शाही सेना का मामना नहीं कर सकेंगे। साथ ही अजीतसिंह के सुरक्षित निकल जाने के उपरान्त वहां रुककर प्राण गंवाना निरर्थक था, अतः उन्होंने छोटे-छोटे दलों में बारी-बारी से शाही सेना को राजकुमार के पीछे जाने से रोकने का निश्चय किया।[६]

शाही आज्ञानुसार फुलाद खाँ ससैन्य[७] राठौड़ों के पास गया और उसने उन्हें बादशाह की आज्ञा सुनाई। परन्तु अजीतसिंह को पहले ही निकाला जा चुका था। चूंकि फुलाद खाँ को यह रहस्य विदित नहीं था, अतः उसने शाही आज्ञा का पालन करने के लिये राठौड़ों से बार-बार आग्रह किया, और जब देखा कि राठौड़

---

५. मुस्ताद खाँ, १०९-१०; फ़ुतूहात, ७५ ब; खफी खाँ. भाग २,२६०; वीर, भाग २,८२६; ख्यात. भाग २,४५; अजितोदय. सर्ग ७, श्लोक ७-१०; अजितचरित्र. सर्ग ८ श्लोक ३; दानेश्वर. १६१; सरकार. भाग ३.३३२; फारूकी २२० व २२४; रेउ. भाग १. २५५-७; ओझा भाग ४, खंड २, ४८४-५।

अजितोदय, ख्यात एवं जुनी के अनुसार औरंगजेब ने रानियों एवं राजकुमारों को सलेम-कोट में बुलाया था और अजितचरित्र में लिखा है कि उन्हें अन्तःपुर में बुलाया था; परन्तु चूंकि फारसी इतिहासकारों ने नूरगढ़ का स्पष्ट उल्लेख किया है, अतः उसी को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

केवल ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७५ ब) ने लिखा है कि औरंगजेब ने केवल राजकुमारों को शाही हरम में भेजने की आज्ञा दी थी और यह सन्देश भेजा था कि बालिग हो जाने पर उन्हें उनका राज्य लौटा दिया जायेगा। परन्तु राठौड़ को यह प्रस्ताव अरुचिकर लगा और उन्होंने उत्तर भेजा कि चूंकि दोनों राजकुमार बहुत छोटे हैं, अतः उन्हें अपनी माताओं से विलग नहीं किया जा सकता। जब वे बड़े हो जायेंगे तो उन्हें शाही सेवा में उपस्थित कर दिया जायेगा। आधुनिक इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३,३३२) ने भी इसी मत को स्वीकार किया हैं। परन्तु इस तथ्य की पुष्टि न तो किसी राजस्थानी ग्रन्थ से होती हैं और न औरंगजेब के राजकीय इतिहासकार मुस्ताद खाँ ने ही इसका उल्लेख किया है।

६. फ़ुतूहात. ७५ अ।

७. यह कहना कठिन है कि फुलाद खाँ कितनी सेना लेकर राठौड़ों के पास गया था। फारसी इतिहासकार इस विषय में मौन हैं। राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में इस सेना की संख्या भिन्न भिन्न बताई गई है। जुनी. (६५) में एक हज़ार बीस, फौजचन्द (२) ने दस-बारह हज़ार, ख्यात (भाग २.४५) में बीस हज़ार तथा बांकीदास (३५) ने तीस हज़ार का उल्लेख किया है।

बादशाह की आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं, तो उसने बल प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार बुधवार, १६ जुलाई (श्रावण बदि ३) को राठौड़-मुगल-संघर्ष आरम्भ हो गया।[८]

अपने पूर्व निश्चय के अनुसार लगभग एक सौ सवारों को भाटी रघुनाथ के नेतृत्व में छोड़कर शेष राठौड़ों ने स्थान छोड़ दिया। इस दल ने चार घड़ी तक शाही सेना का सामना किया परन्तु अन्त में, रघुनाथ भाटी तथा सत्तर राठौड़ सैनिक मारे गये। शेष राठौड़ भाग खड़े हुए और अगले राठौड़ दल से जा मिले। शाही सेना ने इनका पीछा किया और तेजी के साथ चार-पांच कोस की दूरी तय करके जब राठौड़ों के निकट जा पहुँचो तो जोधा रणछोड़दास ने लगभग एक सौ राठौड़ सैनिकों के साथ शाही सेना को रोका। शेष राठौड़ पूर्ववत्-आगे बढ़ते गए। रणछोड़दास तीन-चार घड़ी तक शाही सेना को रोके रखने मे सफल रहा और अन्त में लगभग साठ राठौड़ सैनिकों सहित मारा गया। शाही सैनिकों ने पुन: दो-तीन कोस आगे बढ़कर राठौड़ों को जा पकड़ा। इस बार राठौड़ दुर्गादास ने केवल पचास व्यक्तियो के साथ शाही सेना का सामना किया। दो तीन घड़ी में ही उसके लगभग सभी सैनिक मारे गये। अब तक रात हो चुकी थी, इसलिये शाही सैनिक वापस लौट गये।[९]

---

८. अजितोदय सर्ग ७, श्लोक १६-७; ख्यात. भाग २, ४५; मूंदियाड. १७६; जुनी. ६५; अजित विलास. २०९ ब; फौजचन्द. २; राजरुपक. ४०; दस्तूर. १४३; मूल. १९४।

टॉड (भाग २, ४६) ने लिखा है कि युद्ध ७ श्रावण को आरम्भ हुआ था। परन्तु न तो बदि अथवा सुदि के प्रभाव में निश्चित तिथि बताई जा सकती है और न बिना किसी आधार ग्रन्थ की पुष्टि के इस कथन को स्वीकार किया जा सकता है।

शक्ति का प्रयोग किस पक्ष ने आरम्भ किया, इस विषय में मतभेद है। ख्यात (भाग २, ४५) तथा जुनी (६५) के अनुसार राठौड़ों ने फुलाद खाँ से मिलकर सन्धि की बातचीत करने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए दुर्गादास व रूपसिंह भेजे गये। जब फुलाद खाँ ने उनके आने का समाचार सुना तो अपने सैनिकों को अस्त्र न चलाने की आज्ञा दे दी; परन्तु इसी बीच अचानक एक तोप छूट गई, फलत: युद्धारम्भ हो गया। राजकीय इतिहासकार मुस्ताद खां (११०) ने राजपूतों पर युद्धारम्भ करने का आरोप किया है। परन्तु चूंकि बादशाह ने स्पष्ट रूप से फुलाद खां को शास्त्र प्रयोग करने की अनुमति दी थी, अत: यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि राठौड़ों को शाही आज्ञा का पालन न करते देखकर उसने शस्त्र प्रयोग करना आरम्भ किया हो। इसी कारण भट्ट जगजीवन (अजितोदय सर्ग ७, श्लोक १६-७) के मत को स्वीकार किया है।

९. युद्ध का यह विवरण फुतूहात-ए-आलमगीरी (७६ अ) के विवरण पर आधारित है। वाकया (३१९) में भी लगभग ऐसा ही विवरण है, और मनूची (भाग ३, २३३) के उल्लेख से भी ऐसा ही आभास मिलता है। आधुनिक इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३, ३३२-४) ने भी ईश्वरदास नागर द्वारा वर्णित युद्ध विवरण को ही मान्यता दी है। चूंकि अन्य किसी इतिहासकार ने इस संघर्ष का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, अत: इसी को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

इस संघर्ष के बीच ही जब राठौड़ सरदारों ने देखा कि वे शाही सेना को भगाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं और फुलाद खाँ निरन्तर अपने साथियों के साथ उनका पीछा कर रहा है तो वे जसवन्तसिंह की दोनों रानियों के लिये चिन्तित हो उठे। परिस्थिति को विषम होते देखकर उन्हें यह आशंका हुई कि कहीं जसवन्तसिंह की रानियों को शाही सैनिक न पकड़ लें। फलतः उन्होंने स्वयं ही रानियों को मार डाला।[१०]

ऊदावत रूपसिंह, मेड़तिया मोहकमसिंह, राठौड़ भोजराज, चांपावत दूदो, राठौड़ महासिंह तथा पंचोली पंचायणदास नामक अपने केवल छः साथियों के साथ घायल दुर्गादास आगे बढ़ा और कुछ ही समय बाद राजकुमार से जा मिला।[११]

---

१०. मुस्ताद खाँ. ११०; ख्यात. भाग २, ४५–६; मूंदियाण १७६ व १७८; जुनी ६६; राजरूपक ३०; अजित चरित्र. सर्ग ८ श्लोक १०–१; सूरजप्रकाश २८।

अजितोदय (सर्ग ७, श्लोक १८–९); अजितविलास (२०९ ब); दानेश्वर-(१९३); फौजचन्द. (२); वार्ता (३३ ब); में लिखा कि दोनों रानियों ने मर्दाने भेष में युद्ध में भाग लिया था और लड़ती हुई युद्ध क्षेत्र में ही मारी गई थीं। आधुनिक इतिहासकार रेउ (भाग १, २५७) व आसोपा (२२३) ने भी इसके मत का समर्थन किया है। परन्तु युद्ध विवरण को देखते हुए यह समीचीन नहीं जान पड़ता कि राठौड़, रानियों को युद्ध के लिए पीछे छोड़ कर स्वयं आगे चले गये हों। साथ ही यदि यह बात ठीक होती तो अन्य राजस्थानी इतिहासकार व ख्यातकार भी रानियों की प्रशंसा में इस तथ्य का अवश्य उल्लेख करते।

दस्तूर (१४३) में लिखा है कि रानी जादम ने आत्म हत्या कर ली थी और रानी मरूकी को राठौड़ों ने मारा था। प्राचीन राजवंश (२०७) में दोनों रानियों द्वारा आत्म हत्या करना स्वीकार किया गया। इस कथन से प्रमुख तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

टॉड (भाग २, ४५) का यह कथन कि रानियों व अन्य राजपूत स्त्रियों ने जौहर किया था, अविश्वसनीय है।

खफी खां (भाग २, २५९–६०); ईश्वर दास नागर (फुतूहात. ७६ अ) तथा वाकया-नवीस अजमेर (वाकया ५५३) और मनूची (भाग २, २३३) का मत है कि वास्तविक रानियों को मर्दाने भेष में राजकुमारों के साथ ही जोधपुर की ओर भेज दिया गया था। यह भी उल्लेख मिलता है कि दो दासियों को रानियों के वस्त्र पहनाकर हवेली में छोड़ दिया गया था। यही दोनों नकली रानियां युद्ध क्षेत्र मे युद्ध करती हुई मारी गई थी। सरकार (भाग ३, ३३३) तथा फारूकी (२२३–४) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु इस समय के बाद इन दोनों रानियों का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता अत: यही स्वीकार करना अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता कि वे इस संघर्ष के बाद जीवित नहीं थी।

वंश (भाग ३, २८४८–२८५०); दानेश्वर (१८८); अजितविलास (२०९ ब) व वार्ता (३३ ब) आदि कुछ राजस्थानी ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि रानी हाडी ने इस संघर्ष में वीरता पूर्वक भाग लिया था। परन्तु यह अविश्वसनीय है क्योंकि रानी हाडी के जोधपुर में उपस्थित होने का प्रामाणिक उल्लेख मिलता है।

११. ख्यात. भाग २. ५१; जुनी ६६।

वीर-(भाग २, ८३०) में लिखा है कि अट्ठारह राजपूत बर्कन्दाज गिरधर, सांखला आनन्द, रैबारी कुम्भा व सुल्तान व कुछ अन्य सैनिक बचकर मारवाड़ गए थे। आसोपा (२२३)ने इन राठौड़ो की संख्या चालीस स्वीकार की है। दुर्गादास केवल पचास सैनिकों के साथ शाही सेना का सामना करने के लिए रुका था, अतः लगभग चालीस की संख्या में राठौड़ों का जीवित होना विश्वसनीय नहीं जान पड़ता है।

अब राठौड़ तेजी के साथ मारवाड़ की ओर बढ़े और हरसोर[१२] होते हुये २३ जुलाई (२४ जमादिउस्सानी=श्रावण बदि ११) को जोधपुर के निकट पहुंचे और सलावास[१३] नामक गाँव में रूककर उन्होंने सेना एकत्र करना आरम्भ किया।[१४] सम्भवतः यहीं सोमवार, १ सितम्बर (५ शाबान) को महाराजकुमार अजीतसिंह का राज्याभिषेक किया गया।[१५] उस समय तक राठौड़ों के उपद्रव बहुत बढ़ चुके थे और उन्हें दबाने के लिये औरंगजेब ने बख्शी सरबुलन्द खाँ की अध्यक्षता में एक विशाल सेना मारवाड़ की ओर भेजी थी। चूंकि यह स्थान जोधपुर के निकट था, अतः यहाँ अधिक दिन तक रूकने से शाही आक्रमण की आशंका अधिक थी। इसके अतिरिक्त राजकुमार की सुरक्षा के लिये अत्यावश्यक था कि उसे साथ न रखकर कहीं गुप्त रूप से रखा जाय। अतः दुर्गादास ने अजीतसिंह की सुरक्षा का भार खींची मुकुन्ददास को सौंपा और स्वयं शाही सैनिकों का विरोध करने के उद्देश्य से सिरोही राज्य में स्थित बीसलपुर नामक गाँव में चला गया। यहीं पर अन्य राठौड़ सरदार भी आ-आकर उससे मिलने लगे।[१६]

राठौड़ों के चले जाने के उपरान्त दिल्ली में उनका जोमाल असबाब था, उसमें से कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ शाही अधिकारियों ने अपने अधिकार में ले लिया और शाही आज्ञानुसार उसे बेतुलमाल के कोषागार में रख दिया गया।[१७]

दिल्ली से अजीतसिंह का चुपचाप बाहर निकल जाना शाही अधिकारियों की असावधानी और अकर्मण्यता का परिचायक था। पूरी चेष्टा करने पर भी औरंगजेब राजकुमारों और रानियों को दिल्ली में न रोक सका, इससे वह क्षुब्ध हो उठा। सम्भवतः अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने एक छोटे बच्चे को मंगवा कर यह घोषित कर दिया कि वही असली अजीतसिंह है और जिस बच्चे को राठौड़ दिल्ली से लेकर

---

१२. यह स्थान मेडता परगने के प्रमुख स्थान मेड़ता से लगभग पैंतीस मील पूर्व की ओर स्थित है (वाक़या पृ. २५६ के अनुसार मेड़ता से १० कोस)।

१३. ख्यात (भाग २, ५६) में इसका उल्लेख सालवा नाम से किया गया है। अनुमानतः ख्यातकार ने सलावास का ही उल्लेख किया है। यह गांव जोधपुर से लगभग दस मील दक्षिण की ओर स्थित है।

१४. वाक़या २४४–५; मुस्ताद खाँ ११०; ख्यात भाग २,५६; रेउ. भाग १,२५६।

१५. वाक़या ३३२, ३१८, ३२४।

१६. ख्यात भाग २, ५६।

१७. मुस्ताद खाँ. ११०; ओझा-भाग ४, खंड २, ४८६–७।

भागे हैं, वह वास्तविक राजकुमार नहीं है।[१८] सम्भवतः उसे इस बात का भी भय था कि राठौड़ों को जब यह मालूम हो जायेगा कि अजीतसिंह दिल्ली से निकलकर जोधपुर पहुँच गया है तो स्वामिभक्ति की भावना से प्रेरित होकर वह संगठित हो जायेंगे और तब उन्हें दबाना कठिन हो जायेगा। शाही महल में लाए हुए इस नये बच्चे का नाम उसने मुहम्मदीराज रक्खा और उसके पालन-पोषण का भार अपनी पुत्री जेबुन्निसा को सौंप दिया।[१९]

राठौड़ों के इस विरोधी आचरण से औरंगजेब उनसे अप्रसन्न हो गया और उसने सोजत व जैतारण के दोनों परगने भी, जो कि जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय से ही राठौड़ों को दिए गए थे, खालसा कर लिए। चूँकि जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को दे दिया गया था, अतः वहाँ के फौजदार, दीवान व अमीन ताहिर खाँ को वहाँ से हटाकर उसे इन दोनों परगनों की फौजदारी व अमीनी सौंपी गई। बादशाह ने ताहिर खाँ को स्पष्ट आज्ञा दी कि जब तक जोधपुर में इन्द्रसिंह का प्रतिनिधि न पहुँच जाये, वह सोजत व जैतारण के लिए प्रस्थान न करे।[२०]

---

१८. दिलकुशा. भाग १, १६४; ख्यात भाग २, ५२; जुनी. ६६; वीर-भाग २, ८३०; दानेश्वर १९३; उमराए. ९९; सरकार भाग ३, ३३४; रेउ भाग १,२५८, ओझा भाग ४; खंड २, ४८६; मेवाड़ १६७; मूल-१९५।

मुस्ताद खाँ (११०) ने इस घटना का उल्लेख सर्वथा भिन्न रूप में किया है। उसने लिखा है कि राठौड़ सरदार अजीतसिंह को एक अहीर के घर में छिपा कर भाग गये थे। फुलाद खाँ को इसका पता चल गया और उसने उस बच्चे को लाकर बादशाह को सौंप दिया। औरंगजेब ने राजपूतों के शिविर से पकड़ी हुई दो दासियों को जब इस बच्चे को दिखाया तो उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि वही असली राजकुमार है। अगले दिन फुलाद खाँ उस बच्चे के आभूषण व अन्य वस्तुऐं भी ढूंढ़ लाया। परन्तु राठौड़ जिसके लिए शाही सेना से युद्ध कर रहे थे उसे ही राजधानी में छोड़कर भाग गये हों, यह तर्कसम्मत नहीं जान पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्तांद खाँ ने शाही प्रतिष्ठा बचाने के लिये ही ऐसा विवरण दिया है।

खफी खाँ (भाग २, २६०) का कथन है कि शाही सेना ने राजपूतों का पीछा किया था और दोनों बच्चों को पकड़ कर वापस ले आये थे। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती।

१९. मुस्ताद खाँ ११०; दिलकुशा-भाग १, १६४; ख्यात-भाग २, २६०; वीर-भाग २, ८३०; दानेश्वर-१९३; जुनी०-६६; रेऊ-भाग १, २५८-९; ओझा-भाग ४. खंड २, ४८६।

२०. वाकया-२४७ व २७६।

साकी मुस्ताद खाँ (११०) के अनुसार ताहिर खाँ चूँकि जोधपुर में विद्रोहियों को दबाने में सफल नहीं हो सका था इसलिये औरंगजेब ने क्रोधित होकर उसे जोधपुर से हटा दिया था और 'खाँ' की पदवी भी छीन ली थी। सरकार (भाग ३, ३३४); ओझा (भाग ४; खंड २, ४८६, ७); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६७); मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए-१००); डॉ० वी० एस० भार्गव (मारवाड़ १२५) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु ताहिर खाँ जोधपुर में असफल रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। साथ ही इन्द्रसिंह की नियुक्ति के पश्चात् उसे अन्य स्थान पर भेजना स्वाभाविक ही था।

इधर इन्द्रसिंह को राज्य दिये जाने का समाचार जोधपुर में सोमवार, २ जून, (३ जमादिउलअव्वल) को पहुँचा। इससे रानी हाडी व अन्य सभी राठौड़ सरदारों में असन्तोष फैल गया। दूसरे दिन मंगलवार, ३ जून (४ जमादिउलअव्वल) को उन्हें यह भी समाचार मिला कि दिल्ली में उपस्थित राठौड़ों ने जसवन्तसिंह के पुत्रों को गुप्त रूप से दिल्ली से निकालने का निश्चय किया है। यह समाचार पाकर जोधपुर में उपस्थित रामभाटी व सोनग आदि सरदारों ने आस-पास के सरदारों को पत्र लिखकर बुलाया। राठौड़ों की इस गतिविधि को देखकर ताहिर खाँ चिन्तित हुआ और स्वयं भी सजग हो गया। सोमवार, ९ जून (९ जमादिउलअव्वल) को राठौड़ सरदार अन्तिम बार ताहिर खाँ से मिले और उन्होंने राजकुमारों के लिए राज्य दिलाने की पुन: प्रार्थना की। परन्तु ताहिर खाँ विवश था, इसलिए उसने उन्हें कोई आश्वासन नहीं दिया।[२१]

राठौड़ सरदार अब धीरे-धीरे जोधपुर में एकत्र होने लगे। रविवार, १५ जून (१६ जमादिउलअव्वल) को जोधपुर में केवल एक हजार राठौड़ थे, परन्तु अगस्त के आरम्भ तक उनकी संख्या लगभग छ: हजार हो गई। इन लोगों ने इस गम्भीर परिस्थिति पर विचार किया और अन्त में यह निश्चय किया कि इन्द्रसिंह को जोधपुर की गद्दी न लेने दी जाय।[२२]

इधर औरंगजेब से राज्याधिकार पाते ही इन्द्रसिंह ने किशनदास नामक एक व्यक्ति को जोधपुर की स्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा। परन्तु जोधपुर के राठौड़ों में इन्द्रसिंह के प्रति इतना अधिक रोष था कि सोनग के भतीजे अखेराज ने शनिवार, २१ जून (२२ जमादिउलअव्वल) को इस दूत को मार डाला। यह समाचार सुनकर इन्द्रसिंह ने जोहरमल नामक एक अन्य व्यक्ति को जोधपुर भेजा और उसे आज्ञा दी कि वह वहाँ के राठौड़ सरदारों को समझा बुझाकर राज्य-कार्य अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करे। परन्तु राठौड़ों ने जोहरमल को जोधपुर नगर में घुसने भी नहीं दिया। उसने यह सब समाचार इन्द्रसिंह को भेज दिया और स्वयं आसोप[२३] नामक स्थान पर रुककर इन्द्रसिंह की प्रतीक्षा करने लगा।[२४]

---

२१. वाकया २४४, २४५-६।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि ताहिर खाँ ने राठौड़ सरदारों के अनुरोध पर बादशाह को उनकी ओर से एक प्रार्थना-पत्र भेजा जिसमें यह लिखा कि अजीतसिंह के पक्ष के राठौड़ सरदार इन्द्रसिंह की अपेक्षा अधिक पेशकश देने, मन्दिर तोड़ने तथा इस्लाम का प्रसार करने के लिये तैयार हैं, अत: उन्हें राज्य वापस दे दिया जाय। (वाकया २४६-७) परन्तु इसकी सत्यता संदिग्ध है।

२२. वाकया-२४४, २५६ व ३३२।

२३. वाकया (३२०) में लिखा है कि आसोप नामक स्थान जोधपुर से केवल ४ कोस की दूरी पर था। आसोप नामक नगर जोधपुर से लगभग अड़तालीस मील दूर है। सम्भव है यह इसी नाम का कोई दूसरा गाँव रहा होगा।

२४. वाकया-२६३ व २७८।

इन्हीं दिनों राठौड़ों को एक अन्य शत्रु का भी सामना करना पड़ा। जोधपुर पर राठौड़ों से पूर्व प्रतिहारों का शासन था। इन पूर्ववर्ती शासकों के उत्तराधिकारियों ने इस अव्यवस्था से लाभ उठाना चाहा और मंडोर पर अधिकार कर लिया। परन्तु उनकी शक्ति जम न सकी और शीघ्र ही राठौड़ों ने उन्हें निकालकर फिर से मंडोर पर अधिकार कर लिया।[२५]

इस अशान्त वातावरण में ही जोधपुर में यह भी समाचार पहुँचा कि दिल्ली से भागते समय राठौड़ सरदारों और शाही सैनिकों के बीच संघर्ष हो गया है।[२६] इस समाचार से धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि यह घटना एक गम्भीर संघर्ष की भूमिका मात्र है। परिस्थिति दिन-प्रति-दिन विषम होने लगी। इस संकटमय परिस्थिति में राठौड़ों ने महाराजा जसवन्तसिंह की रानियों को जोधपुर में रखना उचित न समझा और उन्हें उनके पीहर भेज दिया।[२७] शाही अधिकारी भी स्थिति की गम्भीरता से घबरा गए थे। दीनदार खाँ कायमखानी, जो अजमेर के सूबेदार से कुछ सन्देश लेकर जोधपुर आया था, अपनी जान बचा कर नागोर की ओर भाग गया। शाही सत्ता के विरुद्ध खुला विद्रोह आरम्भ होने पर जोधपुर के फौजदार, दीवान व अमीन ताहिर खाँ का भी सुरक्षित रह पाना संभव नहीं था। परन्तु ताहिर खाँ से राठौड़ों के सम्बन्ध अच्छे थे, अतः वे उसको संकट में नहीं डालना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने प्रमुख सरदार राम भाटी तथा सोनग द्वारा यह सलाह भिजवाई कि वह चुपचाप जोधपुर छोड़ दे। उसने भी परिस्थिति विषम देखकर उनकी सलाह मानली। राठौड़ों ने सूरजमल भींवोत के साथ कुछ सैनिकों को भेजकर ताहिर खाँ को अजमेर तक सुरक्षित पहुँचा दिया। ताहिर खाँ

---

२५. दानेश्वर-१६३-४; टॉड-भाग २, २४६; सरकार-भाग ३, १३५; रेऊ भाग १, २६०।

२६. ख्यात भाग २, ५२; जूनी-६६; अजितोदय-सर्ग ८ श्लोक-३०।

आसोपा (२२३) ने इस समाचार के जोधपुर पहुँचने की तिथि सोमवार, ४ अगस्त (श्रावण सुदि ८) लिखा है; परन्तु यह ठीक नहीं है।

२७. ख्यात-भाग २, ५३-४ व ५५-६; जुनी ६७; दस्तूर. १३७; आसोपा २२५।

ख्यात के अनुसार रानी हाडी और रानी चौहाण बूंदी, रानी शेखावत खंडेला, रानी देवड़ी सिरोही और रानी भटियाणी जैसलमेर चलीं गईं। जसवन्तसिंह की विमाता रानी बघेली जोधपुर में ही मुहणोत नैणसी के घर चली गई और इन्द्रसिंह ने जोधपुर आने पर उसके पालन पोषण का प्रबन्ध किया।

ख्यात में यह भी लिखा है कि रानी जादम राणा के पास गई, जहाँ उसे राणा ने एक गाँव दिया, परन्तु यह अविश्वसनीय है क्योंकि इसी ख्यात में लिखा है कि दिल्ली में युद्धारम्भ होने पर राठोड़ों ने रानियों को मार डाला।

मूंदियाड़ (१७४) में लिखा है कि जब दिसम्बर सन् १६७८ ई० को जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर पहुँचा था उसी समय रानी हाडी को छोड़कर शेष सभी रानियाँ अपने अपने मायके चली गईं थीं परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

के चले जाने के बाद राठौड़ों ने अन्य शाही अधिकारियों को हटाकर जोधपुर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया।[२८]

जोधपुर के अतिरिक्त राठौड़ सरदार अन्य परगनों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। मेड़ता का फौजदार, अमीन व किरोड़ी सादुल्ला खाँ था। उस पर मेड़तिया राजसिंह ने जगमालोत सूरसिंह, चांदावत बाघसिंह, चांपावत अजबसिंह, और राठौड़ सिवदान आदि के साथ अगस्त सन् १६७६ ई० (भाद्रपद संवत् १७३६) में आक्रमण किया। सादुल्ला खाँ युद्ध में मारा गया, मेड़ता की समस्त सम्पत्ति लूट ली गई, मस्जिदें तोड़ डाली गईं और इस प्रकार मेड़ता पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया गया। उन्हीं दिनों राठौड़ों ने बवेचा सुजानसिंह के नेतृत्व में सिवाना पर आक्रमण किया। यहाँ का किलेदार अपने पचासी सैनिकों के साथ मारा गया। इस प्रकार सिवाना भी राठौड़ों के हाथ में आ गया। समस्त जोधपुर राज्य में स्थान-स्थान पर उपद्रव आरम्भ हो गए। छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त राठौड़ सरदारों ने शाही थानों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। फलत: दिल्ली से गुजरात का मार्ग अरक्षित हो गया।[२९]

औरंगजेब को जब यह समाचार मिला कि राठौड़ों ने शाही कर्मचारियों को हटाकर जोधपुर पर ही नहीं बल्कि मेड़ता एवं सिवाना पर भी अधिकार कर लिया है

---

२८. अजितोदय-सर्ग ८ श्लोक ३१-२; वाकया-२८६ व ३०४; फौजचन्द ५; रेउ भाग १२५९।

ख्यात (भाग २, ५२); जुनी (६६) व दानेश्वर (१९३) में लिखा है कि राठौड़ों ने ताहिर खाँ तथा काजी रहीम को घेर लिया था और जब उन्होंने अनुनय-विनय किया तो उनकी सम्पत्ति छीन कर उन्हें अजमेर तक पहुँचा दिया। मूंदियाड़ (१७८) व अजितविलास (२१० ब) के अनुसार राठौड़ों ने ताहिर खाँ पर आक्रमण किया था और उसे हराकर राज्य से निकाल दिया था। आसोपा (२२३) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। परन्तु अजितोदय व वाकया दोनों ही समकालीन ग्रन्थ हैं। अतः उनके उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है।

रेउ (भाग १, २५९) ने यहाँ पुन: ताहिर खाँ के स्थान पर तहव्वुर खाँ का ही नाम लिखा है।

२९. ख्यात-भाग २, ५२-३; जुनी. ६६; अजितोदय. सर्ग ८, श्लोक १-३४; बांकीदास ३३; मूंदियाड़-१७८; वीर-भाग २, ८३०-१; दानेश्वर-१९३; अजितविलास-२१० ब; दस्तूर-१३७; राठोड़ां-१०; फौजचन्द-५; वाकया-२११, २६८, २८३-२८६-७; रेउ. भाग १, २५९।

अजितोदय, मूंदियाड़ की ख्यात, अजितविलास, दस्तूरी बही, वीरविनोद, राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली व राठोड़ा री ख्यात आदि में लिखा है कि मेड़ता के युद्ध में सादुल्ला खाँ बन्दी बना लिया गया था; परन्तु चूँकि सादुल्ला खाँ का बाद में कोई उल्लेख नहीं मिलता, अतः इसे स्वीकार नहीं किया गया।

बांकीदास (३३) ने मेड़ता में होने वाले युद्ध की तिथि अगस्त २१ (भाद्रपद बदि ११) बताई है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि इसी दिन पुष्कर में युद्ध हुआ था, जिसमें राजसिंह मेड़तिया मारा गया था। मेड़ता का युद्ध निश्चय ही इससे पूर्व हुआ होगा।

तो वह चिन्तित हो उठा। मारवाड़ में निरन्तर उपद्रव बढ़ने का हाल सुनकर उसने रविवार, १७ अगस्त (२० रजब=भाद्रपद बदि ६) को जोधपुर पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए बख्शी सरबुलन्द खाँ की अध्यक्षता में एक विशाल सेना नियुक्त की।[३०]

उधर ताहिर खाँ ने अजमेर पहुँचकर जब वहाँ के सूबेदार तहव्वर खाँ को जोधपुर का सब समाचार सुनाया तब तहव्वर खाँ ने स्वयं जोधपुर जाकर राठौड़ों का दमन करने का निश्चय किया और लगभग तीन हजार सेना लेकर वह पुष्कर की ओर गया। यह समाचार सुनकर मेड़तिया राजसिंह प्रतापसिंह ने उसका सामना करने के लिए एक विशाल सेना लेकर मेड़ता से प्रस्थान किया। बृहस्पतिवार, २१ अगस्त (भाद्रपद बदि ११) को पुष्कर में वाराह जी के मन्दिर के समक्ष दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें बहुत से व्यक्ति मारे गए और राजसिंह भी अपने देश की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।[३१] राठौड़ों एवं मुगलों के

---

३०. मुस्ताद खाँ ११०; मआसिर ७०६-१०; फ़ुतूहात. ७६ ब; उमराए, १६७-८; सरकार-भाग ३, ३३५; रेउ. भाग १, २५६; ओझा. भाग ४, खंड २, ४८७।

ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७६ ब) के अनुसार शाहजादा अकबर को भी इसी सेना के साथ मारवाड़ भेजा गया था। इस सेना को अजीतसिंह के दिल्ली से निकाले जाने के तुरन्त बाद ही भेजा गया था और अकबर व सरबुलन्द खाँ—दोनों सेनापतियों को यह स्पष्ट आदेश दिया गया था कि वे जसवन्तसिंह के परिवार को पकड़ने तथा दुर्गादास व अन्य प्रमुख सरदारों को मारवाड़ से निकालने का पूरा प्रयत्न करें। परन्तु साकी मुस्ताद खां ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि सरबुलन्द खां को १७ अगस्त को दिल्ली से मारवाड़ की ओर भेजा गया था और शाहजादा अकबर कुछ दिन बाद बादशाह के हरांवल में मारवाड़ की ओर गया था अतः ईश्वरदास नागर का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता।

३१. ख्यात भाग २,५३; जुनी ५४; मूंदियाड़ १७८ दानेश्वर १६४; अजितविलास २१०ब; राजरूपक ४२-७; फौजचन्द ६; वीर भाग २, ८३०-१; मुस्ताद खाँ १११; मआसिर ४६५; वाकया ३४३-३५१; टॉड भाग २, ४७; सरकार-भाग ३, ३३५; रेउ भाग १, २६०; ओझा भाग ४, खंड २, ४८७।

पुष्कर का युद्ध किस तिथि को हुआ, इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। वीरभाण (राजरूपक ४७); फौजचन्द (६) व टॉड (भाग २,४७) ने इस युद्ध की तिथि ६ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ११) स्वीकार की है। परन्तु बादशाह को इस युद्ध का समाचार २३ अगस्त को ही मिला था (मुस्ताद खां १११), अतः यह तिथि ठीक नहीं मानी जा सकती आधुनिक इतिहासकार सरकार (औरंगजेब भाग ३,३३५) व रेउ (भाग १,२६०) लिखा है कि यह युद्ध १९ अगस्त को हुआ था; परन्तु किसी आधार ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती। अतएव जोधपुर राज्य की ख्यात, जुनी बही, मूंदियाड़ की ख्यात राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली आदि में उल्लिखित तिथि को ही मान्यता देना उचित प्रतीत होता है।

कुछ विश्वसनीय ग्रन्थों में इस युद्ध में मारे जाने वाले कुछ व्यक्तियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—

१. राजसिंह प्रतापसिंहोत	२. हरीसिंह गोकुलदासोत	३. रूपसिंह प्रतापसिंहोत
४. गोकुलदास प्रतापसिंहोत	५. जगतसिंह रामचन्द्रोत	६. चतुरसिंह रामसिंहोत
७. सुदरसणसिंह हरिसिंहोत	८. आन्दराम हरिसिंहोत	९. केसरीसिंह अचलसिंहोत

बीच सम्भवतः यह प्रथम व अन्तिम युद्ध था जिसमें राठौड़ों ने आमने-सामने डटकर मुगल सेना का सामना किया। इस दृष्टि से राठौड़-मुगल संघर्ष के इतिहास में इसका विशेष महत्त्व है। इसके बाद राठौड़ों ने सदैव पहाड़ों एवं जंगलों में छिपकर छापा-मार युद्ध प्रणाली का ही अनुसरण किया।[३२]

इधर दिल्ली में जब इन्द्रसिंह को यह समाचार मिला कि उसके प्रतिनिधि जोहरमल को जोधपुर में घुसने नहीं दिया गया है, तो उसने स्वयं वहाँ जाने का निश्चय किया और लगभग एक हजार सवारों के साथ अगस्त, सन् १६७९ ई० में दिल्ली से चलकर अपनी राजधानी नागोर में पहुँचा और वहीं रुककर अपने विरोधियों का सामना करने के लिए सैन्य संगठन करने लगा। कुछ दिन बाद उसने जोधपुर के लिए प्रस्थान किया और नागोर से चौदह कोस दूर जाकर पड़ाव डाला। यहीं से उसने अपने विरोधियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। केवल दो ही कोस आगे स्थित आसोप नामक गाँव सूरजमल के अधिकार में था। इन्द्रसिंह ने उसके पास उसी के भतीजे को भेजा और उसे जोधपुर के राठौड़ों का साथ छोड़ देने के लिए प्रेरित किया, परन्तु सूरजमल ने अपने भतीजे की बात मानना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रसिंह आगे बढ़ता हुआ जब जोधपुर से केवल पाँच कोस की दूरी पर पहुँचा तो कुछ राठौड़ सैनिक आकर उससे मिल गए और दो कोस बाद शिवपुरा नामक स्थान पर कुछ उसके सम्बन्धी सरदार भी आकर उससे मिल गए। परन्तु जोधपुर के प्रमुख सरदार इन्द्रसिंह का सामना करने के लिए तैयार थे। रविवार, ३१ अगस्त (भाद्रपद सुदि ५) को इन्द्रसिंह ने जोधपुर से केवल एक कोस

१०. ऊदावत हिमतसिंह फरसरामोत ११. जैतमाल चतुर्भुज सांमदासोत १२. चांपावत महासिंह केसरीसिंहोत
१३. रामचन्द करमचन्दोत १४. चांदावत किशनसिंह नाथसिंहोत १५. खंगारोत नाथा
१६. भाटीरामो कूंपावत १७. चारण किसनदास १८. छत्रसिंह
१९. सार्दुलसिंह २० जगतसिंह कांनलोत २१. ऊदावत भोजराज
२२. भवानीसिंह नारायणदासोत

(ख्यात २ प्र. ५३, जुनी प्र. ६६ अजितोदय सर्ग ८ श्लोक ३५–६८) राजरूपक पृ. ४२-७; वाकया पृ. ३४३-३५१; मूंदियाड़ पृ. १७८) अजितोदय में युद्ध में काम आने वाले मुसलमानों ने नाम इस प्रकार है—

पठान मोहम्मदअली व उसके तीन भाई; रसालदार नूरखां, सैयद समसुद्दीन व उसका भाई।

घायल होकर निकल जाने वाले कुछ राजपूत ये थे—

रा/जगरामसिंह, रा/सांवलदास, रा/प्रतापसिंह, रा/राजसिंह, बारवा चांदावत, आनन्दसिंह, मुकुन्दसिंह, बहादुरसिंह, चतुर्भुज (मूंदियाड पृ.१७८ व वाकया पृ. ३५१)

३२. लगभग सभी राजस्थानी ग्रन्थों के अनुसार राठौड़ों को प्रत्यक्ष विजय मिली थी और तहव्वरखां रणक्षेत्र छोड़ कर भाग गया था। इसके विपरीत फारसी इतिहासकारों का मत है कि शाही सेना इस युद्ध में विजयी हुई थी। परन्तु दोनों मत अतिरंजित प्रतीत होते हैं।

सम्भवतः यह युद्ध अनिर्णित ही रहा।

दूर स्थित रातानाड़ा नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला, और वहाँ से अपने प्रमुख सरदार कूपांवत सुदर्शन कीरतसिहोत, जोधा रतनसिंह हरिसिंहोत, चौहाण मनोहर दास करमसोत, कुसलसिंह, कीरतसिंहोत, चारण सांदु गोविन्द दास, तथा व्यास सतीदास गिरधरदासोत आदि को जोधपुर के सरदारों के पास भेजा। इन लोगों ने राठौड़ सोनग तथा राम भाटी आदि को समझाया कि इन्द्रसिंह भी जोधपुर के राजवंश से सम्बन्धित है, अतः जब तक जसवन्तसिंह के राजकुमारों का स्पष्ट पता न चले, राज्य की शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए उसे जोधपुर का अधिपति स्वीकार कर लेने में कोई बुराई नहीं है। उन्होंने उन्हें उच्च पदों का लोभ भी दिया। जोधपुर के सरदारों ने तब विचार किया कि परस्पर लड़कर राठौड़ों का नाश करने से कोई लाभ नहीं है, और उन्होंने उनकी सलाह के अनुसार जागीरों के पट्टे लेना स्वीकार कर लिया। अगले दिन सोमवार, १ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ६) को इन्द्रसिंह का पुत्र अजबसिंह आकर इन राठौड़ सरदारों से मिला और उन्हें अपने पिता के पास ले गया।[33] दूसरे दिन मंगलवार, २ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ७) को दो प्रहर दिन बीतने पर इन्द्रसिंह, ने जोधपुर के किले में निर्विरोध प्रवेश किया।[34]

परन्तु इन्द्रसिंह का शासन सफल न हो सका। शासन की बागडोर हाथ में लेते ही उसने कई ऐसे कार्य करने आरम्भ कर दिए, जिससे न तो जनता सन्तुष्ट रह सकी और न जसवन्तसिंह के समय के राठौड़ सरदार ही। अपने शासनारम्भ में ही उसने जनता से पुनः कर वसूल किए, इस आर्थिक दबाव से असन्तोष फैलना

---

३३. वाकया २९६, ३२०, ३३०-१, ३४७, ३५१ व ३५६; ख्यात भाग २, ५४-५; प्र. जुमी. ६७; मूंदियाड़ १७८-६; फौजचन्द ६-१०; बांकीदास ७३; कविराजा ७०७-८; अजितविलास २११ अ; दस्तूर १३७; दानेश्वर १६५; वार्ता ३४ ब; आसोपा २२५-६।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १-७) में कुछ भिन्न वर्णन मिलता है। इसमें लिखा है कि जब जोधपुर में इन्द्रसिंह, के ससैन्य जोधपुर की ओर आने का समाचार मिला, तो वहाँ के राठौड़ सरदारों ने परस्पर विचार करके इन्द्रसिंह का आधिपत्य स्वीकार करने का निश्चय किया। इन्द्रसिंह ने उन्हें समझाने के लिये अपने साथियों को नहीं भेजा था। अजितोदय के विवरण से ठीक विपरीत राठौड़ा री ख्यात (५) में लिखा है कि जोधपुर के राठौड़ों ने इन्द्रसिंह से युद्ध किया था और जब वे उसे भगाने में सफल न हो सके, तब उसे नगर में प्रवेश करने दिया। परन्तु इन मतों का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थों में नहीं मिलता। अतः लगभग सभी अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित मत को ही स्वीकार किया गया हैं।

टॉड (भाग २, ४६) का यह कथन कि जब इन्द्रसिंह, जोधपुर गया तो राठौड़ों ने उसे नागौर की ओर भगा दिया, नितान्त अप्रामाणिक है।

३४. ख्यात भाग २, ५५; मूंदियाड़ १७६; बांकीदास ७३; कविराजा ७०८; अजितविलास २११ अ; दस्तूर १३७; वाकया ३५७-८; मूल, १६५।

वाकया में इस घटना की तिथि सोमवार १ सितम्बर (५ शाबान) लिखी गई। चूंकि हिज्री सन् की तिथियाँ सायंकाल से बदलती है अतः इसी तारीख को २ सितम्बर भी स्वीकार किया जा सकता है, जो कि इन्द्रसिंह के जोधपुर प्रवेश करने की वास्तविक तिथि थी।

स्वाभाविक ही था। उसने कई पुराने व्यक्तियों से उनके वंशानुगत अधिकार छीन लिए, और जिन व्यक्तियों ने उसके इस कार्य का विरोध किया, उन्हें बलपूर्वक बन्दी बना लिया गया। जब उसके अधिकारियों ने तिवरी गाँव के पुरोहित नगराज और सोजत के हाकिम व्यास देवदत्त से उनके प्रदेशों का अधिकार माँगा, तो उन्होंने विरोध किया। फलतः दोनों पक्षों में संघर्ष हो गया और नगराज व देवदत्त दोनों ही मारे गए। इतना ही नहीं, अपने सहयोगियों को उसने जागीरें बाँटना भी आरम्भ कर दिया। राठौड़ नरो चन्द्रसेणोत को पोकरण तथा कूंपावत कीरतसिंह को आसोप जागीर में दिया गया। उसके इस पक्षपातपूर्ण कार्यों से जोधपुर के राठौड़ सरदार असन्तुष्ट होने लगे। जोधपुर राज्य के सस्थापक राव जोधा का निजी खड्ग जोधपुर के किले में था। इन्द्रसिंह ने इस खड्ग को तथा जोधपुर राज्य की कुलदेवी नागणेची और आनन्दघन की मूर्तियों को नागोर भेज दिया और किले में बना हुआ एक प्राचीन महल तोड़ डाला। इन वस्तुओं के प्रति जोधपुर के राठोड़ों में श्रद्धा एवं आदर की भावना थी। पूर्वजों के स्मृति चिन्हों एवं पुरानी मूर्तियों को हटाकर इन्द्रसिंह ने उनकी भावनाओं पर आघात किया। इसके अतिरिक्त जोधपुर के भंडार-गृह की बहुत सी सम्पत्ति उसने नागोर भेज दी और महल में रक्खे हुए आभूषणों पर भी अपना अधिकार कर लिया। उसके इन कार्यों से राठौड़ों को यह स्पष्ट होने लगा कि इन्द्रसिंह जोधपुर की अपेक्षा नागोर के प्रति अधिक अनुरक्त है। इन्द्रसिंह के सहयोगियों ने भी जोधपुर में लूटमार करके सम्पत्ति जमा करना आरम्भ कर दिया। राठौड़ साहब खाँ, व्यास हरदेव सिंघवी, चुहड़मल तथा पंचोली सतीदास आदि के घरों में जोधपुर के कोषागार की बहुत सी सम्पत्ति पहुँच गई इन बातों से जोधपुर के राठौड़ इन्द्रसिंह से असन्तुष्ट होकर पुनः उसके विरोधी हो गए। ७ अक्तूबर (आश्विन सुदि १३) को जब इन्द्रसिंह अपनी सेना लेकर सिवाना पर अधिकार करने के लिए गया तो वहाँ के अधिकारी जोधा सुजाणसिंह केसरीसिंहोत ने उसे परास्त करके भगा दिया।[३५]

ख्यातकारों ने लिखा है कि इन्द्रसिंह ने राज्य में मन्दिर तोड़ने तथा गौ-वध करने की अनुमति भी दे दी थी।[३६] परन्तु यह तथ्य विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। जोधपुर की उपद्रवग्रस्त स्थिति से परिचित होने के कारण इन्द्रसिंह दिल्ली से अपनी सहायता के लिए कुछ मुगल सेना लेकर आया था। इन मुगल सैनिकों ने ही सम्भवतः जोधपुर में लूट मार की और मन्दिरों को हाँनि पहुँचाई तथा गौ-वध भी किया। परन्तु इन्द्रसिंह, को चूंकि मुगल सम्राट् की इच्छा से ही राज्य मिला था, अतः वह मुगल सेना पर रोक टोक नहीं लगा सकता था। ख्यातकारों ने सम्भवतः इन्द्रसिंह की इस विवशता का अर्थ यह लगाया कि उसी ने इन हिन्दू विरोधी कार्यों की अनुमति दी थी।

---

३५. ख्यात भाग २, ५५ ६; जुनी ६७; मूंदियाड़ १७९–८०; बांकीदास ७४; अजितविलास स. २११अ., कविराजा ७०८; वाकया ३६८; राठौड़ां ६ व ११; फौजचन्द १०–१; आसोपा २२६–७।

३६. ख्यात भाग २, ५५; जुनी ६७।

इन्द्रसिंह का व्यक्तिगत व्यवहार भी सोनग तथा उसके साथियों के साथ अच्छा नहीं था। वह उनसे न तो प्रेमपूर्वक मिलता था, और न उन्हें समुचित आदर ही देता था। एक दिन जब सोनग अपने साथियों के साथ किले में प्रविष्ट होने लगा तो द्वार रक्षक ने उसके साथियों को रोक लिया और उसे अकेले अन्दर जाने के लिये कहा। इस पर बात बढ़ गई और वे सभी किले से लौट आये। अब तक इन्द्रसिंह के शासन की विफलता भी स्पष्ट होने लगी थी, और धीरे-धीरे उन्हें यह विदित होने लगा था कि इन्द्रसिंह का पक्ष लेकर उन्होंने भूल की है, एवं इन्द्रसिंह ने जोधपुर पर अधिकार करने से पूर्व जो वचन उन्हें दिये थे वह झूठे थे तथा उससे किसी प्रकार के उच्च पद अथवा सम्मान की आशा करना व्यर्थ है। उन्होंने परस्पर विचार कर इन्द्रसिंह का साथ छोड़ देने का निश्चय किया। दुर्गादास राठौड़ इन दिनों सिरोही राज्य में स्थित बीलसपुर नामक गांव में था। सोनग अपने साथियों सहित जोधपुर छोड़ कर दुर्गादास के पास गया और उसने यह स्वीकार किया कि इन्द्रसिंह को जोधपुर सौंपना बहुत बड़ी भूल थी। इसके लिये उसने पश्चात्ताप भी किया दुर्गादास ने उसे सांत्वना दी और पुनः संगठित होकर जोधपुर पर अधिकार करने की राय दी।[३७]

शनिवार, २३ अगस्त (२६ रजब) को औरंगजेब को दिल्ली में जब यह समाचार मिला कि पुष्कर में तहव्वर खां तथा राजसिंह के बीच भयानक युद्ध हुआ है तो उसने स्वय अजमेर जाकर जोधपुर राज्य में नियुक्त शाही सेनाओं का निर्देशन कर स्थिति सम्भालने का निश्चय किया। इस विचार से बुधवार, ३ सितम्बर, (७ शाबान) को वह दिल्ली से चला और उसी दिन जब उसका पड़ाव पालम में हुआ तो उसने शाहजादा अकबर को एक बड़ी सेना के साथ हरावल का नेतृत्व सौंपा। इस अवसर पर अकबर को एक खास खिलअत, एक बालाबन्द तथा सात घोड़े भेंट दिये गये और उसके सहयोगियों को भी यथोचित पुरस्कार दिये गये।

बृहस्पतिवार, २५ सितम्बर (२९ शाबान = आश्विन सुदि १) को बादशाह अजमेर पहुंचा और शेख मुईनुद्दीन की दरगाह पर पांच हजार रुपये निछावर करने के उपरान्त वह अनासागर झील के किनारे जहांगीरी महल में ठहरा। अगले दिन शुक्रवार, २६ सितम्बर (१ रमजान) को जब इलाहाबाद का सूबेदार हिम्मत खां शाही आज्ञानुसार अजमेर पहुंचा तो उसे भी तुरन्त अकबर के पास भेज दिया गया। विदा होते समय उसे अकबर के लिये खास खिलअत, सोने के साज सहित घोड़ा तथा जड़ाऊ सिरपेच दिया गया।[३८]

---

३७. ख्यात भाग २, ५६; मूंदियाड़ १७९; बाकीदास ७४; दानेश्वर १९५; अजितविलास २११; ब. कविराजा, ७०७ व ७०९; वार्ता, ३४ अ.; राठौड़ां ६; वाकया ३६२; मूल, १९६।

दस्तूर (१३७) के अनुसार किले में प्रवेश करते समय ही इन्द्रसिंह की आज्ञा से उसके कुछ साथियों ने लवापोल के निकट सोनग व अन्य राठौड़ों का उपहास किया जिससे नाराज होकर वे तत्काल किले से लौट गये। परन्तु यह तर्क सम्मत प्रतीत नहीं होता।

३८. मुस्ताद खां १११-२; सरकार भाग ३, ३३५; रेउ भाग १, २६०-१; मेवाड़ १६७-८।

अजमेर में ही इन्द्रसिंह ने बादशाह से भेंट की। औरंगजेब ने उसे जोधपुर के कुशासन के लिये डांटा। बादशाह की प्रताड़ना सुनकर इन्द्रसिंह ने जोधपुर में नियुक्त अपने प्रमुख कर्मचारी साहब खां को यह आदेश भेजा कि वह कुछ ऐसा कार्य करे जिससे मुगल-सम्राट प्रसन्न हो जाय। साहब खां ने तब राठौड़ों के प्रमुख नेता राम भाटी को मरवाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिये किशनसिंह केसरीसिंहोत को नियुक्त किया। किशनसिंह ने सोमवार, १५ दिसम्बर (पौष बदि ८) को रामभाटी के घर को घेर लिया और गोलियां बरसाना आरम्भ कर दिया। संयोगवश राम भाटी घर में अकेला था, अतः वह अधिक देर तक सामना न कर

औरंगजेब की यात्रा की तिथियों के सम्बन्ध में कुछ भिन्न विचार भी मिलते हैं। वीर विनोद (भाग २, ४६३) में बादशाह के दिल्ली से प्रस्थान करने की तिथि ४ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ६) तथा राजविलास (१२०) में २८ अगस्त (भाद्रपद सुदि २) स्वीकार की गई है। ख्यात (भाग २, ५६) में लिखा है कि औरंगजेब—नवम्बर (मार्गशीर्ष) के महिने में अजमेर पहुँचा था। ओझा (भाग ४, खण्ड २, ४६०) के अनुसार मुगल सम्राट् केवल तेरह दिन यात्रा के बाद अर्थात् १६ सितम्बर को अजमेर पहुँचा था। परन्तु साकी मुस्ताद खाँ चूंकि राजकीय इतिहासकार है, अतः शाही यात्रा के सम्बन्ध में उसके मत को स्वीकार करना अधिक उचित है।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १४) में लिखा है कि औरंगजेब अपने चारों पुत्रों के साथ अजमेर गया था; परन्तु यह ठीक नहीं है।

कविराजा श्याममल दास (वीर भाग २, ४६३) का मत है कि बादशाह, मेवाड़ पर आक्रमण करने के विचार से अजमेर गया था। ओझा (भाग ४, खण्ड २, ४६०) व आसोपा (मूल, १६६) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मेवाड़ के राणा राजसिंह ने इस समय तक मारवाड़ के युद्ध में प्रवेश नहीं किया था।

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब दो बार अजमेर गया। उसकी इन यात्राओं के सम्बन्ध में कुछ इतिहासकारों ने भिन्न विवरण दिया है। सूरजप्रकाश (३४-५.) व टॉड (भाग २, ४६) ने बादशाह का केवल एक बार अजमेर जाना स्वीकार किया है और लिखा है कि जब इन्द्रसिंह, जोधपुर गया और विरोधी राठौड़ सरदारों ने उसे नागौर की ओर भगा दिया, तब बादशाह ससैन्य अजमेर गया था। परन्तु राजस्थानी तथा फ़ारसी के लगभग सभी ग्रन्थ स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि बादशाह दो बार अजमेर गया था, अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। खफ़ी खाँ (भाग २, २६१-२) ने मुस्ताद खाँ की ही भाँति दो बार—जनवरी व सितम्बर के महिनों में—बादशाह का अजमेर जाना स्वीकार किया है, परन्तु उसके मतानुसार औरंगजेब की पहली यात्रा दिल्ली के संघर्ष और राजकुमारों के निकाले जाने के उपरान्त की गई थी। बादशाह अजमेर में सात महीने बीस दिन रहा और राणा से जज़िया देने और जसवन्तसिंह के पुत्रों को आश्रय न देने का आश्वासन लेकर तथा खानेजहाँ को मारवाड़ के प्रबन्ध के लिये छोड़कर वापस आ गया। थोड़े ही दिन बाद उसे समाचार मिला कि राणा विरोधी हो गया है, और खानेजहाँ भी मारवाड़ में सुव्यवस्था नहीं स्थापित कर पा रहा है; तब वह सितम्बर के महीने में पुनः अजमेर गया। खफ़ी खाँ की ही भाँति मनूची (भाग २, २३४) ने भी जसवन्तसिंह के पुत्रों के दिल्ली से सुरक्षित निकल जाने के बाद ही दोनों यात्राओं का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि राठौड़ सरदारों

सका। किशनसिंह ने उसका सिर काट कर बादशाह के पास भेज दिया। राम भाटी की इस दुःखद मृत्यु का समाचार सुनकर उसके स्वामिभक्त सेवक बीका कालिया ने किशनसिंह को ललकारा और फलस्वरूप युद्ध करते हुये बीका व किशनसिंह दोनों मारे गये।[३९]

के कार्य से अप्रसन्न होकर बादशाह स्वयं स्वर्गीय महाराजा की रानी के विरुद्ध गया। रानी ने उसे मेड़ता का परगना देना स्वीकार कर लिया, तब वह लौट आया; परन्तु शीघ्र ही मारवाड़ में पुनः उपद्रव होने के कारण उसे फिर अजमेर जाना पड़ा। परन्तु बादशाह की यात्राओं का यह विवरण नितान्त भ्रामक है। लगभग सभी समकालीन ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि बादशाह ने पहली यात्रा जसवन्तसिंह के पुत्रों के जन्म से पूर्व की थी और दूसरी महाराजकुमार के दिल्ली से सुरक्षित निकल जाने के बाद। बादशाह की प्रथम यात्रा के लिये खफी खां ने जनवरी का महिना स्वीकार किया है। उस समय न तो महाराजा के उत्तराधिकारियों का जन्म ही हुआ था और न जजिया ही लगाया गया था। मेवाड़ के राणा ने जोधपुर के राठौड़ों को सहयोग दिया हो; इसका प्रमाणिक उल्लेख औरंगजेब की दूसरी अजमेर यात्रा के समय भी नहीं मिलता। इस प्रकार खफी खां के मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मनूची के मत का समर्थन न तो किसी राजस्थानी ग्रन्थ से होता है और न फारसी ग्रन्थ से ही।

खफी खां तथा मनूची के अतिरिक्त मानकवि (राजविलास, १०९-१२०) ने इस घटना का जो विवरण दिया है, वह बिल्कुल काल्पनिक है। उसके मतानुसार जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने राठौड़ों से स्वर्गीय महाराजा की सम्पत्ति मांगी, और जब उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया तो शाहजादा अकबर की अध्यक्षता में उसने सत्तर हजार सैनिक उनके विरुद्ध भेजे और स्वयं भी अजमेर गया। राठौड़ों ने रात्रि में धोखे से आक्रमण करके शाही सेना को करारी हार दी। तब बादशाह ने उनको झूठा आश्वासन दिया कि वह अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे देगा। इस पर राठौड़ों ने राजकुमार को उसे सौंप दिया और स्वयं भी उसके साथ ही दिल्ली आये। काफी समय बीत जाने पर भी जब औरंगजेब ने अपना वायदा नहीं निभाया तो उन्होंने शाही सेना से संघर्ष किया और राजकुमारों को लेकर निकल भागे। औरंगजेब फिर दुबारा अजमेर गया। इस कथन का मूल तथ्य, कि राजकुमार जोधपुर से दिल्ली लाये गये थे, ही बिल्कुल गलत है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने केवल राठौड़ों की वीरता प्रदर्शित करने के लिये ही ऐसा विवरण दिया है।

---

३९. ख्यात भाग २, ५७-८; जुनी, ६७; अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक २०-२५; मूंदियाड़, १८०; बांकीदास, ७३; अजितविलास, २१२ अ; कविराजा ७०८; राठोड़ां; १०; फौजचन्द, १०; आसोपा, २२८।

ख्यात. व जुनी. के अनुसार इन्द्रसिंह ने औरंगजेब से कहा था कि वह जोधपुर आकर सत्रह प्रमुख सरदारों को मरवाकर उनके सिर बादशाह को भेजेगा, इसी कारण उसने रामभाटी को मरवाया था। अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १५-१६) में लिखा है कि इन्द्रसिंह के वकील ने उसे सूचना दी थी कि रामभाटी खांनेजहाँ के माध्यम से अजीतसिंह के लिये जोधपुर राज्य लेने का प्रयत्न कर रहा है, अतः उसने राम भाटी का वध करवा दिया। रेऊ (भाग १,२६०) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु इन मतों की अपेक्षा मूंदियाड़ की ख्यात का उल्लेख अधिक तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

बादशाह के अजमेर आने का समाचार सुनकर राठौड़ चिन्तित हो उठे और उन्होंने किसी अन्य शक्तिशाली शासक से सहायता लेने का विचार किया। मारवाड़ के अतिरिक्त इस समय उदयपुर, जयपुर व बीकानेर ये तीन प्रमुख राजपूत राज्य थे। जयपुर तथा बीकानेर के शासक अपने अपने राज्यों से दूर मुगल सेवा में रत थे, अतः उदयपुर का राणा राजसिंह ही केवल एक ऐसा व्यक्ति था जिससे सहायता के लिए प्रार्थना की जा सकती थी। अतः राठौड़ों ने राणा राजसिंह से सहायता लेने का निश्चय किया और सिंघवी दयालदास तथा राठौड़ गोपीनाथ दुरजणसिहोत के द्वारा राणा को पत्र भेजकर अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की। राणा ने अपने अधिकारियों को बुलाकर विचार-विमर्श करके जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को प्रश्रय देने का निश्चय किया। यह कहना कठिन है कि राणा ने यह निर्णय क्यों किया? डॉ. शर्मा का कथन है कि संभवतः उसने यह सोचा हो कि चूँकि मारवाड़ एवं मेवाड़ की सीमाएँ एक दूसरे से मिली हुई हैं, अतः मारवाड़ पर शाही अधिकार हो जाने से उदयपुर का उत्तर पश्चिमी भाग अरक्षित हो जाएगा और उस पर किसी भी समय सरलतापूर्वक शाही आक्रमण हो सकेगा। इसके साथ ही संभव है सीसोदियों को यह आशंका होने लगी हो कि बादशाह राठौड़ों के प्रमुख राज्य मारवाड़ पर अधिकार कर लेने के बाद मेवाड़ का भी विनाश करेगा। कारण कुछ भी रहा हो, राणा राजसिंह ने अपने निश्चय के अनुसार राठौड़ों को यह उत्तर भेजा कि वे अजीतसिंह को मेवाड़ में ले आएं। फलतः अजीतसिंह को लेकर राठौड़ सरदार राणा की सेवा में उपस्थित हुए और राणा को उन्होंने जेवर युक्त एक हाथी, ग्यारह घोड़े, एक तलवार, एक रत्नजटित कटार तथा दस हजार चाँदी के रुपये भेंट दिये। राणा ने भी उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया।[४०]

औरंगजेब को जब यह समाचार मिला कि राणा राजसिंह ने जसवन्तसिंह के पुत्र को आश्रय दिया है, तो उसने राणा के नाम इस आशय का एक फरमान भेजा कि अजीतसिंह को शाही दरबार में भेज दिया जाय। परन्तु राणा ने उसकी इस आज्ञा का पालन नहीं किया। औरंगजेब ने राणा को तीन पत्र और भेजे, परन्तु राणा ने फिर भी कोई ध्यान नहीं दिया।[४१] राणा को इस प्रतिक्रिया से औरंगजेब चिन्तित हो उठा। इस संघर्ष में सीसोदियों के प्रवेश से समस्या गम्भीर हो जाने की आशंका थी। इस समय औरंगजेब की सैनिक शक्ति का प्रमुख भाग दक्षिण में व्यस्त था। वहाँ पर न तो मरहठों को पूरी तरह से दबाया जा सकता था और न बीजापुर व गोलकुण्डा पर ही आधिपत्य स्थापित हो सका था। इस स्थिति में मेवाड़ तथा मारवाड़ के परस्पर मिल जाने से औरंगजेब के लिए राजपूताने में भयंकर स्थिति उत्पन्न हो सकती थी और तब दक्षिण की सेनाओं को आर्थिक अथवा सैनिक सहायता

---

४०. राजविलास. १२०-१२५ व २०१-२; ख्यात भाग २,५६; जुनी. ६७; वीर, भाग २,४६६; टॉड भाग १, ३०२, सरकार भाग ३, ३३७-६; मेवाड़. १६८-६; ओझा. भाग-४ खंड २,४८८-६।

४१. राजविलास. १२७-८; ओझा. भाग ४, खंड २,४८६-६०; मेवाड़ १६६।

पहुँचाना कठिन हो जाता। दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग भी राजपूताने से होकर जाता था, अतः आवागमन के मार्ग के अवरुद्ध होने की आशंका थी। अभी तक मारवाड़ में समुचित नेतृत्व की कमी के कारण बिना किसी योजना के यत्र-तत्र उपद्रव हुआ करते थे, परन्तु राठौड़ों व सीसोदियों के मिल जाने पर मारवाड़ के सरदारों को राणा राजसिंह का नेतृत्व मिलने की आशा थी, और तब मारवाड़ के भी उपद्रवों को दबाना कठिन हो जायगा, ऐसी आशंका थी। इसके अतिरिक्त सम्भवतः बादशाह का अनुमान था कि राणा ने स्वजातीय होने के नाते राठौड़ों का साथ देना स्वीकार किया है। उसने इस भावना को तत्काल कुचल डालना अत्यावश्यक समझा अन्यथा अन्य राजपूत राज्य भी इसी भावना से प्रेरित होकर राठौड़ों के सहयोगी बन जाएंगे और धीरे-धीरे मारवाड़ राज्य के अव्यवस्थित उपद्रव राजपूत राजाओं तथा मुगल सम्राट् के बीच युद्ध का रूप ले लेंगे, जिसे दबाने के लिए औरंगजेब को अपनी समस्त शक्ति लगानी पड़ेगी पुनः मारवाड़ तथा मेवाड़ के मिल जाने से युद्ध क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जायगा और इस लम्बे क्षेत्र में उसकी सेनाएं अपर्याप्त हो जायेंगी। फिर यदि मारवाड़ की भाँति मेवाड़ के राजपूत भी छापामार नीति से युद्ध करना आरम्भ कर देंगे तो शाही सेना के लिए शान्ति-स्थापन का कार्य कठिन हो जाएगा। अतः यह आवश्यक था कि सीसोदियों के युद्ध के लिए तैयार होने से पूर्व ही उन पर आक्रमण कर दिया जाय।

सम्भवतः इन परिस्थितियों पर विचार करके बादशाह ने यह आवश्यक समझा कि मेवाड़ के सीसोदियों तथा मारवाड़ के राठौड़ों को जिस प्रकार भी हो सके परस्पर मिलने न दिया जाय, और अपनी पूरी शक्ति से मेवाड़ को चारों तरफ से घेर कर उसे पूरी तरह से कुचल दिया जाय, ताकि अन्य राज्य इस ओर आकर्षित न हो सकें और राठौड़ों को राणा का नेतृत्व न मिल सके। इस विषम परिस्थिति का सामना करने के लिए औरंगजेब ने तत्काल स्वयं मेवाड़ जाने का निश्चय किया। उसने बंगाल से अपने पुत्र आजम को तथा गुजरात से मुहम्मद अमीन खाँ को सैनिक सहायता के लिए बुलवाया। आज्ञानुसार मुहम्मद अमीन खाँ रविवार, २६ अक्तूबर (१ शव्वाल) को एक बड़ी सेना लेकर अजमेर आ पहुँचा।[४२] इसी दिन प्रमुख थानों पर समुचित नियुक्तियाँ की गईं। तहव्वर खाँ को खिलअत, तरकश व एक हाथी

---

४२. फतूहात ७७ अ, ७८ अ, ७९ अ, मुस्ताद खाँ ११२; खफी खाँ २६२; वीर. भाग २, ४६३; मनूची-भाग ३,२३६; टॉड. भाग १, ३०४; रतलाम. २२४-५; मेवाड़ १६९-७०।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि औरंगजेब ने इसी समय शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण से तथा शाहजादा अकबर को मुल्तान से बुलवाया था। (खफी खां २६२; वीर. भाग २,४६३; मनूची. भाग ३,२३६; टॉड. भाग १,३०४; मेवाड. १६९-७०) परन्तु यह ठीक नहीं है। मुअज्जम को दक्षिण से मई, सन् १६८० ई. में बुलाया गया था। (बहादुरशाह-४१) ९ जून सन् १६८० में जब नया सूबेदार खाँनेजहाँ औरंगाबाद में शाहजादे से मिला तब उसने उत्तर भारत के लिये प्रस्थान किया था (मुस्ताद खाँ ११९)। शाहजादा अकबर इन दिनों मुल्तान में नहीं, वरन् मारवाड़ में था। (पीछे. पृ.)

देकर माँडल तथा आसपास के परगनों की देखरेख का भार सौंपा गया, तथा मोहकमसिंह मेड़तिया को पुर की थानेदारी पर नियुक्त किया गया। शाहजादा अकबर इन दिनों मारवाड़ में राठौड़ों का दमन करने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु लगभग पिछले दो महीनों में उसे कोई विशेष सफलता न मिल सकी थी। राठौड़ छोटी-छोटी टुकड़ियों में चारों ओर फैले हुए थे और जब भी अवसर पाते थे मुगल सैनिकों पर आक्रमण कर देते थे। दक्षिण में जालोर व सिवाना, पूर्व में गोड़वाड़, उत्तर में नागोर, उत्तर-पूर्व में डीडवाणा तथा सांभर संक्षेप में लगभग समस्त मारवाड़ उपद्रव-ग्रस्त था। चूंकि औरंगजेब मारवाड के नेतृत्व विहीन उपद्रवों की अपेक्षा मेवाड़ की प्रगति को रोकने के लिए विशेष उत्सुक था और अपनी पूरी शक्ति से राणा पर आक्रमण करना चाहता था, अतः उसने शाहजादा अकबर को भी मारवाड़ से वापस बुला लिया और मेवाड़ की ओर चलने का आदेश दिया। हसनअली खाँ मारवाड़ में अकबर का प्रमुख सेनापति था, उसे यह आदेश भेजा गया कि वह स्वयं मेड़ता जाकर वहाँ उपद्रवकारियों का दमन करे। औरंगजेब ने उसे यह भी आदेश दिया कि मेड़ता के लिए प्रस्थान करने से पूर्व वह शाही सेना के दीवान शेख रजीमुद्दीन को पाँच सौ सवार के साथ जोधपुर भेज दे और उसे जोधपुर के मन्दिर तोड़ने तथा वहाँ जामा-मस्जिद बनवाने की आज्ञा दे। साथ ही कासिम खाँ को दो हजार सवार देकर सिवाना के किले को नष्ट करने के लिए भेज दे। सिवाना तथा धामन में औरंगजेब ने राठौड़ रघुनाथसिंह को नियुक्त किया था। राजा इन्द्रसिंह को इसी समय नीबांज[४३] में नियुक्त किया गया। शनिवार, १ नवम्बर (७ शव्वाल) को राठौड़ सुजानसिंह की नियुक्ति सोजत व जैतारण में की गई। इस प्रकार शाही सेना का प्रबन्ध करके औरंगजेब रविवार, ३० नवम्बर (७ जिल्काद) को अजमेर से उदयपुर के लिए रवाना हुआ। देवराई पहुँचते-पहुँचते शाहजादा अकबर भी उससे आ मिला, और दोनों ने मिलकर मेवाड़-विजय की चेष्टा आरम्भ कर दी।[४४]

उधर औरंगजेब तथा शाहजादा अकबर के चले जाने के बाद भी मारवाड़ में छुट-पुट युद्ध होते रहे। शाही सैनिकों ने मेड़ता डीडवाणा व रोहित आदि प्रमुख नगरों पर अधिकार कर लिया था। राज्य में कई मन्दिर तोड़े गए तथा मस्जिदों का निर्माण भी हुआ। शाही अधिकारियों ने ऊँचे पद और मनसब का लालच देकर राजपूत सरदारों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टाएं कीं। युद्ध एवं उपद्रवों के परिणामस्वरूप राज्य में खेती-बारी को विशेष हानि पहुँची और साधारण जनता की आजीविका नष्ट हो गई। परन्तु शाही सैनिकों को विशेष सफलता न मिल सकी। यद्यपि कई बार राजपूतों को भाग-भाग कर जंगलों व पहाड़ों की शरण लेनी पड़ी

---

४३. नींबाज, जैतारण से लगभग छः मील दूर स्थित है।

४४. जयपुर अखबारात; औरंगजेब, वर्ष २३ भाग १, १६, ५१; मुस्ताद खाँ. ११२; वीर. भाग २, ४६३-४ व ७०३; दानेश्वर. १६६, सरकार-भाग ३, ३३६,३४७; ओझा भाग ४, खंड २, ४६१-२; रेऊ भाग १, २६२ व २६४; मेवाड़ १६६ व १७१.।

तथा कुछ व्यक्तियों ने शाही सेवा में जाकर मनसब स्वीकार भी कर लिया, परन्तु मारवाड़ का विद्रोह शान्त न किया जा सका। मेवाड़ के सीसोदिया राजपूत भी अब राठौड़ों का साथ देने लगे थे। इनकी सम्मिलित सेनाएं यत्र-तत्र लूटमार किया करती थीं। और शाही सेना के आने पर भाग जाती थीं। राजपूत कभी किसी चौकी पर अधिकार कर लेते थे और कभी किसी मुगल थानेदार से धन वसूल कर लेते थे। विद्रोह इतने बढ़ गए थे और आवागमन के मार्ग इतने अरक्षित हो गए थे कि शाही अधिकारियों तक शाही आज्ञाएं पहुँच भी नहीं पाती थी। नगरों पर अवश्य ही शाही अधिकार था, परन्तु पहाड़ी दर्रे व जंगल राजपूतों से भरे थे जो शाही अधिकारियों पर आक्रमण करने का कोई अवसर नहीं खोते थे।[४५]

विद्रोही राठौड़ सरदारों ने पिछले कई महिनों से सिवाना पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। इन्द्रसिंह जब जोधपुर का शासक घोषित हुआ तो उसने अपनी शक्ति बढ़ाने और उपद्रवकारियों को दबाने तथा जोधपुर राज्य में शांति स्थापन करने के उद्देश्य से सिवाना पर अधिकार करने की चेष्टा की। जब वहाँ के राठौड़ सरदारों ने इसका विरोध किया, तब सैनिक शक्ति का भी प्रयोग हुआ, जिसमें दोनों ओर से काफी लोग मारे गए। परन्तु अन्ततः इन्द्रसिंह को सफलता मिली और अपनी इस सफलता की सूचना उसने बादशाह को भेजी। बुधवार, १२ नवम्बर (१८ शव्वाल) को जब औरंगजेब को यह समाचार मिला तो उसने इन्द्रसिंह के बड़े लड़के को अपने दरबार में बुलाया और उसके वहां पहुँचने पर शुक्रवार, ५ दिसम्बर (१२ जिल्काद) को उसे सिवाना की फौजदारी, एक हजार जात पाँच सौ सवार का मनसब, खिलअत तथा अन्य उपहार दिया। साथ ही इन्द्रसिंह को यह आदेश भेजा गया कि वह जोधपुर की व्यवस्था का भार अपने लड़के पर छोड़कर स्वयं गूधर[४६] के किले का प्रबन्ध करने के लिए तुरन्त रवाना हो जाए। वहाँ से मेवाड़ में युद्धारम्भ हो जाने के कारण इन्द्रसिंह को सोमवार, २९ मार्च १६८० (८ रबीउलअव्वल १०९१ हि.) को बदनोर परगने के राजपूतों के दमन के लिये नियुक्त किया गया।[४७]

इसी बीच सोजत व जैतारण में बहुत से विद्रोही राजपूत एकत्र हो गये थे और उपद्रव मचा रहे थे। अत: उनके दमन के लिये सोमवार, ५ अप्रेल (१५ रबीउलअव्वल) को मुकरम खाँ को भेजा गया। इन परगनों के फौजदार सुजानसिंह ने जब यह समाचार भेजा कि सोजत के निकट करोरा नामक गांव में चार हजार

---

४५. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २३, भाग १, २१५; भाग३, २२०-१ व ३५१-२; भाग४, १,६ व १८; वर्ष २४, भाग १, १७९-८०; टॉड. भाग २, ४६-७; सरकार भाग ३, ३३६ मेवाड़. १६८; पूर्व १४२; रेऊ भाग १, २६१।

४६. यह कहना कठिन है कि यह स्थान कहाँ था। डूंगरपुर से दक्षिण की ओर आधुनिक गुजरात में गोधरा नामक एक स्थान अवश्य है परन्तु मेवाड़ एवं मारवाड़ से दूर नियुक्ति करना अप्रासंगिक प्रतीत होता है। 'गूधर' अवश्य ही अन्य कोई स्थान रहा होगा।

४७. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २३, भाग १, ७४-५, १५७; भाग ३, ६१।

राजपूत एकत्र हो गये हैं तब बुधवार, ७ अप्रेल (१७ रबीउलअव्वल) को मुकर्रमखां को आदेश दिया गया कि वह सीधा उधर ही जाकर राजपूतों को तितर-बितर करे। परन्तु जब उसे कोई सफलता नहीं मिली तब बुधवार, १९ मई (२९ रबी उस्सानी) को पुनः एक बड़ी सेना उधर भेजी गई और जब यह भी सफल न हो सकी तो मई के अन्त (जमादिउलअव्वल के आरम्भ) में इन्द्रसिंह को सोजत में शान्ति स्थापित करने का कार्य सौंपा गया। इन्द्रसिंह बदनोर से चलकर मगलवार, २५ मई (६ जमादिउलअव्वल) को जब सोजत पहुँचा तो विद्रोही राजपूत वहां से भाग खड़े हुए।[४८]

इन्हीं दिनों जालोर के अधिकारी बिहारी फतहखां पर राठौड़ों और सीसोदियों की सम्मिलित सेना ने जोरदार आक्रमण किया। फतहखां उनका सामना न कर सका और उसने बादशाह से सहायता मांगी। उसकी सहायता के लिये मुकर्रमखां को भेजा गया, जिसने जालोर पहुंचकर फतह खां से दस हजार रुपये राठौड़ों को दिलाकर शान्ति स्थापित की। इसके बाद राठौड़ों ने सोजत व जैतारण से भी धन वसूल किया, सिवाना में भी उपद्रव किये तथा बृहस्पतिवार, १३ मई सन् १६८० ई० (ज्येष्ठ बदि १० संवत् १७३७) को उन्होंने बीलाड़ा नामक स्थान को घेरकर वहाँ बहुत से जानवर लूट लिए। वहाँ का अधिकारी पंवार गोविन्ददास भाग कर बदनोर चला गया और वहाँ उसने इन्द्रसिंह को सब समाचार सुनाया।[४९]

जोधपुर के परगने के ठीक पूर्व की ओर बीलाड़ा नामक परगने में राजपूतों के विरोध का समाचार सुनकर इन्द्रसिंह अपने राज्य की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठा और उसने बादशाह से जोधपुर जाने की आज्ञा माँगी। बृहस्पतिवार, २० मई (ज्येष्ठ सुदि ३) को शाही आज्ञानुसार, जोधपुर की ओर प्रस्थान कर एक सप्ताह बाद २७ मई (ज्येष्ठ सुदि १०) को वहाँ पहुँचा। इन दिनों राठौड़ दुर्गादास अपने साथियों सहित सलवास नामक गाँव में था। इन्द्रसिंह मन ही मन अच्छी तरह जानता था कि जोधपुर के राठौड़ उसे राज्य दिए जाने से अप्रसन्न हैं। उनको जोधपुर के निकट बड़ी संख्या में एकत्रित देखकर उसने अनुमान लगाया कि वे अवश्य ही जोधपुर पर आक्रमण करेंगे। उसने स्वयं आक्रमण करके उन्हें कुचल देने का निश्चय किया और सलावास की ओर गया, परन्तु राठौड़ भाग गए और ओसियाँ[५०] नामक स्थान की ओर बढ़ गए। इन्द्रसिंह ने उनका पीछा किया और ओसियाँ के निकट खेतासर नामक गाँव में सोमवार, ३१ मई (ज्येष्ठ सुदि १३ जमादिउल-अव्वल १२) को दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें दोनों पक्षों के बहुत से व्यक्ति

---

४८. वही. भाग ४, १८ व ५५।

४९. ख्यात. भाग २; ५६-८; जुनी. ६७-८; राजरूपक. ५७-८; अजितोदय. सर्ग ९ श्लोक २६-७ मूंदियाड़ १८१; अजितविलास २१२ ब; दस्तूर. १३८; दानेश्वर. १९६; राठौड़ां ११; फौजचन्द १२; वार्ता. ३४ ब; टॉड. भाग २, ४८; रेऊ. भाग १, २६२।

५०. ओसियाँ जोधपुर से लगभग ३० मील उत्तर की ओर है।

मारे गए। अजीतसिंह, के पक्ष के चांपावत साहब खाँ, बाला खंगार, धवेचा-गोविन्ददास, राठौड़ मनोहरदास, धवेचा भावसिंह, राठौड़ अखेराज आदि प्रमुख सरदार मारे गए तथा इन्द्रसिंह के ऊदावत कृष्णसिंह, जोधा गोपीनाथ, मेड़तिया राजसिंह, मेड़तिया जसवन्तसिंह मेड़तिया रतन, राठौड़ हरराम, राठौड़ हरनाथ, राठौड़ भाखरसी आदि प्रमुख सरदार वीर गति को प्राप्त हुए।[५१]

अन्धेरा होने पर युद्ध बन्द हो गया और दोनों पक्ष के व्यक्ति अपने-अपने शिविर में वापस चले गए। राठौड़ दुर्गादास के पक्ष का डेरा खेतासर तालाब पर था, परन्तु इन्द्रसिंह की सेना को गर्मी के मौसम के कारण कहीं पानी न मिल सका और वह प्यास व गर्मी से घबरा गई। अन्त में इन्द्रसिंह ने गोवर्धन नामक चारण को भेजकर अत्यन्त विनयपूर्वक राठौड़ों से प्रार्थना की कि वे तालाब के किनारे से हट जाएँ। राठौड़ों ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया और प्रातः काल ही वहाँ से कूच करके उन्होंने चेराई नामक गाँव में पड़ाव डाला। यहीं पर उन्होने परस्पर सलाह करके जोधपुर पर पुनः अधिकार करने का निश्चय किया।[५२]

उनके जाने के बाद इन्द्रसिंह अपनी सेना सहित प्रातःकाल तालाब पर आ गया और दूसरे दिन वहाँ से बालखाँ पहुँचा, जहाँ उसे पता चला कि राठौड़ सरदारों ने जोधपुर पर अधिकार करने का पूर्ण निश्चय कर लिया है। मंगलवार, ८ जून (आषाढ़ बदि ६) को चांपावत उदयसिंह, लखधीरोत तथा कूंपावत प्रतापसिंह सुदर्शनसिंहोत को उसने राठौड़ों के पास इस आशय का सन्देश लेकर भेजा कि वे राठौड़ दुर्गादास व उसके अन्य साथियों को पद तथा इच्छित वस्तुएँ देने का वचन देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करें। परन्तु इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। जब यह दूत राठौड़ दुर्गादास व सोनग के पास पहुँचे तो उन्होंने इन दोनों को समझाया कि इन्द्रसिंह का साथ देने से कोई लाभ नहीं है, उन्हें अपने स्वर्गीय शासक

---

५१. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २३, भाग ४, ११८ व १३७; राजरूपक. ६१; पंचोली ८६ ब; अजितोदय. सर्ग ६, श्लोक २८-४८; ख्यात. भाग २, ५८६; जुनी. ६८; वीर भाग २ ८३०; राठौड़ां. १४-५; दानेश्वर १६७; अजितविलास. २१३ अ; दस्तूर १३८; फौजचन्द १४-५; वार्ता ३४ ब; रेऊ-भाग १ २६३।

ख्यात. में इस युद्ध की तिथि १ जून (ज्येष्ठ सुदि १४) स्वीकार की गई है। जुनी बही राठोड दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली, अजितविलास आदि कुछ बाद के ग्रन्थों में भी इसका समर्थन किया गया है। परन्तु वीरभाण तथा पंचोली दोनों समकालीन इतिहासकारों ने ११ मई का ही उल्लेख किया है और अखबारात से भी इसी तिथि की पुष्टि होती है। अतः इसी को मान्यता दी गई है।

५२. अजितोदय. सर्ग ६, श्लोक ४६-५७; सर्ग १०, श्लोक १; ख्यात. भाग २, ५६-६०; पंचोली ६० अ; जुनी. ६८; फौजचन्द. १४-६; रेऊ भाग १, २६३।

जुनी. (६८) में चारण का नाम जगमाल लिखा गया है। फौजचन्द (१६) के अनुसार राठौड़ों ने इस चारण द्वारा इन्द्रसिंह को जसवन्तसिंह के राज्य पर अधिकार करने तथा उसके कुशासन के सम्बन्ध में कठोर सन्देश भी भेजा था। परन्तु इन मतों की पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती; अतः ये अस्वीकार्य हैं।

के उत्तराधिकारी का ही पक्ष लेना चाहिए। फलस्वरूप उदयसिंह तो दुर्गादास के पास ही ठहर गया और प्रतापसिंह ने बृहस्पतिवार, १० जून (आषाढ़ बदि ८) को लौटकर इन्द्रसिंह को सब समाचार दिया। इससे इन्द्रसिंह इतना भयभीत हुआ कि उसने तुरन्त जोधपुर के लिए प्रस्थान कर दिया और दूसरे दिन वहाँ पहुँचा।[५३] यहाँ से उसने यह सारा समाचार बादशाह को भेजा और अनुरोध किया कि उसे सैनिक सहायता भेजी जाय। औरंगज़ेब ने शनिवार, १२ जून (२४ जमादिउल-अव्वल) को मुकर्रम खाँ को दो हजार सेना के साथ जोधपुर जाने का आदेश दिया। मुकर्रम खाँ शाही आज्ञानुसार २४ जून (६ जमादिउस्सानी) को सोजत से चलकर सोमवार, २८ जून (१० जमादिउस्सानी) को जोधपुर पहुँचा। इस बीच राठौड़ों ने जोधपुर घेर लिया था और युद्ध आरम्भ हो चुका था। परन्तु इन्द्रसिंह की सहायता के लिए शाही सेना को आते देखकर उन्होंने घेरा उठा लिया। इन्द्रसिंह तथा मुकर्रम खाँ ने एक साथ उनका पीछा किया। थोड़ी दूर जाकर इन्द्रसिंह जोधपुर लौट आया, परन्तु मुकर्रम खाँ उनका पीछा करता गया और जब राठौड़ गोड़वाड़ की ओर पहाड़ों तथा जंगलों की ओर भाग गए तब वह लौट आया।[५४]

अगस्त, सन् १६७९ ई० में कूंडाद्रह नामक स्थान पर तहव्वर खाँ तथा राठौड़ों के बीच फिर एक मुठभेड़ हुई जिसमें कुंभकर्ण का पुत्र ऊदावत रूपसिंह तथा ध-ा, नरा और केहर आदि पच्चीस राठौड़ मारे गए। इसी तरह भखरन में भी राठौड़ों ने विरोध किया और वहाँ का फ़ौजदार चन्द्रसेन जब उन्हें न दबा सका तो इन्द्रसिंह ने उधर जाकर शान्ति स्थापित की।[५५]

इस प्रकार मारवाड़ में निरन्तर छुट-पुट उपद्रव होते रहे। न तो इन्द्रसिंह ही राठौड़ों को दबा सका और न शाही सेनाएँ ही उनका दमन कर सकीं। उधर अकबर को मेवाड़ में सफलता नहीं मिल रही थी। फलतः औरंगज़ेब ने सोचा कि मारवाड़ के बिखरे उपद्रवों को शान्त करने के लिए सम्भव है अकबर अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सके। यह सोचकर उसने अकबर को मेवाड़ से हटाकर मारवाड़ में नियुक्त कर दिया।

---

५३. अजितोदय. सर्ग १०, श्लोक २-९; जुनी ६८; मूंदियाड़. १८१; पंचोली. ९० अ; फोजचन्द. १६-७; अजितविलास. २१३ अ; रेऊ भाग १, २६३।

ख्यात (भाग २, ६०) व आसोपा (२२९) ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है, इसके अनुसार इन्द्रसिंह ने २ जून (ज्येष्ठ सुदि १५) को खेतासर से कूच किया तथा ११ जून (आषाढ़ बदि १०) को जोधपुर पहुँचा। राठौडां (१२-३) के अनुसार उदयसिंह व प्रतापसिंह दोनों ने लौटकर इन्द्रसिंह को दुर्गादास का सन्देश दिया और पुनः दुर्गादास के पास लौट गये। परन्तु यह जगजीवन तथा पंचोली के विवरण को स्वीकार करना ही न्यायोचित है क्योंकि ये समकालीन इतिहासकार हैं।

५४. जयपुर अखबरात; औरंगजेब, वर्ष २६. भाग ४. ११८, १३७, २२६ व २५७; वाकया. ५१८; फौजचन्द. १८-९।

५५. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २३, भाग ४, १४३-४; राजरूपक. ४८-५०; ख्यात भाग १, ५८; जुनी-६८; टॉड. भाग २, ४७।

(ख) मेवाड़ में युद्ध (सन् १६७६-८० ई०)

नवम्बर सन् १६७६ ई० में औरंगज़ेब केससैन्य मेवाड़ की ओर आने के निश्चय का समाचार सुनकर राणा राजसिंह ने युद्धार्थ तैयारी आरम्भ कर दी और देबारी घाटी की सुरक्षा की व्यवस्था की तथा चित्तौड़ के किले की भी मरम्मत करवाई। साथ ही उसने अपने विश्वस्त सरदारों व जागीरदारों से इस समस्या पर परामर्श किया। चूँकि राणा के पास बादशाह का सामना करने के लिए पर्याप्त सैन्य-शक्ति नहीं थी, अतः यह निश्चय किया गया कि उदयपुर तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र खाली करके पहाड़ियों व घाटियों में छिपकर शाही सेना का सामना किया जाय। फलस्वरूप इन प्रदेशों के सभी निवासी पहाड़ियों एवं घाटियों में चले गए और मेवाड़ तथा मारवाड़ के राजपरिवारों को भोमट जिले में स्थित नेणवारा नामक गाँव में भेज दिया गया। देबारी, नाई चिरवा तथा झीलवाड़ा में सैनिक चौकियाँ स्थापित कर दी गईं।[५६]

इधर औरंगज़ेब रविवार, ७ दिसम्बर (१४ जि़ल्काद-मार्गशीर्ष सुदि १५) को मांडल पहुँचा। यहीं पर शाहज़ादा आज़म भी बंगाल से उसके सहायतार्थ आकर उससे मिला। बादशाह के निकट आने का समाचार सुनकर सीसोदियों ने देबारी घाटी शाही से फौजों का मुकाबला किया; परन्तु औरंगज़ेब ने रविवार, ४ जनवरी सन् १६८० ई० (१२ जिल्हिज) को वहाँ पहुँचकर उस पर अधिकार कर लिया। शाहज़ादा आज़म और खाँनेजहाँ बहादुर को उदयपुर की ओर भेजा गया और इनकी सहायता के लिए एकताज़ खाँ और रुहुल्ला खाँ की भी नियुक्ति की गई। साथ ही हसन अली खाँ को एक बड़ी सेना देकर पहाड़ियों व घाटियों में जाकर राणा और उसके सहयोगियों का पता लगाने की आज्ञा दी गई। परन्तु उसे अपने उद्देश्य में विशेष सफलता न मिल सकी और वह कठिन रास्तों और दर्रों में अपना मार्ग भूल गया। बहुत दिन तक उसका कुछ समाचार न पाने पर औरंगज़ेब ने मीर शिहाबुद्दीन को उसका पता लगाने के लिए भेजा। जब वह हसन अली का समाचार लेकर लौटा तब शुक्रवार, १६ जनवरी सन् १६८० ई० (२४ जिल्हिज १०६० हि.) को बादशाह ने एक बड़ी सेना हसनअली की सहायता के लिये भेजी। इस सेना के आ जाने से उसे बल मिला और उसने बुधवार, २१ जनवरी (२६ जिल्हिज) को राणा पर आक्रमण करके बहुत सा अनाज लूट लिया। शनिवार, २४ जनवरी (२ मुहर्रम १०६१ हि.) को औरंगजेब देबारी से चलकर उदयपुर झील देखने गया और वहां उसने किनारे पर बने हुये तीन मन्दिरों को तोड़ने का आदेश दिया। यहीं पर बृहस्पतिवार, २६ फरवरी (७ मुहर्रम) को हसनअली खां औरंगजेब के पास लौट कर आया और उसने बताया कि शाही अधिकारियों ने उदयपुर में लगभग एक सौ बहत्तर मन्दिर

---

५६. वीर भाग २, ४६४-५; खफी खाँ भाग २,२६२ फुतूहात ७८ ब ७६ अ, मनूची भाग २,२४०; टॉड भाग १,३०४; सरकार भाग ३.३३६; मेवाड़ १७०; ओझा भाग ४. खंड २, ४६०-१. रेऊ भाग १, २६२।

नष्ट कर डाले है। यहाँ से चलकर बादशाह रविवार, २२ फरवरी (१ सफर) को चित्तौड़ गया और वहां उसकी आज्ञानुसार लगभग तिरेसठ मन्दिर तोड़े गये। इस प्रकार अनेक मन्दिर तुड़वाकर तथा नगरों व गाँवों का विनाश करके औरंगजेब ने अजमेर वापस जाने का विचार किया। बृहस्पतिवार, ४ मार्च (१२ सफर) को लगभग बारह हजार की सुसज्जित सेना देकर शाहजादा अकबर को मेवाड़ का सेनापति बनाया गया और इस अवसर पर उसे एक खास खिलअत मोतियों का हार, एक घोड़ा और एक हाथी व अन्य वस्तुएं दी गई। तदुपरान्त औरंगजेब ६ मार्च (१४ सफर) को चित्तौड़ से प्रस्थान कर सोमवार, २२ मार्च (१ रबीउलअव्वल) को अजमेर पहुंच गया।[५७]

इधर औरंगजेब के मेवाड़ की सीमा पार करते ही राजपूतों ने मेवाड़ में पुनः विरोध आरम्भ कर दिया। वे यत्र-तत्र शाही सैनिकों पर आक्रमण करने लगे और मार्ग में आती हुई रसद को लूटने लगे। फलतः शाही चौकियाँ पूर्णतया अरक्षित हो गईं। झाला प्रतापसिंह ने चीखे की घाटी के निकट अकबर और तहव्वुर खाँ पर छापा मारा, कुंवर उदयभान तथा चौहान अमरसिंह के उदयपुर के शाही थानों को लूटा और ठाकुर गोपीनाथ तथा सोलंकी विक्रमादित्य ने इस्लाम खाँ रूमी को देबारी की घाटी में घुसने नहीं दिया। राणा स्वयं भी पहाड़ों से उतर कर बदनोर जिले में घूमने लगा था। गोपालसिंह ने जफरनगर[५८] को घेरा और कुछ राजपूतों ने मुहम्मदी बेग के शिविर में धोखे से घुसकर हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया। दयाल नामक एक सरदार ने भीलवाड़ा प्रदेश में थाने सुदृढ़ कर लिए। इस प्रकार चारों ओर अव्यवस्था बढ़ने लगी।

अकबर ने स्थिति सम्भालने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उसने राजपूतों के ठहरने के स्थानों का तथा उनकी शक्ति का पता लगाने के लिए जासूसों को नियुक्त किया और विभिन्न शाही चौकियों पर योग्य सरदारों को भेजा। परन्तु उसके सभी प्रयत्न असफल रहे और स्थिति निरन्तर बिगड़ती गई। राजपूत दिन प्रतिदिन

---

५७. मुस्ताद खाँ ११४-८; फुतूहात ७९ अ व ८० अ; वीर भाग २,४६४-७; ख्यात भाग १ ५६-७; बांकीदास ७३; सरकार भाग ३, ३३९-४१ व ३४२; मेवाड़ १७१-२, रेऊ भाग १, २६२-३; ओझा भाग २,५५८।

फुतूहात (७९ अ) में लिखा है कि शाहजादा आजम ने पुर नामक स्थान पर बादशाह से भेंट की थी और पुर से ही हसनअली खाँ को भी आगे भेजा गया था। शाही सेना की यात्रा व नियुक्तियों के सम्बन्ध में राजकीय इतिहासकार मुस्ताद खाँ को ही प्रामाणिक मानना उचित प्रतीत होता है।

रेऊ (भाग १,२६२) ने शाहजादा आजम का १६ दिसम्बर को बादशाह से मिलना स्वीकार किया है, परन्तु मुस्ताद खाँ ने इस घटना की किसी निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं किया है।

५८. सर जदुनाथ सरकार ने अनुमान लगाया है कि यह उल्लेख रणथम्भोर के लिये किया गया है। परन्तु वे स्वयं भी इस विषय में पूर्ण आश्वस्त नहीं है। (औरंगजेब भाग ३, ३४५)

शक्तिशाली होते जा रहे थे और उनके उपद्रव बढ़ते जा रहे थे। बादशाह बार-बार उन्हें पूर्ण रूप से दबाने की आज्ञा देता था। वह अकबर को पत्रों द्वारा आदेश देता कि राजपूतों की आबादी व खेत नष्ट कर दिए जाएं ताकि वे उपद्रव करने का साहस न करें। परन्तु शाही आज्ञाओं को पूरा करने में अकबर सफल न हो सका। जून के प्रारम्भ (जमादिउलअव्वल के मध्य) में मालवा से शाही सेना के लिए दस हजार गायें तथा रसद नीमच के मार्ग से आ रहीं थी। राजपूतों ने इस कारवाँ पर भीषण आक्रमण किया और बैलगाड़ियों सहित समस्त रसद लूट ली। जुलाई (जमादिउस्सानी) के महिने में कुंवर जयसिंह ने रात्रि के समय अकबर पर आक्रमण करके शाही खेमा को लूट लिया। इन दोनों घटनाओं से शाही सेना को काफी क्षति उठानी पड़ी।[५९]

अकबर को मेवाड़ में सफल न होता देखकर औरंगजेब ने उसे मेवाड़ से हटाकर मारवाड़ में नियुक्त कर दिया और शहजादा आजम को उसके स्थान पर मेवाड़ भेजा गया। बादशाह ने अकबर को लिखा कि वह आजम से भेंट करके तब मेवाड़ से प्रस्थान करे और हुडी और मेड़ता के रास्ते से सोजत पहुँच कर उसे अपना केन्द्र बनाए। अकबर के साथ तहव्वर खाँ को भी नियुक्त किया गया।

शाहजादा आजम शुक्रवार, २५ जून (७ जमादिउस्सानी) को चित्तौड़ पहुँचा। अकबर ने दूसरे दिन यात्रा आरम्भ की और खंकराल नामक गाँव में आजम से भेंट करके तहव्वर खाँ को अपने हरावल में भेज दिया और स्वयं भी मारवाड़ की ओर रवाना हो गया।[६०]

(ग) शाहजादा अकबर पुनः मारवाड़ में (सन् १६८० ई.)

मेवाड़ से प्रस्थान करके अकबर शुक्रवार, २ जुलाई (१४ जमादिउस्सानी) को हुडी नामक गाँव में पहुँचा और तासूता बयाना और रयान नामक स्थानों पर रुकता हुआ रविवार, १८ जुलाई (१ रजब) को सोजत पहुँच गया।

---

५९. आदाब पत्र, ६४०, ६५२, ६५५, ६६६, ६६७, ६७२, ६८७, ६६४, ७१८, ७१६ व ७२१; वीर-भाग २,४७०-२; सरकार भाग ३,३४४-५; मेवाड़ १७३।

६०. आदाब ६३६, ६४७, ६५१, ६५३, ६५६; मुस्ताद खाँ ११६; मआसिर ४६५, वीर भाग २,४३८; सरकार भाग ३, ३४६; मेवाड़ १७४; रेऊ भाग १,२६४।

खफी खाँ (भाग २,२६३-४) ने मेवाड़ आक्रमण का बिल्कुल भिन्न विवरण दिया है। उसके अनुसार बादशाह ने मुअज्जम को अकबर के सहायतार्थ अनासागर झील पर उतरने की आज्ञा दी। और चारों ओर जन-धन का विनाश करने को कहा। इसी प्रकार आजम को पहाड़ों और दर्रों में जाकर राणा और राठौड़ों के राज्य में कत्ल और लूटमार करने का आदेश दिया। बीस-पच्चीस हजार राठौड़ राणा की सहायता में आये। दोनों पक्षों में स्थान-स्थान पर युद्ध हुए। राजपूतों ने खजाने और रसद को लूटा तथा दर्रों में शाही सेना को हराया। परन्तु अन्त में शाही सेना विजयी हुई। और तहव्वुर खाँ आदि उन्हें दबाने व लूटमार करने में पूर्ण सफल रहे। मुहम्मद अमीन खाँ ने शाही आज्ञानुसार राजपूताना और गुजरात की सीमा पर राजपूतों का विनाश किया। परन्तु समकालीन ग्रन्थ आदाब-आलमगीरी के विवरण से यह बिल्कुल स्पष्ट विदित होता है कि अकबर मारवाड़ में सफल नहीं हुआ था।

इधर राजपूतों का विरोध निरन्तर हो रहा था। मार्ग में ही मंगलवार, २६ जून (१२ जमादिउस्सानी) को रात्रि के समय राजपूतों ने सादात खाँ की सेना पर आक्रमण कर दिया। घटनास्थल पर अकबर के पहुँच जाने से वे लोग भाग गए। शाही सेना ने उनका पीछा किया, परन्तु उनका कुछ पता न चल सका। झाना के पड़ाव पर करावल खाँ ने अकबर को सूचना दी कि राजपूत केवल पाँच कोस की दूरी पर हैं। तब अकबर ने मुहम्मद शुजा बख्शी और दौलतमन्द को सेना देकर उधर भेजा। अगले दिन प्रातःकाल इन लोगों ने राजपूतों पर आक्रमण किया जिसमें बहुत से राजपूत मारे गए व कई पकड़े भी गए।[६१]

बादशाह की योजना यह थी कि अकबर सोजत को अपना केन्द्र बनाए, वहाँ से खैरवा पर रुकते हुए गोड़वाड़ जिले के प्रमुख नगर नाडोल पर अधिकार कर ले। यहां से बादशाह कुली खाँ को नारलाई नगर से होकर मेवाड़ के पूर्वी भाग की ओर भेज दे, फिर देसूरी मार्ग पार करके कुम्भलमेर के प्रदेश पर अधिकार करने का प्रयत्न करे, जहाँ राणा व राठौड़ों ने आश्रय ले रखा था।[६२]

इसी योजना के अनुसार अकबर ने तहव्वर खाँ को सोजत से आगे भेजा और उसे खैरवा व नाडोल होते हुए देसूरी जाने की आज्ञा दी, और राजपूतों को धन-जन की हानि पहुँचाने, उनके मन्दिरों विशेष रूप से सोमेसर दर्रे पर स्थित विशाल मन्दिर को तोड़ने के लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए। राजपूतों में फूट डालकर उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करने का भी उसे आदेश मिला।

अकबर ने सोजत और जोधपुर की पहाड़ियों में दिलेर खाँ तथा हुसैन अली खाँ की नियुक्ति की। राजा इन्द्रसिंह को उपद्रवकारियों का दमन करने के लिए भरवरन व फलोधी की ओर भेजा और राठौड़ सुजानसिंह को सोजत से खैरवा तक के थानों पर अधिकार बनाए रखने का आदेश दिया।[६३]

परन्तु अकबर को मारवाड़ में भी सफलता न मिल सकी। उसका प्रधान सेनापति तहव्वर खाँ पूर्णतया असफल रहा और जुलाई से दिसम्बर तक का समय उसने धीरे-धीरे सोजत से भीलवाड़ा तक पहुँचने में ही व्यतीत कर दिया। अकबर की आज्ञा से सोजत से चलकर वह अगस्त के आरम्भ में खैरवा पहुँचा और लगभग एक महीने (रजब से शाबान १८ जुलाई–१६ अगस्त) तक वहीं रुका रहा। अकबर के बार-बार लिखने पर भी उसने कोई उत्तर न दिया। अकबर ने उसे तरह-तरह से प्रोत्साहित करके आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया, परन्तु तहव्वर खाँ पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। तब अकबर ने खैरवा जाकर उसे आगे भेजने का निश्चय किया। सुरक्षा के लिए शाहजादे ने इन्द्रसिंह को जोधपुर से नाडोल तक

---

६१. आदाब पत्र, ६४३, ६४५, ६४८, ६५०, ७२५, ७२७ व ७२८; सरकार भाग, ३,३४७; रेऊ भाग १,२६४।

६२. वाकया ५२०; सरकार भाग ३,३४८; ओझा भाग ४ खंड २ ४६२; मेवाड़ १७४।

६३. आदाब पत्र, ६४३, ६४६, ७३२, ७४४, ७५५ व ७५७।

राठौड़ सुजानसिंह को सोजत से नाडोल तक और राठौड़ संग्रामसिंह को आबू से नाडोल तक के थानों को सुदृढ़ करने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् दौलतमन्द करावल बेगी को यह आदेश मिला कि वह अकबर की सैनिक यात्रा के लिए पड़ाव निश्चित करे। वह आज्ञानुसार अपना कार्य पूरा करके मंगलवार, ७ सितम्बर (२२ शाबान) को सोजत लौटा। इसी बीच तहव्वुर खाँ का एक पत्र उसके पास पहुँचा, जिसमें उसने सैनिक सहायता की माँग की थी और यह भी लिखा था कि वह सितम्बर के मध्य (शाबान के अन्त) तक खैरवा में रुकेगा और सैनिक तैयारी पूरी करने के पश्चात् सितम्बर के अन्त (रमजान के आरम्भ) में नाडोल की ओर प्रस्थान करेगा यह समाचार पाकर अकबर ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी।[६४]

मारवाड़ में सैनिक असफलता से औरंगजेब विशेष चिन्तित था। इस प्रदेश में शाही सेना का एक बड़ा भाग नियुक्त था, परन्तु फिर भी शाही सैनिक योजनानुसार आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। अतः बादशाह ने अकबर को स्वयं आगे जाने की आज्ञा दी। तदनुसार वह मंगलवार, २१ सितम्बर (७ रमजान) को सोजत से प्रस्थान करके रविवार, २६ सितम्बर (१२ रमजान) को खैरवा पहुँचा और वहाँ उसने तहव्वुर खाँ के साथ विचार विमर्श किया अकबर की योजना तहव्वर खाँ को हरावल में रखकर स्वयं नाडोल की ओर जाने की थी। परन्तु तहव्वर खाँ ने यह प्रस्ताव रक्खा कि वह शाहजादे की सेना की सहायता से चारों ओर घूम-घूम कर राजपूतों का दमन करेगा और रात्रि होने पर लश्कर में लौट आएगा। अकबर ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।[६५]

दूसरे दिन सोमवार, २७ सितम्बर (१३ रमजान आश्विन सुदि १४) को तहव्वुर खाँ ने निकटवर्ती दुलाई नामक एक गाँव को लूटने का निश्चय किया और करावल खाँ को अपने हरावल का नेतृत्व सौंपकर उसे आगे भेजा। करावल खाँ एक दो कोस ही आगे बढ़ा था कि चारों ओर राजपूत सैनिकों को सतर्क देखकर रुक गया और उसने तहव्वर खाँ को यह संदेश भेजा कि राजपूत नाडोल की पहाड़ी सीमा पर तैयार खड़े हैं। इसी समय कुछ राजपूतों ने करावल खाँ की सेना के कुछ तीरन्दाज तथा जानवर पकड़ लिए, जिससे वह अत्यन्त भयभीत हो गया और बावजूद इसके कि उसे तहव्वुर खाँ के शीघ्र ही उस ओर आने का समाचार मिल गया था, वह वापस भाग गया। तहव्वुर खाँ ने उसे समझा बुझाकर पुनः आगे भेजा और वह दुलाई गाँव के निकट पहुँचा ही था कि राजपूतों ने राणा राजसिंह के पुत्र जयसिंह के नेतृत्व में उस पर आक्रमण कर दिया। करावल खाँ ने अपने चार सौ सैनिकों के साथ दृढ़तापूर्वक उनका सामना किया। पीछे से तहव्वुर खाँ भी आ पहुँचा और घमासान युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों के बहुत से व्यक्ति मारे गए और

---

६४. आदाब पत्र, ६४१, ६४६, ६४६, ६५८, ६६१, ६६४, ७२६, ७३३, ७४० व ७४२ सरकार भाग ३,३४८।

६५. आदाब-पत्र, ६६२, ६६३, ६७०, ६६६, ७३५, रेऊ भाग १,२६५।

कराबल खाँ भी बुरी तरह घायल हुआ। राजपूतों के ऊदावत सूरजमल, राठौड़ इन्द्रभाण, राठौड़ रूपसिंह, राठौड़ अजबसिंह, राठौड़ कान्ह, राठौड़ रामसिंह आदि प्रमुख सरदार मारे गए।[६६]

जब तहव्वुर खाँ ने लौटकर अकबर को सब समाचार सुनाया तो उसने स्वय नाडोल जाने का निश्चय किया। उसका विचार था कि नाडोल पहुँचकर वह तहव्वर खाँ को कम्भलमेर की ओर भेज देगा। इस विचार से वह खैरवा से चलकर बृहस्पतिवार, ३० सितम्बर (१६ रमजान) को नाडोल जा पहुँचा।[६७]

अकबर के अन्य अधिकारियों को भी विशेष सफलता नहीं मिली। राणा राजसिंह की आज्ञा से रावत रत्नसिंह ने सोजत व जोधपुर की पहाड़ियों में आक्रमण किया, जहाँ दिलेर खाँ ने थोड़ी देर तक उसका सामना किया और फिर रणक्षेत्र छोड़कर भाग खड़ा हुआ। नवम्बर, सन् १६८० ई. (मार्गशीर्ष, संवत् १७३७) में राजपूतों ने मेड़ता में लूट-मार की और व्यापारियों से मुहरें तथा पच्चीस हजार रुपया वसूल किया। उन्होंने साँभर परगने के भी तीन गाँव लूट लिए और डीडवाना पर आक्रमण करके शहर से इक्यावन हजार रुपया तथा थानेदार दीनदार खाँ से भी बहुत सा रुपया वसूल किया और चीनी की बोरियाँ लूट लीं। उन्होंने फलोदी से "पेशकेश" वसूल किया और जालोर सिवाना व नागोर में भी लूट-पाट करते रहे।[६८]

---

६६. फतूहात ७७ ब ७८ ब; आदाब-पत्र, ६७० ब ७००; वाकया, ५७५-७८; अजितोदय सर्ग १० श्लोक ३४-५०: राजरुपक पृ. ६४-९०, ख्यात भाग २,६०; जुनी. ६८; मूंदियाड़. १८२; अजितविलास. २१३ ब; दानेश्वर. १९७; दस्तूर. १३९; राठोड़ा. १३-४; फौजचन्द. १९-२०; टॉड़ भाग २, ४८, रेऊ भाग १,२६५; सरकार-भाग ३,३४८-९।

दानेश्वर (१९७) में इस युद्ध की तिथि शनिवार, ११ सितम्बर (आश्विन बुदि १४) लिखी गई है। परन्तु सम्भवतः यह लिपिक की भूल है। बदि के स्थान पर सुदि होने से निश्चित तिथि आ जाती है। रामकर्ण आसोपा (मूल १९७) ने स्वीकार किया है कि यह युद्ध बुधवार, ५ सितम्बर (आश्विन बदि ८) को हुआ था, परन्तु इसकी पुष्टि किसी आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

जोधपुर राज्य से सम्बन्धित ग्रन्थों एवं ख्यातों (राजरुपक, अजितोदय, जोधपुर राज्य की ख्यात, मूंदियाड़ की ख्यात, जुनी बही आदि) में राजकुमार भीम को इस युद्ध में नेतृत्व करने का श्रेय नहीं दिया गया है। किसी-किसी ग्रन्थ में तो उसकी उपस्थिति का भी उल्लेख नहीं है और किसी में उसके भाग खड़े होने का वर्णन है। परन्तु आदाब,-ए-आलमगीरी में स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसी के नेतृत्व में यह सिद्ध हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि जोधपुर के ग्रन्थकारों ने दुर्गादास और अपने अन्य सरदारों को महत्व देने के लिये ऐसा वर्णन किया है।

६७. आदाब-पत्र ६७०।

६८. जयपुर अखबारात वर्ष २४, भाग १, १३६, १३८-९, १७९-८०; वाकया. ५९५, ६०२, ६०५-६; वीर भाग २,६४५; राजरुपक ६२, अजितोदय-सर्ग १०, श्लोक ५१-३ ख्यात भाग २,६१; जुनी ६८; मूंदियाड़ १८२; अजितविलास २१४ अ फौसचन्द २१; राठोड़ां १४; दस्तूर १३८-१४०।

इन उपद्रवों का समाचार सुनकर अकबर ने विरोधियों का दमन करने के लिए राजा इन्द्रसिंह को नागोर तथा मोहतसिम खाँ को ससैन्य मेड़ता की ओर जाने की आज्ञा दी। ६ नवम्बर (२६ शव्वाल) को हामिद खाँ को पुनः कुछ और सैनिकों के साथ मेड़ता भेजा गया। राठौड़ सुजानसिंह तथा राठौड़ संग्रामसिंह को सोजत व जैतारण में और मुगल खाँ को साँभर व डीडवाना में जाकर शान्ति स्थापित करने का आदेश दिया गया। जालोर में नियुक्त रतलाम के शासक रामसिंह को भी सदैव सजग रहने का निर्देश भेजा गया।[६६]

इधर तहव्वुर खाँ देसूरी के दर्रे पर पुनः रुक गया था। अतः बृहस्पतिवार, १८ नवम्बर (६ जिल्काद) को अकबर ने नाडोल से प्रस्थान किया ताकि देसूरी पहुँचकर तहव्वुर खाँ को झीलवाड़ा भेज सके। मार्ग में ही नन्दलाई नामक स्थान पर रुहुल्ला खाँ आकर उससे मिला, जिसे औरंगजेब ने तहव्वुर खाँ के पास भेजा था। रुहुल्ला खाँ के आने पर अकबर ने अपनी यात्रा रोक दी और शाही आज्ञानुसार उसे आगे भेजा और साथ ही आदेश दिया कि वह तहव्वुर खाँ को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करे। परन्तु तहव्वुर खाँ तब भी आगे नहीं बढ़ा। इस पर अकबर पुनः आगे बढ़ा और बृहस्पतिवार, २५ नवम्बर (१३ जिल्काद) से पूर्व ही देसूरी जा पहुँचा। अकबर ने अपने प्रदेशों की सुरक्षा के लिए भी समुचित प्रबन्ध किया। उसने राठौड़ संग्रामसिंह को देसूरी से नाडोल तक, दीपचन्द शेखावत को नाडोल से जवालिया नामक गाँव तक, तथा राठौड़ सुजानसिंह को जवालिया से खैरवा तक के थानों की सुरक्षा का भार सौंपा।[७०]

देसूरी पहुँच कर जब अकबर ने तहव्वुर खाँ को झीलवाड़ा की ओर बढ़ने का आदेश दिया तो उसने मार्ग की तंगी तथा शत्रु सेना की अधिकता आदि कठिनाइयाँ सामने रखीं। विचार विमर्श के बाद छः हजार सवार तहव्वुर खाँ को दिए गए तब वह झीलवाड़ा में दाखिल हुआ। यहां राजपूतों तथा शाही सेना के बीच एक और भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों को काफी हानि उठानी पड़ी। अब तहव्वुर खाँ ने पुनः चुप्पी साध ली। अकबर ने उसे बार-बार पत्र लिखे परन्तु उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। औरंगजेब भी तहव्वुर खाँ के इस रवैये से चिन्तित था और उसने अकबर को आदेश दिया कि वह तहव्वुर खाँ को समझाने के लिए रुहुल्ला खाँ को आगे भेज दे। इसके साथ ही उसने मुहम्मद नईम, राठौड़ रामसिंह तथा राठौड़ सुजानसिंह को सहायता के लिए अकबर के पास जाने का आदेश दिया। अकबर ने शाही आज्ञानुसार मंगलवार, २१ दिसम्बर (६ जिल्हिज) को रुहुल्ला खाँ को तहव्वुर-

---

६६. आदाब. पत्र ६७५, ७२४, ७२७; मुस्ताद खाँ. १२१; वाकया. ६१२; रेऊ. भाग १, २६५-६।

७०. आदाब. पत्र. ६६०, ७००, ७३०; मुस्ताद खाँ १२१; सरकार. भाग ३, ३५०-१; रेऊ. भाग १, २६५-६; रतलाम. २२६।

खाँ के पास भेज दिया और स्वयं वहीं रुक कर सैनिक सहायता के लिए प्रतीक्षा करने लगा।[७१]

(घ) अकबर का विद्रोह सन् (१६८०-१ ई.)

मारवाड़ और मेवाड़ में राजपूतों तथा शाही सेना के बीच संघर्ष आरम्भ हुए कई महीने हो चुके थे परन्तु अपनी समस्त शक्ति लगाकर भी राजपूत मुगल सेना को मारवाड़ तथा मेवाड़ से हटाने में सफल न हो सके थे। इन युद्धों में राजपूतों को धन-जन की काफी क्षति उठानी पड़ी थी और आर्थिक संकट का सामना भी उन्हें करना पड़ रहा था। शाही सैनिकों की लूटमार तथा राजपूतों के निरन्तर युद्ध में लगे रहने के कारण दोनों राज्यों की खेती प्रायः नष्ट हो गई थी। फलतः खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था और राजपूतों के जीवन की समस्या काफी गम्भीर होती जा रही थी। साथ ही अब उन्हें यह भी स्पष्ट हो गया था कि औरंगजेब ने उनका पूरी तरह से दमन करने का निश्चय कर लिया है और वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर मेवाड़ तथा जोधपुर पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। औरंगजेब को परास्त करने का दूसरा कोई उपाय न देखकर राणा व अन्य प्रमुख राठौड़ सरदारों ने उसके पुत्र मुअज्जम को अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह के लिए उत्तेजित करने का निश्चय किया।[७२]

शाहजादा मुअज्जम को बादशाह ने मई, सन् १६८० ई. में अपनी सहायता के लिए दक्षिण से बुलाया था। दक्षिण में पिछली दो सूबेदारियों (१६६७-१६७२ई. व (१६७७-१६८० ई.) में शाहजादा असफल रहा। दक्षिण में उसके साथ दिलेर खाँ भी नियुक्त था। मुगल दरबार में उसका बढ़ता हुआ प्रभाव मुअज्जम के लिए असहनीय था और इसी कारण सम्भवतः दिलेर खाँ भी उससे शंकित रहता था। पारस्परिक वैमनस्य के कारण दोनों ही बादशाह को एक दूसरे के विरुद्ध लिखा करते थे। इसी बीच सन् १६७० ई. में जब शाहजादा एक बड़ी सेना लेकर दिलेर खाँ का पीछा करता हुआ ताप्ती नदी के निकट तक आ पहुँचा तो औरंगजेब उसकी शक्ति देख कर चिन्तित हो उठा। उसे आशंका हुई कि महाराजा जसवन्तसिंह मुअज्जम को भड़का रहा है और उसकी विद्रोही प्रवृत्ति को उकसा रहा है, अतः उसने शाहजादे को औरंगाबाद लौटने की आज्ञा दी। मुअज्जम ने विद्रोह की बात सोची भी नहीं थी। उसने तुरन्त शाही आज्ञा का पालन किया, परन्तु औरंगजेब इस समय से सदैव उसके प्रति सशंक बना रहा। सितम्बर, सन् १६७७ ई. में शाहजादे को पुनः दक्षिण में नियुक्त किया गया, परन्तु इस बार दिलेर खाँ और मुअज्जम में पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। शाही सेना के दक्षिण में असफल होने का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण था। इसी बीच सन् १६७२ ई. में औरंगजेब ने अपने बड़े पुत्र

---

७१. आदाब पत्र ६५७, ६६०, ६७४, ६७५, ७०० व ७३०; मुस्ताद खाँ १२१, रेऊ. भाग १ २६६।

७२. मआसिर ४६५-६।

मुहम्मद सुल्तान को बन्दीगृह से मुक्त करके उसे महत्व देना प्रारम्भ कर दिया। सम्भवतः उसका विचार मुअज्जम की बढ़ती शक्ति पर प्रतिरोध लगाने का था। इस प्रकार सन् १६८० ई. में बादशाह तथा मुअज्जम के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे।[७३] इसी कारण राजपूतों को आशा थी कि वे मुअज्जम को पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार कर सकेंगे। राव केसरीसिंह चौहान, रावत रत्नसिंह, चूडावत कृष्णावत, राठौड़ दुर्गादास तथा राठौड़ सोनग शाहजादा मुअज्जम से देबारी के बाहर उदयसागर के किनारे बार-बार मिले। आरम्भ में उन्होंने उससे मैत्री स्थापित करने के उद्देश्य से साधारण रूप से बातचीत आरम्भ की और यह अनुरोध किया कि वह बादशाह से प्रार्थना करके उनके अपराधा क्षमा करा दे। बाद में धीरे-धीरे उन्होंने अपने वास्तविक मन्तव्य की ओर बढ़ना शुरु किया और मुअज्जम को विद्रोह करने के लिए उत्तेजित करने लगे। परन्तु शाहजादा सम्भवतः जानता था कि वह औरंगजेब के विरुद्ध सफल न हो सकेगा, अतः उसने उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। सम्भवतः यह समाचार अजमेर भी पहुँच गया और तब उसकी माता नवाब बाई ने उसे यह आदेश दिया कि वह राजपूतों को अपने पास न आने दे और बादशाह से उनकी सन्धि कराने के लिए मध्यस्थता भी न करे।[७४]

मुअज्जम से निराश होकर राजपूतों ने शाहजादा अकबर की ओर दृष्टि फेरी। अकबर इन दिनों मारवाड़ में शाही सेनाओं का संचालन कर रहा था। तहव्वर खाँ उसकी सेना के हरावल का अध्यक्ष था। राजपूतों ने उसी के माध्यम से बातचीत करना आरम्भ किया। निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह वार्ता कब आरम्भ हुई। तहव्वर खाँ को औरंगजेब तथा अकबर बार-बार यह आदेश भेजते रहते थे कि वह राजपूतों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करे। अतः मारवाड़ पहुँचते ही उसने इस दिशा में प्रयास करना आरम्भ कर दिया था। फलस्वरूप दुर्गादास व राव केसरी सिंह तथा अन्य राजपूत सरदार तहव्वर खाँ तथा उसके सहयोगी शुजात खाँ से यदा-कदा मिलते रहते थे और धीरे-धीरे इनमें घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी।[७५] तहव्वर खाँ तथा शुजात खाँ ने ही राजपूत सरदारों को अकबर से मिलाया। इन लोगों ने धीरे-धीरे नवयुवक शाहजादे की महत्त्वाकाँक्षाओं को जगाने का प्रयास किया और समझाया कि उसका पिता राजपूतों को अप्रसन्न करके मुगल साम्राज्य

---

७३. बहादुरशाह. २२–४१।

७४. वीर. भाग २, ६४६; खफी खाँ. भाग २, २६४; मआसिर ४६६; मेवाड़. १७६; रेऊ भाग १, २६६।

मआसिर-उल-उमरा में लिखा है जिस समय राजपूत सरदारों ने मुअज्जम से सम्पर्क स्थापित किया था, वह अनासागर तालाब पर ठहरा था। परन्तु यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि अनासागर अजमेर से बहुत ही निकट है। औरंगजेब के इतने निकट जाकर राजपूतों ने ऐसा प्रयत्न करने का दुस्साहस किया हो, यह सम्भव नही जान पड़ता।

७५. आदाब-पत्र, ६४६, ६६२, ६६४, ७२३ व ७४०; फुतूहात ८० ब।

को निर्बल कर रहा है, अतः उचित यही है कि उसे हटाकर अकबर स्वयं बादशाह बन जाए और अपने पूर्वजों की नीति का पालन करे। इसके साथ ही राजपूतों ने अवसर की उपयुक्तता की ओर भी अकबर का ध्यान आकर्षित किया और कहा कि इस समय बादशाह के अधिकांश सेनापति मारवाड़ तथा मेवाड़ में राजपूतों को दबाने के लिए नियुक्त हैं और उसके अन्य दो पुत्र मुअज्जम व आजम मेवाड़ में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, अतः बादशाह की सहायता के लिए अन्य लोगों के आने से पूर्व ही वह अजमेर पहुँचकर औरंगजेब को परास्त कर सकता है। राजपूतों ने उसे धन-जन से सहायता देने का पूर्ण आश्वासन दिया और उसे स्वर्ण अवसर को हाथ से न खोने की सीख दी। धीरे-धीरे अकबर राजपूतों की बातों से प्रभावित होने लगा और विद्रोह के लिए लगभग सभी तैयारियाँ आरम्भ हो गईं।[७६] अकस्मात् शुक्रवार, २२ अक्तूबर १६८० ई. (८ शव्वाल १०९१ हि.= कार्तिक सुदि १० संवत् १७३७) को राणा राजसिंह की मृत्यु हो गई और जयसिंह को उसके स्थान पर राणा घोषित किया गया। फलतः सारी योजना अगले कुछ महीनों के लिए स्थगित हो गई।[७७]

शाही सेनाएँ आगे बढ़ती जा रही थीं। नाडोल तथा भीलवाड़ा में राजपूत सेनाओं ने उनको रोकने की चेष्टा की, जिसमें दोनों पक्षों को बहुत हानि उठानी पड़ी। राजपूतों के प्रयत्नों के कारण शाही सैनिकों को भी रसद न पहुँच पाती थी और अन्नाभाव के कारण लगभग चार सौ मुगल सैनिक प्रतिदिन शिविर छोड़ रहे थे।[७८] उधर तहव्वर खाँ भीलवाड़ा पार करके कुम्भलमेर के पास पहुँच गया था जिससे राजपूत चिन्तित हो उठे थे। फलतः राणा जयसिंह तथा अकबर के बीच पुनः बातचीत आरम्भ हो गई। शुक्रवार, ३१ दिसम्बर (१९ जिल्हिज) को जब राव केसरीसिंह अकबर से देसूरी में मिला, तो अन्तिम रूप से सब बातें निश्चित हो गईं, जिसके अनुसार अकबर ने राणा को कुछ परगने तथा अजीतसिंह को जोधपुर का

---

७६. आदाब-पत्र ७५६; फतूहात ८१ अ; मनूची भाग २, २४३; सरकार भाग ३, ३५५; मेवाड़ १७६; ओझा भाग ४ खण्ड २, ४९३।

वाकया (५४१, ५४४, ५५४, ५५७) में लिखा है कि राठौड़ दुर्गादास तथा राठौड़ सोनग ने दीनद खाँ कायमखानी तथा हाजी फतहअली नामक व्यक्तियों के माध्यम से तहव्वुर खाँ से बातचीत आरम्भ की। राजपूतों का दूत रतन भाटी रजब (१८ जुलाई-१६ अगस्त) के महीने से ही तहव्वुर खाँ के शिविर में जाने लगा था। रतन भाटी के द्वारा दुर्गादास ने यह संदेश भेजा था कि राजकुमार पूर्णतया सुरक्षित है और उसे तभी बाहर लाया जायेगा जब हमें यह विश्वास हो जायेगा कि हमें धोखा नहीं दिया जायेगा। साथ ही यह भी कहलाया कि यदि राजकुमार को मनसब, व जागीर में गोड़वाड़ का प्रदेश दे दिया जाय तो हम युद्ध बन्द कर देंगे। सम्भवतः तहव्वुर खाँ के शिविर में होने वाली इस प्रकार की बातों से ही खाँ तथा राजपूतों में घनिष्ठता बढ़ी जिसके फलस्वरूप बाद में अकबर के विद्रोह का विस्फोट हुआ।

७७. आदाब-पत्र ६७३, ७००; वीर भाग २, ४७३ ख्यात भाग २, ६१, जुनी ६८; दानेश्वर १९५; दस्तूर १३९; ओझा भाग ४, खंड २, ४९२-३; मेवाड़ १७५; सरकार भाग ३, ३५५।

७८. राजप्रशास्ति, अध्याय २३, श्लोक ३०-१ जिसका उल्लेख मेवाड़ १७६-७ में है।

राज्य देना स्वीकार किया तथा राजपूतों को आश्वासन दिया कि वह उन्हें अपने पूर्वजों की भाँति यथोचित आदर व सम्मान देगा। दूसरे दिन अकबर को स्वतन्त्र घोषित करने का निश्चय किया गया और उसकी सहायता के लिए राजपूतों ने अगले ही दिन राणा के भाई अथवा लड़के की अध्यक्षता में एक विशाल सेना भेजना स्वीकार किया और रविवार, २ जनवरी (२१ जिल्हिज) को बादशाह के विरुद्ध प्रस्थान करने का निश्चय किया गया।[७९]

कुछ फारसी इतिहासकारों का मत है कि अकबर कम आयु का अनुभवहीन शाहजादा था, अतः वह राजपूतों के बहकावे में आकर विद्रोही हो गया था।[८०] परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अकबर के विद्रोह करने के कई कारण थे। सर्वप्रथम शाहजादा न तो मेवाड़ में राजपूतों को दबाने में समर्थ रहा और न मारवाड़ में उसे विशेष सफलता मिली थी। इस कारण बादशाह उसे बार-बार टोकता था और आगे बढ़ने के लिए आदेश देता था। फलतः अकबर मन ही मन अपने पिता से असन्तुष्ट था। इसके अतिरिक्त परिस्थिति कुछ इस प्रकार की थी जिसमें शाहजादे की सफलता की आशा बहुत अधिक थी। एक ओर औरंगजेब के पास सेना बहुत थोड़ी थी, दूसरी ओर अकबर के अधीन मारवाड़ में विशाल शाही सेना नियुक्त थी, और राठौड़ तथा सीसोदिया दो शक्तिशाली राजपूत जातियों का पूर्ण सहयोग उसे मिल गया था। अकबर के विद्रोह का समाचार मिलने के बाद औरंगजेब बहुधा कहा करता था, "नवयुवक वीर को अच्छा सुअवसर मिला है। आक्रमण करने में वह अब देरी क्यों कर रहा है?"[८१] इस स्थिति में यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि राजपूतों ने अकबर को फुसला कर विद्रोह करवाया था।

---

७९ आदाब-पत्र ७६२, सरकार भाग ३, ३५५-६; मेवाड़ १७७; ओझा भाग ४, खंड २, ४६३; रेउ भाग १, २६६।

राजस्थानी ग्रन्थों में अकबर के विद्रोह को कुछ भिन्न रूप में दिया गया है। इनके मतानुसार विद्रोह का बीजारोपण राजपूतों ने नहीं किया, वरन् अकबर के मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वह राठौड़ों की सहायता से अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करे। उसने अपने प्रधान सेनापति तहव्वर खाँ से सलाह की और फिर ताज मुहम्मद तथा चौहान भावसिंह को झीलवाड़ा नामक गाँव जाकर राठौड़ दुर्गादास व सोनग से इस सम्बन्ध मे बातचीत करने का आदेश दिया। उसने यह भी संदेश भेजा कि यदि राजपूतों को उस की बात पर विश्वास न हो तो वह कुरान तथा अपने पुत्रों की सौगन्ध खाने के लिये भी तैयार है। साथ ही उसने अजीतसिंह को जोधपुर देने का आश्वासन भी दिया। राठौड़ो ने उसकी बात मान ली और उससे आकर भेंट की और सब बातें निश्चित की।

(अजितोदय सर्ग १०, श्लोक. ४-७; ख्यात. भाग २, ६१-२; जुनी. ६८-९; मूंदियाड़. १८२-३; अजितविलास. २१४ अ; राजरूपक. ९२-३; दानेश्वर. १९८; फौजचन्द २१; दस्तूर. १४२; टाड. भाग २, ४८)

राठौड़ाँ (१५) में यह घटना संवत् १७४१ (सन् १६८४-५ ई०) में लिखी गयी है, जो ठीक नही है।

८०. फुतूहात. ८१ अ; मआसिर, ४६६; खफी खाँ. भाग २, २६५; दिलकुशा. १७०।

८१. मुस्ताद खाँ. १२२।

इसी दिन (३१ दिसम्बर, सन् १६८० ई.) अकबर ने निश्चित योजना के अनुसार अपने पिता को इस आशय का एक पत्र लिखा कि राणा के भाई व पुत्र तथा कुछ राठौड़ सरदार तहव्वर खाँ के समझाने-बुझाने पर मुझसे आकर मिले हैं और उन्होंने बादशाह जहाँगीर के समय शाहजादा खुर्रम द्वारा की गई संधि का उदाहरण देते हुए मुझसे प्रार्थना की है कि मैं उन्हें अपने साथ आपकी सेवा में लाऊँ और उनकी ओर से क्षमा-याचना करूँ। फलतः मैं उन्हें लेकर आपके पास आ रहा हूँ।[८२]

इसके उपरान्त सम्पूर्ण तैयारी करके अकबर ने सोमवार, ३ जनवरी (माघ बदि ६) को देसूरी में राजपूतों की सहायता से अपने को बादशाह घोषित कर दिया।[८३] सिंहासनारोहण के समय उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया तथा सिक्के चलाए गए। उसके पास उपस्थित खूबुल्लाह, मुहम्मद आकिल शेख तय्यब, तथा अमरोहे के मीर गुलाम मुहम्मद नामक चार काजियों ने अकबर के कार्य को धर्मसंगत कहा। इस अवसर पर अजीतसिंह को सात हजार जात सात हजार सवार का मनसब तथा दस हजार अशर्फियाँ इनाम में देकर जोधपुर का राजा स्वीकार किया गया। अजीतसिंह को जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी के रूप में इस समय प्रथम बार मान्यता मिली थी। राठौड़ दुर्गादास तथा राठौड़ सोनग को भी दो-दो हजार का मनसब मिला। अकबर ने अपने सेनापतियों में से शुजात खाँ को महाबत खाँ का खिताब तथा सात हजार जात सात हजार सवार का मनसब, तीस हजार रुपया, खिलअत, हाथी व घोड़े इत्यादि दिए तथा तहव्वर खाँ को खानेदौराँ का खिताब

---

८२. आदाब. पत्र. ६७६; सरकार. भाग ३, ३५६-७।

८३. राजरूपक ६४; ख्यात-भाग २, ६२; जुनी. ६६; मूंदियाड १८२; दानेश्वर १९८; रेऊ. भाग १, २६७ टि.।

फौजचन्द (२१) ने इस घटना की तिथि १८ जनवरी (माघ सुदि ६) लिखी है। दस्तूर. (१४०) में ३० दिसम्बर (माघ बदि ५) का उल्लेख है। परन्तु समकालीन ग्रन्थ राजरूपक में उल्लिखित तिथि को स्वीकार करना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

फारसी इतिहासकार अकबर की स्वातन्त्र्य-घोषणा की तिथि के विषय में मौन हैं। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३, ३५७); डा० रघुबीर सिंह (रतलाम. १३०-१) व डा० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़. १७७) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने इस घटना के लिये १ जनवरी की तिथि स्वीकार की है। परन्तु आधार-ग्रन्थों के समर्थन के अभाव में राजस्थानी के ग्रन्थों के विवरण को मान्यता देना उचित प्रतीत होता है।

अकबर ने अपने को किस स्थान पर स्वतन्त्र घोषित किया, इसके विषय में भी दो मत हैं। मूंदियाड (१८२) में इस स्थान का नाम नाडोल बताया गया है और रेऊ ने भी इसे ही स्वीकार किया है। परन्तु अकबर १८ नवम्बर को ही नाडोल से प्रस्थान कर चुका था, अतः इसे स्वीकार करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। ख्यात. व दानेश्वर. में खोड़ नामक गाँव में सिंहासनारोहण सम्पन्न होना लिखा है। वास्तव में अकबर दिसम्बर के महीने में देसूरी पहुंच गया था, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यहीं पर उसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया होगा। सम्भव है, कि खोड़ देसूरी का ही कोई निकटवर्ती गांव रहा हो।

तथा छः हजार जात छः हजार सवार का मनसब, बीस हजार रुपया, खिलअत, हाथी व घोड़ा देकर सम्मानित किया। उसने अपनी सेना के विभिन्न व्यक्तियों को उपयुक्त पद देकर अपनी ओर बनाए रखने का भी प्रयत्न किया।[८४]

अकबर की सेना में बहुत से ऐसे व्यक्ति भी थे, जो औरंगजेब की शक्ति से भली भाँति परिचित थे और जिन्हें अकबर की सफलता की आशा न थी। इनमें से जिन्होंने अकबर का विरोध किया, उनका उसने कठोरता से दमन किया और उन्हें कैद कर लिया। अन्य कुछ व्यक्ति अवसर पाकर अकबर का साथ छोड़कर अजमेर की ओर भाग गए। शिहाबुद्दीन खाँ इन दिनों सिरोही में राजपूतों को दबाने के लिए गया हुआ था। अकबर ने उसे समझा-बुझाकर अपने पक्ष में करने के लिए मीरक खाँ को उसके पास भेजा। परन्तु शिहाबुद्दीन खाँ ने इस दूत को समझाया कि बादशाह का विरोध करना ठीक नहीं है। जब मीरक खाँ उसकी बात मान गया तब दोनों ने अजमेर की ओर प्रस्थान कर दिया और केवल दो दिन में एक सौ बीस मील की यात्रा पूरी करके वे औरंगजेब के पास जा पहुँचे।[८५]

अब अकबर ने अपनी निजी सेना तथा राजपूतों की विशाल सेना[८६] के साथ

---

८४. जयपुर अखबरात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग १, २४४-५; वीर. भाग २, ६४६-७; फुतूहात. ८१ अ; मआसिर. ४६४; मुस्ताद खाँ १२२; सरकार भाग ३, ३५७; मेवाड़ १७७।
ख्यात. (भाग २, ६२); दानेश्वर (१६८); आसोपा. (२३२) में राठौड़ों को केवल २ सिरोपाव २ घोड़े, २ तलवार. १ हाथी व १००० मुहरें देना लिखा है। परन्तु अखबारात की सूचना को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

८५. मुस्ताद खां. १२२-३; वीर. भाग २,६४६-८; ख्यात. भाग २, ६२; दस्तूर. १४०; सरकार. भाग ३;३५७; रेउ. भाग १, २६७; रतलाम. २३१।
रेऊ. के अनुसार शिहाबुद्दीन खाँ व मीरक खां ६ जनवरी (माघ बदि १५) को अजमेर पहुचे थे।

८६. अकबर के अधीन इस समय कितनी सेना थी इस विषय मे विभिन्न मत है। वीर.(भाग २-६४७) तथा उमराए (१००) में इसकी कुल सेना सत्तर हजार लिखी है। आधुनिक इतिहासकार सरकार (औरंगजेब. भाग ३. ३५८) ने भी इसी मत का स्वीकार किया है। राजरूपक (९६) में अकबर के अधीन एक लाख सेना होना लिखा है। रेऊ. (प्राचीन राजवंश.२०९-१०) व आसोपा (मूल. १९८) ने भी इसका समर्थन किया है। कुछ ग्रन्थों में केवल राजपूतों की सेना की संख्या ही लिखी गई है। श्यामलदास (वीर. भाग २; ६४७) तथा मनूची (भाग २,-२४४) ने अकबर के साथ राजपूतों की तीस हजार सेना होना लिखा है। परन्तु ईश्वरदास नागर (फुतूहात. ८१ ब) ने इनकी संख्या पच्चीस हजार एवं खफ़ी खाँ (भाग २, २६५) ने चालीस हजार बताई है। आधुनिक इतिहासकार रेऊ (भाग. १, २६८) ने लिखा है कि अकबर की सेना में केवल सोलह हजार सैनिक थे। अकबर को जब मेवाड़ में नियुक्त किया गया था तब उसके अधीन बादशाह ने लगभग बारह हजार सैनिकों को नियुक्त किया था (सरकार भाग ३, ३४२)। अनुमानतः मारवाड़ में भी उसे लगभग इतनी ही सेना सौंपी गई होगी। जिस समय राठौड़ व सीसोदिया राजपूत आपस में मिले थे, उस समय उनकी सम्मिलित सेना बीस हजार सवार व पचीस हजार पैदल थी (मेवाड़ १७०)। निश्चय ही राजपूतों ने मेवाड़ एवं मारवाड़ की सुरक्षा के लिए कुछ सेना पीछे छोड़कर ही अकबर को सैनिक सहायता दी होगी। अतः राजपूतों की सेना के लिए ईश्वरदास नागर द्वारा स्वीकृत संख्या (पच्चीस हजार) ही ठीक प्रतीत होती है (फुतूहात. ८१ ब)। इस प्रकार बादशाह के विरुद्ध प्रस्थान करने के समय अकबर की सेना अनुमानतः चालीस हजार से अधिक नहीं रही होगी।

अपने पिता के विरुद्ध अजमेर की ओर प्रस्थान किया।[८७] परन्तु उसकी यात्रा की प्रगति धीमी रही। उसने अजमेर तक की एक सौ बीस मील की दूरी तय करने में लगभग पन्द्रह दिन लगा दिए जब कि शिहाबुद्दीन खाँ ने इतनी ही दूरी केवल दो दिन में तय की थी, और मुअज्जम अपनी सेना सहित अस्सी मील की दूरी केवल तीन दिन में तय करके बादशाह के पास पहुँच गया था।[८८] अकबर समय से लाभ न उठा सका। ज्यों-ज्यों वह औरंगजेब के निकट पहुँचता जा रहा था, उसकी सेना में बादशाह का आतंक बढ़ता जाता था, और बहुत से मुगल सैनिक उसका साथ छोड़कर भागने लगे थे। इन्हीं दिनों कमालुद्दीन खाँ जो अकबर की सेना में था, अपने साथियों सहित बादशाह के पास चला गया। अकबर धीरे-धीरे बढ़ता हुआ कुड़की[८९] नामक गाँव जा पहुँचा।[९०]

इधर अजमेर में औरंगजेब को अकबर के विद्रोह का निश्चित समाचार ७ जनवरी (२६ जिल्हिज) को मिला।[९१] इससे पूर्व भी शाहजादा मुअज्जम ने अपने एक पत्र द्वारा अकबर तथा राजपूतों की पारस्परिक घनिष्टता की सूचना उसे दी थी। परन्तु बादशाह अपने छोटे पुत्र से अगाध स्नेह करता था, अतः उसने मुअज्जम की बात पर न केवल अविश्वास किया वरन् उसी पर सन्देह करते हुए लिखा कि वह अपने को बुरे लोगों की संगति से दूर रखे।[९२] अचानक अकबर की स्वातंत्र्य-घोषणा सुनकर वह चिन्तित हो उठा, क्योंकि इस समय उसके पास केवल दस हजार व्यक्ति थे, जिनमें बहुत से सामान ढोने वाले तथा अन्य नौकर-चाकर भी सम्मिलित थे।[९३]

---

८७. निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि अकबर ने यह यात्रा किस दिन आरम्भ की। सरकार (भाग ३, ३५६); डा० रघुवीरसिंह (रतलाम २३१) तथा ओझा (भाग ४, खंड २, ४९३) ने २ जनवरी को यात्रारम्भ करना लिखा है। आदाब. (पत्र ७६२) में २ जनवरी को यात्रारम्भ करने के निश्चय का उल्लेख है, परन्तु यात्रा किस दिन शुरू की गई यह उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

८८. मुस्ताद खां १२३; वीर. भाग २, ६४८।

८९. कुड़की अजमेर से चौबीस मील दक्षिण-पश्चिम तथा पिसांगण से नौ मील उत्तर पश्चिम में स्थित है (सरकार. भाग ३, ३६० टि०)।

९०. मुस्ताद खां. १२३-४; वीर. भाग २, ६४८; सरकार भाग ३, ३६०; रेउ. भाग १, २६७।

९१. मुस्ताद खां १२२; वीर भाग २, ६४७।

९२. वीर भाग २. ६४६-७; मनुची. भाग २, २४३; सरकार भाग ३, ३५८; मेवाड़, १७७; बहादुरशाह. ४२।

९३. मुस्ताद खां. १२२; सरकार. भाग ३, ३५८; रेऊ भाग १, २६७।

बादशाह के पास उपस्थित सेना की संख्या के विषय में विभिन्न मत हैं। फुतूहात (८१ ब) तथा राजरूपक (६६) में सात-आठ हजार तथा ख्यात (भाग २,६२) में केवल चार हजार संख्या बताई गई है। वीर. (भाग २, ६४७) व उमराए (१०१) में केवल सात-आठ सौ सैनिकों की उपस्थिति लिखी है। परन्तु मुस्ताद खां के उल्लेख को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

उसने भावी परिस्थिति का सामना करने के लिए तुरन्त तैयारी प्रारम्भ कर दी और मुअज्जम व आजम तथा विभिन्न मुगल चौकियों के अधिकारियों के पास दूत भेजकर उन्हें यथाशीघ्र अजमेर आने का आदेश दिया। गुजरात के सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ तथा अन्य निकटवर्ती सूबेदारों को यह आदेश दिया गया कि वे अपने-अपने प्रदेशों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करें। इस प्रकार चारों ओर आदेश भेजने के उपरान्त औरंगजेब ने मीर-आतिश बहरामन्द खाँ को आज्ञा दी कि वह पड़ाव के चारों ओर खाइयाँ खुदवा दे, आस-पास की पहाड़ियों पर तोपें चढ़ा दे तथा मार्गों की सुरक्षा के लिए स्थान-स्थान पर सैनिकों को नियुक्त कर दे। अकबर, तहव्वर खाँ तथा शुजात खाँ के वकीलों तथा अन्य सन्देहास्पद व्यक्तियों को कैद कर लिया गया। सोमवार, १० जनवरी (२९ जिल्हिज) तथा मंगलवार, ११ जनवरी (१ मुहर्रम, १०९२ हि.) को औरंगजेब ने समस्त सुरक्षात्मक प्रबन्धों का स्वयं निरीक्षण किया।[९४]

इधर शाही आज्ञानुसार स्थान-स्थान से मुगल सेनाएँ अजमेर पहुंचने लगी। सिरोही से शिहाबुद्दीन खाँ व मीरक खाँ तथा मेड़ता से हामिद खाँ के आ जाने से औरंगजेब के पास लगभग सोलह हजार सैनिक एकत्र हो गए। बुधवार, १२ जनवरी (२ मुहर्रम) को उसे समाचार मिला कि मुअज्जम शीघ्र ही उसकी सेवा मे ससैन्य आ रहा है। इस प्रकार स्थिति सुदृढ़ हो जाने पर उसने अजमेर में ही रुककर शत्रु को आक्रमण करने का अवसर देना उचित न समझा और अजमेर की सुरक्षा का भार हिम्मत खाँ को सौंप कर शुक्रवार, १४ जनवरी (३ मुहर्रम) को उसने अजमेर से प्रस्थान किया और छः मील दक्षिण की ओर चलकर प्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्धस्थल देवराई में पड़ाव डाला। इस समय उसकी सेना के केन्द्र तथा हरावल में दस हजार तथा दाएं व बाएं पार्श्वों व आगे के सुरक्षित भाग में छः हजार सैनिक थे। यहीं पर उसे अकबर के कुड़की गाँव पहुँचने का समाचार मिला। बादशाह भी तीन-चार मील और आगे बढ़ा और अगले दिन शनिवार, १५ जनवरी (५मुहर्रम) को बेगमपुर नामक स्थान पर पहुँचकर रुक गया। अकबर का साथ छोड़कर प्रतिदिन मुगल सैनिक औरंगजेब के पास आते जा रहे थे। अतः उसने वहीं रुकने का निश्चय किया। इसी दिन मुअज्जम भी आ पहुँचा।[९५] उधर अकबर ने भी आगे बढ़कर अपना अन्तिम पड़ाव डाला। अब बादशाह व अकबर की सेना में केवल तीन मील की दूरी थी

---

९४. फुतूहात. ८१ अ; मुस्ताद खा १२२-३; तारीख ए-मुज्जफरी. १२४; मनूची भाग २, २४४; वीर. भाग २, ६४७; मूंदियाड़. १८३; अजित विलास. २१३ अ; राठौड़ा. १५; सरकार. भाग ३, ३५९ व ३६०, रेऊ. भाग १, २६७ मेवाड़. १७७।

९५. मुस्ताद खा. १२२-४, फुतूहाल. ८१ ब ८२ अ; तारीख-ए-मुज्जफरी. १२४; वीर. भाग २, ६४८; अजितोदय सर्ग १०, श्लोक ११; ख्यात. भाग २, ६२; सरकार. भाग ३, ३५९-६१; रेउ. भाग १, २६७-८; मेवाड १७८।

बेगमपुर, मारवाड़ तथा आगरे के दो रास्ते पर स्थित था। मुस्ताद खा ने इस स्थान का नाम दोराहा ही लिखा है।

और दूसरे दिन (रविवार, १६ जनवरी=६ मुहर्रम) पिता व पुत्र में युद्ध होने वाला था।[६६]

परन्तु १५ जनवरी की रात्रि में ही औरंगजेब ने अकबर की समस्त योजना को धूल में मिला दिया। शाहजादा अकबर के दो प्रमुख सहायक थे—तहव्वर खाँ तथा राजपूत। इन दोनों को किसी तरह अकबर से अलग करना औरंगजेब ने अत्यन्त आवश्यक समझा और इसके लिए उसने कूटनीति का सहारा लिया।

पहिले औरंगजेब ने तहव्वर खाँ के श्वसुर इनायत खाँ को यह आदेश दिया कि वह अपने दामाद को एक पत्र लिखे और बादशाह की ओर से क्षमा मिलने का आश्वासन देते हुए उसे अकबर का साथ छोड़ देने के लिए समझाये और साथ ही यह भी लिखदे कि यदि वह तुरन्त बादशाह की सेवा में नहीं आयेगा तो उसके परिवार का सार्वजनिक रूप से अपमान किया जायेगा। यह पत्र पाकर तहव्वर खाँ अत्यन्त चिन्तित हुआ और बिना अकबर से आज्ञा लिये और राजपूतों को सूचना दिये तुरन्त अपना स्थान छोड़कर आधी रात्रि से पूर्व ही शाही शिविर में जा पहुंचा और द्वार-रक्षकों से उसने बादशाह से मिलने की अनुमति माँगी। जब बादशाह की आज्ञानुसार उसे शस्त्र खोलकर अन्दर जाने के लिए कहा गया, तो उसे सन्देह हुआ कि सम्भवतः उसे कैद करने अथवा मारने का प्रयत्न किया जा रहा है अतः उसने उनकी बात स्वीकार नहीं की। धीरे-धीरे बात बढ़ गई और बादशाह का गुप्त संकेत पाकर एक शाही सैनिक ने उसकी छाती पर जोर से प्रहार किया। तहव्वर खाँ ने तब भागने का प्रयत्न किया, और इसी प्रयास में उसका पैर शिविर की रस्सी से उलझ गया और वह मार डाला गया।[६७]

---

६६. मुस्ताद खां १२५; वीर. भाग २, ६४६; ख्यात–भाग २, ६२; जुनी. ६६; मआसिर १७३–४; सरकार. भाग ३. ३६१; मेवाड़. १७८।

दस्तूर (१४०) मे दोनों सेनाओं की पारस्परिक दूरी पाच मील लिखी गई है तथा फुतूहात (८१ ब) में दस मील परन्तु अन्य सभी ग्रन्थ दोनों सेनाओं की पारस्परिक दूरी तीन मील ही स्वीकार करते हैं।

ख्यात एवं जुनी. में अकबर के अन्तिम पड़ाव के स्थान का नाम बुधवाड़ा लिखा है।

६७. खफी खां. भाग २, २६८; फुतूहात. ८२ अ ब; सरकार ३, ३६१–३; रेऊ भाग १, २६८; ओझा. भाग ४, खंड २, ४६४–५; मेवाड़. १७८।

ख्यात (भाग २, ६२ जुनी. (६८–९); वीर. भाग २, ६४६; अजितोदय. सर्ग ११ श्लोक १२-१४ मूंदियाड़. ८३–४; फौजचन्द. २२–३; दानेश्वर. १९८–९; अजितविलास. २१४ अ ब; दस्तूर. १४०; राठौड़ां. १६; आदि लगभग सभी राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में इस घटना का विवरण लगभग इसी रूप में मिलता है।

राजरूपक (१०१) के अनुसार तहव्वर खां ने यह सोचा कि वह अकबर को बादशाह के हाथ में सौंप देगा तो उसे पुरस्कृत किया जायेगा। इसी विचार से चुपचाप शिविर छोड़कर चला गया। टॉड (भाग २, ४९) ने भी इस मत का समर्थन किया है। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती, अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

मनूची (भाग २, २४७) ने लिखा है कि राजपूतों ने पहले अकबर का साथ छोड़ा था, तहव्वर खाँ उनके उपरांत गया था। परन्तु यह बिल्कुल अविश्वसनीय है।

मुस्ताद खाँ (१२४) एवं मनूची (भाग २, २४७–८) ने बादशाह द्वारा तहव्वर खा को पत्र लिखवाये जाने का कोई उल्लेख नही किया है। इनके मतानुसार तहव्वर खां अपने मन में कुछ बुरे विचार रखता था, इसी कारण उसने शस्त्र उतारने से इन्कार किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्ताद खां ने बादशाह की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये ऐसा उल्लेख किया है और मनूची ने भी उसी के कथन को दुहरा दिया है।

अपनी सफल कूटनीतिज्ञता का परिचय औरंगजेब ने एक दूसरे पत्र द्वारा दिया जो उसी रात शाहज़ादा अकबर को लिखा गया। इस पत्र में उसने, यह लिखा कि अकबर ने शाही आज्ञानुसार राजपूतों को धोखा देकर शाही सेना के निकट लाकर बड़ी सफलता प्राप्त की है। अब वह ऐसा प्रयत्न करे कि राजपूतों को केवल रात तक और सन्देह न हो ताकि अगले दिन मुअज़्ज़म व अन्य मुग़ल सेनापतियों की सेनाओं के आ जाने पर राजपूतों को यथोचित दड दिया जा सके। साथ ही बादशाह ने अकबर को यह भी आदेश दिया कि वह अगले दिन युद्ध में राजपूतों को हरावल में नियुक्त करे, ताकि आगे से शाही सेना व पीछे से अकबर की सेना उन्हें दबा सकें। निश्चित योजनानुसार शाही दूत इस पत्र को लेकर राजपूतों के शिविर के पास गया और राजपूतों ने उसे पकड़ लिया। बादशाह का पत्र पढ़कर राजपूत चिन्तित हो उठे और वास्तविकता जानने के लिए जब वे अकबर के पास गये तो उसके द्वाररक्षक ने उसे जगाना स्वीकार नहीं किया। जब उन्होंने तहव्वर खाँ को बुलाने के लिए एक व्यक्ति को भेजा, तो उन्हें पता चला कि वह पहले ही अपने स्थान से लापता है। इन सब बातों ने उनके मन में शंका उत्पन्न की। अकबर की मैत्री पर उन्हें संदेह होने लगा। अविश्वास की भावना को परिस्थितियों ने और भी दृढ़ कर दिया। फलतः अपनी सुरक्षा के लिये उन्होंने परस्पर विचार विमर्श करके वहाँ से भाग जाने का निश्चय किया और रात्रि समाप्त होने से तीन घंटे पूर्व ही वे अकबर का साथ छोड़कर निकल भागे।[६८]

---

६८. फुतुहात ८२ अ ब. ८३ अ; मआसिर. ४६१; वीर. भाग २, ६४६; मनूची. भाग २, २४७; टॉड. भाग १, ३०८; सरकार भाग ३; ३६३-४; ग्लोरीज xxxvi—xxxii; ओझा-भाग ४; खंड; २; ४६५; मेवाड़; १७८; मूल १६८-६;।

खफी खाँ (भाग २, २६६) ने बादशाह के पत्र को सत्य नहीं माना है; परन्तु उसने यह स्वीकार किया है कि ऐसी बात अकबर के शिविर में प्रचलित थी। राज रूपक (१०२); अजितोदय. (सर्ग ११, श्लोक १३); ख्यात (भाग २, ६२) जुनी (६८-६६); दानेश्वर (२६६); राठौड़ाँ (१५); व दस्तूर (१४०) आदि राजस्थानी ग्रन्थों में बादशाह के पत्र का उल्लेख नही है, केवल यही लिखा है कि तहव्वर खाँ के चले जाने का समाचार सुनकर राजपूत भाग गये थे। केवल फौजचन्द (२२-३) ने यह लिखा है कि राजपूतों ने अकबर का साथ नहीं छोड़ा था। परन्तु यह अविश्वसनीय है। ईश्वरदास नागर समकालीन फारसी इतिहासकार है, अतः उसके विवरण को ही प्रामाणिक माना गया है।

मूंदियाड़ (१८३) व राठौड़ां (१५) में लिखा है कि बादशाह ने इस पत्र से पूर्व भी एक पत्र अकबर को लिखा था, जिसमें उसने अकबर को विद्रोह का विचार छोड़कर आने के लिये प्रेरित किया था। अकबर ने इसके उत्तर में लिखा कि वह उसके दिखाये हुए मार्ग का ही अनुसरण कर रहा है, और जो कर रहा है ठीक कर रहा है। इस असफलता के बाद औरंगजेब ने उल्लिखित पत्र लिखा। मनची भाग (२, २४४-५); रेऊ (ग्लोरीज xxxvi-xxxvii) तथा आसोपा (मूल. १६८) ने भी इसका वर्णन किया है। ग्लोरीज (परिशिष्ट ब ६४ १०१) में अकबर द्वारा बादशाह को दिये गये उत्तर का अनुवाद भी लिखा हुआ है।

राजपूतों के भाग जाने के बाद अकबर की शेष सेना में भी भगदड़ मच गई और अवसर पाकर मुग़ल-सैनिक उसका साथ छोड़कर भागने लगे। प्रातःकाल जब अकबर उठा, तो उसने अपने को नितान्त अकेला पाया, उसके प्रधान सेनापति तहव्वर खाँ का वध हो चुका था और उसके प्रमुख सहायक राजपूत उसे छोड़कर भाग गये थे। इस प्रकार मुग़ल सम्राट् बनने का उसका स्वप्न टूट ही नहीं गया, वरन् उसका जीवन भी संकट में पड़ गया; और बादशाह के क्रोध से बचने के लिए आवश्यक हो गया कि वह यथाशीघ्र स्थान छोड़ दे। अकबर ने अपना समस्त सामान वहीं छोड़ दिया और केवल एक हाथी, पचास घोड़े तथा बीस ऊँटों पर कुछ सम्पत्ति व आभूषण लेकर वह अपने पुत्र बुलन्द अख्तर व पुत्री सफ़ियतुन्निसा को लेकर शुजात खाँ और केवल तीन सौ पचास सवारों के साथ निकल भागा। वह छत्तीस घंटे इधर-उधर घूमता रहा। इसी बीच राजपूतों को वास्तविकता का ज्ञान हो गया और उन्होंने वापस लौटकर शाहज़ादे अकबर को अपनी शरण में ले लिया।[९९]

इस प्रकार अकबर का विद्रोह पूर्णतया असफल हो गया। उसकी असफलता का मूल कारण शाहज़ादे की निजी दुर्बलताएँ थीं। वह न तो स्वयं वीर योद्धा था और न कुशल नेतृत्व की योग्यता ही उसमें थी। इसके अतिरिक्त वह समय के महत्व को नहीं समझता था और विचार विमर्श में अवसर खो देता था। स्वातंत्र्य-घोषणा

---

९९. फ़ुतूहात. ८३ अ; खफी खाँ, भाग २, २७५; मनूची. भाग २, ३६४-५; ख्यात. भाग २, ६२; जुनी ६८; अजितोदय. सर्ग १०, श्लोक १५; वीर भाग २, ६४६; दानेश्वर १९९; मूंदियाड़. १८३; अजितविलास. २१४ अ; सरकार. भाग ३, ३६४-६ रेऊ. भाग; १; २४८-९; ओझा-भाग ४; खंड २, ४९७; मेवाड़. १७८-९;

इतिहासकारों ने अकबर के साथ भागने वाले सैनिकों की संख्या भिन्न-भिन्न बताई है। खफी खाँ (भाग २, २६९) के अनुसार जब अकबर सबेरे उठा था तो उसके पास दो-तीन हजार सैनिक थे; परन्तु जब भागा तो उसकी सख्या केवल तीन-चार सौ रह गई थी। तारीख-ए-मुज्जफरी (१२५) तथा उमराए. (१०२) में भागने के समय ही दो-तीन हजार सैनिक लिखे गये हैं। उमराए. में यह भी लिखा है कि दुर्गादास भी इनमें था; जो पूर्णतया अविश्वसनीय है। राज रूपक (१०३-५) व टॉड (भाग २, ४९) ने इन सैनिकों की संख्या एक हजार स्वीकार की है, तथा दस्तूर (१४०) में केवल सौ-डेढ़ सौ सैनिकों का उल्लेख है। लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों-जैसे सर जदुनाथ सरकार, श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ, डा० गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, डा० गोपीनाथ शर्मा आदि ने ईश्वर दास नागर द्वारा लिखी गई (तीन सौ पचास) संख्या को ही माना है।

ख्यात., जुनी व राजरूपक. में रनिवास को साथ ले जाने का भी उल्लेख है; परन्तु अकबर का परिवार अगले दिन औरंगजेब के पास पहुँचा दिया गया था। वह केवल एक पुत्र व पुत्री को ही साथ ले गया था; जिनका उल्लेख बाद के इतिहास में मिलता है।

राजस्थानी ख्यातों में लिखा है कि अकबर रावड़िया या रखड़ीष नामक स्थान पर राजपूतों से मिला था (ख्यात. भाग २, ६३: जुनी ६९; दानेश्वर १९९)।

वंश (भाग ४, २९४४) ही केवल एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें लिखा है कि राठौड़ों ने विद्रोही अकबर को शरण न दी और वह ईरान चला गया। यह नितान्त अविश्वसनीय है।

के बाद वह कुछ गर्वोन्मत्त भी हो गया था, और शीघ्र अजमेर न पहुंच सका। दूसरी ओर उसके विपक्ष में औरंगज़ेब था, जो समय से लाभ उठाना अच्छी तरह जानता था। उसने प्रत्येक क्षण अपनी सुरक्षा की व्यवस्था में लगाया और कूटनीति का प्रयोग करके अकबर की योजना को कार्यान्वित होने से पूर्व ही विनष्ट कर दिया।[१००]

औरंगज़ेब को अकबर के भाग जाने का समाचार रविवार, १६ जनवरी (६ मुहर्रम) को प्रातःकाल मिला। उसका पीछा करने के लिये शिहाबुद्दीन खाँ को भेजा गया, परन्तु वह विशेष सफल न हो सका और अकबर के कुछ साथियों को मारकर लौट आया। तब बादशाह ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म को किलिच खाँ, खाँनेजमाँ, इन्द्रसिंह, रामसिंह तथा सुजानसिंह आदि के साथ अकबर का पीछा करने के लिये भेजा। इस अवसर पर मुअज़्ज़म को पचास हज़ार अशर्फ़ियाँ, उसके पुत्र मुईज़ुद्दीन को दो लाख रुपया तथा अज़ीमुद्दीन को तीन हज़ार अशर्फ़ियाँ दी गईं और उसके अधीनस्थों को भी पचास हजार अशर्फ़ियाँ दी गईं। इसके अतिरिक्त आसपास के सभी सूबेदारों, विभिन्न शाही चौकियों के अधिकारियों और निकटवर्ती सभी ज़मींदारों को बादशाह ने सजग रहने का आदेश भेजा ताकि अकबर राजपूताने से भाग न सके। अकबर की सम्पत्ति पर शाही अधिकार करने तथा उसके परिवार को लाने के लिये मुहम्मद अली खाँ तथा दरबार खाँ को भेजा गया। सलीमा बानू नामक अकबर की पत्नी, नेकुस्सियर व मुहम्मद असगर नामक दो पुत्रों तथा रज़ियतुन्निसा ज़कियतुन्निसा तथा नजीबतुन्निसा नामक तीन पुत्रियों को लेकर दरबार खाँ वापस लौटा। मोहतशिम खाँ, मामूर खाँ, मुहम्मदनईम खाँ तथा सैयद अब्दुल्ला ने चूँकि अकबर का साथ देना स्वीकार नहीं किया था, अतः उसने इन्हें कैद कर लिया था। अब शाही अधिकारियों ने इन्हें मुक्त किया और बादशाह ने खिलअतें दीं। दूसरे दिन औरंगजेब अजमेर लौट आया और उसने अकबर के सहयोगियों को दंड दिया। ख्वाजा मन्ज़ूर, ख्वाजा मुहरिम, मुर्तज़ा खाँ, कज़्ज़ाक खाँ, मुहम्मद हातिम, खूबुल्लाह, मुहम्मद आकिल, शेख़ तय्यब तथा मीर गुलाम-मुहम्मद को भिन्न-भिन्न स्थानों में कैद में रखने की आज्ञा दी गई। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा बेगम भी अकबर से सहानुभूति रखती थी, अतः बादशाह ने उसकी

---

१००. मनूची. भाग २, २४५; सरकार-भाग ३, ३५८-९; मेवाड़. १७८।

मनूची ने ठीक ही लिखा है, "योजना आरम्भ करना अकबर की भूल नहीं थी। यदि उसने अपने पिता से विद्रोह की शिक्षा के साथ ही शक्ति तथा समय नष्ट न करने की भी शिक्षा ली होती, तो यह निश्चित था कि वह स्वयं को बादशाह बनाने में सफल हो जाता, क्योंकि औरंगजेब के पास अपनी सुरक्षा के लिये सेना नहीं थी।"

चार लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन बन्द कर दी और उसे सलीमगढ़ में रहने की आज्ञा दी।[१०१]

इधर अकबर को अपनी शरण में लेने के उपरान्त राजपूत इधर-उधर भटकने लगे। शाहजादा मुअज्जम उनका निरन्तर पीछा कर रहा था; अतः वे कहीं भी अधिक समय तक नहीं ठहरते थे। इसीलिये पीछा करने वाली सेना भी अपने उद्देश्य में विशेष सफल न हो पाती थी। राजपूत सरदार अकबर को लेकर पीसांगण होते हुये जालोर गये और वहां उन्होने एक रात को शाही सेना पर आक्रमण करके बहुत सा सामान लूट लिया और सांचोर की ओर भाग गये। वहां मगलवार, १ फरवरी (फाल्गुन बदि ८) को पुनः शाही सेना से युद्ध हुआ, जिसमें राजपूतों को विशेष सफलता न मिल सकी और वे गोड़वाड़ की ओर भाग निकले। जिस समय ये लोग भीलवाड़ा दर्रे में थे, उसी समय मुअज्जम ने इनसे सुलह करने का प्रयत्न किया। उसने उनके पास चार हजार मुहरें भेजीं और यह सन्देश भेजा कि यदि वे लोग आत्म समर्पण कर दें तो वह बादशाह से प्रार्थना करके अकबर को गुजरात का सूबा तथा अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य व मनसब दिला देगा। परन्तु सम्भवतः अकबर व राजपूतों को उस पर विश्वास न था। फलतः उन्होंने धन रख लिया, परन्तु सन्धि नहीं की और जालोर की ओर भाग गये।[१०२]

---

१०१. मुस्ताद खाँ. १२५-६; वीर भाग २, ६४६-५०; फुतूहात. ८३ ब; मआसिर ८०५; मनूची. भाग २, २४६; ख्यात-भाग २, ६३; मूंदियाड़. १८४; दस्तूर. १४०; अजितविलास. २१४ ब; ओझा. भाग ४ खंड १, ४६७; सरकार-भाग ३, ३६५-६; रेउ. भाग १, २६६; रतलाम-२३३।

मुस्ताद खाँ (१२५) ने रजियतुन्निसा के स्थान पर एक पुत्री का नाम सफियतुन्निसा लिखा है। परन्तु सफियतुन्निसा अकबर के साथ ही थी। मुस्ताद खाँ (२८८) ने स्वयं अपनी यह भूल बाद मे सुधारी है।

फुतूहात (८१ व ८३ अ) के अनुसार अकबर की विद्रोह-घोषणा के बाद ही मोहतारीम खाँ आदि भाग निकले थे और उन्होंने ही बादशाह को सूचना दी थी। शुजात खाँ के विषय में ईश्वरदास ने यह लिखा है कि यह अकबर का साथ छोड़कर बादशाह के पास आ गया था, और उसे कैद कर लिया गया था राजस्थानी ख्यातो के अनुसार शाहआलम को पच्चीस-तीस हजार सेना दी गई थी। परन्तु इन सभी विषयों में मुस्ताद खाँ के मत को ही मान्यता दी गई है।

१०२. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४; भाग १, ४३१-२; मनूची. भाग २, २०९-१०; फ़ोजचन्द २३-४; दानेश्वर. २००; आसोपा २३५ व २३६; बहादुर शाह. ४४।

अजितोदय (सर्ग ११, श्लोक १८-२१) में लिखा है कि यह संधि सिरोही में हुई थी और राठौड़ों ने मुहरें लेकर मुअज्जम को सिरोही का अधिकार सौंप दिया था। परन्तु यह ठीक नही है। सिरोही पर इस समय राव बैरीसाल का शासन था।

वीरभाण राज रूपक. (१६६-७) के अनुसार औरंगजेब ने दुर्गादास को अपनी ओर मिलाने के लिये आठ हजार मुहरें भेजीं थीं। दुर्गादास ने तत्काल यह धन अकबर की आवश्यकताओं में लगा दिया। इससे प्रभावित होकर अकबर ने भी कुछ धन राठौड़ों पर व्यय किया। टॉड (भाग २, ५०) ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है। परन्तु अन्य कहीं इसकी पुष्टि नही होती। अतएव अखबारात में उल्लेखित मत को ही स्वीकार किया है, जिसका समर्थन अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है।

मार्ग में महेवा नामक गाँव में पुनः दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ परन्तु राजपूत विशेष सफल न हुए और पालनपुर व थिराद की ओर भाग गये। यहाँ पर उन्होंने कुछ 'पेशकश' वसूल किया, परन्तु शाही अधिकारियों की चौकसी के कारण वहां ठहरना सम्भव न देखकर वे सिरोही के शासक बैरीसाल के पास गये। लेकिन उसने भी उन्हें आश्रय देना स्वीकार नहीं किया।[१०३] तब यह दल आबू की तलहटी में चला गया।[१०४] राजपूत सरदार अकबर को लेकर मेवाड़ की ओर गये, परन्तु वहां भी शाही सेना का दबाव होने के कारण ठहरना सम्भव न था।[१०५]

अब अकबर और दुर्गादास तथा उनके साथियों को यह स्पष्ट हो गया था कि राजपूताने में अकबर की सुरक्षा सम्भव नहीं है अकबर की उपस्थिति के कारण मारवाड़ तथा निकटवर्ती सभी स्थानों पर मुगल अधिकारी अधिक सजग हो गये थे। अतः बालक अजीतसिंह के भी खतरे में पड़ने की सम्भावना थी। समस्त परिस्थिति पर विचार करके अकबर को दक्षिण की ओर ले जाने का निश्चय किया गया। इससे एक ओर तो अकबर को आश्रय मिल जाने की सम्भावना थी और

---

१०३. जयपुर अखबरात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग १, १३८; गहलोत. (राजपूताने. भाग २) ५६।

राजकीय पुरालेखागार बीकानेर में शाहजादा शाह आलम का सिरोही के शासक के नाम लिखा गया एक तिथिहीन निशान है (सख्या ६) जिसमें लिखा है कि बागी अकबर, दुर्गादास और सोनग आदि राठौड़ों के उसके राज्य में जाने का समाचार मिला है। अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह उन्हे निकाल दे। सम्भवतः यह निशान इसी समय का है तथा इसी के प्रभाव स्वरूप राजा ने राठौड़ों को शरण नहीं दी थी।

१०४. ख्यात. भाग २, ६३—५; जुनी; ६६; मूदियाड़; १८४,अजितोदय. सर्ग ११, श्लोक १६–२१ व २४–५; राठौड़ा १६–७: फौजचन्द २४-५; दानेश्वर. १९९-२००; दस्तूर. १४०; अजित-विलास २१४ ब।

फारसी के ग्रन्थों में अकबर तथा राजपूतों की सम्मिलित सेना एवं शाह आलम के बीच हुये इन युद्धो का वर्णन नहीं है।

१०५. ख्यात. भाग २, ६५; जुनि.६६; मूदियाड़ १८५; अजीत विलास. २१४ ब; अजितोदय. सर्ग १०; श्लोक २६०; दानेश्वर २००; सरकार. भाग ३, ३६७; ओझा. भाग ४, खंड ३, ४९७-८।

ख्यात के अनुसार राणा ने मेवाड़ से विदा देते समय इस दल को पन्द्रह सौ रुपये तथा अस्सी घोड़े दिये और झाला जेता को भी साथ भेजा। वह उन्हे बांसवाड़ा तक छोड़कर वापस आ गया। अजितोदय में भी राणा द्वारा धन दिये जाने का उल्लेख है।

वीर. (भाग. २, ६५३) व दस्तूर (१४१) में लिखा है कि जब राणा को यह समाचार मिला कि अकबर मेवाड़ की ओर आ रहा है तब उसने राठौड़ दुर्गादास तथा अपने सरदार रावत रत्नसिंह को यह संदेश भेजा कि वे अकबर को उसके राज्य में न लायें क्योंकि वह बादशाह से सन्धि करने का विचार कर रहा था। परन्तु यह ठीक प्रतीत नही होता, क्योंकि राणा एवं औरंगजेब के बीच सन्धि वार्ता अकबर के बीच दक्षिण पहुँच जाने के बाद हुई थी।

दूसरी ओर औरंगजेब का ध्यान बँट जाने से मारवाड़ में शाही सेनाओं का दबाव कम हो जाने की आशा थी। फलतः दुर्गादास ने मारवाड़ की देख-रेख का समस्त भार राठौड़ सोनग को, तथा अकबर के पुत्र व पुत्री की सुरक्षा का भार राठौड़ रघुनाथ पुरावत तथा जगन्नाथ रामचन्दोल को सौंपकर एवं उन्हें बाड़मेर प्रदेश में रखने का आदेश देकर दुर्गादास स्वयं अकबर को लेकर दक्षिण के लिये रवाना हो गया।[१०६]

अकबर व दुर्गादास केवल पाँच सौ सवारों के साथ सर्वप्रथम डूंगरपुर की ओर गये, जहाँ रावल जसवन्तसिंह ने उनका सत्कार किया। शाही सेनाएं चारों ओर इतनी अधिक फैली हुई थीं कि यात्रा करना अत्यन्त दुष्कर था। अतः दुर्गादास ने यह प्रयत्न किया कि शाही अधिकारियों को यह पता न चलने पाये कि वे लोग दक्षिण जाना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से वह अपने साथियों सहित डूंगरपुर से अहमदनगर की ओर चला गया; परन्तु उधर भी मार्ग न मिल सकने के कारण पुनः दक्षिण पूर्व की ओर लौटा और बांसवाड़ा व दक्षिण मालवा होते हुये ९ मई को नर्मदा पार करके १५ मई को बुरहानपुर पहुंचा। यहां पर पुनः मार्ग अवरुद्ध होने के कारण ये लोग पश्चिम की ओर मुड़े और खानदेश व बगलाना पार करते हुए १ जून को मरहठा राजा शंभाजी के आश्रय में पहुँच गये जिसने उन्हें आदर व सम्मान के साथ शरण दी।[१०७] कुछ इतिहासकारों का मत है कि दक्षिण का सूबेदार

---

१०६. फुतूहात. ८३ ब; ख्यात-भाग २, ६५;जुनी. ६९; दानेश्वर. २००; राज रूपक. १६८; टॉड. भाग २; ५०; सरकार भाग ५, २२८।

अकबर के बच्चों की सुरक्षा का भार किसे सौपा गया; इस विषय में विभिन्न मत हैं। ईश्वरदास नागर तथा सरकार ने लिखा है कि दोनों बच्चों को गिरधर जोशी नामक व्यक्ति को सोंप कर मारवाड़ के पहाड़ी भाग में स्थित नाथबरलाई नामक स्थान को भेज दिया गया। टॉड ने जैता चांपावत का उल्लेख किया है और राज रूपक व दानेश्वर में दुर्गादास के भाई खीवकरण का नाम उल्लेखित है। दक्षिण से लौटने पर दुर्गादास अकबर के बच्चों से मिलने के लिये बाड़मेर गया था। इससे अनुमान लगाया जा रहा है कि ख्यात का उल्लेख विश्वसनीय है।

मूंदियाड़ः (१८५) के अनुसार दुर्गादास ने दक्षिण जाने से पूर्व अजीतसिंह को पर्याप्त धन भेजा और कहलाया कि वह पूर्ववत् पहाड़ों में ही छिपा है। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती।

१०७. खफी खाँ. भाग २, २७५–७: फुतूहात. ८३ ब; मुस्ताद खाँ, १२६-७' जयपुर–अखबारात. औरंगजेब, वर्ष २४, भाग२; २०४; वीर. भाग २; ६५३, ख्यात. भाग २; ६५; जुनी. ६९; दानेश्वर २००–१; अजितविलास. २१४ ब; मूंदियाड़ १८५; राठौड़ां. १७; फोजचन्द. २५; टॉड. भाग २, ५१; राजरूपक. १७०–३; सरकार. भाग ३, ३६७; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ४९९; रेऊ. भाग १, २७१, मेवाड़. १७९।

राजस्थानी ग्रन्थों में लिखा है कि अकबर व राठौड़ जब दक्षिण पहुँचे तो शंभाजी ने अपने सरदारों से विचार विमर्श किया। अधिकतर लोगों ने बादशाह के शत्रु को शरण न देने की सलाह दी; परन्तु कवि कलश तथा राठौड़ नेतूजी की सलाह पर उन्हें आश्रय दिया गया (ख्यात. भाग २, ६७; जुनी. ६९-७०; अजितोदय. सर्ग ११; श्लोक २७-८)।

खाँनेजहाँ, शाहजादा अकबर तथा राठौड़ दुर्गादास आदि के साथ कुछ सहानुभूति रखता था, इसी कारण यह छोटा दल इतनी लम्बी यात्रा करके सकुशल मरहठों के आश्रय में पहुंच गया।[१०८]

इधर औरंगजेब को अकबर व उनके साथियों तथा मुअज्ज़म की सेना के बीच यत्र-तत्र होने वाले छुटपुट युद्धों का समाचार निरन्तर मिल रहा था। शाही सेना मारवाड़ में अकबर के पीछे-पीछे घूमकर भी उसे पकड़ने में सफल न हो सकी थी। अतः औरंगजेब अप्रसन्न हो गया और उसने मुअज्ज़म को ससैन्य वापस बुला लिया। इन्द्रसिंह लगभग पिछले दो वर्षों से जोधपुर का राजा था, परन्तु उसने वहाँ के शासन में कोई विशेष कुशलता न दिखाई थी अतः शुक्रवार, २५ मार्च (१५ रबीउलअव्वल) को उसे जोधपुर से हटा दिया गया और नागोर जाने की आज्ञा दी गई। उसका मनसब भी घटाकर केवल पन्द्रह सौ जात पन्द्रह सौ सवार का कर दिया गया। उसके स्थान पर दूसरे ही दिन इनायत खाँ को अजमेर व जोधपुर का फौजदार नियुक्त किया गया।[१०९]

कुछ ही दिनों के उपरान्त औरंगजेब को समाचार मिला कि शाहजादा अकबर व राठौड़ दुर्गादास अपने साथियों सहित मरहठों की शरण में पहुंच गये हैं। बादशाह इससे बहुत चिन्तित हुआ और उसने यथाशीघ्र राजपूताने की समस्या का कुछ तात्कालिक प्रबन्ध करके स्वयं दक्षिण जाने का निश्चय किया अतः उसने आजम को लिखा कि वह राणा से संधि करने का प्रयत्न करे। शाही आज्ञानुसार आज़म ने शाही सेना में नियुक्त राणा के चचेरे भाई श्यामसिंह[११०] की मध्यस्थता

---

१०८. दिलकुशा, १७१; खफी खाँ. भाग ७७; सरकार-भाग ३, ३६७-८।

१०९. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग २, ५४-५ व ५७; वीर. भाग २, ८३१; ख्यात-भाग २, ६४; जुनी. ६९ व ७१; दानेश्वर. १००; अजित विलास २१४ ब व २१५ अ; मूंदियाड़. १८५; राठौड़ा १७; फौजचन्द २४-५ अजितोदय. सर्ग ११, श्लोक २२-३; प्राचीन राजवंश. २१२, आसोपा २३४ व २३५-६।

रेउ-(भाग १, २७०) के अनुसार इनायत खाँ को जोधपुर की फौजदारी चैत्र सुदी ११, संवत् १७३८ (२० मार्च) को मिली थी, पर यह ठीक नहीं है।

मुस्ताद खाँ (११०) ने लिखा है कि इन्द्रसिंह के विद्रोहों को दबाने में असफल होने पर जमादिउस्सानी १०९० हि० (जुलाई १६७९ ई०) में ही उसे जोधपुर से हटा दिया गया था। सरकार (भाग ३, ३३४); (भाग १, २५९); ओझा (भाग ४, खंड २, ४८८); गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़. १६७) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसका समर्थन किया है। परन्तु शाही अधिकारियों को नियुक्त किये जाने तथा हटाये जाने के विषय में अखबरात के उल्लेख को स्वीकार करना उचित समझा गया है।

११०. श्यामसिंह राणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र गरीबदास का पुत्र था। (राजप्रशस्ति, सर्ग २३, श्लोक ३१-२ जिसका उल्लेख वीर-भाग २, ६५८; में है। ओझा (भाग ४, खंड २, ४९९-५००) पूर्व. (१४५) ने भी किया है।

सरकार-(भाग ३, ३७०) तथा टॉड (भाग १, ३०९) ने श्यामसिंह को बीकानेर का बताया है, जो ठीक नहीं है।

से बातचीत आरम्भ की। राणा जयसिंह भी इस दीर्घकालीन युद्ध से तंग आ चुका था, अतः उसने भी आजम के प्रस्ताव का स्वागत किया। मगलवार, १४ जून (७ जमादिउस्सानी) को राणा स्वंय राजसमुद्र जाकर आजम से मिला और उसने संधि के विषय में अन्तिम बातचीत की। इस सन्धि के अनुसार राणा ने जजिया देना स्वीकार कर लिया और इसकी वसूली के लिये पुर, मांडल व बदनोर के परगने बादशाह को दे दिये। औरगजेब ने जयसिंह को राणा का पद तथा पाँच हजार का मनसब दिया और मेवाड़ से शाही सेनाएँ हटाना स्वीकार कर लिया। मारवाड़ के विषय में केवल यह निश्चित किया गया कि जब अजीतसिंह बालिग हो जायेगा तो उसे जोधपुर का राज्य दे दिया जायेगा।[१११]

इस सन्धि से मेवाड़ की समस्या का समाधान हो गया और औरंगजेब राणा की ओर से निश्चिन्त हो गया। लेकिन मारवाड़ के राठौड़ सरदारों को इससे कुछ भी लाभ न हुआ। लगभग दो वर्ष तक निरन्तर युद्ध करने के बाद अजीतसिंह के लिये उन्हें कुछ भी प्राप्त न हो सका था। बादशाह ने अजीतसिंह के प्रश्न को कई वर्षों के लिये टाल दिया था। फलतः राठौड़ पूर्ववत् असन्तुष्ट बने रहे और मारवाड़ में विरोध की भावना शान्त न हुई। राठौड़ सरदार सम्पूर्ण राज्य में मुगलों का विरोध करते ही रहे। लेकिन औरंगजेब के समक्ष अकबर व मरहठों के संयोग से एक गम्भीर समस्या उठ खड़ी हुई थी, जो राठौड़ों के छुटपुट विद्रोहों की अपेक्षा अधिक विकट थी। अतः बादशाह ने मारवाड़ का प्रबन्ध करने के लिये शाहज़ादा मुअज्ज़म के पुत्र अज़ीमुद्दीन तथा उमदुतुल्मुल्क असद खाँ को इतिकाद खाँ, कमालुद्दीन खाँ, राजा भीम व दीनदार खाँ आदि के साथ एक विशाल सेना देकर नियुक्त किया और स्वयं बृहस्पतिवार, ८ सितम्बर (५ रमज़ान) को दक्षिण के लिये प्रस्थान कर दिया।[११२]

(ङ) राठौड़ सरदारों का विरोध (सन् १६८१–७ ई०)

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् जोधपुर में विरोध बढ़ जाने पर औरंगज़ेब ने इन्द्रसिंह को इस आशा से वहाँ का शासक नियुक्त किया था कि वह वहाँ शान्ति स्थापित करने में समर्थ हो सकेगा। परन्तु बादशाह की यह आशा पूरी

---

१११. मुस्ताद खाँ १२८; फ़ुतूहात. ८० ब; टॉड. भाग १, ३१२; मनूची भाग २,१५१–३० सरकार भाग ३, ३७० व भाग ५, २१७-८; रेउ. भाग १, १७२; मेवाड़. १८०।

वीर. (भाग २, ६५३ ६६३) में इस सन्धि के समय के विभिन्न पत्रों की नकल मिलती है।

ओझा (भाग ४, खंड २, ४९९-५००) तथा युसुफ हुसेन (१३) ने लिखा है कि इस संधि में यह शर्त भी थी कि राणा राठौड़ों की भावी युद्ध में सहायता नहीं देगा। परन्तु किसी आधार ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती।

११२. मुस्ताद खाँ. १३१; मआसीर. २७१; वीर. भाग २, ८३१; ख्यात. भाग २, ६८; जुनी. ७१-२; राज रूपक. २ ०; दानेश्वर. २०१; रेउ. भाग १, २७३।

न हो सकी। शाही सेना का सहयोग पाकर भी इन्द्रसिंह जोधपुर का शासन सुव्यवस्थित न कर सका। तब औरंगज़ेब ने उसे पदच्युत करके मारवाड़ को शाही अधिकार में ले लिया, परन्तु तब भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। औरंगज़ेब और राणा के बीच १४ जून, सन् १६८१ ई० (७ जमादिउस्सानी १०९२ हि०) को जो सन्धि हुई, उससे भी राठौड़ सरदारों को सन्तोष न हुआ। फलतः वहाँ पूर्ववत् विद्रोह होते रहे।[११३] मारवाड़ के मुख्य नगरों एवं महत्त्वपूर्ण स्थानों पर शाही अधिकारी नियुक्त थे। उत्तर में सांभर, व डीडवाना, उत्तर-पूर्व में मेड़ता, पूर्व में जैतारण, सोजत, पाली व गोड़वाड़ मध्य में जयपुर, पश्चिम में बालोतरा, पंचपदरा, सिवाना तथा दक्षिण में जालोर आदि स्थानों में मुगल थानेदार शाही शासन व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु राठौड़ जहाँ और जब भी अवसर पाते थे आक्रमण करके लूटमार किया करते थे।[११४] फलस्वरूप अगले छः वर्षों तक सम्पूर्ण राज्य इसी प्रकार की घटनाओं से आक्रान्त रहा। जोधपुर, सोजत, जैतारण, मेड़ता, डीडवाना, पोकरण, फलोदी, पाली, सिवाना तथा जालोर आदि सभी परगनों में राठौड़ मुगलों से टक्कर लेते रहे।

जोधपुर

इन्द्रसिंह को हटाने के बाद २६ मार्च, सन् १६८१ ई० (१६ रबीउलअव्वल १०९२ हि०) को औरंगज़ेब ने इनायत खाँ को जोधपुर का फ़ौजदार नियुक्त किया था। वह जब रविवार १७ अप्रेल (वैशाख सुदि १०, संवत् १७३८) को जोधपुर पहुँचा, तो उसने देखा कि आसपास काफ़ी राजपूत सैनिक एकत्र हैं। साथ ही यह भी समाचार मिला कि राठौड़ों ने तिंवरी[११५] नामक स्थान को लूट लिया है। उन्हें आंतकित कर भगाने के लिए मुहम्मद बेग भेजा गया। वालखा नामक एक निकटवर्ती स्थान के पास ही उसकी राठौड़ों से मुठभेड़ हुई जिसमें उसके सात आदमी काम आए। परन्तु अन्ततः सफलता उसी को मिली और राठौड़ सरदार वहाँ से भाग निकले।[११६] लेकिन इससे राठौड़ों का उत्साह कम न हुआ। असन्तोष के कारण उनकी विरोधी भावनाएँ प्रबल होती गईं। धीरे-धीरे वे फिर जोधपुर के निकट एकत्र होने लगे। इनायत खाँ इससे चिन्तित हो उठा। उसके पास समुचित सैन्य शक्ति नहीं थी, अतः उसने बादशाह से सहायता माँगी। औरंगज़ेब ने सोजत के फ़ौजदार शिहाबुद्दीन खाँ को जोधपुर, जाने की आज्ञा दी। इनायत खाँ भी अपनी सेना लेकर जोधपुर से बाहर निकला, परन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही शिहाबुद्दीन खाँ ने मंगलवार, १४ जून सन् १६८१ ई० (आषाढ़ सुदि ९ संवत् १७३८) को पीछे से राठौड़ों पर आक्रमण कर दिया। राठौड़ इस आकस्मिक

११३. विस्तार के लिये देखिये इसी अध्याय के पिछले पृ०।
११४. सरकार. भाग ५; २२३।
११५. यह स्थान जोधपुर से लगभग २० मील उत्तर की ओर है।
११६. दस्तूर. १४१।

आक्रमण से घबरा गए थे, फिर भी उन्होंने पाँच घड़ी तक शाही सेना का सामना किया; परन्तु अन्त में उन्हें भागना पड़ा। शिहाबुद्दीन खाँ ने उनका तीन कोस तक पीछा भी किया। तत्पश्चात् इनायत खाँ व शिहाबुद्दीन खाँ ने मिलकर सभी निकटवर्ती चौकियों को सुदृढ़ किया। फलतः केवल तीन ही दिन बाद जब राठौड़ों ने एक चौकी पर आक्रमण किया तो उन्हें विशेष सफलता न मिल सकी और वे केवल एक व्यक्ति को घायल करके भाग निकले।[११७] इसके उपरान्त लगभग तीन वर्ष तक जोधपुर के परगने मे प्रायः शान्ति बनी रही। भाटी रामसिंह ने जुलाई/अगस्त, सन् १६८२ ई० (श्रावण, सवत् १७३९) में एक निकटवर्ती चेराई नामक थाने को लूटने का प्रयास किया; किन्तु सम्भवतः उसे विशेष सफलता न मिल सकी। सन् १६८३ ई० (संवत् १७४०-१) में इस परगने में पुनः अशान्ति फैल गई राठौड़ों ने सग्रामसिंह, के नेतृत्व मे चेराई गाँव में भाटी अखैराज को परास्त किया और जब वह भाग गया तो गाँव को खूब लूटा और जनता को रुपया देने के लिए बाध्य किया। यह समाचार सुनकर इनायत खाँ ने नूरअली तथा मुहम्मदअली नामक अपने दो पुत्रों को उधर भेजा; परन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी और उपद्रव होते रहे।[११८] चेराई की ही भाँति सन् १६८६ ई० के आरम्भ में राठौड़ संग्रामसिंह तथा भगवानदास के नेतृत्व में उपद्रवकारियों ने पालासणी[११९] नामक गाँव मे भी रुपये वसूल किए। जोधपुर शहर भी राठौड़ों के दबाव से न बच सका और सन् १६८६ ई० मे भाटी राजपूतों ने यहाँ इतना अधिक विरोध किया कि शाही कर्मचारियों के जान-माल की रक्षा करना भी कठिन हो गया। इन्ही दिनों सूरसिंह, भाटी ने पाँच शाही सैनिकों को मारकर उनके ऊँट छीन लिए और पीछा करने पर बीसलपुर की ओर भाग गया। इन उपद्रवों से फ़ौजदार इनायत ख़ाँ इतना आतंकित हो गया था कि जब जैतकरण, तेजसिंह, मुकुन्दसिंह आदि एकत्र होकर जोधपुर आए तो वह किले से बाहर न निकला।[१२०] गाधाणी (गांगाणी),[१२१] मंडोर, उस्तरी तथा नंदिया आदि अन्य स्थानों में भी पिछले तीन वर्षों में (१६८४-६) छुटपुट विरोध होते ही रहे। सन् १६८४ ई० मे राठौड़ सामन्तसिंह ने गांधाणी में बहुत से शाही

---

११७. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग २, २८२-३, ३१०, ३१२, ३२१-२; राज रूपक. १८८-९४; ख्यात. भाग २, ६५-६; जुनी. ७१; फौजचन्द २६।

मूंदियाड़ (१८५); अजितविलास (९१५ अ ब); व राठौड़ां (१८) में लिखा है कि शिहाबुद्दीन खाँ बीलाड़ा में था और वहीं पर राठौड़ों ने उस पर आक्रमण किया था। इनायत खाँ जोधपुर से उसकी सहायता के लिये आया; परन्तु शाही सेना सफल न हो सकी और शिहाबुद्दीन खाँ भागकर बादशाह के पास चला गया। परन्तु अखबारात में स्पष्ट रूप से लिखा है कि शिहाबुद्दीन खाँ सोजत का फौजदार था और इनायत खाँ की सहायता के लिये भेजा गया था। अतः उक्त मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

११८. फौजचन्द. ३१, ३८-९।

११९. यह स्थान जोधपुर से लगभग अठारह मील पूर्व की ओर था।

१२०. राज रूपक. २८४-५, २८९; फौज चन्द ४० व ४४।

१२१. यह स्थान जोधपुर से लगभग २० मील पूर्व की ओर है।

सैनिकों को मार डाला। इसी वर्ष ख्वाजा सालेह् को भगाकर राठौडों ने मंडोर पर भी थोड़े से समय के लिए अधिकार कर लिया, और सन् १६८६ ई० में नंदिया नामक गाँव में नाहर खाँ नामक मुगल अधिकारी को मार डाला।[१२२] इस प्रकार यद्यपि राठौड़ सरदार यत्र-तत्र लूट मार करने, रुपया वसूलने मुगल अधिकारियों को मारने अथवा कहीं-कहीं क्षणिक अधिकार, पा लेने के अतिरिक्त कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सके, फिर भी जोधपुर परगने में शान्ति स्थापित नहीं हो सकी, और सन् १६८१ ई० से १६८६ ई० तक लगातार इस प्रकार की घटनाओं के होते रहने के कारण वहाँ की शासन व्यवस्था तथा शाही सम्मान को काफ़ी धक्का लगा।

सोजत—

जोधपुर के दक्षिण-पूर्व में स्थित सोजत नामक परगने में औरंगजेब ने शिहाबुद्दीन खाँ को फौजदार नियुक्त किया था। उसकी नियुक्ति के कुछ दिन बाद सन् १६८१ ई० के आरम्भ में यहाँ राठौड़ों ने विरोध किया जिसका उसने दृढ़ता-पूर्वक सामना किया। लगभग बीस राजपूत युद्ध-क्षेत्र में मारे गए। जीतसिंह कल्याणदासोत पकड़ा गया और उसे बादशाह् के पास भेज दिया गया। इस युद्ध का समाचार औरंगजेब को सोमवार, २५ अप्रेल सन् १६८१ ई० (१६ रबीउस्सानी) को मिला।[१२३] परन्तु राठौड़ परास्त होकर भी हतोत्साह न हुए और पुनः एकत्र होने लगे। इसी वर्ष अगस्त (भाद्रपद) के महीने में विद्रोही राठौड़ों ने चांपावत हरनाथसिंह् तथा चांपावत कान्ह् के नेतृत्व में बगड़ी[१२४] नामक स्थान को लूटा और फिर सोजत पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का फौजदार शिहाबुद्दीन खाँ इन दिनों शाही आज्ञानुसार इनायत खाँ की सहायता के लिए जोधपुर गया हुआ था और उसकी अनुपस्थिति में सरदार खाँ कार्य भार सम्भाल रहा था। सरदार खाँ ने राठौड़ों का यथाशक्ति सामना किया; परन्तु सैन्य शक्ति की कमी होने के कारण सफल न हो सका और घायल होकर भाग गया। युद्ध में राठौड़ों के पक्ष के चांपावत कान्ह्, चांपावत हरनाथ सिंह, चांपावत चतुर्भुज, सोहड़ विष्णु, सींधल दलो आदि मारे गए। औरंगजेब को जब सोजत में शाही सेना की इस हार का समाचार मिला तो उसने शिहाबुद्दीन खाँ को तुरन्त सोजत लौटने की आज्ञा दी। वह तेजी के साथ जोधपुर से वापस आया और उसने राठौड़ों पर आक्रमण करके उन्हें परास्त किया। इस पराजय के बाद राठौड़ों का नेता सोनग पोकरण की ओर भाग गया।[१२५] अगले वर्ष सन् १६८२ ई० में फरवरी तथा पुनः जुलाई में राठौड़ों ने सोजत में

---

१२२. राज रूपक. २३६, २४४-५ व २५२-४; फौजचन्द. ४४; मूंदियाड़. १८६; ख्यात. भाग २, ७२; अजित विलास. २१७ अ।

१२३. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग २, ५७, १४६ व १८५।

१२४. यह स्थान सोजत से लगभग दस मील पूर्व की ओर है।

१२५. अखबारात, लंदन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष २४, ३२-३, ४७; राजरूपक १६५-६; ख्यात. भाग २, ६८; जुनी. ७५; मूंदियाड़. १६५-६; फौज चन्द २७ टॉड. भाग २, ५१-२; ओझा. भाग ४, खंड २, ५००-१।

विरोध किया; परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।[१२६] कुछ महीनों के बाद चांपावत उदयसिंह ने सारण नामक गांव में थानेदार सीदी से पेशकश वसूल किया। अगला वर्ष शान्तिपूर्वक बीता, लेकिन सन् १६८४ ई० के आरम्भ में ही सोमवार, १७ मार्च (चैत्र सुदि ११, संवत् १७४१) को राठौड़ों ने ऊदावत जगराम के नेतृत्व में सोजत पर आक्रमण करके यद्यपि मुगल सेनापति मेड़तिया सादूल को मार डाला, तथापि सोजत पर उनका अधिकार न हो सका।[१२७] फलतः राठौड़ों ने और तैयारी करके पुनः सोजत लेने का प्रयत्न शुरू कर दिया और यत्र-तत्र मुगल थाने लूटने लगे। सोजत की सुरक्षा के लिए बादशाह की ओर से नियुक्त राठौड़ सुजानसिंह उन्हें दबाने में असमर्थ रहा। यह समाचार पाकर इनायत खाँ ने शेख फजल को एक हजार सैनिकों के साथ सोजत की ओर भेजा। सैनिक सहायता आ जाने से शाही सेना की स्थिति अच्छी हो गई। फलतः मंगलवार, २२ जुलाई, सन् १६८४ ई० (द्वितीय श्रावण बदि ६) को जब भाटी महेश के नेतृत्व में राठौड़ों ने सोजत पर आक्रमण किया तो उन्हें परास्त होना पड़ा।[१२८] इस प्रकार सोजत परगने में सन् १६८१ ई० व सन् १६८४ ई० में दो भयानक युद्ध हुए जिसमें यद्यपि मुगल सेना की भी क्षति हुई, परन्तु राठौड़ सोजत पर अधिकार करने में सफल न हो सके। परगने के अन्य भागों में भी वे सदैव लूटमार करने में व्यस्त रहे।

जैतारण —

जोधपुर के पूर्व में तथा सोजत के उत्तर में स्थित जैतारण नामक परगने में सन् १६८१ ई० में तो शान्ति रही, परन्तु अगले ही वर्ष रविवार, २३ जुलाई सन् १६८२ ई० (श्रावण बदि १४ संवत् १७३९) को राठौड़ों ने उदावत जगराम के नेतृत्व में यहाँ इतना जोरदार आक्रमण किया कि वहाँ का थानेदार नूरअली उनका सामना न कर सका और भाग गया। राठौड़ ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया और खूब लूट-मार की। परन्तु शीघ्र ही कुछ और शाही सैनिक वहाँ आये और उन्होंने राठौड़ों को भगा दिया। राठौड़ों ने केवल तीन महीने बाद मंगलवार, १७ अक्तूबर (कार्तिक बदि १२) को ऊदावत जगराम के ही नेतृत्व में पुनः जैतारण को जा घेरा। इनायत खाँ ने समाचार पाते ही तुरन्त एक बड़ी सेना के साथ अपने पुत्र नूरअली को उधर भेजा। जैतारण में शाही सेना की सहायता के लिए जोधपुर से सेना आने का समाचार जब राठौड़ों को मिला तो मोहकमसिंह मेड़तिया तथा हिम्मतसिंह आदि राठौड़ सरदार भी अपनी-अपनी सेना लेकर जगराम की सहायता के लिए जैतारण जा पहुँचे। बृहस्पतिवार, १६ नवम्बर, सन् १६८२ (मार्गशीर्ष बदि १२) को वहाँ भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों को बहुत हानि उठानी पड़ी। शाही सेना को सफलता न मिलते देखकर असद खाँ ने अजमेर से कुछ और

१२६. राजरूपक. २१५-२१८; फौजचन्द. ३०; अजितविलास. २१६ अ।
१२७. राजरूपक. २२४, २४०-२; ख्यात. भाग २,७१; मूंदियाड़. १८८-९।
१२८. राजरूपक. २५६-६१; ख्यात. भाग २, ७२; मूंदियाड़. १९०; राठौड़ा-२४।

सैनिकों को जैतारण की ओर भेजा। अगस्त के महीने में फिर युद्ध हुआ जिसमें विद्रोही राठौड़ परास्त हुए और शान्ति स्थापित हुई। अगले वर्षों में भी जैतारण में यत्र–तत्र छुट–पुट उपद्रव होते रहे।[129] इस प्रकार इस परगने में राठौड़ों को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली और शाही अधिकारी उन्हें बहुत कठिनाई से दबा सके।

मेड़ता

सन् 1691 ई० में जैतारण के उत्तर में स्थित मेड़ता परगने में राठौड़ एक बड़ी सख्या में एकत्र हो रहे थे। चूंकि यह परगना अजमेर के समीप था, अतः इस समाचार से असद खां चिन्तित हो उठा, और उसने अपने पुत्र एतक़ाद तथा सरदार खां को एक बड़ी सेना देकर मेड़ता जाने का आदेश दिया। राठौड़ों को जब इस सेना के आने का समाचार मिला तो वे डीडवाना की ओर भाग गये। एतक़ाद खां ने डीडवाना तक उनका पीछा किया। राठौड़ उसे धोखा देकर अन्य मार्ग से पुनः मेड़ता लौट आये और रविवार, 30 अक्तूबर (कार्तिक बदि 14) को उन्होंने मेड़ता को खूब लूटा, और फिर वहाँ से आठ-दस कोस की दूरी पर स्थित इन्दावड़ नामक स्थान में जाकर रुक गये। एतक़ाद तेजी से लौटा और अपने सिपाहियों को साथ लेकर उसने रात्रि में ही इनका पीछा किया। राठौड़ और आगे भागे। पांच कोस चलने के बाद उन्होंने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर लिया। एक भाग जैतारण की ओर चला गया और दूसरे ने सम्भवतः डीगराणा नामक स्थान पर मगलवार, 1 नवम्बर (कार्तिक सुदि 1) को शाही सेना का सामना किया। इस युद्ध में लगभग पांच सौ राजपूत तथा तीन सौ मुगल सैनिक मारे गये और राठौडों को परास्त होकर भागना पड़ा। शाही सैनिकों ने दो-तीन कोस तक उनका पीछा किया और शत्रु के कुछ ऊंट पकड़कर वापस आ गये। औरंगजेब को इस युद्ध का समाचार 14 नवम्बर (13 ज़िल्काद) को मिला।[130]

---

129. राजरूपक. 215-6; 224-8 व 240; मूंदियाड़ 187 व 188; फौजचन्द. 30; अजित विलास. 216 अ।

130. फ़ुतूहात. 85 अ–86; मुस्ताद खाँ. 332; राजरूपक. 202-8; अजितोदय. सर्ग 11 श्लोक 33-43; ख्यात भाग 2, 68-9; मूंदियाड़. 187; वीर. भाग 2, 830-1; जुनी. 68-9; बाँकीदास 36; दस्तूर. 142; अजितविलास. 216 अ; राठौड़ा 19-20; फौजचन्द. 35 अ; कविराज 521-2।

इस युद्ध में मारे जाने वाले प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार थे।

1. चाँपावत अजबसिंह	6. मेड़तिया गोपीनाथ	12. जोधा अजबसिंह
2. ,, सबल सिंह	7. ,, सादुल	13. मडलो रामसिंह
3. ,, नाहर खाँ	8. ,, कुशलसिंह	14. भाटी राम
4. ,, हरी सिंह	9 ,, अर्जुन	15. कछवाहो आनन्द सिंह
5. ,, रामसिंह	10. ,, घासी राम	16. साहणी महेश दास।
	11. ,, अनूप सिंह	

इस पराजय के बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक राठौड़ों ने पुनः मेड़ता की ओर आने का साहस नहीं किया। इसके बाद रविवार, २२ अप्रेल, सन् १६८३ ई. (वैशाख सुदि ६, संवत् १७४०) को मेड़तिया मोहकमसिंह ने तथा बुधवार, २५ मार्च, सन् १६८५ ई. (चैत्र सुदि, १ संवत् १७४२) को बाला अखैसिंह ने मेड़ता पर जोरदार आक्रमण करके शाही सैनिकों का संहार किया, परन्तु वे मेड़ता पर अधिकार न कर सके।[131] इसी वर्ष इस परगने के राहण, गठीयौ तथा गंगराणा नामक गांवों में जेतावत अर्जुनसिंह के नेतृत्व में किये गये आक्रमणों को नूरअली ने तथा थांवला नामक गांव में उदावत जगराम के नेतृत्व में किये गये धावों को मुहम्मदअली ने रोका।[132] इस प्रकार इन वर्षों में मेड़ता में सदैव अशान्ति बनी रही।

डीडवाना

जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित डीडवाना को लूटने के विचार से राठौड़ सोनग अगस्त, सन् १६८१ ई. (भाद्रपद, सवत् १७३८) में उस ओर गया, परन्तु मार्ग में ही नागोर के शासक इन्द्रसिंह के गुमाश्तों ने उसे बीकानेर की ओर भगा दिया।[133] राठौड़ों ने कुछ महीनों के बाद चंपावत अजबसिंह के नेतृत्व में फिर डीडवाना पर आक्रमण किया और वहां के थानेदार दीनदार खाँ कायमखानी से 'पेशकश' वसूल किया।[134]

पोकरण व फलोदी

जून, सन् १६८१ ई. में जब जोधपुर के निकट शिहाबुद्दीन खां ने राठौड़ों को परास्त किया तो वे जोधपुर के उत्तर-पश्चिम में स्थित पोकरण व फलोदी की तरफ जाकर लूटमार करने लगे। दो महीने बाद सोजत में परास्त होकर राठौड़ सोनग भी इस ओर आ गया और उसने कई गांव लूटे। इसी समय पोकरण के थानेदार चन्द्रसेन ने राठौड़ों का साथ देने का निश्चय किया और उसने शाही सेवा छोड़ दी तथा विद्रोही सरदार राठौड़ सोनग को अपने यहां आश्रय दिया। पोकरण के उपद्रवों का हाल सुनकर औरंगजेब ने इनायत खां को उधर जाने की आज्ञा दी और उसकी सहायता के लिये उसके पास कुछ और सैनिक भी भेजे। शाही आज्ञानुसार इनायत खां ने यहाँ आकर शान्ति स्थापित की।[135] अगले वर्ष जुलाई-अगस्त में भाटी रामा ने तथा सन् १६८३ ई. के अन्त में सांवतसिंह, खींवकरण, तेजकरण तथा रामसिंह आदि ने फलोदी तथा खींवसर में कई मुगल थानों को लूटा। सन्

---

१३१. राजरूपक २३१-२ व २७८-८१।

१३२. फौजचन्द ४० व ४४; राजरूपक. २८८।

१३३. अखबारात, लंदन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष २४, १४८।

१३४. अजीतोदय. सर्ग ११, श्लोक ३२-३; ख्यात. भाग २, ६८; जुनी. ७२; मूंदियाड़ १८६-७; बांकीदास ३६; अजितविलास. २१६ अ; कविराज. ५२१।

१३५. अखबारात, लंदन संग्रह औरंगजेब, वर्ष २४, १२, २२, ३४७।

१६८६ ई. में विद्रोही राठौड़ों ने फलोदी के शाही अधिकारियों से रुपया भी वसूल किया।[१३६] इस प्रकार जोधपुर राज्य के इस भाग में भी सदैव अशान्ति बनी रही।

पाली

जोधपुर के दक्षिण में पाली नामक परगने में सन् १६८२ ई. में नूरअली ने विद्रोही बाला बिशनदास को परास्त किया। राठौड़ों ने संगठित होकर अगले ही वर्ष जब पुनः पाली पर आक्रमण किया तो मुगल सेनाध्यक्ष अब्दुल्ला खां अपने पांच सौ सवारों को लेकर आगे बढ़ा, परन्तु भाटी रामसिंह ने उसे आक्रमण करने का अवसर न देकर मंगलवार, ३ अप्रेल (वैशाख बुदि २ संवत् १७४०) को बड़े वेग के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि अब्दुल्ला खां अपने अन्य तीस सैनिको के साथ युद्ध क्षेत्र में मारा गया, तथापि राठौड़ पाली पर अधिकार न कर सके। इसके बाद भी वे परगने में लूटमार करते रहे। सन् १६८४ ई. के अन्तिम दिनों में जब उन्होंने पाली में बहुत से जानवर लूटे तो मुहम्मद अली उनके विरुद्ध भेजा गया। खारला (खारड़ा)[१३७] नामक स्थान पर सोमवार, १७ दिसम्बर सन् १६८४ ई. (पौष सुदि ९) को दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई जिसमें दोनों पक्षों की काफ़ी क्षति हुई। परन्तु शाही अधिकारी राठौड़ों को दबाने में समर्थ न हो सके और बाद के वर्षों में भी अन्य परगनों की भांति इस परगने में भी लूटमार की घटनाएं होती रही।[१३८]

सिवाना

पाली के पश्चिम में सिवाना का परगना था। सन् १६८१ ई में इस परगने के वीटो जी नामक गांव को राठोड़ सोनग के नेतृत्व में राठौड़ों ने सफलतापूर्वक लूटा।[१३९] सोमवार, ४ सितम्बर, सन् १६८२ ई. (भाद्रपद सुदि १३ संवत् १६३९) को बाला राजपूतों ने सोकलसर[१४०] नामक गांव में फौजदार इनायत खां के पुत्र नूरअली को परास्त किया।[१४१] लगभग डेढ़ वर्ष बाद राठौड़ों ने बुधवार, २५ मार्च, सन् १६८४ ई. (चैत्र सुदि १, संवत् १७४२) को सिवाना में पुरदिल खाँ को परास्त करके सिवाना पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[१४२] इस प्रकार सिवाना में राठोड़ों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

---

१३६. फौजचन्द. ३० व ३४; राजरूपक. २९०; मूंदियाड. १८८-९; अजितविलास. २१६ ब; राठोड़ा २३,-२४।

१३७. यह स्थान पाली से लगभग ग्यारह मील उत्तर की ओर है।

१३८. राजरूपक. २११, २२९-३१; व २३५ ७।

१३९. दस्तूर १४१।

१४०. यह स्थान सिवाना से लगभग सात मील पूर्व की ओर है।

१४१. राजरूपक. २२१-३; मूंदियाड़ १८८; अजित विलास. २१६. ब।

१४२. अजितोदय. सर्ग १२, श्लोक २३-३८; ख्यात. भाग २, ७३; अजितविलास. २१८ ब; फौजचन्द. ४२; राठोड़ा २६।

मुस्ताद खाँ (१५६) ने लिखा है कि राठौड़ों ने १४ अप्रेल को सिवाना पर अधिकार किया था। परन्तु यह सम्भवतः वह तिथि है जब यह समाचार बादशाह को मिला था। सभी ख्यातों में २५ मार्च का ही उल्लेख हैं। अतः उसी को स्वीकार किया गया है।

जालोर—

पाली तथा सिवाना के दक्षिण में स्थित जालोर नामक परगना गुजरात के निकट था, अतः गुजरात एवं मारवाड़ तथा दिल्ली के बीच आने-जाने वाले प्रायः सभी व्यापारी यहाँ से होकर जाते थे। फलतः राठौड़ों को यहाँ लूटमार की सुविधा अधिक थी। इसलिये उनका ध्यान इधर विशेष रूप से आकर्षित रहा और वे अक्सर व्यापारियों को लूटते रहे। सन् १६८२ ई. में राठौड़ों ने भादराजन[१४३] पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। नूरअली सम्भवतः इन्हीं दिनों सिवाना से लौटा था। उसे पुनः एक बड़ी सेना देकर भादराजन भेजा गया। परन्तु सिवाना की भाँति यहाँ भी उसे सफलता न मिल सकी और जोधा उदयभान ने उसे भागने पर बाध्य कर दिया।[१४४] इस समय से लेकर सन् १६८४ ई. के अन्त तक बिना किसी हस्तक्षेप के यहाँ राठौड़ों का प्रभुत्व बना रहा। सन् १६८५ ई. के आरम्भ में इनायत खाँ ने नूरअली को भादराजन पर आक्रमण करने के लिये पुनः भेजा। शनिवार, ३१ जनवरी, सन् १६८५ ई. (माघ सुदि ७, संवत् १७४१) को भादराजन में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें लगभग पाँच सौ मुग़ल-सैनिक मारे गये तथा एक हजार घायल हुये और राठौड़ों ने मुग़लों से एक सौ ऊँट, एक तोप तथा बहुत सा गोला-बारूद छीन लिया। शाही सेना की असफलता का समाचार सुनकर इनायत खाँ ने अपने दूसरे पुत्र मुहम्मद अली को उधर भेजा, परन्तु उसे भी सफलता न मिली।[१४५] अगले वर्ष भादराजन पर पुनः आक्रमण किया गया, परन्तु शाही सेना असफल ही रही। भादराजन के अतिरिक्त परगने के अन्य क्षेत्रों में भी छुटपुट घटनाएँ होती रहीं। रविवार, ११ अप्रेल, सन् १६८६ ई. (वैशाख बदि १४, सवत् १७४३) को राठौड़ों ने जालोर पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप वहाँ का सेनानायक बिहारी फ़तह खाँ बिना लड़े ही भाग खड़ा हुआ।[१४६] इस प्रकार सिवाना की भाँति जालोर में भी राठौड़ों को आशातीत सफलता मिली।

अन्य स्थानों की घटनाएँ—

सन् १५८३ ई. में मगरा में ऊदावत जगराम, राजसिंह, जोधा भीम तथा शिवसिंह आदि बहुत से राठौड़ों को एकत्र होता देखकर असद खाँ ने उन्हें दबाने के लिये अजमेर से अपने पुत्र को भेजा। परन्तु राठौड़ों ने उनकी रसद पहुंचने का मार्ग बन्द करके उन्हें वापस भाग जाने के लिये विवश कर दिया। अगले वर्ष सन् १६८४

---

१४३. यह स्थान जालोर से लगभग २५ मील उत्तर-पूर्व की ओर है।

१४४. ख्यात. भाग २, ६९; मूंदियाड़. १८७; अजित विलास. २१६ अ।

१४५. राजरूपक. २६९-७४; ख्यात. भाग २, ७०; जुनी ७५; अजितोदय. सर्ग १२, श्लोक २-९; फ़ौजचन्द ३९; राठौड़ा. २४।

१४६. राजरूपक २९२-५; ख्यात. भाग २, ७३-४; मूंदियाड. १०२; फौजचन्द ४४-५ अजितविलास. १९ अ।

ई. के आरम्भ में मगरा के इन विरोधियों को दबाने के लिये नूरग्रली को भेजा गया। उसने मिणियारी नामक गाँव में मंगलवार, २५ मार्च (वैशाख बदि ५) को ऊदावत रूपसिंह तथा बारहठ केसरीसिंह आदि को परास्त किया। एकाध महीने के लिये राठौड़ शान्त हो गये, परन्तु कुछ ही महीनों के बाद राठौड़ों ने पुनः शक्ति संगठित की और वे इतना अधिक उपद्रव करने लगे कि उन्हें दबाने के लिये इनायत खाँ ने ग्यारह हजार सैनिकों के साथ बहलोल खाँ नामक शाही सेनापति को भेजा। चांपावत रामसिंह और सामन्तसिंह ने डटकर उसका सामना किया। इस युद्ध में लगभग एक हजार मुग़ल सैनिक मारे गये और राठौड़ों के केवल दो सौ व्यक्ति मारे गये।[१४७] इस प्रकार इस प्रदेश में शाही सेनाएँ प्रायः असफल रहीं।[१४८]

राठौड़ों के उपद्रव मारवाड़ तक ही सीमित नहीं थे। सन् १६८१ ई. में उन्होंने मेवाड राज्य में स्थित शाहपुरा नामक स्थान में लगभग एक सौ घर जला डाले[१४९] और सन् १६८६ ई. में इसी राज्य के मालपुरा नामक स्थान को लूटा।[१५०] मंगलवार, ३१ जनवरी, सन् १६८२ ई. (फाल्गुन सुदि ३, संवत् १३८) को पुर मांडल लूटा गया। सन् १६८१ ई, सन् १६८२ ई. व सन् १६८४ ई. में राठौड़ों के अजमेर की ओर जाने का उल्लेख भी मिलता है।[१५१] सन् १६८५ ई. में तोडा में राठौड़ों ने मुग़लों का विरोध किया। इनायत ख़ाँ ने नूरग्रली तथा मुहम्मद अली को उधर जाकर उन्हें दबाने का आदेश दिया था। इन दोनों ने मार्ग में महेव नामक गाँव में भाटी सबलसिंह को परास्त करके बन्दी बना लिया। परन्तु तोडा में उन्हे सम्भवतः विशेष सफलता नहीं मिली और स्थिति में सुधार नहीं हुआ।[१५२] गुजरात भी राठौड़ों के आतंक से सुरक्षित न रह सका। उन्होंने सन् १६८२ ई. में चांपावत उदयसिंह, करणोत खीवकरण, मेड़तिया मोहकमसिंह तथा ऊदावत

---

१४७. राजरूपक. २३१-३, २४२-३, २४५-५१; फौजचन्द, ३४ व ३६; ख्यात भाग २, ७१-२; मूंदियाड़. २८६; अजिविलास, २१६ ब।

१४८. सन् १६८१ ई० में मकराणा, (ख्यात. भाग २, ६८; जुनी ७१; मूंदियाड़ १८७; कविराज ५२१; बांकीदास् ३६; अजितविलास. २१६ अ); सन् १६८२ ई० में बीलाड़ा एवं पीपाड़ (अजितविलास २१६ अ; राठौड़ा २२); नवम्बर सन् १६८६ ई० में सांचोर (राजरूपक. २८६ -७; फौजचन्द ४३: राठौड़ा २६); में उपद्रव हुए। सन् १६८१ ई० में खेतावत (दस्तूर. १४१); सन् १६८४ ई० में उत्तरां: सन् १६८५ ई० में राडद्रह तथा सन् १६८६ ई० में देईसर (राजरूपक. २५२.२८६ व २८५) नामक गाँव लूटने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त सन् १६८१ ई० में नाडेल (सम्मभवतः नाडोल) की मुगल चौकी लूटी गई। (दस्तूर. १४१) तथा सन् १६८५ ई० में गोड़वाड़ प्रदेश में उपद्रव होते रहे। (राजरूपक. २८७)

१४९. दस्तूर १४१।

१५०. ख्यात. भाग २. ७८; मूंदियाड़. १९२-३।

१५१ राजरूपक. २१२, २१३-४ व २३८; मुस्ताद खां. १३३; मूंदियाड़ १८७; अजितविलास. २१६ अ; फौजचन्द. ३०; दानेश्वर, २०२; अजितोदय. सर्ग ११; श्लोक. ४५।

१५२. राजरूपक. २७१-८; ख्यात. भाग २, ७३; मूंदियाड. ६१; अजितविलास. *१८ ब; फौजचन्द ४०-१; राठौड़ा *५।

राजसिंह आदि ने खेरालु नामक गाँव को लूटा। यह समाचार पाकर जब सैयद मुहम्मद नामक शाही अधिकारी उनके दमन के लिये गया तब राठौड़ भाग गये। सैयद मुहम्मद ने इनका पीछा किया। बृहस्पतिवार, १७ अगस्त, सन् १६८२ ई. (भाद्रपद बदि ९) को राणपुर नामक स्थान पर दोनों की मुठभेड़ हुई जिसमें राठौड़ों को काफ़ी क्षति उठानी पड़ी और शाही सेना के केवल सात व्यक्ति मारे गये।[१५३]

शाही अधिकारियों ने भी राठौड़ों को दबाने का पूर्ण प्रयत्न किया। शक्ति प्रयोग के अतिरिक्त ऊँचे पद व धन का लोभ देकर उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया गया। कुछ राठौड़ों ने लोभ में पड़कर राठौड़ों का साथ छोड़कर शाही सेवा स्वीकार भी कर ली। मोहकमसिंह मेड़तिया तथा उदयभाण मुकुन्ददासोत मुग़ल सेवा में चले गये और क्रमशः तोसीणा व भादराजन में सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये गये।[१५४] परन्तु ऐसे राठौड़ों की संख्या नगण्य थी। इसके विपरीत कुछ ऐसे राठौड़ सरदार भी थे जो पहले मारवाड़ के राठौड़ों के सहयोगी नहीं थे, परन्तु बाद में किसी विशेष कारणवश अथवा स्वदेश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर उनके साथ हो गये थे। सन् १६८१ ई. में मोहकमसिंह कल्याणदासोत तथा सन् १६८४ ई. में राठौड़ संग्रामसिंह ने शाही सेवा छोड़ दी और सन् १६८२ ई. में ऊदावत जगराम मेवाड़ से तथा सन् १६८५ ई. में जेतावत अर्जुनसिंह इन्द्रसिंह की सेना से अलग होकर मारवाड़ आ गये।[१५५] इन लोगों के आ जाने से राठौड़ों की शक्ति में वृद्धि हो जाया करती थी।

सन् १६८१ ई. में शाही आज्ञानुसार असद ख़ाँ ने राज्य में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये राठौड़ों से सुलह करने का निश्चय किया और इसके लिये राणा जयसिंह के भाई भीमसिंह के माध्यम से बातचीत प्रारम्भ करवाई। इस समय राठौड़ दुर्गादास दक्षिण में था और उसकी अनुपस्थिति में राठौड़ सोनग राठौड़ों का नेतृत्व कर रहा था। उसने असद ख़ाँ के प्रस्ताव को स्वीकार किया और सन्धि की शर्तें तय करने के लिये अजमेर की ओर गया। परन्तु अकस्मात् मार्ग में ही पूँजलोता नामक गाँव में उसकी मृत्यु हो गई। यह समाचार सुनकर असद ख़ाँ ने अपना विचार बदल दिया। उसका अनुमान था कि सोनग की मृत्यु के उपरान्त योग्य नेतृत्व के अभाव के कारण राठौड़ निर्बल हो जायेंगें। परन्तु उसका अनुमान ठीक न निकला। राठौड़ों ने सोनग के भाई अजबसिंह के नेतृत्व में विरोध पूर्ववत् जारी रक्खा। अजबसिंह की मृत्यु के बाद भी चांपावत उदयसिंह ने यह कार्यभार सम्भाला।[१५६] इस प्रकार मारवाड़ के बखेड़े शिथिल नहीं हुए।

---

१५३. राजरूपक २१३–२०; मूंदियाड़ १८८; ख्यात. भाग २, ७०; अजितविलास २१६ अ।

१५४. मूंबियाड़. १८८ व १८६; राठौड़ा २३-४।

१५५. राजरूपक २०२. २६३: ख्यात. भाग. २ ६७–८, ६६, ७*; मूंदियाड़ १८५–६. १८७, १६०; फौजचन्द २७, ३८–६, ४०।

१५६. राजरूपक १६६–२०१; खयात. भाग २, ६८; जुनी. ७२; मूंदियाड़ १८६; अजितोदय सर्ग ११, श्लोक ३०–१; वीर भाग २, ८३१; फौजचन्द २ब; अजितविलास २१५ अ ब; राठोड़ी

राठौड़ संघर्ष एक विचित्र वातावरण को लेकर पनप रहा था। सभी प्रमुख राठौड़ सरदार अपनी अपनी सेना की टुकड़ियों के साथ जहाँ भी अवसर पाते थे, आक्रमण कर देते थे। यदि शाही सेना की शक्ति अधिक होती तो वे छुटपुट घटनाओं के उपरान्त ही भाग जाते थे; किन्तु यदि मुग़ल अधिकारी निर्बल होते तो वे खूब लूटमार करते और पेशकश भी वसूल करते थे। कभी-कभी ये लोग किसी स्थान पर अधिकार भी कर लेते थे। प्राय: उनका अधिकार स्थायी न हो पाता था और मुगल सेनाएँ आकर उन्हें हटा देतीं थीं। जहाँ कहीं वे देखते कि मुग़ली थानों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध नहीं है, वे अपने सैनिकों सहित जा पहुँचते और आस-पास के क्षेत्रों से रुपया वसूल किया करते थे। यदि वे धन वसूल न कर पाते थे तो क्रोधित होकर थानों को जलाने में भी नहीं चूकते थे। मुग़ल सैनिकों के लिये भेजी जाने वाली रसद तथा राज्य में से होकर जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं को भी वे लूटा करते थे।

मुग़ल-राठौड़ संघर्ष का परिणाम अच्छा न हुआ। साधारण जनता का जीवन अत्यन्त संकट में पड गया। प्रतिदिन की दिनचर्या में ही गतिरोध होने लगा। फलत: राज्य की खेती को गहरा धक्का लगा। व्यापारियों के लिये मार्गों की सुरक्षा न थी; अत: वे भी डरने लगे, जिससे व्यापार को भी आघात पहुँचा। शाही अधिकारियों के लिये भी शासन में सुव्यवस्था बनाये रखना कठिन हो गया। राठौड़ों के आक्रमण चूँकि अचानक यत्र-तत्र हुआ करते थे अत: शाही सैन्य शक्ति भी राज्य भर में बिखर गई थी। शाही कर्मचारियों को सदैव सचेत रहना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उनके लिये भी आवागमन दुष्कर होने लगा था। सन् १६८२ ई. में जब क़ासिम खाँ शाही आज्ञानुसार दक्षिण की ओर जा रहा था, तो राठौड़ों ने उस पर आक्रमण करके शाही निशान व अन्य वस्तुएँ छीन ली थी।[१२७] स्वयं राठौड़ों के सम्मुख भी कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं थीं। युद्धों के कारण उनकी संख्या निरन्तर घटती जा रही थी। इसके अतिरिक्त खेती विनष्ट हो जाने के कारण खाद्यान्न की समस्या कठिन हो गई थी। मारवाड से बाहर राठौड़ों के सहायक नगण्य थे, अत: उन्हे बाहर से भी रसद नहीं प्राप्त होती थी। संक्षेप में राठौड़ के सरदारों के विद्रोहों का परिणाम दोनों के लिये क्षतिकर ही रहा।

राठौड़ों का सौभग्य था कि जनता का सहयोग उनके साथ था तथा बादशाह के लिये दक्षिण की समस्याएँ दिन प्रतिदिन गम्भीर होती गईं। फलत: मारवाड पर शाही दबाव घटता गया और शाही सेनाएँ तथा योग्य सेनापति भी इधर भेजना सम्भव न हो सका। राठौड़ों ने औरंगजेब की इस विवशता का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

१८–९; बाकीदास ३५; कविराजा ५२१; दस्तूर १४२।

१२७, राजरूपक २१४; ख्यात. भाग २, ६६; मूंदियाड़. १८७; फतेचन्द ३०, दामेश्वर-२०२।

४

अजीतसिंह के प्रारम्भिक वर्ष

(सन् १६७९ ई० से सन् १७०७ ई०)

(क) अजीतसिंह की गुप्तावस्था व दुर्गादास का दक्षिण से लौटना (सन् १६७९–८७ ई.)

अजीतसिंह को दिल्ली से निकालने के बाद राठौड़ सरदारों ने उसे छिपाकर जोधपुर ले जाने की चेष्टा की। परन्तु शीघ्र ही दुर्गादास तथा अन्य सरदारों को यह स्पष्ट हो गया कि जोधपुर में अजीतसिंह का रहना ठीक नहीं है, इसलिये दुर्गादास ने राजकुमार की सुरक्षा का भार खीची मुकुन्ददास को सौंपा और स्वयं सिरोही राज्य में स्थित बीसलपुर नामक स्थान पर रुक कर शाही सेना का सामना करने की तैयारी करने लगा।[1] खीची मुकुन्ददास अजीतसिंह को लेकर बलून्दा नामक स्थान पर पहुँचा और वहाँ चाँदावत मोहकमसिंह की पत्नी तथा उसके पुत्र हरीसिंह के पास राजकुमार को रखकर स्वय वेष बदलकर उसकी देखरेख के लिये वहीं रहने लगा। कुछ दिन उपरान्त जब उसने देखा कि बलून्दा के चारों ओर मेड़ता, जैतारण, बीलाड़ा तथा सोजत में शाही सेनाएं फैल गई हैं[2] और स्वयं सम्राट् औरंगजेब अजमेर आ पहुँचा है (बृहस्पतिवार, २५ सितम्बर, सन् १७६९ ई.) तो उसने अन्य राठौड सरदारों से सलाह करके मेवाड़ के राणा राजसिंह को एक पत्र लिखा और अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की। राणा की स्वीकृति पाते ही दुर्गादास व सोनग राजकुमार अजीतसिंह को लेकर मेवाड़ गये। राणा राजसिंह ने उनका स्वागत किया और अजीतसिंह को बारह गाँव और कैलवा का पट्टा दिया।[3]

राठौड़ो एवं सीसोदियों के मिल जाने का समाचार सुनकर बादशाह ने मेवाड़ की विरोधी प्रवृत्ति को शीघ्रातिशीघ्र कुचलने का निश्चय किया। औरंगजेब के इस निश्चय का समाचार सुनकर राणा ने भी अपने विश्वस्त सरदारों के साथ

---

१. ख्यात. भाग २, ५६।

२. अजितोदय सर्ग ७, श्लोक. २-५; राठौड़ां. २ ब ६; रेऊ. भाग १, २५४।
वाकया (३६९) में लिखा है कि राजकुमार को हरिनास नामक एक व्यक्ति के पास रक्खा गया था।

३. राजविलास. १२६; वीर. भाग २, ४६३, ८३०; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ४८८-९; मेवाड़. १६९।

बातचीत की और उदयपुर तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों को खाली करने का निश्चय किया। अजीतसिंह को सुरक्षा के लिये मेवाड़ के राजपरिवार के साथ भोमट जिले में स्थित नैणवारा नामक गाँव में भेज दिया गया।[४] कुछ दिनों के बाद अजीतसिंह का मेवाड़ में रहना सुरक्षित न देखकर उसका संरक्षक मुकुन्ददास उसे सिरोही राज्य की ओर ले गया।[५] सिरोही में महाराजा जसवन्तसिंह की रानी देवड़ी ने उसे आश्रय दिया। परन्तु सिरोही का शासक बैरीसाल बादशाह के विरोधी को आश्रय देकर खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। फलतः रानी देवड़ी ने कालन्द्री नामक गाँव के पुष्करण ब्राह्मण पुरोहित जयदेव को बुलाया और राजकुमार को उसे सौंप दिया। उसकी पत्नी ने अपने बच्चों की तरह अजीतसिंह का भी पालन-पोषण किया। खीची मुकुन्ददास भी वेष बदल कर सदैव उसके समीप बना रहा। आबू की इन पहाड़ियों में ही अजीतसिंह के जीवन के अगले कुछ वर्ष (लगभग छः वर्ष) व्यतीत हुए।[६]

राठौड़ों का विरोध लगभग पिछले आठ वर्षों से चल रहा था। आरम्भ में तो शाही सेना के विरोध एवं अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के आदर्श के लिये ये लोग लड़ते रहे। शिशु कुमार अजीतसिंह के विषय में कोई विशेष उत्कंठा सम्भवतः इसलिये नहीं दिखाई गई कि शायद उसका पता लग जाने पर उसका जीवन संकट में हो जाय। परन्तु अब शाही सेना के आक्रमण का वेग धीमा पड़ रहा था और उधर से कोई विशेष खतरा नहीं दिखाई पड़ रहा था। इधर राठौड़ सरदारों के मन में अजीतसिंह के विषय में भी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा बलवती हो रही थी। कुछ प्रमुख राठौड़ सरदार सियाना परगने में स्थित मोकलसर नामक गाँव में एकत्र हुए और उन्होंने इस विषय पर विचार किया। सम्भवतः सभी का यही

---

४. वीर. भाग २, ४६४; मेवाड़, १७०।

५. अजीतसिंह को मेवाड़ से सिरोही में कब लाया गया, इसका निश्चित उल्लेख कहीं नहीं मिलता। केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो जब शाही सैनिकों का दबाव मेवाड़ पर बढ़ गया तो युद्ध के बीच कभी अवसर पाकर राजकुमार को चुपचाप मेवाड़ से हटा दिया गया हो; अथवा यह भी सम्भव है कि राणा जयसिंह और औरंगजेब के बीच सन्धि हो जाने के पश्चात् उसे मेवाड़ से सिरोही राज्य में ले जाया गया हो।

६. ख्यात भाग २. ४४-५; अजितोदय. सर्ग ६; श्लोक ६; वीर भाग २, ६६२-३ व ८३०; मूंदियाड़ा १८०-१, १८३. १९३; दानेश्वर. २०५; राठौड़ां ५, ६, ७, व ११; गुटका. ३०९ अ; ओझा. भाग ४, खंड २, ५००; रेउ. भाग १. २५४; मेवाड़ १६७।

वंश (भाग ३, २८५९ तथा भाग ४, २९४३ में लिखा है कि अजीतसिंह का पालन-पोषण किसी ब्राह्मण के घर हुआ था। राजरूपक १८१ तथा जोधपुर के राठौड़ां री ख्यात (७) में केवल इतना लिखा है कि अजीतसिंह की बाल्यावस्था आबू की पहाड़ियों में व्यतीत हुई थी। टॉड (भाग २५५) व सरकार (औरंगजेब; भाग ३; ३३४) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी का समर्थन किया है। इस प्रकार परोक्ष रूप इन सबसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि अजीतसिंह सिरोही में रहा था।

विचार था कि यदि अजीतसिंह को अब गुप्तावस्था से प्रकट नहीं किया गया तो राठौड़ सैनिकों की कुण्ठित इच्छा-शक्ति को जगाना कठिन हो जायेगा, और ऐसी परिस्थिति में मुगल सत्ता के विरुद्ध जो विरोध चल रहा है वह अधिक दिन तक जीवित न रह सकेगा। उन्होंने चाँपावत उदयसिंह को मुकुन्ददास खीची के पास भेजकर यह प्रार्थना पहुंचाई कि अजीतसिंह को अब प्रकट किया जाय। पहले तो मुकुन्ददास ने यह कहा कि उसे राजकुमार के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नही है, परन्तु जब उदयसिंह ने बार-बार अनुरोध किया तो उसने यह कहकर टाल दिया कि वह राठौड़ दुर्गादास की अनुमति के बिना राजकुमार को प्रकट नही कर सकता। मुकुन्ददास द्वारा दुर्गादास को इतना अधिक महत्व देना उदयसिंह को रुचिकर नही लगा और उसने यह कहा कि आखिर अन्य राठौड़ सरदारो ने भी राजकुमार के लिये त्याग किया है और कष्ट उठाया है। अतएव उनकी इच्छा का भी ध्यान रखना चाहिये। उदयसिंह की अप्रसन्नता से मुकुन्ददास कुछ घबड़ाया और यह सोचकर कि इन सरदारों की अप्रसन्नता से राजकुमार अजीतसिंह की शक्ति घट जायेगी, उसने अजीतसिंह को प्रकट करना स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप सिरोही राज्य मे ही स्थित पालड़ी नामक गांव में शुक्रवार, १८ मार्च सन् १६८७ ई. (चैत्र सुदि 15, सवत् १७४४) को उदयसिंह ने पहले पहल अजीतसिंह का दशन किया। वहीं से उसने अन्य सरदारों को भी समाचार भेजा। मोकलसर मे एकत्र लगभग सभी सरदार वहाँ आये। विधिवत् एक दरबार का आयोजन किया गया जिसमें सर्वप्रथम हाड़ा दुर्जनसिंह[७] आकर अजीतसिंह से मिला और उसने एक मोतियों की माला भेंट की। अजीतसिंह ने भी उसका यथोचित सम्मान किया।[८] तत्पश्चात् अन्य सभ सरदारों ने अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार राजा को नजर व निछावर भेंट किया।[९]

---

७. हाड़ा दुर्जनसिंह बूंदी का एक विद्रोही सरदार था, जिसने वहाँ के राव अनुरूद्धसिंह की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर बल पूर्वक बूंदी पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था। जब अनिरूद्ध सिंह को यह समाचार मिला तो वह बादशाह की अनुमति लेकर जल्दी से बूंदी लौट आया। फलतः दुर्जनसिंह सन् १६८६ ई० में भागकर मारवाड़ के विद्रोही सरदारों से आ मिला।

८. किसी व्यक्ति के दरबार में उपस्थित होने पर महाराजा उसका अभिवादन किस प्रकार ग्रहण करे और उसे दरबार में कहाँ बैठाया जाय; इस विषय के कई नियम जोधपुर राज्य में प्रचलित थे। इन्ही में हाथ का कुर्ब व सिरे का कुर्ब हुआ करता था। ख्यातों में लिखा है कि अजितसिंह ने दुर्जनसिंह को कुर्ब भी दिया था; परन्तु कुर्ब किस प्रकार का था, इसका कोई उल्लेख नही मिलता।

९. ख्यात. भाग२, ७८-९; मूदियाड़. १६३ ५; राज-रूपक. २६६-७; जुनी. २१-२; बाँकीदास १६; वीर. भाग २, ८३२; कविराजा. ५२२-३; अजितोदय. सर्ग १३, श्लोक १४-२०; अजितविलास २२० ब २२१ ब; वार्ता. ३५ ब; राठौड़ा. ९७-९; गुटका. २३२ ब; टॉड, भाग ९, ५५-६; रेउ. भाग १, २७८; ओझा. भाग ४, खंड २, ५०५-६।

राजकुमार अजीतसिंह को प्रकट करने की तिथि के विषय मे मतभेद हैं। ख्यात. (भाग २, ७८); जुनी. (७१-२); बांकीदास री ख्यात (३६); वीर.(भाग २; ८३२); कविराजा मुरारीदान री ख्यात (५२२-३); अजितविलास (२२०ब-२२१ ब); वार्ता (३५ ब); राठौड़ा. (२७ ६); गुटका. (३३२ ब) आदि अधिकांश राजस्थानी ख्यातों व ग्रन्थों में इस घटना की तिथि २३ मार्च (वैशाख वदि ५) स्वीकार की गई है। ओझा (भाग ४ खंड २, ५०५-६) व गहलोत (मारवाड़ १५६) ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। मूंदियाड़. (१६३-५) व राठौड़ा. (२७) में लिखा है कि राजकुमार को १३ मार्च (चैत्र सुदी १३) को बाहर लाया गया था। परन्तु राजरूपक चूँकि समकालीन ग्रन्थ है, अतः उसमें उल्लिखित तिथि को मान्यता देना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

खीची मुकुन्द दास ने राजकुमार का प्रकट करना किस प्रकार स्वीकार किया इस विषय में भी मतभेद है। अजितोदय (सर्ग १३, श्लोक १४-२०) में लिखा है कि बहुत आग्रह करने पर भी जब मुकुन्द दास ने राजकुमार को प्रकट करना स्वीकार न किया तो उदयसिंह ने उससे कहा कि अजीतसिंह को राठौड़ सरदार जितनी भेंट देंगे, वह उसे दे दी जायेगी। इस शर्त पर खीची मुकुन्द दास सहमत हो गया। राजरूपक. (२९६-७) व राठौड़ा (२७) में लिखा है कि इन्हीं दिनो हाड़ा दुर्जनसिंह राठौड़ से आकर मिला था। राठौड़ों ने उससे अनुरोध किया कि वह अजीतसिंह को प्रकट करवा दे। दुर्जनसिंह ने मुकुन्द दास को बुलवाया और राजकुमार को बाहर निकालने के लिये कहा। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया; तब चौहान मुकुन्दसिंह नामक एक सरदार ने कहा कि राठौड़ सरदार तभी अन्न जल ग्रहण करेंगे, जब राजकुमार के दर्शन हो जायेंगें। तब खीची को उनकी बात माननी पड़ी। वार्ता (३५) में लिखा है कि उदयसिंह ने मुकुन्ददास को सिरे दरबार का कुर्ब (अन्य सरदारों से ऊपर बैठने का अधिकार) और उसकी दो बेटियों का विवाह कराने का आश्वासन दिया था। परन्तु यह मत कपोल कल्पित प्रतीत होते हैं। अजितोदय तथा राजरूपक दोनों समकालीन ग्रन्थों का विवरण भी भिन्न भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियों ने घटना को केवल रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। जोधपुर राज्य की ख्यात व जुनीवही आदि का विवरण अधिक तर्क सम्मत जान पड़ता है।

अजितसिंह के प्रकट होने से सम्बन्धित एक राजस्थानी गीत पर आधारित एक रुचिकर कथा भी मिलती है। राजस्थान भारती (जुलाई १९५१, वर्ष ३, अंक २, ५९-६१) में उदयराज उज्जवल के 'महाराजा अजीतसिंह की परीक्षा का एक डिंगल गीत' नामक लेख में यह सदर्भ मिलता है। लेखक के अनुसार राठौड़ों ने दिल्ली से निकाल कर अजीतसिंह को चौदह वर्ष तक छप्पन की पहाड़ियों में रक्खा था। अन्त में राठौड़ों में राजा को देखने की इच्छा तीव्र हो उठी। तब दुर्गादास ने उससे कहा कि सभी का एक साथ जाकर राजा से मिलना ऐसी संकटमय स्थिति में उचित नहीं है; अतः वे अपना एक प्रतिनिधि चुनकर भेज दें। तब राठौड़ो ने खिड़िया तेजसी, जो दरबारी चारण कवि था, को चुना। दुर्गादास ने उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर राजा के पास पहुँचाया, ताकि उसे मार्ग का पता न चले। वह तीन दिन वहाँ रहा और उसने अजीतसिंह के ज्ञान की परीक्षा की। तब लौट कर राठौड़ सरदारों को एक डिंगल गीत सुनाया, जिसमें अजीतसिंह की योग्यता का वर्णन था। इससे राठौड़ को सांत्वना मिली। यह गीत इस प्रकार है—

असपत रो साल दिली रो ओठम,

पुरो बिहुँ पंखा सुप्रवीत।"

परन्तु यह केवल कथा मात्र है। अजीतसिंह न तो छप्पन के पहाड़ों में था; न उसकी आयु चौदह वर्ष थी और न ही दुर्गादास उत्तर भारत में उपस्थित था।

इसके पश्चात् अजीतसिंह को मारवाड़ का भ्रमण कराया गया। सर्वप्रथम राठौड़ सरदार उसे आडवा ले गये। तदनन्तर बगडी, रायपुर, बीलाड़ा, बलून्दा, रींया, आसोप, लवेरा, खेड़, खींवसर होता हुआ वह फलोदी परगने के कालू नामक स्थान पर पहुंचा और वहाँ उसने रविवार, २६ अगस्त (भाद्रपद सुदि १०) को पाबू जी[१०] के दर्शन किये।[११]

सन् १६८१ ई० में जब शाहजादा अकबर राजपूताने से भागकर अपनी सुरक्षा के लिये दक्षिण की ओर गया तब उसकी सहायता के लिये राठौड़ दुर्गादास भी उसके साथ-साथ दक्षिण गया और उसने शाहज़ादे की यथाशक्ति पूरी सहायता की परन्तु जोधपुर की राजनीति से वह भलीभांति परिचित था। मारवाड़ संघर्ष के समाचार उसे विभिन्न राठौड़ सरदारों के पत्रों द्वारा नियमित रूप से मिलते रहते थे। जुलाई, सन् १६८६ ई० (श्रावण, सवत् १७४३) में मुकुन्ददास खींची के एक पत्र द्वारा उसे यह भी सूचना मिल चुकी थी कि राठौड़ सरदार अजीतसिंह को देखने के लिये अत्याधिक आतुर हैं और ऐसी परिस्थिति में उसे अधिक दिन गुप्त रखना सम्भव न हो सकेगा। साथ ही मुकुन्ददास ने दुर्गादास को दक्षिण से यथाशीघ्र वापस आने के लिये भी लिखा था।[१२]

यह पत्र पाकर दुर्गादास ने मारवाड़ लौटने का निश्चय किया और अकबर से इसके लिये अनुमति माँगी। शाहज़ादे ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और विदा करते समय उसे आज्ञा दी कि वह उसके पुत्र व पुत्री (जो राठौड़ सरदारों के साथ थे) का विशेष रूप से ध्यान रक्खे। दुर्गादास ने अकबर को उचित अवसर पाकर पुनः मारवाड़ आने का निमंत्रण दिया और यह आश्वासन भी दिया कि उसे भविष्य में भी राठौड़ सरदारों से पूरा सहयोग मिलेगा। बुधवार, २६ जनवरी, सन् १६८७ ई० (फाल्गुनबदि ८, संवत् १७४३=२२ रबीउल अव्वल, १०९८ हि०) को दुर्गादास ने टीटवा नामक गांव से मारवाड़ के लिये प्रस्थान किया।[१३] शाहज़ादे को भी

---

१०. पाबू जी राव आसथान के द्वितीय पुत्र धांधल का छोटा पुत्र था। उसने विवाह मंडप से उठकर गौ और शरणागत की रक्षा के लिये अपनें प्राण दे दिये थे; अत: मारवाड़ के लोग उसकी पूजा करते हैं। फलोदी परगने में कोलू नामन स्थान पर पाबूजी का मंदिर है। (रेउ. भाग १, ४५ हि.)

११. राजरूपक. ३०३-४; अजितोदय सर्ग १३, श्लोक २०; वार्ता. ३४ ब. ३६ अ; टॉड. भाग २, ५६; रेउ. भाग १, २७८; ओझा. भाग ४, खंड २, २७८।

राठौड़ां. (२९) के अनुसार बादशाह नें इसी समय अजीतसिंह को लूटमार बंद करने की शर्त पर जालोर दे दिया था। परन्तु यह अविश्वसनीय है।

१२. ख्यात. भाग २, ७७-८; दानेश्वर. २०४; ओझा. भाग ४, खंड २, ५०४-५।

१३. ख्यात. भाग २, ७८; दानेश्वर. २०४।

जुनी. (७१) में लिखा है कि दुर्गादास ने ८ फरवरी (फाल्गुन सुदि ७) को प्रस्थान किया था। परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में उल्लिखित तिथि को ही स्वीकार करना उचित जान पड़ता है।

बादशाह के विरुद्ध सफलता मिलने की आशा नहीं थी, अत: उसने भारत से बाहर जाकर किसी विदेशी शासक की सहायता लेने का निश्चय किया और इस विचार से वह ईरान की ओर चला गया।[१४]

दुर्गादास ने दक्षिण से लौटते समय मार्ग में खूब लूटमार की और कई स्थानों से धन वसूल किया। मार्ग में वह बदनौर[१५] और रतलाम गया। रतलाम के शासक के भाई आखेसिंह को उसने अपने साथ ले लिया और लूटमार करता हुआ शुक्रवार, २२ अप्रेल, सन् १६८७ ई० (ज्येष्ठ बदि ५, संवत् १७४४) को मालपुरा पहूंचा, जहां सैयद कुतुब ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। युद्ध में लगभग साठ शाही सैनिक मारे गये तथा दुर्गादास के भी बहुत से व्यक्ति काम आये व आहत हुए मार्ग में ही रतनथल नामक एक अन्य गांव में पुन: सैयदों से युद्ध हुआ जिसमें लगभग एक सौ सैयद मारे गये। इसके पश्चात् दुर्गादास केकड़ी व मार्ग के अन्य गाँवों को लूटता हुआ अजीतसिंह के प्रकट होने के कई महीने बाद ८ अगस्त, सन् १६८७ ई०(श्रावण सुदि १० संवत् १७४४) को भीमरलाई नामक अपने गांव में पहुंचा। कुछ ही दिन बाद वह अकबर के बच्चों को देखने के लिये बाड़मेर गया।[१६]

फुतूहात (११९ अ) व तमीरात (२८३) के अनुसार दुर्गादास ने पहले अकबर को विदेश के लिये विदा किया, तदुपरान्त स्वयं मारवाड़ के लिये यात्रारम्भ की। ओझा (भाग ४, खण्ड २, ५०५) व आसोपा (मूल. २१०) ने भी ऐसा ही लिखा है। परन्तु यदि ऐसा होता तो राजस्थानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख अवश्य किया जाता। अतएव इस मत को स्वीकार नहीं किया गया।

अजितोदय. (सर्ग १३. श्लोक १–१०) में लिखा है कि दुर्गादास के साथ ही अकबर भी मारवाड़ की ओर रहा था, परन्तु कुछ ही दूर बढ़ने पर शाही सेना से उनका युद्ध हुआ। शाही सेना को चारों ओर फैला देखकर अकबर ने अपना विचार त्याग दिया और दुर्गादास से कहा कि वह मारवाड़ जाकर सेना लेकर वापस आये। स्वयं अकबर राजा शम्भू के पास ही लौट गया। परन्तु इस मत की पुष्टि नहीं होती।

---

१४. ख्यात भाग २, ७८; जुनी ७१; अजितविलास २२० ब।

तमीरात (२८२) में भी सन् १६८६-७ ई० (१०९८ हि०) में अकबर का विदेश जाना स्वीकार किया गया है।

मुस्ताद खाँ (१३९) ने सन् १६८२-३ ई० (१०९४ हि०) में इस घटना का वर्णन किया है। परन्तु चूंकि अकबर दुर्गादास के उत्तर की ओर प्रस्थान करने के बाद विदेश गया था, अत: इस तिथि को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

१५. फुतूहात. (११९ अ) में इस स्थान का नाम बधनौर लिखा हुआ है। मेवाड़ राज्य में स्थित बदनोर, रतलाम से उत्तर में है अत: ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने बदनावर का ही उल्लेख किया है, जो कि रतलाम से लगभग पचास मील दक्षिण की ओर है।

१६. फुतूहात. ११९ अ; राजरूपक, ३०४; ख्यात. भाग २, ८०; जुनी. ७२; मूंदियाड. १९५; बाँकीदास. ३६; कविराजा. ५२३-४; रेऊ. भाग १, २७९; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०७; रतलाम. २८६।

अजितोदय (सर्ग १३, श्लोक ११–२) के अनुसार दुर्गादास नर्मदा नदी पार करके जब जावद नामक स्थान पर पहुँचा तो उसने अकबर की शक्ल से मिलते-जुलते एक व्यक्ति को अकबर घोषित कर दिया और अकबर के नाम पर वहां से पेशकश वसूल किया और फिर मालपुरा को लूटा। परन्तु यह केवल कवि के मस्तिष्क की उपज मात्र प्रतीत होता है।

मारवाड़ पहुंचते ही दुर्गादास को अजीतसिंह के प्रकट हो जाने का समाचार मिला। इससे वह प्रसन्न नहीं हुआ। राठौड़ सरदारों ने उसकी अनुमति लिये बिना और उसे सूचना दिये बिना ही राजा को गुप्त स्थान से निकाल कर उसकी अवहेलना की थी। सम्भवतः इससे दुर्गादास के आत्मसम्मान को ठेस पहुँची थी और इसी कारण वह अजीतसिंह से भेंट करने नहीं गया। उसने महाराजा को एक पत्र लिखा जिसमें अपने पिछले लगभग छ: वर्षों के कार्यों का संक्षिप्त विवरण देते हुए बताया कि वह कुछ महीनों के बाद उससे मिलने आयेगा। अजीतसिंह को जब दुर्गादास का पत्र मिला तो उसने दरबार में उसकी प्रशंसा की। कुछ दिनों बाद अजीतसिंह तिलवाडा नामक गांव में मल्लिनाथ जी[१७] के दर्शन करने के लिए गया और वहां से आगे बढ़कर वृहस्पतिवार, २० अक्तूबर (कार्तिक बदि १०) को भीमरलाई जा पहुंचा। दुर्गादास ने अपने साथियों सहित आगे बढ़कर उसका स्वागत किया एव निछावर की राजा ने भी सिरोपाव देकर, उसका मान बढ़ाया। तत्पश्चात् दुर्गादास ने अजीतसिंह को परामर्श दिया कि चूंकि बादशाह औरंगजेब से अभी तक मैत्री सम्बन्ध नहीं है, अत: उसे इस प्रकार स्वतंत्र नहीं घूमना चाहिये। अजीतसिंह ने उसकी बात मानली और गूघरोट के पहाड़ों में चला गया।[१८]

(ख) अशान्ति और विरोध (सन् १६८७-९६ ई०)

जुलाई सन् १६७९ ई० में दिल्ली में शाही सेना से मुठभेड़ होने के बाद से बादशाह तथा राठौड़ सरदारों के बीच कभी भी शान्ति नहीं रही। सम्पूर्ण मारवाड़ में राठौड़ लूटमार करते रहे तथा शाही सेनाओं से उनकी मुठभेड़ें होती रहीं। धीरे-धीरे जब राठौड सैनिकों का उत्साह मन्द पड़ने लगा, तब सरदारों ने अजीतसिंह को प्रकट कर मारवाड़ में घुमाया जिससे सैनिकों को पुनः प्रेरणा मिली। उनके एक दल ने सोजत पर अधिकार जमाने के उद्देश्य से वहां जाकर खूब लूटमार की, परन्तु उन्हें सफलता न मिली और वे लौट आये। इसी बीच दुर्गादास भी दक्षिण से आकर उनसे मिला। फलस्वरूप उनकी सैनिक शक्ति में भी वृद्धि हुई। मंगलवार, २५ अक्तूबर, सन् १६८७ ई० (कार्तिक बदि १४, संवत् १७४४) को राठौड़ दुर्गादास, हाडा दुर्जनसिंह, राठौड़ अखेराज तथा चांपावत मुकुन्ददास के नेतृत्व में सोजत पर एक बार फिर आक्रमण हुआ और नगर एवं किले को घेर लिया गया,

---

१७. माल्लीनाथ जी राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी वीरता के कारण मारवाड़ के लोग इन्हें सिद्ध पुरुष मानते हैं और इनकी पूजा करते हैं। तिलवाडा में इनका एक मन्दिर है। (रेऊ. भाग १, ५४, टि.)।

१८. ख्यात. भाग२,८१; जुनी.७२; दानेश्वर. २०७; बांकीदास. ३६; कविराजा. ५२४; राजरूपक. ३०५-६; राठौड़ा. ३०-१; रेऊ. भाग १, २७९; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०७; टॉड (भाग २, ५६) ने लिखा है कि अजीतसिंह २३ अगस्त (भाद्रपद बदि ११) को पोकरण में दुर्गादास से मिला था परन्तु इसे सत्य नही माना जा सकता; क्योंकि इसकी पुष्टि किसी राजस्थानी आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

परन्तु वहां सुजानसिंह केसरीसिंहोत नामक शाही अधिकारी ने उनका डटकर सामना किया। फलस्वरूप उन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। सोजत से दुर्गादास व संग्रामसिंह सिंध की तरफ और जगरामसिंह, राजसिंह तथा हाडा दुर्जनसिंह जैतारण की ओर भाग गये।[१९]

दुर्गादास सिन्ध की ओर से होता हुआ पुर–मांडल गया और वहां उसने पेशकश वसूल किया।[२०] इसके उपरान्त हाड़ा दुर्जनसिंह को साथ लेकर उसने मेवात, मोहम, रोहत तथा रेवाड़ी के परगनों को लूटा और फिर दिल्ली, की ओर बढ़ा। यह समाचार पाकर दिल्ली के नाज़िम आक़िल खां ने अपने पुत्र अब्दुल तई को चार हजार सैनिकों के साथ राठौड़ों को रोकने के लिये भेजा। जब यह सेना राठौड़ों से केवल बीस मील दूर रह गई थी तो दुर्गादास अपने साथियों के साथ सरहिन्द की ओर निकल गया।[२१]

इधर जोधपुर का फौजदार इनायत खां राठौड़ों के आक्रमणों से बहुत परेशान हो गया था। अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी वह राज्य में शान्ति स्थापित नहीं कर पाया। राठौड़ शाही थानों एवं गांवों को लूटते थे, शाही अधिकारियों से धन वसूल करते थे, एवं व्यापारियों को परेशान करते थे। फलतः जनसाधारण, शाही कर्मचारियों एवं व्यापारियों का जीवन अरक्षित हो गया था, और स्थिति दिन

---

१९. ख्यात. भाग २, ७९ व ८१-२; मूंदियाड़. १९५ व १९८-९; अजितविलास २२३ ब; राठौड़ा. ३१; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०६-७।

जुनी. (७२); बांकीदास. (३७) व कविराजा (५२४) ने सोजत में होने वाली युद्ध की तिथि २४ अक्टूबर (कार्तिक बदि १४) लिखी है। परन्तु लिपिक की भूल से १४ के स्थान पर १३ लिखा गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि इन ख्यातकारों द्वारा उल्लिखित तिथियां लगभग प्रत्येक घटना के विषय में जोधपुर राज्य की ख्यात की तिथियों से मिलती हैं।

डा० रघुबीर सिंह (रतलाम. २८६) ने लिखा है कि यह युद्ध सहरगढ़ (शेरगढ़ ?) नामक स्थान पर हुआ था। परन्तु लगभग सभी ख्यातों में शहर व गढ़ अलग-अलग लिखे गए हैं। इससे ऐसा आभास मिलता है राठौड़ों ने सोजत का शहर और गढ़ (दुर्ग) दोनों घेर लिया था।

२०. राजरूपक ३१०-१; ख्यात. भाग २, ८२; मूंदियाड़. १९८-९; राठौड़ा. ३१; आसोपा. २४८।

केवल मूंदियाड़ में यह उल्लेख मिलता है कि दुर्गादास ने सिन्ध से जो पेशकश वसूल किया था उसमें से बीस हजार रुपया अजीतसिंह के पास भेज दिया था। परन्तु अन्य किसी ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती।

२१. फ़ुतूहात. 121 अ ब व 122 ब; सरकार–भाग ५, २२४–५; पूर्व. १४५-६।

अजितोदय (सर्ग १३, श्लोक १२–३); ख्यात (भाग २, ८०); जुनी. (७२); बांकीदास री ख्यात. (३६) में लिखा ह कि जब दुर्गादास दक्षिण से लौट रहा था तो सीधा मारवाड़ नहीं गया। वह लूटमार करता हुआ आगरा के निकट तक पहुँचा था। परन्तु ईश्वर दास नागर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसने मारवाड़ से राठौड़ों को लेकर दिल्ली के निकटवर्ती परगने लूटे थे। अतः ख्यातों की अपेक्षा इस मत को स्वीकार करना अधिक उचित है।

प्रति दिन बिगड़ती जा रही थी। इसी बीच जब उसे यह समाचार मिला कि अजीत-सिंह प्रकट हो गया है और दुर्गादास भी दक्षिण से लौट आया है, तब उसे यह आशंका हुई कि राठौड़ सरदारों के आक्रमण अब अधिक वेगपूर्ण हो जायेंगे। फलस्वरूप उसने बादशाह को समस्त समाचार भेजा और यह प्रार्थना की कि उसे सैनिक सहायता भेजी जाय।[२२] परन्तु सम्भवतः दक्षिण युद्धों में व्यस्त होने के कारण औरंगज़ेब उसकी मांग पूरी न कर सका। इनायत खाँ ने तब रठौड़ों से सुलह करके राज्य में शान्ति स्थापित करने का निश्चय किया और बादशाह से आज्ञा लिये बिना ही वह चुपचाप सोजत गया और वहां उसने राठौड़ सरदारों से बातचीत की। उनसे लूटमार बन्द करने तथा शान्ति बनाये रखने का वचन लेकर उसने अजीतसिंह को सिवाना के परगने पर शासन करने और सम्पूर्ण राज्य में चौथ वसूल करने का अधिकार दे दिया। इस समझौते के बाद अजीतसिंह सिवाना चला गया और इधर मारवाड़ में उसके नाम पर राठौड़ सरदार चौथ वसूलने लगे। इस प्रकार बखेड़े रुक गये और राज्य में शान्ति स्थापित हो गई तथा आवागमन के मार्ग भी सुरक्षित हो गये।[२३]

परन्तु यह स्थिति अधिक दिन तक न चल सकी। कुछ ही महीनों के उपरान्त सन् १६८७–८ ई० में इनायत खाँ की मृत्यु हो गई।[२४] यह समाचार पाते ही राठौड़ सरदारों ने यह निश्चय किया कि जोधपुर में नये फौजदार के आने से पूर्व ही वहां पहुंचकर अपना अधिकार कर लिया जाय। फलतः वे अजीतसिंह को लेकर सिवाना से उस ओर बढ़े। रविवार, ४ मार्च, सन् १६८८ई० (फाल्गुन सुदि १३, संवतः१७४४) को जोधपुर के शाही कर्मचारियों से उनका युद्ध हुआ जिसमें बहुत से व्यक्ति मारे गये और राठौड़ अखेराज व अन्य बीस सरदार घायल हुए। यद्यपि विपक्ष के भी चालीस व्यक्ति मारे गये और राठौड़ों ने उनके पच्चीस घोड़े छीन लिये; परन्तु उनका वास्तविक मन्तव्य पूरा न हो सका और उन्हें भागना पड़ा। उधर शाही सैनिकों ने सिवाना पर अधिकार कर लिया। फलतः अजीतसिंह को एक बार फिर निराश्रय होकर सिवाना स्थित छप्पन के पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी।[२५]

---

२२. राजरूपक. ३०२–३; टॉड. भाग २, ५६; रेऊ. भाग १, २८०।

२३. ख्यात. भाग २, ७६; वीर. भाग २, ८३२; दानेश्वर. २०७; अजितविलास. २२२ ब; ओझा. भाग ४, खण्ड २ ५०६–७; प्राचीन राजवंश. २१३।

मूंदियाड़ (१६५) के अनुसार इनायत खाँ ने यह समझौता बीलाड़ा मे किया था, परन्तु अन्य सभी आधार ग्रन्थों ने सोजत का ही उल्लेख किया है।

२४. मीरात. २८२; राजरूपक. ३०८; मूंदियाड़. १६६; टॉड. भाग २, ५६; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०८।

मआसिर (१३८) मे लिखा है कि इनायत खाँ की मृत्यु सन् १६८२-३ (१०६३ हि०) में हुई थी। कामसेरिएट (२००) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। वाटसन ने इस घटना की तिथि सन् १६८६ ई० लिखा है। परन्तु चूंकि मीरात. में उल्लिखित तिथि की पुष्टि राजस्थानी ग्रन्थों से भी होती है, अतः उसी को मान्यता दी गई है।

२५. ख्यात भाग २, ७६ व ८१; जुनी. ७३; अजितविलास. २२४ अ; दानेश्वर. २०८; वीर. भाग २, ८३२; ओझा भाग. ४, खण्ड २, ५०६; आसोपा २४८ व २४६; रतलाम. २८६।

इनायत खाँ की मृत्यु का समाचार जब औरंगजेब को मिला तो उसने जोधपुर राज्य की स्थिति को सम्भालने के उद्देश्य से जोधपुर की फौजदारी को अजमेर सूबे से निकालकर अहमदाबाद सूबे के अन्तर्गत कर दिया, क्योंकि अजमेर की अपेक्षा अहमदाबाद बड़ा सूबा था और वहाँ धन-जन की अधिक सुविधा थी। अहमदाबाद के सूबेदार कारतलब खाँ को सन् १६८७-८ ई. (१०९९ हि.=१७४४ संवत्) में शुजात-खाँ की पदवी व दो करोड़ दाम इनाम देकर उसका मनसब बढ़ाकर पाँच हजार जात चार हज़ार सवार दो अस्पा से अस्पा कर दिया गया, और जोधपुर की फौजदारी के के लिए चार हज़ार सवार और दिए गए तथा उसे यह आज्ञा दी गई कि वह स्वयं जोधपुर जाकर शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करे।[२६] शाही आज्ञानुसार शुजात खाँ अहमदाबाद से जोधपुर गया, कुछ दिन वहाँ रुककर उसने स्थिति का अध्ययन किया और फिर काज़िम बेग मुहम्मद अमीन खाँ को अपनी ओर से जोधपुर में नियुक्त करके वापस चला गया।[२७]

परन्तु मारवाड़ में विरोधी तत्व शान्त नहीं हुए। राठौड़ अवसर पाते ही लूटमार और उपद्रव करते रहे, जिनमें कभी उन्हें सफलता मिली, कभी शाही अधिकारियों को। बुधवार, ४ अप्रेल, सन् १६८८ ई. (चैत्र सुदि १४, संवत् १७४५) को मन्दसौर तथा उज्जैन के फौजदारों ने एक साथ मोकलोद जारोड़ा नामक गाँव में राठौड़ दुर्गादास, अखेराज, भगवानदास और मुकुन्ददास पर आक्रमण किया जिसमें राठौड़ों को परास्त होना पड़ा। केवल एक ही सप्ताह बाद बुधवार, ११ अप्रेल (वैशाख बदि ६) को रामसर नामक स्थान पर पुनः राठौड़ों एवं शाही सैनिकों की मुठभेड़ हुई जिसमें राठौड़ों को बहुत क्षति उठानी पड़ी। इसी प्रकार फरवरी, सन् १६८९ ई. (फाल्गुन, संवत् १७४५) में राठौड़ जालोर में पेशकश वसूल करने में असमर्थ रहे।[२८] परन्तु कुछ ही महीनों के बाद जब मेड़ता की फौजदारी से हटाए जाने पर मुहम्मद अलीसपरिवार मेड़ता से दिल्ली की ओर जा रहा था, तो मार्ग में मेड़तिया गोकुल-दास और जोधा हरनाथसिंह ने उस पर आक्रमण किया, जिसमें वह पूर्णतया परास्त

---

२६. मीरात २८२–३; सरकार. भाग ५, २२१; वाटसन ८१-२; कामसेरियट १८५ व २००; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०८–९। राजरूपक, (३०); ख्यात (भाग २८१); मुंदियाड़. (१९६-७); अजितोदय (सर्ग १३, श्लोक २५-६); दानेश्वर (२०७); राठौड़ा. (३१) आदि लगभग समस्त राजस्थानी ग्रन्थों में लिखा है कि इनायत खाँ की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शुजात खाँ की नियुक्ति हुई थी।

कामसेरिएट ने एक स्थान पर (१८५) इस घटना के लिये सन् १६८७ ई० को स्वीकार किया है और अन्य स्थान पर (२००) सन् १६८२ ई० का उल्लेख किया है। इनमें प्रथम तिथि ही ठीक है।

२७. मीरात २८३; बाम्बे गैजे. २८८; रेऊ, भाग १, २८१।

२८. ख्यात. भाग २, ८२–३ व ८५; जुनी ७३; मुंदियाड़ १९९; दानेश्वर २०९; बांकीदास. ३७; कविराजा ५२५-६; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०९-१०; रतलाम २८६-७।

जुनी, व दानेश्वर आदि कुछ ग्रन्थों में इन युद्धों की तिथि के विषय में सुदि के स्थान पर बदी का उल्लेख किया गया है, परन्तु उसे लिपिक की भूल ही मानना चाहिये।

हुआ।[२९] इसी वर्ष राठौड़ों ने मुकुन्दसिंह के नेतृत्व में अजमेर के सूबेदार शुजा बेग पर भी आक्रमण कर उसे भगा दिया और शाही सेना की रसद लूट ली। दूसरे वर्ष उन्होंने टोहाए में स्थित शाही थाने को भी लूटा।[३०]

सन् १६८८-९ ई. में जब शुजात खाँ पुनः मारवाड़ में आया तो पूर्ववत् अशान्ति देखकर उसने बादशाह को समस्त सूचना दी और राठौड़ों को दबाने के लिए आर्थिक सहायता की माँग की। औरंगजेब ने अहमदाबाद के दीवान एतमाद खाँ को यह आज्ञा दी कि वह शुजात खाँ को एक लाख रुपया दे दे। शुजात खाँ समझ गया था कि मारवाड़ के राठौड़ों को बलपूर्वक दबाकर राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखना सम्भव नहीं है। फलतः जब वह सन् १६९०-९१ ई. (११०२ हि.) में मारवाड़ गया तो उसने राठौड़ों के साथ समझौता करने की चेष्टा की। उसने उन्हें शाही सेवा के लिए प्रोत्साहित किया और कई सरदारों को मनसब व जागीरें दीं। जोधपुर के शासकों के समान उसने राठौड़ों को भूमि के पट्टे देने आरम्भ कर दिए जिनमें राठौड़ों को वही अधिकार दिए गए जो उनके पूर्वजों को जोधपुर के राजाओं के समय में प्राप्त थे। इसके साथ ही उसने व्यापारिक स्थिति को सुधारने का भी प्रयत्न किया। उसने मेड़ता के फौजदारों को यह आदेश दिया कि वह सभी गाड़ीवालों से यह लिखवा ले कि वे लोग भविष्य में व्यापारिक वस्तुएं उदयपुर के मार्ग से अहमदाबाद ले जायेंगे। उसने काज़िम बेग को पूर्ववत् अपना नायब रक्खा, मेड़ता की फौजदारी पर सुजानसिंह के स्थान पर मोहकमसिंह को नियुक्त किया और पालनपुर, जालोर और सांचोर के फौजदार कमाल खाँ जालोरी को एक कुशल सेना देकर मेड़ता भेजा जहाँ दुर्गादास अपने साथियों सहित उपद्रव कर रहा था।[३१] इस प्रबन्ध के फलस्वरूप लगभग एक वर्ष तक इस प्रदेश में शान्ति रही। इस बीच राठौड़ों ने चौथ वसूल करने के जो एकाध प्रयत्न किए, वे सफल न

---

२९. राजरूपक ३१७-९; अजितोदय सर्ग १४, श्लोक १-३९; ख्यात. भाग २, ८५-६; मूंदियाड़. ११९; दानेश्वर. २०९; राठौड़ां ३१-२; अजितविलास. २२४ ब; रेऊ. भाग १, २८१; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०९-१०।

अजितोदय के अनुसार मुहम्मद अली पर आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व, चाँदावत सूरजमल तथा चाँदावत जुझारसिंह ने किया था। परन्तु चूंकि राजरूपक व अन्य सभी ख्यातें गोकुलदास तथा हरनाथसिंह का ही उल्लेख करती हैं। अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

३०. राजरूपक. २३०-३; टॉड. भाग २, ५७; आसोपा. २५०।

सरकार (भाग ५, २२५) ने लिखा है यह युद्ध सफी खां से हुआ था जिसकी नियुक्ति शुजांबेग के बाद अजमेर की फौजदारी पर हुई थी। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि राजरूपक में स्पष्ट रूप से शुजाबेग का उल्लेख है और ख्यातों में दो वर्ष बाद सफी खां से युद्ध होने का उल्लेख है। सम्भवतः सर जदुनाथ सरकार ने दोनों युद्धों के विवरण को मिला दिया है।

३१. मीरात. २८९ व २९०; बाम्बे गैजे. २८९; सरकार. भाग ५, २२५-६; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५०८-९; रेऊ. भाग १, २८३।

हो सके। परन्तु राठौड़ सरदार इतने से सन्तुष्ट न हो सके और विरोध पुनः आरम्भ हो गया।

बुधवार, ३ फरवरी, सन् १६९२ ई. (फाल्गुन बदि, १२ संवत् १७४८) को राठौड़ दुर्गादास ने सूराचन्द नामक स्थान को घेर लिया। पाँच दिन के घेरे के उपरान्त दुर्गादास परकोटा तोड़कर अन्दर घुस गया और अन्दर उपस्थित आठों व्यक्तियों को मारकर उसने सूराचन्द पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष जून (आषाढ़, संवत् १७४९) के महिने में दुर्गादास ने टोडा से, तथा चांपावत मुकुन्ददास और सुजानसिंह ने डीडवाना से पेशकश वसूल किया। मुकुन्ददास ने आगे बढ़कर मेड़ता पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के फौजदार मोहकमसिंह ने उसका यथाशक्ति सामना किया, परन्तु अन्त में उसे भागना पड़ा। इस प्रकार मेड़ता पर राठौड़ों का अधिकार हो गया। परन्तु यह अधिकार स्थायी न हो सका और कुछ ही दिन बाद जब मुकुन्ददास चौथ वसूल करने के लिए मेड़ता से बाहर गया तो मोहकमसिंह ने अकस्मात् आक्रमण करके मेड़ता पर पुनः अधिकार कर लिया। परन्तु इन्हीं दिनों शुक्रवार, १७ जून (आषाढ़ सुदि १४) को जब अजमेर के नए सूबेदार सफ़ी खाँ ने बंवाल नामक परगने के भड़सियां नामक गाँव पर आक्रमण किया तो उसे परास्त होकर भागना पड़ा। राठौड़ों ने सिवाना पर भी अधिकार कर लिया, और अजीतसिंह इसी परगने में स्थित पीपलोद नामक स्थान पर रहने लगा। राठौड़ों के आक्रमण मारवाड़ तक ही सीमित नहीं थे। उन्होंने पडलो, सरवाड़, फूलिया, खारी रो ढ़ाहो आदि विभिन्न क्षेत्रों को भी लूटा।[३२]

राठौड़ों से परास्त होने के पश्चात् अजमेर के सूबेदार सफ़ी खाँ ने एक पत्र द्वारा अजीतसिंह को अजमेर आने के लिए निमंत्रित किया और उसे यह आश्वासन दिया कि यदि वह उसका निमंत्रण स्वीकार कर लेगा तो बादशाह से सिफारिश करके उसे जोधपुर का राज्य वापिस दिलवा दिया जाएगा। अजीतसिंह पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तुरन्त अजमेर जाने का निश्चय किया। साथ ही उसने दुर्गादास को पत्र लिखा कि वह उसके साथ चलने के लिए सिवाना आ जाय। परन्तु दुर्गादास इस निमंत्रण से विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। उसे सफ़ी खाँ के प्रस्ताव पर पूरा संदेह था। अतएव उसने अपने भाई खींवकरण को तुरन्त सिवाना भेजकर अजीतसिंह को यह सलाह दी कि वह अजमेर न जाय। परन्तु अजीतसिंह ने इस स्वर्ण-अवसर को खोना उचित नहीं समझा और दुर्गादास की सलाह पर बिना कोई ध्यान दिये रविवार, ९ अक्तूबर (आश्विन सुदि १०) को ससैन्य अजमेर के लिए चल पड़ा। मुकुन्ददास को आगे भेज दिया गया, ताकि वह सफ़ी खाँ से सन्धि की बातचीत आरम्भ करे। बृहस्पतिवार, १९ जनवरी, सन् १६९३ ई, (माघ बदि ८, संवत् १७४९) को जब अजीतसिंह उससे मिला तो उसने यह आश्वासन दिया कि वह बादशाह को सारी परिस्थिति लिखकर उससे जोधपुर राज्य की सनद भेजने

---

३२. ख्यात. भाग २, ८७-९०; मूंदियाड़. २०२-३; जुनी. ७४-५; दानेश्वर. २१० अजितविलास. १२८ ब ब २२९ ब ब; राठौड़ां. ३४; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५११; आसोपा. २५२।

का निवेदन करेगा। फलस्वरूप अजीतसिंह मुकुन्ददास को अजमेर में छोड़कर स्वयं मगरा की ओर चला गया और वहीं शाही फ़रमान की प्रतीक्षा करने लगा। इन्हीं दिनों अजीतसिंह को यह समाचार मिला कि जोधपुर शुजात खाँ ने शाही आज्ञानुसार अपनी सेना भेजकर सिवाना पर अधिकार करके वहाँ की देखरेख के लिए सुजानसिंह को नियुक्त कर दिया है। उसने मुकुन्ददास को लिखा कि वह सफी खां से सिवाना वापस दिलाने का अनुरोध करे। जब मुकुन्ददास ने सफी खाँ से बातचीत की तो यह स्पष्ट हो गया कि उसने उन लोगों को धोखा दिया है। अतएव उसने तुरन्त अजीतसिंह के पास जाकर वास्तविक स्थिति स्पष्ट की और शीघ्रातिशीघ्र अपने राज्य में लौटने की सलाह दी। अजीतसिंह अपने साथियों सहित सुमेल की पहाड़ियों से होता हुआ सोजत में स्थित सारणसिरियारी नामक गाँव में चला गया। इस प्रकार सफ़ी खाँ का मनोरथ सिद्ध न हो सका।[33]

अजीतसिंह के दुर्गादास की राय के विरुद्ध अजमेर जाने से दुर्गादास अप्रसन्न होकर अपने गाँव भीमरलाई चला गया। थोड़े ही दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि दुर्गादास का अनुमान ठीक था। अजीतसिंह के हाथ से सिवाना भी निकल चुका था। उसे अपने कार्य पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। दुर्गादास जैसे अनुभवी सरदार को रुष्ट करना उसके लिए हितकर नहीं था, अत: उसे मनाने के लिए वह सोजत से भीमरलाई गया और अपनी भूल स्वीकार करते हुए उसने दुर्गादास से राठौड़ों का नेतृत्व सम्भालने का अनुरोध किया। दुर्गादास ने अजीतसिंह का यथोचित सम्मान किया, परन्तु साथ चलने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने अजीतसिंह को समझाया कि वह राठौड़ों का अधिपति है, और उसे एक-एक पग सोच समझकर उठाना चाहिए, केवल दूसरे के कहने से बिना विचारे शीघ्रता से कार्य करना उचित नहीं है। साथ ही उसने कहा कि दो-तीन महीने तक वह अपने गाँव में ही रहेगा, और इस बीच यदि अजीतसिंह योग्यता पूर्वक कार्य करेगा तो वह स्वयं ही उसके पास आ जाएगा। दुर्गादास के ये आक्षेप अजीतसिंह को अच्छे नहीं लगे। इस प्रकार की सीख दिए जाने से वह अप्रसन्न हो गया और कुंडल होता हुआ सिवाना परगने के मोकलसर नामक गाँव में पहुँचा। यहाँ उसने चांपावत उदयसिंह को अपना प्रधान

---

३३. अजितविलास. २२९ अ ब २३० अ ब. २३१ अ; ख्यात. भाग २, ९०-१; मुंदियाड़. २०३-४; जुनी. ७४-५०; दानेश्वर २१०-११; राठौड़ां. ३२, ३४-५।

वीरभाण (राजरूपक. ३२५-८); टॉड. (भाग २, ५७); रेऊ. (भाग १, २८२); ओझा. (भाग ४, खण्ड २, ५१०-११) तथा आसोपा. (२५०-१) ने लिखा है कि घटना सन् १६९०-१ (संवत् १७४७) में घटित हुई थी। परन्तु जैसा कि ऊपर स्वीकार किया जा चुका है, सफ़ी खाँ राठोड़ों से १७ जून, सन् १६९२ ई. (अषाढ़ सुदि १४, सम्वत् १७४९) को परास्त हुआ था। अतएव यह घटना अवश्य ही इसके बाद घटित हुई होगी। इसी कारण अजित-विलास व ख्यातों की तिथि को स्वीकार किया गया है।

ख्यातों में लिखा है कि औरंगजेब ने ही सफी खाँ को यह आज्ञा दी थी कि वह अजीतसिंह से मनसब व जागीर के सम्बन्ध में बातचीत करे। परन्तु चूंकि इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती, अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

बनाया। राठौड़ सैनिकों ने पुनः स्थान-स्थान पर उपद्रव आरम्भ कर दिए और कई शाही थाने लूटे, परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।[३४]

अजीतसिंह को अब यह स्पष्ट हो रहा था कि शाही सेनाओं का सामना करने के लिए दुर्गादास का कुशल नेतृत्व अनिवार्य है। इन्हीं दिनों बादशाह ने दुर्गादास के पास यह सन्देश भेजा कि यदि वह शाहजादा अकबर के बच्चों को वापस कर देगा तो उसे उचित मनसब व जागीर दी जायेगी। परन्तु दुर्गादास ने अजीतसिंह से पहले शाही मनसब लेना अस्वीकार कर दिया। सम्भवतः इस समाचार से अजीतसिंह दुर्गादास से और भी प्रभावित हुआ, और उसने मुकुन्ददास और तेजसिंह को उसके पास भेजकर उससे वापस आने का अनुरोध किया। फलस्वरूप बृहस्पतिवार, २१ दिसम्बर, सन् १६९३ ई० (पौष सुदि ५, संवत् १७५०) को दुर्गादास अजीतसिंह के पास लौट आया।[३५]

दुर्गादास ने आते ही सेना एकत्र की और जोधपुर से जालौर तक के सभी गाँव, शिव, कोटड़ा, और पोकरण नामक परगनों के विभिन्न गावों तथा जैसलमेर राज्य में स्थित वाप नामक गाँव तक पेशकश वसूल किया। जोधपुर से नायब फ़ौजदार काज़िम बेग[३६] तथा भगवानदास नामक एक शाही कर्मचारी ने उनका पीछा किया; परन्तु उन्हें परास्त होकर लौटना पड़ा। जोधपुर की ओर वापस आते हुए मार्ग में उन्होंने रिउमलसर नामक गाँव पर आक्रमण किया; किन्तु यहाँ भी केवल जीवनदास नामक एक व्यक्ति को मारकर ही उन्हें सन्तोष करना पड़ा और वे जोधपुर लौट गए। इन्हीं दिनों दुर्गादास के कहने पर अजीतसिंह ने बीलाड़ा[३७] में लूटमार की। यह समाचार सुनकर औरंगजेब ने शुजात ख़ाँ को जोधपुर जाकर स्थिति सम्भालने की आज्ञा दी। सिवाना परगने में भी राठौड़ों के उपद्रव बहुत बढ़ गए थे। जोधपुर का नायब फ़ौजदार काज़िम बेग, सिवाना का फ़ौजदार शुजा बेग तथा जालौर का फ़ौजदार कमाल ख़ाँ संगठित होकर उस ओर गए। जनवरी, सन् १६९४ ई० (माघ सुदि, संवत् १७५०) को बाला अखेसिंह के नेतृत्व में राठौड़ों ने शाही सेना का दृढ़तापूर्वक सामना किया और अन्त में उसे भागने पर बाध्य कर दिया। इसी प्रकार लूणावास में भी शाही कर्मचारी असफल रहे और चांपावत मुकुन्दसिंह तथा तेजसिंह ने एक शाही सैनिक को पकड़ लिया।[३८]

---

३४. ख्यात भाग २, ९१-२; मूंदियाड़ २०४-६; जुनी ७५; दानेश्वर २११; अजितविलास २३१ ब-२३२ अ ब २३३ अ; रेउ भाग १, २८३; ओझा भाग ४, खंड २, ५१२।

३५. अजितविलास २३३ अ; ख्यात भाग २,९२; मूंदियाड़ २०६; रेउ भाग १,२८४; ओझा भाग ४, खंड २,५१२।

३६. केवल मूंदियाड़ (२०६) में काजिमबेग के स्थान पर उसके पुत्र अलाकुली का उल्लेख है; अतएव उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

३७. मीरात (२९२) में इस स्थान का नाम थलहा लिखा है; परन्तु चूँकि इस नाम का कोई स्थान मारवाड़ में नहीं है अतएव सर जदुनाथ सरकार का मत है कि यह स्थान बीलाड़ा है।

३८. राजरूपक ३३-४; ख्यात भाग २;९१; मूंदियाड़ २०६; अजितविलास २३३ अ ब; राठौड़ा ३५; टाड भाग २,५७; रेउ भाग १,२८३।

सरकार (भाग ५;२२६-७) ने लिखा है कि शाही सेना ने बाल अखेसिंह को परास्त कर दिया था; परन्तु इसकी पुष्टि किसी आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

इस प्रकार मारवाड़ में इन चार वर्षों (सन् १६९१–५ ई०) में निरन्तर अशान्ति बनी रही। सूबेदार शुजात खाँ को स्वयं स्थिति सम्भालने के लिए प्रतिवर्ष जोधपुर जाना पड़ा। जितने समय तक जोधपुर की फौजदारी उसके हाथ में रही, वह छः महीने अहमदाबाद में रहता था और छः महीने जोधपुर में। उसके इस प्रकार बार–बार आने का प्रभाव इतना अवश्य हुआ कि राठौड़ों के उपद्रव इन वर्षों में उतने सफल न हुए जितने पिछले सात वर्षों (सन् १६८१–७ ई०) में थे।[३९] फिर भी शाही कर्मचारी सुख की नींद न सो पाते थे। वे इतना थक चुके थे कि उन्होंने बिना शाही आज्ञा के ही राठौड़ों से शान्ति बनाये रखने का आश्वासन लेकर उन्हें चौथ व राहदारी देना आरम्भ कर दिया था।[४०] परन्तु यह बात छिपी न रह सकी, और औरंगजेब को जब यह सब पता चला तो उसने शुजात खाँ की भर्त्सना की। फलतः शुजात खाँ ने राठौड़ों को सलाह दी कि वे स्थान–स्थान पर अपनी चौकियां स्थापित करके धन वसूल न करें, और चुपचाप एक ही स्थान पर पूरी राशि ले लिया करें। ताकि बादशाह को इसका पता न चल सके।[४१] इस गुप्त समझौते के बाद जोधपुर राज्य में लगभग शान्ति बनी रही। अपवाद स्वरूप केवल एक ही युद्ध का उल्लेख मिलता है। मंगलवार, २८ जनवरी, सन् १६९६ ई० (माघ सुदि ५, संवत् १७५२) को कुरमाल की घाटी में स्थित बीजापुर[४२] नामक स्थान पर जोधपुर के नायब फौजदार[४३] तथा अजीतसिंह की सेना के बीच एक भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में दुर्गादास के पुत्र मेहकरण ने प्रशंसनीय वीरता का परिचय दिया। इस युद्ध में शाही सेना के लगभग अस्सी व्यक्ति मारे गए और राठौड़ों के केवल दो व्यक्ति घायल हुए। अजीतसिंह की यह आश्चर्यजनक विजय थी।[४४]

इन अशान्तिमय वर्षों में राठौड़ों को जब भी अवसर मिला, उन्होंने अन्य राजपूत राज्यों से अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न किया। अजीतसिंह की गुप्तावस्था से बाहर आने से पूर्व ही बूँदी का विद्रोही सरदार दुर्जनसिंह हाड़ा राठौड़ों के साथ

---

३९. मीरात ३८८, ३९१ व ३९३; बाम्बे गैजे २८९; सरकार-भाग ५,२२१।

४० राजरूपक ३३६; टॉड-भाग २,५७; रेउ भाग १,२८४; ओझा-भाग ४, खंड २,५१३।

४१. यह कहना कठिन है कि यह घटना किस समय की है। राजरूपक (३१७) में लिखा है कि शुजात खाँ ने सन् १६८८-९ ई. (१७४५ संवत्) में यह समझौता राठोड़ों के साथ किया था। सरकार (भाग ५,२२१) तथा आसोपा (२४९-५०) ने भी इसी को स्वीकार किया है। ख्यात (भाग २,८६); दानेश्वर (२०९); मूंदियाड़ (१९९); अजितबिलास (२२५ अ) व वीर (भाग २,८३२) के अनुसार यह घटना सन् १६९०-१ ई. (संवत् १७४७) में हुई थी।

४२. बीजापुर बाली से लगभग दस मील दक्षिण की ओर स्थित है।

४३. राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में नायब फौजदार का नाम लश्कर खाँ लिखा है। परन्तु सन् १६९३-४ ई. (११०५ हि.) में काजिम बेग की मृत्यु के बाद फिरोज खाँ मेवाती को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया था।

४४. राजरूपक. ३४०-३; सूरजप्रकाश. ३७; ख्यात. भाग २.९२; जुनी. ७६; (मीरात.२९३) दानेश्वर. २१२; वीर. भाग २,६८२; राठौड़ां-३५; टॉड. भाग २,५७-८; ओझा-भाग ४. खंड २,५११; रेउ. भाग १,२८४।

था। उसने विभिन्न स्थानों पर उनकी ओर से युद्ध किया, और जब सन् १६८८ ई० के आरम्भ में उसकी मृत्यु हो गई, तब दुर्गादास ने बूँदी के राव अनिरुद्धसिंह से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।[४५]

मार्च-अप्रेल सन् १६९२ ई० (संवत् १७४९ के प्रारम्भिक महीनों) में उदयपुर के राणा जयसिंह तथा उसके बड़े पुत्र अमरसिंह के बीच मनमुटाव हो गया था। इसका कारण यह था कि राजकुमार ने कई रूढ़ियों और परम्पराओं का उल्लंघन किया था। उदयपुर में यह नियम था कि राजकुमारों का रनिवास राणा के रनिवास के साथ ही रहा करता था, लेकिन अमरसिंह ने अपनी एक भटियाणी रानी के लिए अलग महल बनवाया था और उसी के संसर्ग से मद्यपान भी करने लगा था। इसके अतिरिक्त जब राणा जयसमुद्र नामक तालाब बनवा रहा था तो अमरसिंह अपने पुत्र सहित उससे मिलने गया और उसने परम्परा के विरुद्ध स्वयं भी सफेद पगड़ी बाँधी और पुत्र को भी बँधवाई। इसके अतिरिक्त राणा का अनैतिक सम्बन्ध एक कायस्थ की पत्नी से था। अमरसिंह ने इस स्त्री का अपमान किया जिससे वह असप्रन्न हो गई। फलतः जयसिंह भी अपने पुत्र से क्रोधित हो गया।[४६] धीरे-धीरे पिता व पुत्र का पारस्परिक मतभेद बढ़ता गया। अमरसिंह ने कई सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया और पिता का विरोध करने का निश्चय किया। जयसिंह उसकी शक्ति को देखकर डर गया और उदयपुर से भागकर घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथ की शरण में चला गया तथा उससे सलाह करके उसने अजीतसिंह की सहायता लेने का निश्चय किया। राणा ने अजीतसिंह को एक पत्र लिखा जिसमें पिता के विरुद्ध सैनिक सहायता की माँग की। पत्र पाकर अजीतसिंह ने दुर्गादास को लगभग तीस हजार सैनिक देकर राणा के पास भेजा। दुर्गादास ने विभिन्न सरदारों की सलाह के अनुसार राणा को समझाया कि पुत्र से युद्ध करने से राज्य की हानि होने की आशंका अधिक है क्योंकि शाही कर्मचारी अवश्य ही इस गृह-कलह से लाभ उठायेंगे। अतः अमरसिंह को अलग पट्टा देकर शान्त रखना अधिक उचित है। जब जयसिंह ने उसकी सलाह मान ली, तब दुर्गादास ने राजकुमार के पास भी एक पत्र भेजा जिसमें उसे पिता के विरुद्ध युद्ध न करने की सीख दी। उसने यह भी लिखा कि यदि वह उसकी बात नहीं मानेगा तो जोधपुर के राठौड़ सरदार राणा को सहायता देने के लिए विवश होंगे। ऐसी परिस्थिति में अमरसिंह ने भी राणा से सुलह करना उचित समझा। जब दोनों पक्ष

---

४५. ख्यात. भाग २, ८४; जुनी. ७३; दानेश्वर. २०८; आसोपा. २४९।

दुर्गादास ने दुर्जनसिंह के दौलतसिंह व फतेहसिंह नामक पुत्रों को ले जाकर फरवरी-मार्च, सन् १६८८ ई. (फाल्गुन, संवत् १७४४) को अनिरुद्धसिंह के समक्ष नतमस्तक करवाया और उनका पारस्परिक मनमुटाव दूर करवाया। फलतः राठौड़ों व अनिरुद्धसिंह के सम्बन्ध भी मैत्रीपूर्ण हो गये।

कविराजा मुरारीदान (५२५) ने लिखा है कि दुर्जनसिंह को ही अनिरुद्धसिंह के समक्ष नतमस्तक कराया गया था; परन्तु यह ठीक नहीं है।

४६. वीर. भाग २, ६७३-४।

सुलह के लिए तैयार हो गए, तब जयसिंह ने राठौड़ों की थोड़ी सी सेना साथ लेकर उदयपुर की ओर प्रस्थान किया । इसी बीच कुछ सरदारों ने अमरसिंह को पितृ-विद्रोह के लिए पुनः उत्तेजित कर दिया, परन्तु दुर्गादास ने उसे पुनः शान्त किया और एकलिंग जी के मन्दिर में पिता व पुत्र की भेंट करवाई । राजकुमार को तीन लाख रुपये की जागीर का पट्टा दिया गया और यह निश्चय किया गया कि राणा उसकी जागीर में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा और राजकुमार भी राणा के कार्यों मे बाधा नहीं डालेगा ।[४७]

जयसिंह एवं अमरसिंह के बीच स्थायी शान्ति न रह सकी और कुछ वर्षों के बाद दोनों में पुनः मनोमालिन्य हो गया । तब राणा ने मई-जून, सन् १६९६ ई० (ज्येष्ठ, संवत् १७५३) मे जोधा उदयसिंह मुकुन्ददासोत को अजीतसिंह के पास भेजा और पुत्र के विरुद्ध सहायता देने की प्रार्थना की । इस सहायता के बदले में राणा ने अजीतसिंह को सेना का व्यय देना तथा अपने भाई गजसिंह की पुत्री का विवाह उससे करना स्वीकार किया । अजीतसिंह ने शक्तिशाली मेवाड़ राज्य से अच्छे सम्बन्ध रखना हितकर जानकर राणा का प्रस्ताव तुरन्त स्वीकार कर लिया । फलतः जयसिंह ने उसके लिए चाँदी के साज़ सहित दो घोड़े, चाँदी के साज़ सहित एक हाथी और सोने से मढ़ा हुआ एक नारियल भेजा । अजीतसिंह स्वयं उदयपुर की ओर गया । राणा जयसिंह उसके स्वागत के लिए छः मील आगे आया और उसने चाँदी के हौदे सहित एक हाथी तथा साज़ सहित दो घोड़े अजीतसिंह को भेंट किए । इसी समय राणा के भाई गजसिंह ने भी उसे दो घोड़े नज़र किये । अजीतसिंह ने विद्रोही राजकुमार को एक पत्र लिखा जिसमें उसे समझाया कि पिता से विरोध करना एक नीति विरुद्ध है, और दूसरे गृह-कलह से विरोधियों को अवसर मिलता है अतः उचित यही है कि वह अपना विचार छोड़ दे । राजकुमार ने अजीतसिंह की बात मान ली और राजसमुद्र की ओर लौट गया ।[४८] इसके पश्चात् शुक्रवार, १२ जून, सन् १६९६ ई० (आषाढ बदि ८) को अजीतसिंह का विवाह राणा की भतीजी व गजसिंह

---

४७. वीर भाग. २,६७५-७ व ८३२; राजरूपक. ३२४-३३०; अजितोदय, सर्ग. १५, श्लोक १-१७; ख्यात-भाग २,८६-७; जुनी. ७३-४; मूंदियाड़ २९२-३; दानेश्वर २१०; अजितविलास. २२६ अ-२२८ अ; राठौड़ा. ३२-३; कविराजा. ५२६; टॉड. भाग २; ५७; ग्लोरीज परिशिष्ट १२८; आसोपा. २५०-२ ।

अजितोदय के अनुसार राणा ने इसी समय अपनी पुत्री का विवाह अजीतसिंह से करने का निश्चय किया था, परन्तु यह विश्वसनीय नहीं है ।

४८. अजितोदय. सर्ग १५;श्लोक २८-३५; ख्यात. भाग २,९३; जुनी.७४; वीर. भाग २,५८; दानेश्वर २१२; सूरजप्रकाश. ३८; टॉड. भाग २, ५८; ग्लोरीज परिशिष्ट १८६ ।

ख्यात. जुनीव. सूरज प्रकाश के अनुसार विवाहोत्सव के बाद अजीतसिंह ने राणा व पुत्र में मेल करवाया था, परन्तु यह तर्कसम्मत नहीं है ।

की पुत्री से सम्पन्न हुआ। दहेज में राणा ने ६ हाथी, ४६ घोड़े और १५० वेष दिए[४६] यह विवाह अजीतसिंह के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस समय तक औरंगजेब को सन्देह था कि अजीतसिंह स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह का वास्तविक पुत्र है या नहीं अब सीसोदिया राजवंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने से उसका सन्देह जाता रहा।[५०]

इसी समय देवलिया के शासक महारावत प्रतापसिंह ने अजीतसिंह को निमंत्रित किया, और जब वह वहाँ गया तो रविवार, २८ जून (आषाढ़ सुदि ६) को उसने अपनी कन्या का विवाह उससे कर दिया। देवलिया से अजीतसिंह उदयपुर लौटा और फिर स्वदेश की ओर चला गया।[५१]

इन वर्षों में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना भी घटित हुई। जुलाई सन् १६७९ ई० में जब राठौड़ सरदारों ने अजीतसिंह को चुपचाप दिल्ली से जोधपुर की ओर भेज दिया था और बाद में वे सब भी शाही-सेना से युद्ध करते हुए वहाँ से निकल भागे थे, तब औरंगजेब ने एक छोटे से बच्चे को जसवन्तसिंह का पुत्र घोषित कर दिया था और उसे मुहम्मदीराज का नाम देकर अपनी पुत्री जेबुन्निसा को पालन-पोषण के लिये सौप दिया था। मंगलवार, २० अप्रेल, सन् १६८० ई. (३० रबी-उलअव्वल, १०९१ हि.) को शाही आज्ञानुसार यह बच्चा अजमेर लाया गया। इसी वर्ष बृहस्पतिवार, ३ जून (१५ जमादिउलअव्वल) को उसे एक हजार रुपया मूल्य की मोतियों की माला बादशाह ने इनाम में दी। सम्भव है बादशाह का विचार उसे जसवन्तसिंह के राज्य का स्वामित्व देने का हो, ताकि अजीतसिंह का पक्ष निर्बल हो जाय, परन्तु राठौड़ों के उपद्रवों के और मेवाड़ में भी युद्धारम्भ हो जाने के कारण उसकी यह योजना पूर्ण न हो सकी। जब बादशाह दक्षिण गया तो वह मुहम्मदी-राज को भी साथ ले गया। सन् १६८८-९ ई. (११०० हि.) के अक्तूबर-नवम्बर में जब बीजापुर में प्लेग फैला तो उसमें उस बालक की मृत्यु हो गई।[५२] इस प्रकार इस समस्या का अपने आप समाधान हो गया।

---

४९. ख्यात. भाग २,९३; राजरूपक. ३४५-६; वीर. भाग २,६८२; अजितोदय सर्ग. १५, श्लोक ३५-४१; जुनी ७४; मूंदियाड़ २०६; दानेश्वर. २११; अजितविलास २३३ ब, ख्यात वात. ५१ अ; टॉड भाग २,५८; ओझा. भाग ४. खंड २;५१४-५; रेउ-भाग १,२८५।

राजरूपक में लिखा है कि विवाह ज्येष्ठ के महीने में हुआ था, परन्तु चूंकि जोधपुर राज्य की ख्यात में निश्चित तिथि का उल्लेख है और अन्य ख्यातों से भी उसी तिथि की पुष्टि होती है, अतः उसी को मान्यता दी गयी है।

अजित चरित्र (सर्ग ९ श्लोक १-८) में लिखा है कि राणा ने अपनी पुत्री का विवाह अजीतसिंह से किया था, परन्तु यह ठीक नहीं है।

५०. खफीखाँ भाग २, २६० ओझा-भाग ४, खंड २, ५१५; मूल २११।

५१. राजरूपक. ३४६-७; अजितोदय. सर्ग १५, श्लोक ४२; वीर. भाग २,१०६२; अजितविलास. २३४ ब; टॉड. भाग २, ५८; ओझा-भाग ४, खंड २,५१४-५।

५२. मुस्ताद खाँ १२७ व १९२; जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग २;२२७; फुतुहात. १४४ अ; राजरूपक ३०८-९; टॉड. भाग २, ५६; रेउ. भाग १.२८०; आसोपा १४८।

(ग) अल्पकालीन शान्ति :—(१६९६-१७०३ ई.)

शाहज़ादा अकबर के असफल विद्रोह के बाद से ही उसका पुत्र बुलन्दअख़्तर तथा पुत्री सफ़ियतुन्निसा मारवाड़ राज्य में राठौड़ों की देख-रेख में थे। ज्यों-ज्यों इन बच्चों की आयु बढ़ती जा रही थी, औरंगजेब उनके लिये—विशेष रूप से अपनी पौत्री के लिये—अधिकाधिक चिन्तित हो रहा था। कर्नल टॉड ने ठीक ही लिखा है—"अजीतसिंह की आयु के प्रत्येक वर्ष के साथ राठौड़ों की आशाएँ बढ़ती जा रहीं थीं; जब कि औरंगजेब अपनी पौत्री की आयु के एक-एक महीने बढ़ने से चिन्तित था।" [५३] साथ ही दक्षिण की गम्भीर स्थिति के कारण बादशाह मारवाड़ की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पा रहा था और न अधिक सेना इस ओर भेजकर वह राठौड़ों को दबाने में ही सफल हो रहा था [५४]। सम्भवतः इसी कारण उसने राठौड़ों से सुलह करके अपने पौत्र-पौत्री को वापस लेने का निश्चय किया।

बादशाह ने दो बार (सन् १६९२-३ ई. व सन् १६९४ ई.) दुर्गादास को मनसब देने का वचन देकर अकबर के बच्चों को वापस लेने का प्रयत्न किया, परन्तु दुर्गादास ने अजीतसिंह से पहले स्वयं मनसब लेना स्वीकार न किया। उधर औरंगजेब अजीतसिंह को मनसब देकर उसे जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं करना चाहता था। फलतः ये प्रयत्न सफल न हो सके। [५५]

सन् १६९५-६ ई. (११०७ हि.) में शुजात खाँ प्रतिवर्ष की भाँति शासन व्यवस्था के निरीक्षण के लिये जोधपुर गया था। इन्हीं दिनों औरंगजेब ने उसे यह आदेश भेजा कि वह अकबर के बच्चों को वापस लेने का प्रयत्न करे। शुजात खाँ लगभग आठ महीने जोधपुर में रहा। [५६] इस परगने के अमीन ईश्वरदास नागर [५७] के राठौड़ों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। अतः शुजात खाँ ने उसे ही दुर्गादास से बातचीत करने के लिये नियुक्त किया। ईश्वरदास ने जब दुर्गादास से मिलकर इस सम्बन्ध में बात की तो दुर्गादास ने भी उत्सुकता दिखाई। उसने ईश्वरदास को लिखा कि जब तक उसकी प्रार्थना बादशाह तक न पहुँच जाय, शुजात खाँ उसे सुरक्षा का आश्वासन दे, और मुगल सैनिक उसके घर को कोई हानि न पहुँचाएँ तो वह अकबर की पुत्री को लौटाने के लिये तैयार है। ईश्वरदास ने इस पत्र को शुजात खाँ के पास भेज दिया, जिसने उसे बादशाह के पास पहुँचा दिया। औरंगजेब ने दुर्गादास का प्रस्ताव तुरन्त स्वीकार कर लिया, और शुजात खाँ को यह आदेश दिया कि वह दुर्गादास को सुरक्षा का विश्वास दिलाये और सफियतुन्निसा को उपयुक्त साज सज्जा

---

५३. टॉड. भाग २,५८।

५४. सरकार. भाग ५, २२७।

५५. राजरूपक. ३३१-२; ख्यात. भाग २,९२; दानेश्वर. २११-२; अजितविलास. २३२ व २३३ ब; टॉड. भाग २,५७; सरकार. भाग ५,२२६; रेउ भाग १,२८३ व २८४; ओझा-भाग ४, खंड २, ५११-२।

५६. मीरात. २६४; ख्यात-भाग २,९४; मूंदियाड़. २०७; टाड. भाग २,५८; ओझा-भाग ४; खंड २,५१३-४।

५७. यह बड़ा प्रसिद्ध इतिहासकार था जिसने फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी की रचना की है।

के साथ दरबार में भेजे। शुजात खाँ ने बादशाह का संदेश ईश्वरदास के द्वारा दुर्गादास को भेजा, और जब उसने अपनी स्वीकृति दे दी तो सफियतुन्निसा को लाने के लिये समस्त तैयारी के साथ ईश्वरदास पुनः भेजा गया। वह सफियतुन्निसा को आदर सम्मान के साथ लेकर शुजात खाँ के पास लौटा। इस सेवा के लिये शुजात-खाँ ने ईश्वरदास को खिलअत, घोड़ा व तीन हजार रुपया नकद इनाम दिया। इसके बाद अकबर की पुत्री को बादशाह के पास भेज दिया गया और स्वयं उसके कहने पर ईश्वरदास को भी साथ जाने का आदेश मिला।[५८]

जब सफियतुन्निसा औरंगजेब के पास पहुंची तो उसे कुरान पढ़ाने के लिये एक शिक्षिका की नियुक्ति की गई। सफियतुन्निसा ने तब बताया कि दुर्गादास ने उसकी शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया था और कुरान उसे कण्ठस्थ है। बादशाह दुर्गादास के इस कार्य से विशेष प्रभावित हुआ और उसने अपनी पौत्री से पूछा कि दुर्गादास क्या चाहता है ? सफियतुन्निसा ने उत्तर दिया कि इस प्रश्न का उपयुक्त उत्तर ईश्वरदास नागर ही दे सकता है। ईश्वरदास ने पूछने पर बताया कि दुर्गादास मनसब व इनाम पाना चाहता है। बादशाह ने ईश्वरदास को खिलअत व दो सौ जात का मनसब देकर दुर्गादास तथा अकबर के पुत्र बुलन्द अख्तर को शाही सेवा में लाने के लिये मारवाड़ की ओर भेजा और शुजात खां को भी यह आज्ञा दी कि वह इस कार्य को करने का प्रयत्न करे।[५९]

सन् १६९६–७ ई. (११०८ हि.) में अहमदाबाद के दीवान मुहम्मद मुहसिन को यह आज्ञा दी गई कि वह खजाने से एक लाख रुपया दुर्गादास को दे दे। आधा रुपया उस समय दिया जाय जब जोधपुर पहुंचे, और शेष अहमदाबाद पहुंचने पर दिया जाय। इसके अतिरिक्त मेड़ता का परगना भी दुर्गादास को जागीर में दे दिया गया। अगले वर्ष सन १६९७–८ ई. (११०९ हि.) में धंधुका का परगना तथा कुछ अन्य महल भी राठौड़ दुर्गादास की जागीर में सम्मिलित कर दिये गये।[६०]

इधर ईश्वरदास नागर जब शुजात खां के पास पहुँचा तो उसने भी उसे खिलअत और नकद रुपया इनाम में दिया। सन् १६९६–७ ई. (११०८ ई.) में अहमदाबाद का प्रबन्ध करके शुजात खां स्वयं जोधपुर गया और उसने शाही आज्ञानुसार ईश्वरदास को बुलन्द अख्तर व दुर्गादास को लाने के लिये भेजा। ईश्वरदास कई बार दुर्गादास से मिला, और जब उसके कर्मचारियों ने जागीर के

---

५८. फुतूहात. १६६ ब १६७ अ; मीरात. २९५; बाम्बे गैजे. २९०; कामसेरिएट. २००-१; सरकार भाग ५,२२८; ओझा भाग ४, खंड २, ५१५।

५९. फुतूहात. १६७ ब; मीरात २९५; कामसेरिएट २०१; सरकार-भाग ५,२२८-९; ओझा-भाग ४, खंड २, ५१६।

६०. मीरात. २९५,२९६ व ३००; वीर भाग २,८३२-३ कॉमसेरिएट २००-१; बाम्बे. गैजे. २९०; रेउ. भाग १,२८५-६।

सभी महलों पर अधिकार कर लिया, तब वह बुलन्द अख्तर को साथ लेकर ईश्वरदास के साथ अहमदाबाद गया और शुजात खां से मिलने के बाद बादशाह से मिलने के लिये दक्षिण की ओर चला गया।[६१]

शुक्रवार, २०, मई सन् १६९८ ई. (२० जिल्काद, ११०९ हि.) को दुर्गादास इस्लामपुरी में बादशाह से मिला। इसे भेंट के समय जब बादशाह ने दुर्गादास को शस्त्र उतार कर अन्दर आने की आज्ञा दी, तो दुर्गादास ने तुरन्त शाही आज्ञा का पालन किया। बादशाह ने तब प्रसन्न होकर उसे सशस्त्र अन्दर आने की अनुमति दे दी। रुहुल्ला खां को आदेश दिया गया कि वह आगे बढ़कर दुर्गादास का स्वागत करे। दुर्गादास को तीन हजार जात ढाई हजार सवार का मनसब और खिलअत, जड़ाऊ

---

६१. मीरात. २९६; फुतूहात १६८ अ।

राजरुपक (३३६-९. ३४४-५. ३४८-५४) में अकबर के बच्चो को लौटाने के विषय में सर्वथा पृथक् का विवरण मिलता है। इसके अनुसार सन् १६९४-५ ई. (सम्वत् १७५१) में बादशाह ने शुजात खां को लिखा कि दुर्गादास तुम्हारे देश में, इसलिये या तो अकबर के परिवार का प्रबन्ध करो या दुर्गादास को पकड़ो, अन्यथा चूंड़ियां पहन लो और मेरे पास आओ। शुजात खां यह आज्ञा सुनकर घबरा गया और उसने अपने अधिकारियों से परामर्श करके बादशाह को यह प्रार्थना-पत्र भेजा कि मैं दुर्गादास पर अचानक आक्रमण करूंगा। आक्रमण में यदि अकबर के परिवार को हानि पहुँची तो मेरा दोष न होगा। बादशाह ने उसे लिखा कि चाहे जिस प्रकार हो. अकबर के परिवार को वापस लेने का प्रबन्ध करो। शुजात खाँ ने तब दुर्गादास को पत्र लिखा तथा फिर ईश्वरदास नागर और सांचोरा ब्राह्मण गिरधर को सन् १६९५-६ ई. (सम्वत् १७५२) में उसके पास भेजा। इसके पश्चात् कोट-कोलर के युद्ध में शाही सेना की पराजय का समाचार सुनकर बादशाह ने पुनः गुजरात के लिये दूत भेजकर शुजात खां को कहलाया कि वह दुर्गादास को धन-सम्पत्ति आदि देकर किसी प्रकार से अकबर का कुटुम्ब वापस ले ले। शुजात खाँ ने कुछ दुर्गादास को पत्र लिखकर बात की। तब दुर्गादास ने अकबर की पत्नी को दक्षिण पहुँचा दिया, परन्तु उसके बेटा-बेटी दुर्गादास के पास ही रहे। सन् १६९६-७ ई. (सम्वत् १७५३) में दुर्गादास ने बादशाह को अकबर की कन्या लौटा दी। अपनी पौत्री दुर्गादास के सद्व्यवहार के विषय में सुनकर औरंगजेब प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि दुर्गादास यदि अकबर के पुत्र को लेकर आये तो उसे पांच हजार का मनसब दिया जायेगा। यह समाचार पाकर दुर्गादास ने अजीतसिंह को उदयसिंह के साथ कोरटे पहुँचाया। तथा स्वयं शाहजादे को लेकर दक्षिण जाने लगा। अकबर के पुत्र को कुछ संदेह उत्पन्न हो गया जिससे वह जोधपुर आ गया। उसके स्वागत के लिये लस्कर खां, हयात खां तथा नौरंग खां नामक तीन नवाब आये। इन तीनो ने अजीत सिंह को जोधपुर आने के लिये लिखा, तब वह जोधपुर गया और वहाँ से बाल समन्द गया। नवाब ने अजीतसिंह से मिलकर उसे सिवाने की राहदारी व चौथ देना स्वीकार किया। आसोपा (२५५-६) ने भी लगभग ऐसा ही विवरण किया है।

परन्तु इस विवरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ईश्वरदास ने इस कार्य में स्वयं भाग लिया था, अत: अतः उसी के विवरण को मान्यता देना युक्ति संगत है।

जमधर, पदक, और मोतियों की माला इनाम में दिये गये।[६२] उसके मनसब के अनुरूप उसकी जागीर में जोधपुर राज्य के मेड़ता, जैतारण, व सिवाना नामक परगने तथा गुजरात सूबे के धांधुका, रांणपुरा, इस्लाम नगर तथा कुछ और परगने भी दिये गये और उसके भाई खींवकरण, उसके पुत्र तेजकरण व अभयकरण, उसके पौत्र अनूपसिंह के साथ साथ राठौड़ रघुनाथसिंह, राठौड़ मुकुन्ददास, राठौड़ महासिंह आदि कई साथियों को भी मनसब दिया गया।[६३]

इसी समय औरंगजेब ने अजीतसिंह को डेढ़ हजार जात पांच सौ सवार का मनसब[६४] तथा जालोर व सांचोर की जागीरदारी व फौजदारी दे दी।[६५] केवल एक ही सप्ताह के बाद दुर्गादास को स्वदेश लौटने की अनुमति दे दी गई।[६६]

---

६२. मुस्ताद खां २४०; फुतूहात. १६८ ब।

ख्यात (भाग २,९६) व दानेश्वर (२१३) में भी लिखा है कि दुर्गादास हाथ बांधे हुए सशस्त्र औरंगजेब से मिला था।

दुर्गादास के मनसब के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। दिलकुशा (भाग २, २१८ अ) में लिखा है कि उसे तीन हजार जात तीन हजार सवार का मनसब दिया गया था। सरकार (भाग ५, ३३१); डा. रघुबीर सिंह (पूर्व. १४६); फारूकी (२४१); ओझा (भाग ४. खंड २, ५१८) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। ख्यात (भाग २,९४); जुनी. (७६); मूंदियाड (२०७); अजितविलास (२३५ ब); राठौड़ां (३६) दानेश्वर (२१३): एवं वीर विनोद (भाग २,८३२) में दुर्गादास का मनसब तीन हजार जात दो हजार सवार स्वीकार किया गया है। रेउ (प्राचीन राजवंश. २१४·५) तथा आसोपा मूल. २११-२) ने भी इसका समर्थन किया है। परन्तु ईश्वरदास नागर इस घटना से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता था। साथ ही उसके मत की पुष्टि समकालीन इतिहासकार मुस्ताद खां ने भी की है, अतः इसी को स्वीकार करना अधिक उचित प्रतीत होता है।

६३. ख्यात. भाग २,९४-६; जुनी. ७६; मूंदियाड़, २०७; अजितविलास २३५ ब; राठौड़ां. ३६; वीर. भाग २,८३३।

६४. ख्यात. भाग २,९६; मूंदियाड़. २०६; जुनी. ७८; दानेश्वर. २१४; ख्यात. वात. ५१ ब; प्राचीन राजवंश. २१५।

आसोपा (मूल. २१२) ने पन्द्रह सौ जात पन्द्रह सौ सवार का मनसब मिलना स्वीकार किया है; परन्तु इसकी पुष्टि किसी आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

मीरात-ए-अहमदी में केवल यह लिखा है कि अजीतसिंह को मनसब दिया गया था; अन्य किसी भारती ग्रन्थ में इसका उल्लेख भी नहीं है। अतः राजस्थानी ख्यातों को ही मान्यता दी गई है।

६५. मीरत. ३०२; जुनी. ७८; दानेश्वर २१४; बाम्बे गैजे॰ २९०-१; मूल. २१२।

अजीतसिंह को जागीर में कौन-कौन से परगने मिले थे. इस सम्बन्ध में विभिन्न मत मिलते हैं। अजितोदय (सर्ग १५, श्लोक ५०); अभयविलास (१० ब); सूरजप्रकाश (३६-७); ख्यात (भाग २; ९६); मूंदियाड़ (२०७); ख्यात वात (५१ ब); वार्ता (३६ अ) २ प्राचीन राजवंश (२१५) में केवल जालोर का उल्लेख किया गया है। सरकार (भाग ५,२२९-३०), ओझा (भाग ४, खंड २, ५१७). व रघुबीरसिंह (पूर्व १४६) ने जालोर, साँचोर व सिवाना तथा कामेसेरियट में जालोर साँचोर व भीनमाल की जागीरदारी व फौजदारी मिलना स्वीकार किया है। परन्तु मीरात-ए-अहमदी को मान्यता देना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

६६. फुतूहात १६८ ब सर जदुनाथ सरकार (भाग ५, २२९)।

यह विशेष उल्लेखनीय है कि बादशाह ने अजीतसिंह को दुर्गादास की अपेक्षा बहुत कम मनसब दिया था, जबकि अजीतसिंह महाराजा जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी था और दुर्गादास उसका अधीनस्थ। दोनों के पद को देखते हुए उचित यही था कि अजीतसिंह को बड़ा मनसब दिया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह ने अजीतसिंह को मनसब देकर उसे शान्त रखना चाहा और दुर्गादास को बड़ा मनसब देकर अजीतसिंह व दुर्गादास में मनमुटाव, उत्पन्न करके उसे अपनी ओर मिलाने का प्रयास जिया।

अजीतसिंह को जीवन में प्रथम बार शाही मान्यता प्राप्त हुई थी। जब उसे जालोर व सांचोर के परगने मिलने की सूचना मिली तो वह जालोर गया और उसने शनिवार, २ जुलाई, सन् १६९८ इ. (आषाढ़ सुदि ५, संवत् १७५५) को जालोर गढ़ पर अपना अधिकार स्थापित किया।[६७] यहां उसका आधिपत्य सन् १७०७ ई. तक निरन्तर बना रहा। अजीतसिंह को शाही मनसब मिल जाने के बाद दोनों पक्षों में अगले लगभग पांच वर्ष तक (सन् १६९८-१७०३ ई.) कोई संघर्ष नहीं हुआ। परिणामतः जोधपुर राज्य में शान्ति बनी रही। राठौड़ सरदारों को चूंकि कई वर्ष बाद शान्ति मिली थी, अतः केवल थोड़े से सरदारों के अतिरिक्त शेष सभी अजीतसिंह से विदा लेकर अपने-अपने ठिकानों को चले गये। अजीतसिंह ने अपने सरदारों को पट्टे दिये और 'लाख पसाव' तथा 'दस पसाव'[६८] भी दिये।[६९]

दुर्गादास इन दिनों अपनी जागीर के प्रबन्ध में व्यस्त था, सम्भवतः इसी कारण अजीतसिंह ने चांपावत उदयसिंह को पुनः प्रधान के पद पर नियुक्त किया। चांपावत मुकुन्ददास को मुसाहिब तथा भंडारी विट्ठलदास को दीवान का पद दिया गया। जालोर में चांपावत उदयसिंह, जेतावत अर्जुनसिंह, भंडारी विट्ठलदास, व्या द्रोणाचार्य तथा पुरोहित रणछोड़ पर अजीतसिंह की विशेष कृपादृष्टि रहा करती थी और उसने शासन का समस्त भार इन लोगों पर छोड़ दिया था।[७०]

इस काल में अजीत सिंह ने अपने आस पास के लोगों से अच्छे सम्बन्ध

---

६७. राजरूपक. ३५५।

ख्यात (भाग २,९६); जुनी (७६); दानेश्वर (२१४) में अजीतसिंह के जालोर-गढ़ में प्रवेश करने की तिथि शनिवार, ११ जून (द्वितीय ज्येष्ठ सुदि १३) स्वीकार की गई है तथा ख्यातवात (५१ ब) में १३ जून (ज्येष्ठ सुदि १५) का उल्लेख है। परन्तु समकालीन ग्रन्थ राजरूपक को मान्यता देना अधिक युक्तिसंगत लगता है।

६८. लाख पसाव का अर्थ उस पुरस्कार से है जिसमें कवि को वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़ा और कम से कम एक हजार से पाँच हजार तक वार्षिक आय की जागीर दी जाती थी। (रेउ. भाग १, २०) दस पसाव भी इससे कम मूल्य का इसी प्रकार का पुरस्कार होता था।

६९. ख्यात-भाग २,९६; अजितोदय-सर्ग १६ श्लोक १८; मूंदियाड़. २०९; दानेश्वर. २१४: राठौड़ां ३८; आसोपा. २५७।

स्थापित करने का यथा शक्ति प्रयास किया। इसके लिये उसने विभिन्न स्थानों की कन्याओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। सम्भवतः इसमें उसका उद्देश्य यही था कि पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से निकटवर्ती सरदार उसका विरोध नहीं करेंगे और भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता करेंगे।[७१] ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं था। ९ नवम्बर, सन् १७०० ई. (८ जमादिउस्सानी, ११११२ हि.) को बादशाह ने अजीतसिंह को एक फरमान भेजकर शाही सेवा में आने का आदेश दिया। सन्देशवाहक हातिमबेग के साथ अजीतसिंह के लिये खिलअत भेजी गई, और उसे यह आज्ञा दी कि वह अजीतसिंह को शाही सेवा में लाये। परन्तु अजीतसिंह स्वयं दरबार में नहीं आया और उसने इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र बादशाह के पास भेजा कि यदि उसके साथियों को वेतन में जागीर तथा कुछ नकद रुपया दिया जाय तो वह चार हजार सवारों के साथ दरबार में आने के लिये तैयार है। शनिवार, १६ नवम्बर (१५ जमादि-उस्सानी) को औरंगजेब ने अजमेर के कोषागार से अजीतसिंह को तीन हजार रुपया देने का आदेश दिया, और उसे इस आशय का एक फ़रमान भेजा कि जब वह स्वयं दरबार में उपस्थित होगा तो जागीरें भी दी जायेंगी। इस फ़रमान के साथ ही उसे खिलअत भी भेजी गई। परन्तु अजीतसिंह तब भी दरबार में नहीं आया। सन् १७०१ ई० के प्रारम्भ में भी उसे कई बार बुलाया गया, परन्तु उसने शाही आज्ञा का पालन नहीं किया[७२]। लगभग बाईस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी औरंगज़ेब ने उसे जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया था, सम्भवतः इसी कारण उसे बादशाह पर पूरा विश्वास न था, और इस बात में भी सन्देह था कि दरबार में जाकर भी उसकी मांग पूरी हो सकेगी या नहीं।

इन वर्षों में बादशाह यद्यपि अजीतसिंह को आश्वस्त न कर सका, पर दुर्गादास को उच्च मनसब व जागीर देकर उसे शाही सेवा में रखने में वह पूर्ण सफल रहा। सन् १६९८-९ ई. (१११० हि.) में उसे काबुल के सूबेदार अमीर खाँ द्वारा भेजे गए शाहजादा अकबर के पत्र से यह समाचार मिला कि वह भारत लौटना चाहता है। औरंगजेब ने सोमवार, २ जनवरी सन् १६९९ ई. (१० रजब, १११० हि०)

---

७१. अजीतसिंह ने बृहस्पतिवार, २२ जून, सन् १६९९ ई (आषाढ़ सुदि ६, संवत १७५६) को जैसलमेर के राव अमरसिंह की पुत्री लालकुँवर से; अप्रेल. सन् १७०० ई. (वैशाख, सवत् १७५७) में गुजरात के हलवद नामक नगर के अधिकारी झाला चन्द्रसेन की कन्या से, शुक्रवार, १४ जून. सन् १७०० ई. (आषाढ़ सुदि ९, संवत् १७५७) को रोहचे के पृथ्वीराज के पुत्र फतेहसिंह की बेटी राजानाम से. २२ जनवरी सन् १७०१ ई. (माघ बदि १० सवत् १·५७) को होटलू के चौहान चतुरसिंह की लड़की से, सन् १७०१-२ ई. (संवत् १७५८) मे देरावर के मालिक भाटी दलशाह की दुहीता मृगावती से तथा साँचोर के चौहान सहसमल की पुत्री से विवाह किया था (राजरूपक. ३५५-९; ३६०, व ३८६)।

७२. अखबारात, लन्दन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष ४४, ३५१ ब, ३५४ ब. ३५५ अ, मीरात. ३०५; सरकार-भाग ५;२३२; कामसेरिएट. २०२: रेउ. भाग, १ २८७; ओझा. भाग ४, खंड २, ५१८-९।

को दुर्गादास को इस आशय का एक फरमान भेजा कि वह कन्धार जाय और वहाँ से अकबर को लेकर शाही सेवा में उपस्थित हो। दुर्गादास ने शाही आज्ञा का पालन किया। रविवार, ७ मई (१७ जिल्काद) को बादशाह को यह समाचार मिला कि दुर्गादास शुजात खाँ से पचास हजार रुपया नकद तथा खिलअत आदि लेकर मेड़ता से कन्धार की ओर गया है।[७३] दुर्गादास ने सिंध पहुँचकर अपने पुत्र तेजकरण को अकबर से बातचीत करने के लिए आगे भेजा, परन्तु अकबर को बादशाह पर विश्वास नहीं था, अतः उसने अपने पिता से भेंट करना स्वीकार नहीं किया। फलतः शाही आज्ञा के अनुसार दुर्गादास वापस लौट गया।[७४]

इस बीच अजीतसिंह को दरबार में बुलाने के बादशाह के सारे प्रयत्न विफल हो चुके थे। इसी कारण उसे सम्भवतः यह भय हुआ कि कहीं अजीतसिंह व अन्य राठौड़ सरदारों के प्रभाव से दुर्गादास भी शाही सेवा से विमुख न हो जाय। अतः उसने उसे मारवाड़ से दूर रखने का निश्चय किया। और सन् १७०१-२ ई. (१११३ हि.) में पाटन का फौजदार नियुक्त कर दिया। मेड़ता से चलकर जालोर होता हुआ दुर्गादास शाही आज्ञानुसार सम्भवतः बड़गाँव में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। बृहस्पतिवार, २७ अगस्त, सन् १७०२ ई. (२४ रबीउस्सानी, ११२४ हि.) को उसे पाटन जाने के लिए विदा दी गई और इस अवसर पर उसे हाथी, घोड़े, खिलअत, दुगदुगी आदि दिये गए तथा उसके पुत्रों, भाइयों व साथियों को भी खिलअतें मिलीं।[७५]

इसी बीच सोमवार, १६ जून, सन् १७०१ ई. (२० मुहर्रम १११३ हि.) को अहमदाबाद के कुशल एवं अनुभवी सूबेदार शुजात खाँ की मृत्यु हो गई। औरंगजेब ने उसके स्थान पर शाहजादा आजम की नियुक्ति की। परन्तु आजम शुजात खाँ की भाँति नीतिकुशल नहीं था। फलस्वरूप उसके आने के कुछ दिन पश्चात् ही राठौड़ों तथा शाही कर्मचारियों के बीच की खाई चौड़ी होने लगी।[७६] दुर्गादास भी आजम से सम्भवतः विशेष सन्तुष्ट न रह सका और पुनः विद्रोही हो उठा और अजीतसिंह को भी उपद्रव करने के लिए प्रेरित करने लगा था।[७७] सम्भवतः इन्हीं दिनों शाहजादे अकबर के साथ उसके पत्र व्यवहार का भी बादशाह को पता

---

७३. रेउ. राठौड़ दुर्गादास-५५-६; मीरात. ३०४ ५; अखबारात; लन्दनसंग्रह, औरंगजेब. वर्ष ४३, ९९ अ।

७४. ख्यात भाग २,९६; जुनी. ७६-७; दानेश्वर २१३।

७५. अखबारात, लन्दनसंग्रह, औरंगजेब, वर्ष ४६,३८,५९-६०; मीरात. ३०७; ख्यात-भाग २,९६; जुनी. ७७; सरकार भाग ५, २३२; ओझा. भाग ४, खंड २, ५१९।

७६. मुस्ताद खाँ २६५-२६६ मीरात ३०७; बाम्बे गैजे. २९१; सरकार भाग ५,२३२; सरकार ने लिखा है कि शुजात खाँ की मृत्यु ९ जुलाई को हुई थी और बाम्बे गैजे. के अनुसार यह घटना सन् १७०३ ई की थी। परन्तु मुस्ताद खाँ समकालीन इतिहासकार है, अतः उसके मत को स्वीकार किया गया है।

७७. कलिमात-ए-तयिब्बात. १४९ ब इनायतुल्ला-अहकाम ४-ब जिसका उल्लेख सरकार (भाग ५, २३२) ने किया है।

चला[७८]। इस प्रकार के समाचार पाकर बादशाह ने आजम को यह आदेश भेजा कि या तो वह दुर्गादास को किसी प्रकार बादशाह के पास भेज दे अथवा उसे मार डाले।[७९] सफदार खाँ बाबी नामक एक मुगल सेनापति ने इस कार्य का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। समस्त योजना बनाकर आजम ने दुर्गादास को पाटन से बुलाया। दुर्गादास और आजम की भेंट के लिए जो दिन निश्चित किया गया था उस दिन शाही सेना को शिकार के बहाने से तैयार रक्खा गया। आजम के दरबार में सफ़दर खाँ तथा अन्य सभी शाही मनसबदार सशस्त्र उपस्थित थे।

दुर्गादास पाटन से चलकर साबरमती नदी के निकट बरेज (कारिज) नामक स्थान पर रुका और चूंकि एक दिन पूर्व उसने एकादशी का व्रत रक्खा था, अतः उसने निश्चय किया कि वह भोजन करने के बाद आजम से मिलेगा। इधर दुर्गादास के आने में जितनी देर हो रही थी, आजम की व्यग्रता उतनी ही बढ़ती जा रही थी, और वह बार-बार दूत भेजकर उसे बुला रहा था। इस प्रकार बारम्बार बुलाए जाने से और सैनिक तैयारी व शिकार के आयोजन के समाचार से दुर्गादास शंकित हो उठा, और बिना भोजन किए ही वह अपने शिविर में आग लगाकर अपने साथियों सहित भाग खड़ा हुआ।

दुर्गादास के भाग जाने का समाचार पाकर सफदर खाँ बाबी को आजम ने शस्त्रागार के दरोगा तथा अन्य शाही अधिकारियों और सैनिकों के साथ उसके पीछे भेजा। जब यह सेना दुर्गादास से कुछ ही दूर रह गई, तो दुर्गादास के पौत्र ने यह प्रस्ताव रखा कि शाही सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उसे थोड़े से सैनिकों के साथ पीछे छोड़ दिया जाय और दुर्गादास शेष सेना के साथ आगे निकल जाय। दुर्गादास ने पहले तो यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, परन्तु चूंकि शाही सेना निरन्तर निकट आती जा रही थी और स्थिति गम्भीर होती जा रही थी, अतः दूसरा कोई चारा न देखकर उसे इस योजना को स्वीकार करना पड़ा। दुर्गादास तो पाटन की ओर चला गया और रघुनाथसिंह, दुर्जनसिंह मोहकमसिंह हरनाथ तथा गिरधर आदि कुछ राठौड़ सरदार तथा उसके पुत्र महकरण तथा अभयकरण और पौत्र अनूपसिंह कुछ सैनिकों के साथ पीछे रुक गए। शीघ्र ही शाही सेना निकट आ पहुँची। इस दल ने उसे रोका। इस मुठभेड़ में दोनों पक्षों को काफी क्षति उठानी पड़ी और दुर्गादास का पौत्र अनूपसिंह वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। सायंकाल भोजन का समय हो जाने के कारण शाही सेना वापस लौट गई।

---

७८. अहकाम-ए आलमगीरी १.४-ब; कलिमात-ए-तयिब्बात १२२ जिसका उल्लेख डा. रघुबीरसिंह ने (राठौड़ वीर-दुर्गादास के पत्र का सही संवत् एवं ईस्वी तारीख-राजस्थान भारती; जुलाई १९५१, वर्ष ३, अंक २, १३) किया है।

७९. मीरात. ३०९-१०; सरकार. भाग ५, २३२; कॉमसेरिएट २०२; बाम्बे गैजे. २९१; फारुकी २४१; रेउ भाग १, २८८; ओझा. भाग ४, खंड २, ५१९।

दिलकुशा (भाग २, १५४-ब) में लिखा है कि आजम ने स्वयं ही दुर्गादास को पकड़ने का विचार किया था राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में भी शाही आज्ञा का उल्लेख नहीं है। परन्तु गुजरात से सम्बन्धित घटनाओं के लिये मीरात-ए-अहमदी को मान्यता देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

उधर दुर्गादास आगे बढ़ता हुआ साठ मील दूर ऊंभा-उनौवा नामक स्थान पर रात को रुका, और दूसरे दिन पाटन से अपने परिवार को लेकर थिराद होता हुआ अजीतसिंह के पास चला गया। अजीतसिंह ने उसका सहयोग पाकर पुनः उपद्रव आरम्भ कर दिये। आजम ने शाही सेना को पाटन भेजा परन्तु दुर्गादास मारवाड़ की ओर जा चुका था, अतः वह शाही सैनिकों के हाथ न लगा। पाटन में नियुक्त उसके कोतवाल को मारकर शाही सैनिक वापस लौट आए।[८०]

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद यह प्रथम अवसर था जब मारवाड़ में लगभग सात वर्षों (सन् १६९६-१७०३ ई.) तक लगातार शान्ति बनी रही। अजीतसिंह यद्यपि जालोर व साँचोर के परगने तथा साधारण मनसब पाकर सन्तुष्ट नहीं था, फिर भी उसने शान्ति बनाए रखकर सम्भवतः अपनी शक्ति सुदृढ़ करना ही उचित समझा। शासन का भार उसके कन्धों पर सर्वप्रथम इसी समय पड़ा और उसने इस बीच अपने पड़ौसी राज्यों से अच्छे सम्बन्ध रखकर अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाने का भी प्रयास किया। उधर औरंगजेब ने भी अजीतसिंह को छेड़ना उचित नहीं समझा और दुर्गादास को अपनी ओर बनाए रखकर उसकी शक्ति को कम करने का प्रयास किया। फलस्वरूप शाही अधिकारियों तथा राठौड़ सरदारों को भी आराम करने का कुछ अवसर मिला। परन्तु इस काल के अन्त में आजम की जल्दबाजी से दुर्गादास शाही सेवा छोड़कर अजीतसिंह के पास चला गया और इससे अजीतसिंह को बल मिला। फलतः मारवाड़ पुनः अशान्ति का क्षेत्र बन गया।

(घ) पुनः विरोध (सन् १७०३-७ ई.)

जालोर एवं सांचोर का अधिकार पाकर अजीतसिंह न तो पूरी तरह सन्तुष्ट था और न बादशाह की ओर से पूर्ण आश्वस्त ही था। परन्तु पिछले पाँच वर्षों से

---

८०. मीरात. ३०९-१०; दिलकुशा. भाग २, १५४-ब; ख्यात. भाग २, ९८-९; जुनी. ७७; वीर भाग २, ८३३; बाम्बे. गैजे. २९१-२; सरकार. भाग ५, २३२-३; कॉमसेरिएट २०२-३; फारूकी २४१; रेउ. भाग १, २८८; ओझा भाग ४, खंड २, ५१९-२०।

मनूची (भाग ४, २४२) ने इस युद्ध का जो विवरण दिया है वह नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है और उसका उल्लेख करना भी अनावश्यक है।

यह कहना कठिन है कि यह युद्ध किस वर्ष में हुआ। मीरात. के अनुसार यह युद्ध सन् १७०१-२ (१११३) में हुआ था। लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों ने इसे ही स्वीकार किया है। परन्तु अखबारात से यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि १७ फ़रवरी सन् १७०३ ई० (४ शव्वाल; १११४ हि०) तक दुर्गादास पाटन में ही उपस्थित था (अख़बारात, लन्दन संग्रह, वर्ष ४६, १७८) अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ख्यात, जुनी, व वीर में लिखा है कि यह युद्ध १८ अक्तूबर, सन् १७०५ ई० (कार्तिक सुदि १२, संवत् १७६२) को हुआ था। परन्तु अक्तूबर, सन् १७०५ ई० (२ रजब, १११७ हि०) में दुर्गादास की क्षमा-याचना पर बादशाह से उसे दूसरी बार शाही मनसब व पाटन की फौजदारी मिली थी। अवश्य ही यह संघर्ष इस घटना से पूर्व हुआ होगा। बाम्बे. गैजे. के अनुसार यह युद्ध सन् १७०३ ई० में हुआ था। रेउ ने भी इसी वर्ष को स्वीकार किया है। आगे-पीछे की घटनाओं को देखते हुये इस मत को ही स्वीकार करना उपयुक्त जान पड़ता है, यद्यपि किसी फारसी अथवा राजस्थानी ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती।

उसका जीवन अपेक्षाकृत शान्तिमय था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि बादशाह से अच्छे सम्बन्ध रखकर वह अपनी शक्ति को पुनः संगठित करना चाहता था। सन् १७०३ ई. में जब दुर्गादास शाही सेवा छोड़कर उसके पास आ गया तो एक बार फिर मारवाड़ में विरोध आरम्भ हो गए और राठौड़ सेनाओं ने स्थान-स्थान पर शाही अधिकारियों पर आक्रमण करना तथा शाही चौकियों को लूटना आरम्भ कर दिया।[८१] परन्तु इस बार अजीतसिंह को अपने सरदारों का पूरा सहयोग प्राप्त नहीं हो सका। अजीतसिंह व दुर्गादास में कुछ ही दिन बाद मनमुटाव हो गया,[८२] और दुर्गादास अप्रसन्न होकर सन् १७०५ ई. में पुनः बादशाह की सेवा में चला गया। औरंगजेब ने उसे अक्तूबर के महीने में तीन हजार जात दो हजार सवार का मनसब देकर पहले की तरह गुजरात में नियुक्त करने की आज्ञा दी।[८३] यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह तथा दुर्गादास में मनोमालिन्य क्यों हुआ? सर जदुनाथ सरकार ने इसके लिए अजीतसिंह को पूर्णतया दोषी ठहराते हुए लिखा है कि वह स्वेच्छाचारी, अभिमानी व अधीर प्रकृति का व्यक्ति था। उसमें न तो नेतृत्व शक्ति थी और न वह सुनिश्चित योजनानुसार कार्य ही कर सकता था। शाही क्षेत्र में दुर्गादास के प्रभाव तथा स्वजातियों में उसकी प्रसिद्धि के कारण वह उससे ईर्ष्या भी करता था।[८४]

दुर्गादास के चले जाने के कुछ ही दिन बाद चाँपावत उदयसिंह तथा जेतावत अर्जुनसिंह भी अजीतसिंह से अप्रसन्न हो गये।[८५] इसी अवधि में मोहकमसिंह के ससैन्य जालोर की ओर आने का समाचार अजीतसिंह को सर्वप्रथम खींवसर में नियुक्त धांधल उदयकरण से मिला। इसके बाद ही अन्य सरदारों ने भी ऐसी सूचना भेजी, परन्तु अजीतसिंह को अपने उच्चाधिकारियों की योग्यता पर विश्वास था, अतः उसने इन पर ध्यान नहीं दिया। शनिवार, ५ जनवरी, सन् १७०६ ई० (माघ सुदि २, संवत् १७६२) को आधी रात्रि के समय चौहान फतेसिंह नामक राठौड़ सरदार के पुत्र जेगी ने आकर बताया कि मोहकमसिंह भवरानी[८६] नामक स्थान तक आ पहुँचा है। अजीतसिंह ने जब यह समाचार उदयसिंह को भेजा तो उसने निश्चिन्त रहने की सलाह दी। अजीतसिंह को स्पष्ट हो गया कि उदयसिंह शत्रु से सहानुभूति रखता है, अतएव वह चिन्तित हो उठा। शत्रु निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा था। अतः उसने अपने सरदारों से परामर्श किया। राठौड़ तेजसिंह, चाँपावत आईदान, इन्द्रभाण, राठौड़ भीव, खीचीकूंभो तथा कूंपावत रामसिंह आदि ने प्रस्ताव रक्खा

---

८१. मीरात. ३१३-४; सरकार. भाग ५, २३४; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२२; पूर्व. १४६-७।

८२. कलिमात-ए-तयिब्बात. ७४-अ. ३०-अ जिसका उल्लेख सर जदुनाथ सरकार (भाग ५, २३४) ने किया है; ओझा (भाग ४, खंड २, ५१२); कामसेरिएट. २०३; पूर्व १४७।

८३. मुस्ताद खाँ २६६; मीरात. ३१६; वीर. भाग २, ७२३; सरकार. भाग ५, २३५; बाम्बे. गैजे. २६३; कॉमसेरिएट. २०४; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२५।

८४. सरकार. भाग ५, २३४-५।

८५. ख्यात. भाग २, ६७; मूंदियाड़ २१०; अजितविलास. २३६। अ; रेउ. भाग १, २६०; आसोपा. २५७-८।

८६. यह गाँव जालोर से लगभग सोलह मील उत्तर की ओर स्थित है।

कि चूंकि शत्रु निकट आ चुका है और प्रमुख अधिकारियों के विरोधी हो जाने के कारण सैनिकों की भी कमी है, अतः जालोर खाली कर देना चाहिये। अजीतसिंह ने उनकी सलाह मान ली और राठौड़ राजसिंह, ऊदावत भावसिंह, मंडलो रूपसिंह, लाड खां, इन्द्रभाण आदि कुछ सरदारों को जालोर की रक्षा का भार सौंप दिया और स्वयं अपने परिवार तथा शेष सैनिकों को लेकर केवल पांच कोस दूर अगवारी नामक गांव में चला गया।

मोहकमसिंह ६ जनवरी (माघ सुदि ३) को जालोर पहुंचा। अजीतसिंह के सरदारों ने तीन दिन तक गढ़ की रक्षा की, परन्तु अन्त में परास्त होकर वे अजीतसिंह के पास चले गये। मोहकमसिंह ने जालोर पर अधिकार कर लिया। यह सामाचार पाकर मेड़तिया कुशलसिंह, बलून्दे का ठाकुर विजयसिंह, राठौड़ विट्ठलदास आदि कई राठौड़ सरदार अपनी-अपनी सेना लेकर अजीतसिंह के पास पहुंचे। फलस्वरूप शीघ्र ही उसके पास एक बड़ी सेना एकत्र हो गई। अब उसने मोहकमसिंह को युद्ध के लिये ललकारा, परन्तु मोहकमसिंह उसकी शक्ति देखकर भयभीत हो गया और बिना युद्ध किये ही १५ जनवरी (माघ सुदि १३) को उसने जालोर छोड़ दिया। अजीत-सिंह ने उसका पीछा किया। मार्ग में उसकी सेना में निरन्तर वृद्धि होती गई। दुनाड़ा नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें मोहकमसिंह के तीस व्यक्ति मारे गये और पचास घायल हुए और वह भागकर रातभर में पीपाड़ और सिवरानी होता हुआ मेड़ता चला गया। उसके घोड़े, ऊँट, नगाड़ा आदि अजीतसिंह के सैनिकों ने लूट लिये। अजीतसिंह का विचार उसका पीछा करने का था; परन्तु जोधपुर के फौजदार व वाकानवीस आदि ने उससे कहा कि वे समस्त समाचार, बादशाह को लिखकर मोहकमसिंह को दंड दिलायेंगे, अतः वह उसे छोड़ दे। चांपावत मुकुन्ददास ने भी शाही कर्मचारियों से अच्छे सम्बन्ध रखने की सलाह दी। इसलिये अजीतसिंह ने उनकी बात मान ली और जालोर वापस लौट गया।[८७]

सम्भवतः प्रमुख सरदारों के ऐसे विरोधी आचरण के कारण सन् १७०३ ई० में आरम्भ किया गया विरोध जोर न पकड़ सका। इसके अतिरिक्त दुर्भिक्ष व बीमारी के कारण मारवाड़ की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी और लूटमार व अनवरत युद्ध से सम्भवतः राठौड़ों की शक्ति का ह्रास हो चुका था। इन कारणों से सन् १७०६ ई० तक अजीतसिंह को शाही सेना के विरुद्ध विशेष सफलता न मिल सकी।[८८]

---

८७. ख्यात. भाग २, ९९-१०५; जुनी. ७९-९०; मूंदियाड़ २११-५; अजितोदय सर्ग १६, श्लोक १९-४०; सर्ग १७, श्लोक १-२; अजितविलास. २३६-अ; वीर. भाग २,७६३; राठौड़ां -३६-८; राजरूपक. ३९०-४०३; गुटका. ३०९. ५; रेउ. भाग १, २९०-१, मूल. २१३।

मीरात. (३३२); बाम्बे. गैजे, (१९५); टॉड (भाग, २५९) व ओझा. (भाग ४. खंड २, ५२५) में अजीतसिंह द्वारा मोहकमसिंह के हारने का उल्लेख है।

८८. मीरात. ३९८; सरकार भाग ५, २१४; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२१; पूर्ण. १४६-७।

परन्तु इसी वर्ष एक ऐसी घटना घटित हुई जिससे अप्रत्यक्ष रूप से अजीतसिंह को बहुत प्रोत्साहन मिला। इन दिनों अहमदाबाद का सूबेदार शाहज़ादा आज़म अहमदाबाद से चला गया था और उसके स्थान पर नियुक्त शाहज़ादा बेदारबख्त अभी तक वहां नहीं पहुंचा था। फलतः गुजरात का सूबा अरक्षित था। मरहठों ने इस स्थिति से लाभ उठाया और बहुत बड़ी संख्या में वे सूबे के अन्दर घुस आये। नायब सूबेदार ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, परन्तु रतनपुर नामक स्थान पर धनाजी जादव के नेतृत्व में मरहठों ने मुगल सैनिकों को बुरी तरह परास्त किया।[८९] शाही सेना की इस पराजय से अजीतसिंह को भी प्रोत्साहन मिला और उसने आस-पास के कई शाही कर्मचारियों पर आक्रमण किये। रायचां के चौहानों, देवड़ों तथा राड़धड़ा के शाही अधिकारियों को उसने परास्त किया। नवम्बर, सन् १७०६ ई० (मार्गशीर्ष, संवत् १७६३) में वह देवलावीटी सूराचन्द की ओर गया और वहाँ उसने पेशकश वसूल किया।[९०]

दुर्गादास भी इस अवसर से लाभ उठाने में पीछे नहीं रहा। गुजरात की अव्यवस्था को देखकर उसने भी उपद्रव आरम्भ कर दिये। जब वह थेराद नामक स्थान पर था तो अहमदाबाद के सूबेदार बेदार बख्त ने शाही आज्ञानुसार एक बड़ी सेना उसके विरुद्ध भेजी। दुर्गादास इस सेना का सामना न कर सका और भागकर सूरत के दक्षिण में कोलियों के प्रदेश में चला गया। कोलियों से कुछ सेना लेकर उसने पाटन के नायब फौजदार शाहकुली पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में शाहकुली मारा गया। कुछ ही दिन बाद दुर्गादास ने वीरमगाँव के अधिकारी मासूमकुली को भी हराया।[९१]

उधर अजीतसिंह ने धीरे-धीरे पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली थी। वह सूराचन्द में ही था कि उसे बादशाह औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। इस घटना से अजीतसिंह के जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ और एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ।

अजीतसिंह की राजनीतिक सक्रियता का आरम्भ सन् १६८७ ई० के बाद हुआ और उसने धीरे २ मारवाड़ के राठौड़ों का नेतृत्व सम्भाल लिया। इन वर्षों में अजीतसिंह ने अपनी शक्ति बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयास किया। मेवाड़ के राणा की

---

८९. सरकार. भाग ५, ३५४।

९० अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ५; राजरूपक ४०६; ख्यात. भाग २, १०५; जुनी. ८१; रेउ भाग १. २९१।

९१. मीरात ३२६ व ३२९; बाम्बे गैजे. २९४-५; वाट्सन ८८; सरकार-भाग ५; २३६; कॉमसेरिएट. २०४; रेउ. भाग १, २८९; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५५।

संकट में सहायता करके, बूंदी के राव से अपना मतभेद मिटाकर तथा प्रतापगढ़ व अन्य अनेक स्थानों में विवाह करके उसने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये। मारवाड़ मे इन बीस वर्षों में (सन् १६८७–१७०७ ई०) अनिश्चित स्थिति बनी रही। इस बीच सन् १६८७–८ ई० में इनायत खाँ तथा सम्भवतः सन् १६६४-५ ई० में शुजात खाँ ने अजीतसिंह के साथ समझौता कर लिया। सन् १६६६ ई० में बादशाह ने मनसब व जागीर देकर उसे सन्तुष्ट करना चाहा। परन्तु इन सामयिक एवं अस्थायी सन्धियों के अतिरिक्त शेष समय में राज्य-भर में संघर्ष होते रहे, जिनमें कभी अजीतसिंह को सफलता मिली, कभी शाही अधिकारियों को।

५

अजीत सिंह और बहादुरशाह

(सन् १७०७ ई० से सन् १७१२ ई०)

(क) जोधपुर पर अधिकार:—(सन् १७०७ ई०)

शुक्रवार, २१ फरवरी, सन् १७०७ ई० (२८ जिल्काद १११८ हि०) को अहमदनगर में बादशाह औरंगजेब का देहान्त हो गया।[1] जब यह समाचार अजीतसिंह को जालोर के निकट देवलवाटी सूराचन्द में मिला[2] तो उसने शीघ्रातिशीघ्र जोधपुर जाकर वहाँ अधिकार करने का निश्चय किया। सब तैयारी करके रविवार, ९ मार्च (चैत्र बदि २, संवत् १७६४) को उसने ससैन्य जोधपुर की ओर प्रस्थान किया और केवल तीन दिनों में दो सौ चालीस मील की यात्रा पूरी करके बुधवार, १२ मार्च (चैत्र बदि ५) को सवा प्रहर दिन बीतते-बीतते जोधपुर पहुँच गया। विश्राम के लिए समय गँवाना उचित न समझकर उसने तुरन्त जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के नायब फौजदार जाफर कुली[3] ने अपने सैनिकों के साथ राठौड़ों को रोकने का पूरा प्रयास किया, परन्तु वह राठौड़ सैनिकों के सामने अधिक देर न टिक सका और भाग खड़ा हुआ। अजीतसिंह के सैनिकों ने शाही सेना का पीछा किया और बहुतों को मार डाला तथा बहुत से बन्दी बना लिए गए। अजीतसिंह ने करणोत खींवकरण, करणोत मेहकरण, चांपावत हरनाथ, चांपावत जगन्नाथ, चांपावत सबलसिंह, ऊदावत जगराम, ऊदावत हृदयनारायण, ऊदावत प्रतापसिंह, जोधा शिवदान, जोधा अखेराज, जोधा भीव रणछोड़दासोत, जोधा भीव सबलसिंहोत, जोधा केसरीसिंह, भाटी सूरजमल आदि प्रमुख सरदारों के साथ जोधपुर नगर में प्रवेश किया, और तलहटी के महलों को अपना निवास स्थान बनाया। जोधपुर में उसका यह प्रथम पदार्पण था। वहाँ के नागरिकों ने प्रथम बार जसवन्तसिंह के

---

१. मुस्ताद खाँ ३०९; सरकार. भाग ५, २०९।

२. मूंदियाड़ की ख्यात (२१६); वार्ता (३६-ब) में लिखा है कि औरंगजेब की मृत्यु का समाचार पाकर अजीतसिंह ने निम्नलिखित दोहा कहा था—

"आई खबर अचित की, मिट गई तन की दाह।
कासीदां इम भाखियो, मर गयो औरंगसाह॥"

"अचानक दूत ने आकर जब यह समाचार दिया कि औरंगजेब बादशाह मर गया है तो शरीर की सारी जलन दूर हो गई।"

३. राजस्थानी ग्रन्थों और ख्यातों में इसे जाफ़र बेग या जाफ़र खाँ कहा गया है।

चतुरकुल चरित्र (११५) में शाही अधिकारी का नाम नाज़िमकुली लिखा है। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उत्तराधिकारी का दर्शन किया। खूब आनन्दोत्सव मनाए गए।[४] अजीतसिंह लगभग एक सप्ताह तलहटी के महलों में ही रहा और उसके बाद बृहस्पतिवार, २० मार्च (चैत्र बदि १३) को धूमधाम के साथ उसने जोधपुर के किले में प्रवेश किया। इस अवसर पर सम्पूर्ण किले को गंगाजल तथा तुलसीजल से पवित्र किया गया, यथाविधि तिलकोत्सव हुआ तथा अजीतसिंह को जोधपुर का राजा घोषित किया गया। इस प्रकार दुर्गादास तथा अन्य राठौड़ सरदारों के दीर्घकालीन सतत प्रयत्न एवं सहयोग से अट्ठाईस वर्ष की आयु में अजीतसिंह प्रथम बार अपने पूर्वजों के राजसिंहासन पर बैठने में सफल हुआ। कुछ दिन उपरान्त जालोर से उसकी रानियाँ, पुत्र एवं पुत्रियाँ आ पहुँचीं तथा सिरोही से उसकी विमाता रानी देवड़ी भी आ गईं।[५]

जोधपुर पर अजीतसिंह का अधिकार हो जाने का समाचार सुनकर दुर्गादास अप्रेल (बैशाख) के आरम्भ में जोधपुर आया। राजा ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और दुर्गादास ने राजा को ग्यारह रुपये नजर किए।[६] कुछ दिन बाद जुलाई (श्रावण) के महीने में अजीतसिंह ने दुर्गादास को प्रधान का पद सौंप दिया।[७]

---

४. राजरूपक ४०६–७; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ५–१२; वीर भाग २.८३३-४; ख्यात भाग २, १०५–६; मूंदियाड़ २१६; जुनी. ८१-२; बाँकीदास, ३८।

मीरात (३४०); दिलकुशा (भाग २, १७०-ब); खफ़ी खाँ (भाग २, ६०५); रोजनामचा (११६), मआसिर (१७४) आदि फ़ारसी ग्रन्थों में लिखा है कि औरंगजेब की मृत्यु होते ही अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया था।

मूंदियाड़ की ख्यात (२१६) व वार्ता (३७-अ) के अनुसार अजीतसिंह को औरंगजेब की मृत्यु का समाचार जालोर में मिला था, और अजितोदय (सर्ग १७, श्लोक ५) के अनुसार रायचाँ में। अजीतसिंह ने जोधपुर के लिये किस दिन प्रस्थान किया; इस विषय में मूंदियाड़ (२१६) तथा अजितविलास (२३८-ब) में ७ मार्च (फाल्गुन सुदि १५) की तिथि स्वीकार की गई है; परन्तु इन दोनो घटनाओं के लिये राजरूपक में उल्लिखित तिथियाँ ही स्वीकार की गई हैं क्योंकि उनकी पुष्टि अन्य ग्रन्थों से भी होती है।

ख्यातों में उल्लेख है कि मुगल सैनिकों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी कि अपनी जान बचाने के लिये उनमें से कई व्यक्ति अपनी दाढ़ी मूंछ मुंडवा कर हिन्दू वेष धारण करके भागे थे।

५. राजरूपक ४१३–४; ख्यात. भाग २, १०७ ६; जुनी. ८२; वीर. भाग २, ७६७; दानेश्वर. २१८; टॉड. भाग २, ५६; सरकार. भाग ५, २३६; पूर्व. १४७; रेउ भाग १, २६२।

ख्यात में लिखा है कि अजीतसिंह ने किले में प्रवेश करके स्वयं अपनी पगड़ी से वहाँ के कंगूरे साफ किये थे और तीन दिन बाद २३ मार्च (चैत्र सुदि १) को उसने सारा किला देखा था।

६. ख्यात. भाग २,११०; जुनी. ७८ दानेश्वर. २१८।

७. ओहदा बही नं. १, १८।

ख्यात (भाग २, ११०) जुनी, (७८); दानेश्वर (२१८) राठौड़ दुर्गादास (४४) में लिखा है कि अजीतसिंह १२ अप्रेल (बैशाख बदि ६) को दुर्गादास के डेरे पर उससे मिला और उसने उसको अपना प्रधान नियुक्त करने का विचार प्रकट किया। परन्तु दुर्गादास ने इसे स्वीकार नहीं किया और उदयपुर से अपने परिवार को लाने के लिये वहाँ जाने की अनुमति लेकर अगले ही दिन उदयपुर चला गया। परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि जोधपुर में प्रधान का पद सर्वोच्च था, और इस पद पर रहकर दुर्गादास अपनी शक्ति बढ़ा सकता था। अतः दुर्गादास द्वारा इसे अस्वीकार करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। साथ ही किसी समकालीन ग्रन्थ से भी इस मत की पुष्टि नहीं होती।

उधर औरंगजेब के पुत्र उत्तराधिकार की समस्या सुलझाने में व्यस्त थे। अजीतसिंह ने परिस्थिति से पूरा लाभ उठाया और मेड़तिया कुशलसिंह के नेतृत्व में उसने मेड़ता के फौजदार मोहकमसिंह पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना भेजी। मोहकमसिंह उसका सामना न कर सका और नागोर की ओर अपने पिता इन्द्रसिंह के पास चला गया। इस प्रकार मेड़ता पर भी अजीतसिंह का अधिकार हो गया। कुछ ही दिन बाद उसने पाली पर भी अपना अधिकार कर लिया।[८]

जोधपुर के निकटवर्ती राज्य बीकानेर का शासक सुजानसिंह इन दिनों दक्षिण में शाही-सेवा में था, और उसकी अनुपस्थिति में वहाँ के प्रमुख सरदार ही राज्य कार्य चला रहे थे। बीकानेर के सीमावर्ती प्रदेशों के बीदावत तेजसिंहोत सरदार अपने शासक से असन्तुष्ट थे। अजीतसिंह ने इस परिस्थिति से लाभ उठाने का विचार किया। बीकानेर पर अधिकार करने के लिए मार्च के महीने में वह ससैन्य उस ओर चल पड़ा और तेजी से आगे बढ़कर लाडणू नामक स्थान पर उसने पड़ाव डाला, तथा बीदावत सरदारों से बातचीत कर उनको अपनी ओर मिलाना चाहा। धीरे-धीरे बहुत से सरदार उसके सहायक हो गए। परन्तु गोपालपुरा के कर्मसेन तथा बीदासर के बिहारीदास ने इसका विरोध किया।[९] अजीतसिंह ने इन दोनों को बन्दी बना लिया और बीकानेर पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना भेजी। कर्मसेन तथा बिहारीदास ने किसी न किसी प्रकार बीकानेर में उपस्थित सरदारों को यह सूचना पहुँचा दी कि जोधपुर की सेना उन पर आक्रमण करने के लिए आ रही है। परन्तु बीकानेर वालों के पास अजीतसिंह का सामना करने के लिए समुचित शक्ति न थी। फलतः शीघ्र ही अजीतसिंह के सैनिकों ने बीकानेर पर अधिकार कर लिया। परन्तु उनका अधिकार स्थाई न हो सका। बीकानेर का रामजी[१०] नामक एक लुहार स्वदेश-प्रेम से प्रेरित होकर जोधपुर के सैनिकों पर टूट पड़ा। परन्तु एक अकेला व्यक्ति कर ही क्या सकता था? पाँच व्यक्तियों को मारने के बाद वह स्वयं स्वर्ग सिधार गया। लेकिन राम जी का यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया। बीकानेर के अन्य सरदारों को इससे प्रेरणा मिली और भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज तथा मलसीसर

---

८. राजरूपक ४०८; अजितोदय. सर्ग १७ श्लोक १२; टॉड भाग २, ५९; सरकार. भाग ५, २३६; रेउ भाग १, २९२; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२८।

९. बाधावास के भारमल ने महाराजा सुजानसिंह को मंगलवार, २५ मार्च (चैत्र सुदि ३) को एक अर्जदाश्त भेजकर यह सूचित किया कि जोधपुर का राजा तेजसिंह बीदा से सम्बन्ध बढ़ा रहा है, अतः उस पर कड़ी दृष्टि रखना आवश्यक है। बृहस्पतिवार, २ अप्रेल (चैत्र सुदि १२) को उसने पुनः सूचना दी कि जोधपुर का शासक ससैन्य आ रहा है तथा समस्त बीदावत सरदारों ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया है। अब किसी प्रकार तेजसिंहोत को मनाना आवश्यक है, तभी बीकानेर की रक्षा हो सकेगी। रविवार अप्रेल, १३ (वैशाख बदि ७) को उसने एक और अर्जदाश्त लिखी जिसमें बताया कि अजीतसिंह सीमा पर आ गया है।

१०. भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज ने विजयोपरान्त महाराजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा था, जिसमें विजय का श्रेय राम जी को दिया गया है।

के बीदावत हिन्दूसिंह ने उत्साहित होकर सेना को एकत्र किया और शत्रु की सेना के समक्ष जा डटे। जोधपुर के सैनिकों को गर्मी तथा पानी की कमी के कारण विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। फलतः वे अधिक देर न टिक सके। अजीतसिंह ने अपनी सेना को वापस लौटने की आज्ञा दी। लौटते हुए मार्ग में उसने कर्मसेन व बिहारीदास नामक जिन बीदावत सरदारों को बन्दी बनाया था, उन्हें मुक्त कर दिया।[११]

जोधपुर पर अधिकार करने से पूर्व जब अजीतसिंह जालोर में था तो कूंपावत भावसिंह तथा जैतावत अर्जुनसिंह आदि कई सरदार उससे अप्रसन्न हो गए थे। सम्भवतः इसका कारण यह था कि राजा उस समय चांपावत जाति के राठौड़ों को अधिक महत्व दिया करता था। इन सरदारों ने यह घोषणा की कि अजीतसिंह के छोटे भाई दलथम्भन की मृत्यु नहीं हुई थी। उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति को दलथम्भन घोषित कर दिया और उसके लिए जोधपुर का आधा राज्य लेने का दावा करने लगे।[१२] यह दल जालोर से सोजत चला गया और वहीं छुटपुट उपद्रव करता रहा। औरंगजेब की मृत्यु का समाचार पाते ही इन लोगों ने भी अवसर से लाभ उठाया, उपद्रव व लूटमार की और सोजत के हाकिम सरदार खाँ को अजमेर की ओर भगाकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। अजीतसिंह को जब यह समाचार मिला तो वह तुरन्त ही पन्द्रह–बीस हजार सेना लेकर इन विरोधियों का दमन करने के लिए सोजत गया और वहाँ घेरा डाल दिया। यह घेरा ग्यारह दिन तक चलता रहा, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। तब अजीतसिंह ने गढ़ तोड़ने की आज्ञा दी। गढ़ तोड़ डाला गया, और छः दिन तक दोनों में युद्ध हुआ जिसमें नकली दलथम्भन

---

११. बीकानेर के राठौड़ सरदारों द्वारा महाराजा सुजानसिंह को लिखे गये कुछ पत्र (हस्तलिखित प्रतिलिपि, रा. पु. बी.) पाउलेट, गैजेटियर ऑव दी बीकानेर स्टेट. ४६; वीर. भाग २, ५००; ओझा. भाग ५, खंड १, २९४–६; प्रचीन राजवंश २१७ व ३३६।

१२. श्री ब्रजमोहन जावलिया ने एक लेख, जोधपुर के सिंहासन के दावेदार दलथम्भन से सम्बन्धित कुछ अज्ञात तथ्य' (मरु-भारती, जुलाई १९६८, वर्ष १६, अंक २, ४०-५) में लिखा है कि वास्तविक दलथम्भन इस समय तक जीवित था और उसी ने यह विद्रोह किया था परन्तु दलथम्भन की मृत्यु जुलाई सन् १६७९ ई० में दिल्ली में हुई थी।

राजरूपक (४८०-२) में लिखा है कि अजीतसिंह ने सोजत पर अधिकार कर लिया था; परन्तु नकली दलथम्भन निकल भागा था। मई–जून सन् १७१७ ई० में अर्जुनसिंह ने पुनः उसके नाम पर विद्रोह किया था। अजीतसिंह ने अपनी सेना उसके विरुद्ध भेजी तब दलथम्भन व अर्जुनसिंह मारे गये। परन्तु अजितोदय के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है क्यों कि उसकी पुष्टि अन्य ख्यातों से भी होती है।

इस समय जिस व्यक्ति को दलथम्भन घोषित किया गया था, वह वास्तविक दलथम्भन नहीं था। इस कथन की पुष्टि में कई तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं।

(क) औरंगजेब एक कुशल व दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। यदि दलथम्भन राठौड़-मुगल संघर्ष काल में जीवित होता तो वह अजीतसिंह के साथ–साथ उसका भी पता लगवाता। पुनः मुहम्मदीराज की मृत्यु के पश्चात् तो दलथम्भन उसके लिए एक उपयोगी अस्त्र हो सकता था। उसके सहारे राठौड़ों में फूट डालकर वह इतिहास की दिशा में मूल परिवर्तन करने में सफल हो सकता था।

राजरूपक (४८०-२) में लिखा है कि अजीतसिंह ने सोजत पर अधिकार कर लिया था, परन्तु नकली दलथम्भन निकल भागा था। मई-जून सन १७१७ ई. मे अर्जुनसिंह ने पुनः उसके नाम पर विद्रोह किया था। अजीतसिंह ने अपनी सेना उनके विरुद्ध भेजी तब दलथम्भन व अर्जुनसिंह मारे गये। परन्तु अजितोदय के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है क्योंकि उसकी पुष्टि अन्य ख्यातों से भी होती है।

मारा गया और उसके सहयोगी भाग गए। इस प्रकार मई के महीने में सोजत पर अजीतसिंह का अधिकार हो गया।[१३]

इस प्रकार कुछ ही महीनों में जोधपुर, मेड़ता, पाली व सोजत के परगनों पर महाराजा अजीतसिंह का अधिकार हो गया। अजीतसिंह ने अपने राज्य में हिन्दुत्व के सिद्धान्त का प्रसार करने का प्रयत्न किया। उसने मस्जिदों में अजान देने की मनाही कर दी और औरंगजेब के समय में जिन मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदें बनाई गईं थीं, उन्हें तुड़वा डाला और उनके स्थान पर पुनः मन्दिरों का निर्माण किया जाने लगा। मुगल प्रशासनकाल में शाही कर्मचारी जोधपुर में गौ-वध करने लगे थे। अजीतसिंह ने अब गौ-वध को पूर्णतया निषिद्ध कर दिया। राज्य में हर प्रकार से शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया।[१४]

(ख) बहादुरशाह के साथ प्रारम्भिक सम्बन्ध (सन् १७०७-८ ई.)

जिस समय अजीतसिंह अपने राज्य का विस्तार तथा विरोधियों का दमन करने में व्यस्त था, औरंगजेब के पुत्र उत्तराधिकार की समस्या को सैन्य बल से सुलझाने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध बढ़ रहे थे। उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब के दो पुत्रों—मुअज्जम व आजम ने अजीतसिंह का सहयोग पाने का प्रयत्न किया। मुअज्ज़म ने उसे बार-बार अपनी सहायता के लिए बुलाया और इस आशय का फरमान भी भेजा।[१५] परन्तु जब राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया तो रविवार, ६ अप्रेल, सन् १७०७ ई. (१४ मुहर्रम, १११६ हि.) को शाहजादा मुईज्जुद्दीन ने ख़ास खिलअत के साथ एक निशान भेजकर उसे ससैन्य दिल्ली पहुँचने का आदेश दिया और इसके बदले में उसे विशेष सुविधाएँ देने का आश्वासन भी दिया।[१६] आजम भी अजीतसिंह व दुर्गादास का सहयोग पाने के लिए कम उत्सुक नहीं था। उसने रविवार, २३ मार्च (२६ जिल्हिज) को औरंगाबाद में दुर्गादास को तीन हजार जात दो हजार सवार का मनसब देकर पूर्व-प्रदत्त जागीर दी और सिरोंज से कुछ आगे बढ़ने पर सोमवार, १२ मई (२० सफ़र) को अजीतसिंह को सात हजार जात सात हजार सवार का मनसब तथा महाराजा की पदवी दी।[१७] इसकी सूचना अजीतसिंह को एक फरमान द्वारा भेजी गई और साथ ही उससे उत्तराधिकार के युद्ध में सहायता देने का अनुरोध भी किया गया।[१८]

---

१३. अजितोदय सर्ग १७, श्लोक १३-६; ख्यात-भाग २, १११-३; दानेश्वर. २१८-६; जुनी. ८३; अजितविलास. २४१ ब; गुटका ३१३ ब; रेउ. भाग १, २६३; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३१—२।

१४. खफी खाँ भाग २, ६०५; ख्यात. भाग २, १०६; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक १२, १७ व १८; अजित चरित्र सर्ग ६, श्लोक १४; सूरजप्रकाश. ५२-५; अभयविलास. ११ अ; वीर भाग २, ६२६; राठौड़ां. ४५; उमराए. १०२; रेउ भाग १, २६२-३; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३२।

१५. दिलकुशा—भाग २, १७० ब; मआसिर. १७४।

१६. निशान नं. १२, रा. पु. बी।

१७. जयपुर अखबारात, आजमशाह, वर्ष १, ५६ व १२०।

१८. फरमान नं. २, रा. पु. बी.।

यह कहना कठिन है कि यह फरमान किस तिथि का है; क्योंकि जिस कोने पर तिथि लिखी गई थी वह पूरा फटा हुआ है।

परन्तु अजीतसिंह ने न तो मुअज्जम का निमंत्रण स्वीकार किया, न आजम का। उत्तराधिकार के युद्ध में किसकी विजय होगी, यह अनिश्चित था। सम्भवतः इसीलिए एक शाहज़ादे का निमंत्रण स्वीकार करके दूसरे को अप्रसन्न करने की अपेक्षा इसने अपने खोये हुए राज्य पर अधिकार करके उसे सुदृढ़ करना अधिक उपयुक्त समझा।

उधर आगरे के पास जाजऊ नामक स्थान पर उत्तराधिकार का जो युद्ध ८ जून को हुआ, उसमें मुअज्जम विजयी हुआ और बुधवार, ११ जून को आगरा में उसने शाहआलम बहादुरशाह के नाम से अपना राज्याभिषेक कराया।[19] इस समय तक अजीतसिंह केवल जोधपुर पर ही नहीं वरन् मेड़ता, पाली व सोजत के परगनों पर भी अधिकार कर चुका था, और उसने बीकानेर के राज्य पर आक्रमण करने का भी प्रयत्न किया था। उसके इस आचरण के कारण मुगल-सम्राट् का असन्तोष स्वाभाविक था। परन्तु बहादुरशाह ने जोधपुर के सम्बन्ध में किसी प्रकार की नीति निर्धारित करने से पूर्व आम्बेर को ख़ालसा करने की आज्ञा दी और वहाँ के शासक जयसिंह को केवल लगरकोट की फौजदारी दी निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि बादशाह ने यह निर्णय क्यों किया ? आम्बेर के शासक मुगल सम्राट् अकबर के समय से ही निरन्तर साम्राज्य के प्रति स्वामिभक्त रहे थे। सवाई जयसिंह ने यद्यपि उत्तराधिकार के युद्ध के प्रारम्भ में आजम का पक्ष लिया था, परन्तु बीच में ही वह उसका साथ छोड़कर बहादुरशाह से आ मिला था। केवल इस अपराध के लिए उससे आम्बेर छीना गया हो, यह उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि बहादुरशाह ने जाजऊ के युद्ध के उपरान्त यह स्पष्ट घोषणा करवा दी थी कि वह आजम के सहायकों को भी क्षमा कर देगा।[20] जयसिंह का छोटा भाई विजयसिंह काबुल से ही मुअज्जम के साथ आया था और उसने आजम के विरुद्ध उसकी ओर से ही युद्ध में भाग लिया था। कहा जाता है कि विजयसिंह की इस सेवा के कारण बादशाह उसे आम्बेर की गद्दी सौंपना चाहता था और चूंकि शासन में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन करने से स्थानीय विद्रोह की आशंका होती, इसी कारण बहादुरशाह ने आम्बेर को पहले खालसा करना आवश्यक समझा।[21] विजयसिंह ने उत्तराधिकार के युद्ध में कोई विशेष उल्लेखनीय सेवा की हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, न जयसिंह के प्रति अविश्वास का ही कोई कारण दिखाई पड़ता है।. इसके साथ ही विजयसिंह आम्बेर के राजवंश से सम्बन्धित था, अतः उसे राज्य देने की अपेक्षा राज्य को खालसा करने से स्थानीय विद्रोह की आशंका अधिक थी। वास्तविक परिस्थिति यह थी कि पिछले कुछ दिनों से अजीतसिंह एवं जयसिंह के बीच मित्रता बढ़ रही थी और यह भी

---

१९. बहादुरशाह. १२३ व १३२।

२०. खफी खाँ भाग २, ६००; इरविन-भाग १, ३९,७।

२१. सतीशचन्द्र. ३०-१।

सम्भव है कि जोधपुर पर अधिकार करने के लिए अजीतसिंह ने जयसिंह को कुछ सहायता दी हो। स्पष्ट रूप से इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु जयसिंह के द्वारा अजीतसिंह को लिखा गया जो सबसे पुराना प्राप्य पत्र है उसमें उसने अजीतसिंह को यह सूचना दी थी कि बादशाह ने अप्रसन्न होकर आम्बेर खालसा करने की आज्ञा दी है और मुझे लंगरकोट की फौजदारी पर नियुक्त किया है।[२२] बिना किसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के इस प्रकार की सूचनाएं भेजना अर्थहीन प्रतीत होता है। साथ ही पत्र के सदर्भ से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि इससे पूर्व भी दोनों में मैत्री-सम्बन्ध था और पत्र व्यवहार होता था। चूंकि औरंगजेब की मृत्यु के समय जयसिंह बेदार बख्त की सेवा में गुजरात में नियुक्त था, और अजीतसिंह उस समय जालोर नामक परगने में था. अतः सम्भव है इन्हीं दिनों इन दोनों शासकों के बीच मैत्री का बीजारोपण हुआ हो।[२३] सम्भवतः बहादुरशाह को इसकी मैत्री की सूचना मिल गई थी और उसे यह आशंका हुई कि कहीं ये दोनों राजपूत शासक आपस में मिलकर एक गम्भीर समस्या न उत्पन्न कर दें। इसी आशंका के कारण उसने कोई ऐसा कदम उठाना आवश्यक समझा जिससे अजीतसिंह और जयसिंह आतंकित हो जाएँ और मुगल सम्राट् का विरोध करने का साहस न कर सकें। मुगल सत्ता की स्पष्ट अवहेलना करने के कारण पहले अजीतसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करना आवश्यक था, परन्तु चूंकि आगरा से जोधपुर जाने के लिए आम्बेर रास्ते में पड़ता था, अतः यह सन्देह स्वाभाविक था कि जयसिंह मार्ग में ही बाधा डालकर अपने मित्र की सहायता करेगा, अथवा जिस समय बादशाह जोधपुर में व्यस्त होगा, उस समय वह आम्बेर में विद्रोह का झंड़ा खड़ा करके एक कठिन समस्या उत्पन्न कर देगा। अतः सम्भवतः इन सारी सम्भावनाओं और तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बहादुरशाह ने यह आवश्यक समझा कि पहले जयसिंह को मुगल शक्ति से आतंकित करके उसकी विरोधी प्रवृत्तियों को कुचल दिया जाय, और फिर आगे बढ़कर जोधपुर की समस्या को सुलझाया जाय। इस आशय से उसने अजमेर के सूबेदार तथा दीवान को आम्बेर खालसा करने के लिए, और मेवात के फौजदार सैयद हुसैन खाँ को उसकी सहायता के लिए जाने का आदेश दिया।

यह समाचार पाकर जयसिंह ने बहादुरशाह से स्वयं प्रार्थना की और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से भी निवेदन करवाया कि आम्बेर खालसा न किया जाय, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। फलस्वरूप जयसिंह असन्तुष्ट हो गया। और उसने अपनी फौजदारी पर जाने के बहाने से बादशाह से दरबार छोड़ने की अनुमति प्राप्त की, और ३१ जुलाई को उसने आम्बेर के लिए प्रस्थान कर दिया।[२४] साथ

---

२२. जयपुर रिकार्डस, हिन्दी, भाग ६, खंड ९, ८७।

२३. खफी खाँ (भाग २, ६०५) ने भी लिखा है कि जयसिंह उपद्रवी एवं विद्रोही था। अतः अजीतसिंह व जयसिंह की मैत्री युक्ति संगत लगती है। सतीशचन्द्र (३०) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है।

२४. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग ६, खंड ९; ८७-८९-९०।

२५. बहादुरशाह' १४२।

ही उसने जोधपुर के राजा अजीतसिंह, उदयपुर के महाराणा अमरसिंह द्वितीय तथा बूँदी के राव बुधसिंह को समस्त समाचार लिखा और इस आपत्ति में सहायता देने का अनुरोध भी किया। फलतः इन शासकों में परस्पर पत्र-व्यवहार होने लगा, और यह प्रस्ताव भी रक्खा गया कि इस संकट में खूब सोच समझ कर परस्पर संगठित होकर कार्य करना चाहिए, तभी भारत का गौरव सुरक्षित रक्खा जा सकेगा।[२६]

उधर अजीतसिंह ने बहादुरशाह के सिंहासनारोहण के बाद भी उसके साथ किसी प्रकार का संपर्क स्थापित करने की चेष्टा नहीं की थी। सम्भवतः वह कुछ दिन प्रतीक्षा करके बादशाह की प्रतिक्रिया देखने का प्रयास कर रहा था। परन्तु बहादुरशाह ने आम्बेर को खालसा करने की जो आज्ञा दी थी, सम्भवतः उसका समाचार पाकर अजीतसिंह ने मुगल-सम्राट् की अधीनता स्वीकार करना ही उचित समझा और बधाई की अर्जदाश्त, और भेंट के लिए एक सौ मुहर और एक हजार दिरम बादशाह की सेवा में भेजे, जो बुधवार, ६ अगस्त (१८-उलअव्वल) को दरबार में पहुँचा।[२७] इन्हीं दिनों सम्भवतः बहादुरशाह को विभिन्न राजपूत शासकों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार का भी समाचार मिला। यह एक गम्भीर स्थिति का संकेत था। इन राजाओं में विरोधी भावनाओं को बढ़ने से रोकना आवश्यक था। सम्भवतः यही कारण था कि बहादुरशाह पर अजीतसिंह की अर्जदाश्त व भेंट का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, और उसने स्वयं राजपूताना जाकर अजीतसिंह व जयसिंह का दमन करने का निश्चय किया। सैनिक तैयारी पूरी हो जाने पर रविवार, २ नवम्बर (१७ शाबान) को वह दहर-आरा बाग़ से रवाना हुआ और १५ नवम्बर को आगरा से ५८ मील पश्चिम व जयपुर से ७४ मील पूर्व में स्थित भुसावर नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ पर उसने रमजान का पूरा महीना (१५ नवम्बर-१४ दिसम्बर) बिताया।[२८] यहीं से बुधवार, २६ नवम्बर (१२ रमजान) को मेहराब खाँ, जो कि ८ अक्तूबर (२२ रजब) को जोधपुर का फौजदार नियुक्त किया गया था, जोधपुर के लिए विदा किया गया।[२९] रमजान का महीना बीत जाने पर बादशाह आगे बढ़ा और १० जनवरी, सन् १७०८ ई. (२७ शव्वाल, १११९ हि.) को आम्बेर पहुँचा। जयसिंह के पास सम्भवतः शाही सेना का सामना करने के लिए समुचित सैन्य शक्ति नहीं थीं, अतः उसने मुगल-सम्राट् का कोई विरोध नहीं किया। बहादुरशाह ने अहमद सईद खाँ बारहट को वहाँ का फौजदार नियुक्त कर दिया और केवल तीन दिन आम्बेर में रहकर अजीतसिंह का दमन करने के विचार से उसने १३ जनवरी को अजमेर के लिए प्रस्थान कर दिया।[३०]

---

२६. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग ६, खंड ९, ८७, ८९-९०, ९३-४ व ९८।

२७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष १, ५२।

२८. बहादुर. ६५ अ; दिलकुशा. भाग २, १७० अ ब; खफी खाँ-भाग २, ६०६ इरविन. भाग १, ४६।

२९. जयपुर अखबारात बहादुरशाह, वर्ष १, २०९ व ३०५; बहादुर ४६ ब; इरविन, भाग १; ४६।

३०. दिलकुशा. भाग २, १७० ब व १७१ ब; खफी खाँ भाग २, ६०६; इरविन, भाग १, ४७; बहादुरशाह. १४६ व १४८।

उधर मेहराब खाँ के जोधपुर की ओर आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह व्यग्र हो उठा। जोधपुर पर पुनः शाही अधिकार करने का प्रयास वह सहन न कर सका, और उसने आगे बढ़कर मेहराब खां को रोकने का निश्चय किया। मेहराब खां मेड़ता से केवल सात कोस दूर पहुंचा था कि अजीतसिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वह सफल न हो सका और मेड़ता पर शाही अधिकार हो गया। इस युद्ध का समाचार सुनते ही बादशाह ने शाहजादा अजीमुश्शान तथा जुम्दतुलमुल्क खानखाना समसामुद्दौला को एक बड़ी सेना के साथ जोधपुर जाने का आदेश दिया। मार्ग में इस सेना ने राजपूतों के धन-जन को बहुत क्षति पहुंचाई, कस्बों और गांवों को जलाया और लूटमार करती हुई पीपाड़ तक पहुंच गई। फलतः राजपूत अपनी रक्षा के लिये पहाड़ों व जंगलों की ओर चले गये।[३२]

जब अजीतसिंह ने देखा कि उसके पास शाही सेना का विरोध करने के लिये पर्याप्त शक्ति नहीं है तो उसने अपने वकील के द्वारा एक अर्जदाश्त पांच अशर्फियाँ और पांच डाली अनार भेजे जो सोमवार, २६ दिसम्बर (१५ शव्वाल) को बादशाह के पास पहुंचे। परन्तु बादशाह की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। इस बीच आम्बेर पर शाही अधिकार हो चुका था और बहादुरशाह अजमेर की ओर बढ़ रहा था। यह समाचार पाकर राजा ने राठौड़ मुकुन्दसिंह, सिंघवी तख्तमल व पंचोली उदयराज को बादशाह के पास भेजा। ये लोग मुगल-सम्राट से मिले, उसे अशर्फियां भेंट कीं, और अजीतसिंह को क्षमा करने के लिये निवेदन किया। उनकी प्रार्थना के फलस्वरूप सोमवार, २६ जनवरी (१४ जिल्काद) को अजीतसिंह के पास एक फरमान भेजकर बहादुरशाह ने उसे दरबार में आने का आदेश दिया।[३३]

२६ जनवरी को जब बहादुरशाह अजमेर के पास ठहरा हुआ था तो उसे यह समाचार मिला कि उसके छोटे भाई कामबख्श ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया है।[३४] इस समाचार से वह चिन्तित हो उठा और उसने जोधपुर जाकर वहां की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाकर स्वयं दक्षिण जाने का निश्चय किया। जब मुकुन्दसिंह एवं तख्तमल नामक उसके दूतों को यह समाचार मिला तो उन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि वह अनुमति दे तो वे स्वयं जोधपुर जायं और महाराजा को उसकी सेवा में लाने की चेष्टा करें। बहादुरशाह ने उनकी बात स्वीकार कर ली।[३५]

शुक्रवार, ३० जनवरी (१८ जिल्काद) को बहरोज खां के द्वारा अजीतसिंह व दुर्गादास के नाम फरमान भेजे गये जिनमें उन्हें जल्दी ही दरबार में उपस्थित होने

---

३१. बहादुरशाह. ७७ ब; जयपुर अखबारात नं. १०३३, रा. पु. बी; इरविन. भाग १, ४७; सतीशचन्द्र. ३२; बहादुरशाह. १४६।

३२. बहादुर. ७१ अ; वीर—भाग २, ८२६; खफी खाँ भाग २, ६०६; अजितोदय, सर्ग १७, श्लोक २५-६; उमराव. १०२-३; रेउ भाग १, २६४; बहादुरशाह, १४६।

३३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह. वर्ष १, ३६५ व ४१६; बहादुर. ६४ ब व ११० ब। अखबारात, बहादुरशाहनामा में तख्तमल के स्थान पर बख्तमल लिखा है परन्तु राजा के दूतों के नाम के सम्बन्ध में ख्यातों को प्रमाणिक मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

३४. बहादुरशाह. १८६।

३५. बहादुर. ७७ ब; इरविन. भाग १, ४७-८।

का आदेश दिया गया था। केवल तीन दिन बाद सोमवार, २ फरवरी (२१ जिल्काद) को दुर्गादास के लिये पुन: एक फरमान भेजा गया। इस फरमान के साथ खानखाना व खानेजमां के पत्र भी भेजे गये।[३]

मंगलवार ३ फरवरी (२२ जिल्काद) को दुर्गादास तथा शुक्रवार, ६ फरवरी (२५ जिल्काद) को अजीतसिंह की अर्जदाश्त आई। राजा ने यह लिखा था कि उसे दरबार में आने में कोई आपत्ति नहीं है, केवल यह भय है कि कहीं बादशाह उसे दण्डित न करे।[३७] इस पर बहादुरशाह ने खानेजमां को यह आदेश दिया कि वह कुछ लोगों के साथ जोधपुर जाय, और अजीतसिंह को पूरी तरह आश्वस्त करके अपने साथ लेकर लौटे। उसके साथ जाने के लिये राव राजा बुधसिंह सैयद शुजात खाँ, सैयद हुसैन खां अजनबी खां, राजा उत्तमखां गौड, शिवसिंह, राजा गोपालसिंह, अब्दाल खां, कुलीच मुहम्मद खां आदि को नियुक्त किया गया। बहादुरशाह मंगलवार, १० फरवरी (२९ जिल्काद) को मेड़ता पहुंचा और इसी दिन खानेजमा अपने साथियों के साथ जोधपुर चला गया।[३८]

---

३६. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह; वर्ष १, ४२८ व ४३५; बहादुर ७९ ब; इरविन. भाग १, ४७-८; सतीशचन्द्र ३२।

रेउ (दुर्गादास राठौड. ५६) ने लिखा है कि दुर्गादास के नाम फरमान २९ जनवरी (१७ जिल्काद) को भेजा गया था। परन्तु अखबारात की तिथि को स्वीकार किया गया है।

३७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष १, ४३९ व ४४३; इरविन. भाग १, ४८।

कामवर (३०८) ने लिखा है कि अजीतसिंह की अर्जदाश्त ८ फरवरी (२७ जिल्काद) को पहुँची थी, परन्तु अखबारात. में लिखी गई तिथि को ही मान्यता देना उपयुक्त है।

३८. जयपुर अखबारात. बहादुरशाह, वर्ष १. ४४३ व ४५३; बहादुर ७९ ब; कामवर ३०८; कामराज ३६ ब; दिल कुशा. भाग २, १७० ब; मआसिर १७४; इरविन. भाग १, ४८; बहादुरशाह. १५१.।

राजरूपक (४८०-२) में लिखा है कि अजीतसिंह ने सोजत पर अधिकार कर लिया था; परन्तु नकली दलथम्भन निकाल भागा था। मई–जून सन् १७१७ ई. में अर्जुनसिंह ने पुन: उसके नाम पर विद्रोह किया था। अजीतसिंह ने अपनी सेना उनके विरुद्ध भेजी तब दलथम्भन व अर्जुनसिंह मारे गये। परन्तु अजितोदय के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है क्योंकि उसकी पुष्टि अन्य ख्यातों से भी होती है।

फारसी के लगभग सभी उक्त ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह शाही सेना के आतंक से बहुत घबरा गया था, अत: उसने अत्यन्त दीनता पूर्वक खानेजमां के समक्ष आत्मसमर्पण करके क्षमा मांग ली थी। डा. वी एस. भार्गव ने अपने शोध-ग्रन्थ (मारवाड़. १४७) में लिखा है कि तीस वर्षीय युद्ध के परिणाम स्वरूप अजीतसिंह की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई थी, अत: उसके पास आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही था। परन्तु यह मत समीचीन नहीं जान पड़ता।

अजीतसिंह व उसके साथियों ने अत्यन्त बुरे दिनों में मुगल सत्ता का सामना किया था। इस समय तो अजीतसिंह की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी। औरंगजेब की मृत्यु तथा बहादुर शाह के सिंहासनारोहण के बीच के समय में उसने अपनी शक्ति बढाने का प्रयत्न किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह को विदित हो गया था कि बादशाह शीघ्रातिशीघ्र दक्षिण जाना चाहता है। अत; उसे विश्वास था कि बादशाह इस स्थिति में जोधपुर राज्य उसे दे देगा। अत: उसने अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट करना उचित न समझा। इसके साथ ही जयसिंह भी इन दिनों शाही शिविर में था। उसके साथ मिलकर एकमत होकर कार्य करना अधिक लाभदायक जानकर ही सम्भवतः उसने बादशाह के पास जाना स्वीकार किया।

समकालीन राजस्थानी ग्रन्थों (राजरूपक ४१८–२१; अजितोदय, सर्ग १७. श्लोक २७-२९; अजितचरित्र. सर्ग ९, श्लोक १५-६) में लिखा है कि अजीतसिंह की विजयों से बहादुरशाह ने सुलह करने का निश्चय किया। परन्तु यह मत पक्षपातपूर्ण प्रतीत होता है। ग्रन्थकारों ने केवल राजा की प्रशंसा हेतु ही ऐसा विवरण दिया है।

इसी स्थान पर दो दिन बाद वृहस्पतिवार, १२ फरवरी (१ जिल्हिज) को राजा अजीतसिंह को लेकर खानेजमां वापस लौटा। अजीतसिंह का उचित स्वागत किया गया और उसे वजीर मुनीम खां के शिविर में ठहरने की आज्ञा दी गई। अगले दिन शुक्रवार, १३ फरवरी (२ जिल्हिज) को अजीतसिंह के दरबार में लाया गया। इस अवसर पर राजा ने एक सौ अशर्फियां तथा एक हजार रुपया बादशाह को भेंट किया और बहादुरशाह ने उसके सभी अपराध क्षमा कर दिये। मंगलवार, १७ फरवरी (६ जिल्हिज) को वह फिर दीवाने-खास गया तो उसे सिंहासन के बाईं ओर खड़ा किया गया और पचास हजार रुपया नकद तथा खास खिलअत दी गई। अगले दिन बुधवार, १८ फरवरी (७ जिल्हिज) को उसे पुनः दो सौ रुपया और चांदी की जीन सहित एक घोड़ा दिया गया और उसके दीवान मुकुन्दसिंह और नौकर निहालदास को भी खिलअतें दी गई। रविवार, २२ फरवरी (११ जिल्हिज) को अजीतसिंह को एक हजार रुपया और एक हाथी दिया। एक सप्ताह बाद २९ फरवरी (१८ जिल्हिज) को उसे खास-खिलअत दी गई और 'महाराजा' लिखने का अधिकार भी दिया गया और ६ मार्च (२४ जिल्हिज) को जड़ाऊ सिरपेच दिया गया।[३९] बृहस्पतिवार, २६ फरवरी (१५ जिल्हिज) को दुर्गादास को आने का समाचार पाकर बादशाह ने खानेजमां को यह आज्ञा दी कि वह पांच कोस आगे बढ़कर दुर्गादास का स्वागत करे। रविवार, २९ फरवरी (१८ जिल्हिज) को दुर्गादास दरबार में उपस्थित हुआ और उसने पचास मुहरें नजर कीं

३९. बहादुर. ८३ ब, ८४ अ ब. ८४ ब, ८५ अ, ८६ अ, ९० ब; जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ३, ५, ६, १७ व ३२; कामवर ३१०; कामराज ३६ ब।

ख्यात (भाग २, १२०–२); जुनी (८४-५) व दानेश्वर (२२१) में भी इन घटनाओं का विवरण मिलता है; परन्तु इनमें तिथि एवं राशि की संख्या में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। इन घटनाओं के लिये अखबारात एवं बहादुरशाहनामा को ही प्रमाणिक मानना अधिक उचित समझा गया है।

केवल राजरूपक में लिखा है कि बादशाह ने अजीतसिंह को तेग बहादुर की पदवी दी थी; परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती, अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अजीतसिंह बहादुरशाह से किस स्थान पर मिला था इस विषय में फारसी ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता, केवल कामवर (३१०) ने इस स्थान का नाम कोकनाल बताया है। वंश (भाग ४, ३००२) में लिखा है कि अजीतसिंह अल्हनपुर (आलण्यावास) में बादशाह से मिला था। राजरूपक (४२४) में इस स्थान का नाम -आनन्दपुर- लिखा है। वार्ता (३७ अ) में लिखा है कि अजीतसिंह बादशाह से कालु नामक स्थान पर मिला था और इस स्थान का नाम-बदलकर आनन्दपुर कर दिया गया था। राजरूपक चूंकि समकालीन राजस्थानी ग्रन्थ है, अतः जोधपुर राज्यान्तर्गत होने वाली घटनाओं के स्थान के विषय मे उसके उल्लेख को स्वीकार करना अधिक उचित है।

और उसके पुत्र व साथियों ने भी बादशाह को मुहरें भेंट कीं। दुर्गादास को इस अवसर पर खिलअत व खंजर इनाम में दिया गया।[४०]

दक्षिण की समस्या की गम्भीरता को देखते हुए बादशाह शीघ्रतिशीघ्र वहां जाना चाहता था। अतः उसने १२ मार्च को अजीतसिंह व जयसिंह को साथ लिये हुये मेड़ता से अजमेर के लिये प्रस्थान किया और १४ मार्च, सन् १७०८ ई० (३ मुहर्रम ११२० हि०) को वहाँ पहुंचा। दक्षिण–अभियान के लिये उसने तुरन्त तैयारी आरम्भ कर दी। नौ दिन वहाँ रुककर सैनिक तैयारी पूरी हो जाने पर २३ मार्च (१२ मुहर्रम) को दोनों राजपूत शासकों एवं उनकी सेनाओं सहित बहादुरशाह ने दक्षिण के लिए प्रस्थान किया।[४१] अजीतसिंह और जयसिंह को बहादुरशाह अपने साथ दक्षिण की ओर सम्भवत इसलिए ले जा रहा था कि वे लोग उसकी अनुपस्थिति में संगठित होकर उपद्रव न कर सकें, और साथ ही कामबख्श के विरुद्ध उसकी सैन्य शक्ति में वृद्धि हो जाय।

दक्षिण की ओर जाते हुये मार्ग में रविवार, ११ अप्रेल (१ सफर) को महाराजा अजीतसिंह को साढ़े तीन हजार जात-तीन हजार सवार का मनसब दिया गया जिसमें से एक हजार दो अस्पा थे। साथ ही अलम व नक्कारा भी दिया गया।[४२]

---

४०. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह वर्ष २, २५ व ३१; कामवर. ३१०।

ख्यात (भाग २, १२४-५) व जुनी (८५) के अनुसार बादशाह ने दुर्गादास को सिरोपाव दिया और मनसब भी देना चाहा; परन्तु दुर्गादास ने राजा से पूर्व मनसब लेना अस्वीकार कर दिया। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य ग्रन्थों से नहीं होती।

४१. वीर. भाग २, ८२९; दिलकुशा. भाग १; १७२ अ १७२ ब; मआसिर १७४; इरविन. भाग १, ४९; बहादुरशाह. १५२-३।

ख्यात. (भाग २. १२४); दानेश्वर (२२१) में बादशाह के अजमेर पहुंचने की तिथि २० मार्च (चैत्र सुदि १०. सम्वत्१७६५) स्वीकार की गई है। परन्तु समकालीन ग्रन्थ नुस्खा-ए-दिलकुशा को मान्यता देना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

४२. बहादुर. ९८ ब; कामवर. ३१० इरविन. भाग १, ४८; सतीशचन्द्र. ३२; बहादुरशाह. १५१।

कामवर ने मनसब मिलने की तिथि १८ मार्च (७ मुहर्रम) स्वीकार की है, परन्तु बहादुरशाहनामा को ही मान्यता दी गई है।

महाराजा को कितना मनसब मिला, इस विषय में मतभेद है। दिलकुशा (भाग २, १७० ब); मआसिर (१७४); में तीन हजार, वीर. (भाग २, ८३४) में साढ़े तीन हजार; रोजनामचा (११६) में चार हजार तथा ख्यात (भाग २, १२०) व जुनी (८६) में साढ़े तीन हजार जात चार हजार सवार का मनसब मिलना स्वीकार किया गया है। परन्तु बहादुरशाह के शासन काल के प्रारम्भिक दो वर्षों के लिये बहादुरशाहनामा ही सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ है, अतः उसमें लिखा गया मनसब ही स्वीकार किया गया है।

केवल वीर विनोद में लिखा है कि अजीतसिंह ने जोधपुर न मिलने के कारण मनसब व जागीर लेना अस्वीकार कर दिया था; परन्तु अन्य किसी आधार ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जागीर में अजीतसिंह को केवल सोजत, सिवाना व फलोदी के परगने मिले; जोधपुर व मेड़ता के परगने पूर्ववत्–शाही अधिकार में ही रहे।[४३] उसके ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह की डेढ़ हजार जात तीन सौ सवार का अन्य पुत्र अखेसिंह को सात सौ जात दो सौ सवार का तथा अन्य दो पुत्रों को पांच सौ जात एक सौ सवार का मनसब मिला।[४४] बहादुरशाह के इस व्यवहार से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि वह समय-समय पर मनसब, जागीर व भेंट देकर अजीतसिंह के साथ उदारता का व्यवहार कर रहा था, और महाराजा इससे सन्तुष्ट था। वास्तव में एक ओर तो अजीतसिंह तथा उसका मित्र जयसिंह अपने-अपने राज्यों का अधिकार तथा उच्च मनसब चाहते थे। अपनी स्थिति से असन्तुष्ट होकर उन्होंने बहादुरशाह के छोटे भाई कामबख्श से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।[४५] दूसरी ओर बाहादुरशाह उनकी शक्ति कम करना चाहता था, ताकि वे न तो स्वयं विद्रोह कर सकें, न अन्य राजपूत शासकों को इसके लिये प्रेरित कर सकें। जोधपुर व आम्बेर पर अपनी सर्वोच्चता दिखाने के लिये बहादुरशाह ने १८ फरवरी (७ जिल्हिज) को जोधपुर का नाम बदलकर मुहम्मदाबाद रख दिया था, और शाही दरबार के कांजी खा नामक काजी को तथा मुहम्मद गौस मुफ्ती को जोधपुर की मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिये भेजा गया था। इसी दिन आम्बेर का नाम भी मोमिनाबाद कर दिया गया था।[४६] जोधपुर तथा मेड़ता का अधिकार क्रमशः मेहरबान खाँ तथा मखसूस खाँ को सौंप दिया गया।[४७] बहादुरशाह ने अजीतसिंह व जयसिंह के प्रति जिस नीति का पालन इस समय तक किया उस पर उसके वजीर मुनीम खां का

---

४३. ख्यात. भाग २, १२६; जुनी. ८६; दानेश्वर. २२२; वीर. भाग २, ८३४।
सूरजप्रकाश में लिखा है कि अजीतसिंह को जोधपुर दिया गया था; परन्तु चूंकि जयसिंह को कुछ नहीं मिला था, अतः उसने अस्वीकार कर दिया। बहादुरशाह (१५१) में भी लिखा है कि अजीतसिंह को जोधपुर दे दिया गया था। परन्तु यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि यदि इसी समय जोधपुर दे दिया जाता तो अजीतसिंह के बाद में विद्रोह करने की कोई आवश्यकता न थी।

४४. बहादुर. ६८ ब; ख्यात. भाग २, १२७; इरविन. भाग १, ४८।

४५. दक्षिण की ओर जाते हुये मार्ग में एक अन्य घटना घटित हुई। सैफुल्ला खां ने काम्बख्श के लिये अजीतसिंह और जयसिंह से एक समझौता किया, जिसमें यह तय किया गया कि यदि काम्बख्श गोंडवाना मार्ग से उनके क्षेत्र में आये तो वे पन्द्रह हजार सवारो के साथ नर्मदा नदी के किनारे उससे मिलें और बादशाह के दक्षिण में रहते हुये ही अवसर से लाभ उठाकर अचानक दिल्ली पर आक्रमण कर दें और कामबख्श को मुगल सम्राट बनायें। राजाओ ने इसे स्वीकार कर लिया। सैफुल्ला अजीतसिंह और जयसिंह दोनों से उनके मुहर पत्र लेकर कामबख्श के पास गया, परन्तु शाहजादे ने उसे बहादुरशाह का ही व्यक्ति समझा और उनका विश्वास नहीं किया। (खफी खाँ-भाग २, ६१९-२०; मआसिर ६६४) इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है। कि अजीतसिंह अपनी स्थिति से असन्तुष्ट था।

४६. जयपुर अखबारात, वर्ष २६ व ३६; कामवर बहादुरशाह. ३१०; कामराज ३६ ब।

४७. रोजनामचा ११७; राजरूपक ३२४-५; ख्यात-भाग२, १२६; दानेश्वर. २२२; टॉड. भाग २, ६०; । ३. भाग १, २६५।

गहरा प्रभाव जान पड़ता है। मुनीम खाँ राजपूतों को अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। उसका विचार था कि इन दोनों राजपूत राजाओं को मीठे-मीठे वचनों में झूठे आश्वासन देकर शाही शिविर में रखना चाहिये और पीछे से चुपचाप उनके राज्यों पर शाही अधिकार कर लेना चाहिये।[४८] मुनीम खाँ की ऐसी विचारधारा का सम्भवतः यह कारण था कि शाही दरबार में उसके विरोधी-दल का नेता जुल्फिकार खाँ, अजीतसिंह व जयसिंह का समर्थक था।[४९] सम्भवतः यह मुनीम खाँ का ही प्रभाव था कि बहादुरशाह एक ओर तो अजीतसिंह को समय-समय पर मनसब, जागीर व पुरस्कार देता रहा और दूसरी ओर उसने जोधपुर पर अधिकार करने तथा मुस्लिम सिद्धान्तों के प्रसार के सम्बन्ध में आदेश भेजे। इसके साथ ही शाही शिविर में अजीतसिंह बन्दी की सी स्थिति में रक्खा गया था। और इसी कारण वह बहादुरशाह के कार्यों का कुछ विरोध न कर सका। उसके मित्र जयसिंह की स्थिति भी ऐसी ही थी। इन दोनों ने खुला विद्रोह, सम्भवत. इस कारण नहीं किया कि उन्हें यह आशा थी कि कामबख्श की समस्या की गम्भीरता के कारण बहादुरशाह कुछ ही दिनों में उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये उनके राज्य वापस कर देगा; परन्तु अजीतसिंह, को मनसब व जागीर मिलने के उपरान्त उनकी यह आशा जाती रही।

बुधवार, १४ अप्रेल (बैशाख सुदि ५) को जब मन्दसौर में शाही पड़ाव हुआ तो अजीतसिंह ने दुर्गादास, जगराम व मुकन्ददास आदि के साथ विचार-विमर्श किया इस समय दुर्गादास ने कहा कि मेहराब खाँ जोधपुर पहुंचकर वहाँ की जनता पर अवश्य ही अत्याचार करेगा। दूसरी ओर बादशाह से अब जोधपुर की आशा करना व्यर्थ है। उसने यह भी कहा कि नर्मदा नदी पार कर लेने के बाद वापस लौटना कठिन हो जायेगा; साथ ही दक्षिण में गल्ले की महगाई का भी सामना करना पड़ेगा। अतः नर्मदा नदी पार करने से पूर्व ही वापस लौट जाना चाहिये। अजीतसिंह ने उसकी बात स्वीकार की और फिर उसके आदेशानुसार दुर्गादास ने जयसिंह से भी बातचीत की। अगले दिन वृहस्पतिवार, १५ अप्रेल (बैशाख सुदी ६) को अजीतसिंह स्वयं भी जयसिंह से मिला और उन्होने अवसर पाकर बादशाह का साथ छोड़ देने का निश्चय किया।[५०]

मंगलवार, २० अप्रेल (१० सफर) को जब बादशाह ने नर्मदा नदी के निकट मंडलेश्वर नामक स्थान से कूच किया तो अजीतसिंह व जयसिंह ने शिकार के बहाने अपने सैनिकों को तथा कुछ आवश्यक सामान लेकर शेष में आग लगाकर चुपचाप

४८. सतीशचन्द्र, ३४।

४९. औरंगजेब की मृत्यु के बाद शाहजादा आजम ने अजीतसिंह और जयसिंह को उच्च मनसब जुल्फिकार खा के प्रभाव से ही दिया था। (सतीशचन्द्र २०)।

५०. ख्यात भाग १, १२७-८; जुनी ८६; दानेश्वर २२२; राजरूपक ४२५-६; मूंदियाड़ २३४; राठौड़ा ४७; आसोपा. २६२-३।

उत्तर भारत की ओर प्रस्थान कर दिया।[५१] यह समाचार पाकर बहादुरशाह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। परन्तु मुनीम खाँ ने उसे सलाह दी कि कामबख्श की समस्या को सुलझाने के पश्चात् ही इन राजाओं के विरुद्ध सेना भेजना उचित है। फलतः अजीतसिंह व जयसिंह के विरुद्ध सेना नहीं भेजी गई।[५२] राजाओं के पलायन के लगभग एक महीने बाद सोमवार, १७ मई (८ रबी उलअव्वल) को उसे पता चला कि वे लोग राणा अमरसिंह के पास उदयपुर चले गये हैं। तब उसने उमदतुलमुल्क को लिखा कि वह उन्हें तसल्ली देने का प्रयास करे।[५३] अगले कई महीनों तक दक्षिण की समस्या में उलझे रहने के कारण बहादुरशाह इन राजाओं की गतिविधियों पर ध्यान न दे सका।

(ग) बादशाह के विरुद्ध त्रिकुट (सन् १७०८-९ ई.)

शाही लश्कर को छोड़कर अजीतसिंह और जयसिंह देवलिया गए, जहाँ महारावत प्रतापसिंह ने उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् वे उदयपुर की ओर बढ़े। जब राणा अमरसिंह को उनके आने का समाचार मिला तो उसने बृहस्पतिवार, २९ अप्रेल, सन् १७०८ ई. (ज्येष्ठ बदि ५, संवत् १७६५) को उदयपुर से प्रस्थान किया और गाडवा नामक गाँव में अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास से मिला और उन्हें साथ लेकर २ मई (ज्येष्ठ वदि ८) को उदयपुर वापस पहुँचा। अजीतसिंह को कृष्ण-विलास तथा जयसिंह को सर्व ऋतु-विलास नामक महलों में ठहराया गया।[५४]

अजीतसिंह व जयसिंह कई दिन उदयपुर में रहे। राणा ने उनका यथोचित सम्मान किया।[५५] परस्पर विचार-विमर्श किया गया। इन शासकों ने 'न केवल अपने-अपने राज्य पर, वरन 'हिन्दुस्तान की बादशाहत' को अपने अधिकार में करने

---

५१. दिलकुशा. भाग २. १७२ ब; कामवर ३१०; वारिद. १८५ अ; रोजनामचा ११७-८; खरीफ खाँ-भाग २, ६१६; मआसिर. १७४, ६४०, ७३५; तारीख-मुजफ्फरी १६६; ख्यात. भाग २, ७६८ व ८३४; कूर्म्मवंसविलास १८८ अ; वंश-भाग ४, ३००९; सूरजप्रकाश. ९७; मूंदियाड़. २३४; राजरूपक ४२६; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ३२-३; अजित चरित्र सर्ग ९, श्लोक १७-८; इरविन. भाग १; ४९; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३४-५; । ३. भाग १,२९५; सतीशचन्द्र. ३४।

५२. रोजनामचा ११८; ओझा. भाग ४,खंड २, ५३५; बहादुरशाह. १५५।

५३. बहादुर. १०३ अ; दिलकुशा. भाग २, १७२ ब; इरविन. भाग १, ६७।

५४. वीर. भाग २, ७६९-७७०; ७३३ व १०६२; ख्यात. भाग २, १२८-९; जुनी. ८६; दानेश्वर २२२; वंश. भाग ४, ३००९-११।

५५. वीर. भाग २, ७७० व ८३४; वंश, भाग ४. ३०११-२। ख्यात. (भाग २, १२९); जुनी (८६); दानेश्वर. (२२३) में तीनों शासकों के एक साथ भोजन करने तथा भेंट देने का उल्लेख है और यह भी लिखा है कि अजीतसिंह व जयसिंह जितने दिन उदयपुर में रहे, राणा ने उन्हें प्रतिदिन चार-चार सौ रुपया तथा दुर्गादास को प्रतिदिन दो सौ रुपया व्यय के लिये दिया।

के विषय में भी बातचीत की।[५६] उन लोगों ने मुगल सम्राट् के विरुद्ध एक संघ बनाया और हर आपत्ति में परस्पर एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया।[५७] सन् १५२६ ई. में राणा साँगा ने बाबर के विरुद्ध राजपूत राजाओं का जो संघ बनाया था, उसके बाद पारस्परिक ऐक्य का राजपूताने में यह सम्भवतः पहला ही प्रयास था। इस समझौते को वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा दृढ़ किया गया। अजीतसिंह का विवाह राणा अमरसिंह के चाचा गजसिंह की पुत्री के साथ १२ जून, सन् १६६६ ई. में ही हो चुका था,[५८] अब राणा ने अपनी पुत्री चन्द्रकुँवरी का विवाह सोमवार, १० मई (ज्येष्ठ सुदि १) को राजा जयसिंह के साथ कर दिया।[५९] इस विवाह के अवसर पर राणा ने जयसिंह के साथ एक लिखित सन्धि की जिसका परिणाम कालान्तर में आम्बेर के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ।[६०]

इसी बीच बहादुरशाह के बड़े पुत्र जहाँदारशाह का २४ अप्रेल (१४ सफर) का लिखा एक निशान राणा के पास पहुँचा जिसमें उसने लिखा था कि अजीतसिंह, व दुर्गादास जागीर व वेतन न मिलने के कारण शाही लश्कर छोड़ कर भाग गए हैं। उसने राणा को सलाह दी थी कि वह इन लोगों को अपने यहाँ नौकर न रक्खे और उनसे क्षमा के लिए प्रार्थना-पत्र लिखवाकर बादशाह के पास भेज दे। शाहजादे ने यह आश्वासन भी दिया था कि वह स्वयं बादशाह से कहकर इन तीनों को क्षमा दिलवा देगा और जागीरों की सनदें लेकर राणा के पास भेज देगा, और थोड़े दिन

---

५६. वीर. भाग २, ७७२; वंश. भाग ४, ३०१२-३।

५७. जयपुर रिकार्डस, हिन्दी, भाग २, खंड ३, ६५; चतुरकुल चरित्र. ११७; इरादत खाँ ५८; इरविन भाग १, ६७।

५८. अध्याय ४, वीर (भाग २, ४३७); कूर्म्मवंसविलास (१२२ ब); (वंश भाग ४, ३०१८-६); व चतुरकुल चरित्र (११७) आदि के अनुसार राणा ने इसी समय अपने चाचा की पुत्री कृष्णकुँवरी का विवाह अजीतसिंह के साथ किया था। परन्तु यह ठीक नहीं है। वीर (भाग २, ७७१ ठि.) में भी इस बात का खंडन किया गया है।

५६. ख्यात. भाग २, १२६-३०; जुनी ८६-७; वीर. भाग २, ८३४ व ७७१; राठौड़ा ४७; ओझा. भाग २, खड ४, खंड २, ५३६।
मूंदियाड़ (२३४) के अनुसार यह विवाह मई। जून (आषाढ़) के महीने में, दानेश्वर (२२३) के अनुसार. १६ मई (ज्येष्ठ सुदि ८) और आसोपा (२६३) के अनुसार २३ मई (ज्येष्ठ सुदी १५) को हुआ था। परन्तु चूँकि अधिकाश ग्रन्थ मई की तिथि को ही स्वीकार करते हैं अतः उसे ही ठीक मानना उचित है।
खरीफ खाँ (भाग २, ६०५) व इरविन (भाग १, ६७) ने भूल से जयसिंह की कन्या का विवाह राणा से होना स्वीकार किया है, जो ठीक नहीं है।

६०. वंश. भाग ४, ३०१८-६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२६।
इस सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं—
(क) आयु में छोटी होने पर भी उदयपुर की राजकुमारी ही राजमहिषि होगी।
(ख) इस कन्या से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा।
(ग) यदि यह रानी किसी पुत्री को जन्म देगी तो उसका विवाह मुसलमान से नहीं किया जायेगा।

बाद उसकी भेंट भी अपने पिता से करवा देगा। सम्भवतः जहाँदारशाह ने इन राजपूत राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की यह चेष्टा इसलिए की थी कि भावी उत्तराधिकार युद्ध में उसे उनका सहयोग प्राप्त हो सके। राणा ने यह निशान पाकर इसी आशय के प्रार्थना-पत्र अजीतसिंह, जयसिंह व दुर्गादास से लिखवाकर शाहजादे के माध्यम से बादशाह के पास भेज दिए।[६१]

अजीतसिंह और जयसिंह अपने-अपने प्रार्थना-पत्र की प्रतिक्रिया जानने के लिए कुछ दिन तक उदयपुर में ही रहे। परन्तु जब बादशाह का कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो उन्होंने समय व्यर्थ नष्ट करना उचित न समझा और बादशाह की उत्तर भारत से अनुपस्थिति का लाभ उठाकर सैन्य शक्ति का प्रयोग करके अपने-अपने राज्यों पर अधिकार करने का निश्चय किया। राणा ने उन्हें विदा देते हुए नकद रुपया, हाथी व घोड़े आदि दिए और अपने समझौते के अनुसार कायस्थ श्यामलदास के नेतृत्व में कुछ सेना भी उन्हें दी।[६२]

अजीतसिंह व जयसिंह ने पहले जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने मेड़ता के फौजदार मखसूस खाँ को भगाकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया।[६३] तदुपरान्त लगभग तीस हजार सेना के साथ उन्होंने जोधपुर का घेरा डाला। वहाँ के फौजदार मेहराब खाँ ने पाँच दिन तक इस सेना का सामना किया, परन्तु अन्त में उसे जोधपुर छोड़ना पड़ा। दुर्गादास के कहने पर अजीतसिंह ने उसे जीवित चले जाने दिया। रविवार, ४ जुलाई (श्रावण बदि १३) को अजीतसिंह ने जोधपुर में प्रवेश किया और सिंहासनारूढ़ होते समय जयसिंह ने उसका टीका किया। तत्पश्चात् जयसिंह का डेरा सूरसागर, दुर्गादास का ब्रह्मकुंड तथा राणा की सेना का कूंपावत राजसिंह भीमावत के बाग में हुआ।[६४] जोधपुर पर अधिकार कर लेने के बाद अजीतसिंह ने अपनी मैत्री को अधिक दृढ़ करने के लिए सोमवार, २६ जुलाई (भाद्रपद बदि ५) को अपनी पुत्री सूरजकुंवर की सगाई राजा जयसिंह

---

६१. वीर. भाग २, ७७२-४; दानेश्वर. २२३; चतुरकुल चरित्र ११७; इरविन. भाग १, ;६७ ओझा. भाग ४, खंड २, ५३५।

६२. वीर. भाग २, ७७४-५; ख्यात. भाग२, १३१; जुनी. ८६; दानेश्वर. २२३; वंश. भाग ४, ३०१९; ओझा भाग ४, खंड २, ६०५।

६३. रोजनामचा ११८।

६४. राजरूपक. ४२७-९ व ४३१; ख्यात. भाग २, १३१-३; जुनी. ८७; वीर. भाग २, ७७५ व ८३४; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ३४; सूरजप्रकाश. ५९; बांकीदास ३७; कूर्म्मवंशाविलास १८८ ब; दानेश्वर २२३-४; कविराजा ८६-७; चतुरकुल चरित्र. ११७;) दिलकुशा. भाग २, १७३ अ; रोजनामचा ११८; वारिद. १८५ अ; सीयर १८: टॉड. भाग २, ६०; इरविन- भाग १, ६७-८; । भाग १, २६६।

अजीतसिंह का जोधपुर पर किस तिथि को अधिकार हुआ, इस सम्बन्ध में कई तिथियों का उल्लेख मिलता है। अधिकतर ख्यातों में ३ जुलाई (श्रावण बदि १३) को स्वीकार किया गया है। दानेश्वर. में ८ जुलाई (श्रावण सुदी २) का उल्लेख है। परन्तु राजरूपक समकालीन ग्रन्थ है अतः, उसी में उल्लिखित तिथि को मान्यता दी गई है।

से कर दी।[६५] सूरजकुँवर की माँ लालकुँवर जैसलमेर के राव अमरसिंह की पुत्री थी और उसके साथ अजतीतसिंह का विवाह २२ जून सन् १६६६ ई. को हुआ था।[६६] इस प्रकार सूरजकुँवर की अवस्था आठ वर्ष से अधिक नही थी, जबकि जयसिंह की आयु बाईस वर्ष के लगभग थी।[६७] स्पष्ट ही यह सम्बन्ध राजनीतिक उद्देश्य से किया गया था।

सम्भवतः उदयपुर से प्रस्थान करते समय ही इन राजाओं ने जयसिंह के दीवान रामचन्द्र तथा कछवाहा श्यामसिंह को एक बड़ी सेना देकर आम्बेर की ओर भेज दिया था।[६८] इस सेना ने जून के महीने में आम्बेर पहुँच कर मेवात के फौजदार सैयद हुसैन खाँ से युद्ध किया। शाही सैनिकों ने इनका सामना किया परन्तु अन्त में उन्हें परास्त होकर भागना पड़ा। आम्बेर पर राजपूतों का पुनः अधिकार हो गया। इसके बाद राजपूत सैनिकों ने आगे बढ़कर हिन्डौन व बयाना से भी शाही अधिकारियों को भगा दिया।[६९]

अजमेर के सूबेदार शुजात खाँ ने शाही अधिकारियों की अयोग्यता को छिपाते हुए मुगल-सम्राट् को इस घटना की सूचना ठीक-ठीक नहीं भेजी। उसने यह समाचार भेजा कि आम्बेर पर राजपूतों की सम्मिलित सेनाओं ने आक्रमण किया था, परन्तु सैयद हुसैन खाँ ने उसे विफल कर दिया। राजपूतों ने हिन्डौन व बयाना

---

६५. ख्यात. भाग २, १३५-८; वीर. भाग २, ८३४; कूर्म्मवंसविलास. १८८ ब; इरादत खाँ ५८; ओझा. भाग ४, खड २, ५३६; प्राचीन राजवंश. २१७।
दानेश्वर. (२२४) में इस घटना की तिथि ११ जुलाई (श्रावण सुदी ५) स्वीकार की गई है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात की तिथि को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है।
मूल (२१५) तथा बहादुर (१५७) में भूल से इसी समय विवाह होना लिखा गया है।

६६. अध्याय ४ पृ. टि।

६७. इरविन भाग १, ४४।

६८. यह कहना कठिन है कि यह सेना आम्बेर की ओर भेजी गई। राजपूतों ने जोधपुर पर ३ जुलाई को अधिकार किया और आम्बेर पर आक्रमण जून में ही हुआ था। (इरविन. भाग १, ६८) अत: यह निष्कर्ष निकालना अधिक उचित है कि राजाओं ने स्वय जोधपुर के लिये प्रस्थान किया और अपनी सेना का एक भाग आम्बेर की ओर भेज दिया था।

६९. ख्यात. भाग २, १३५, वीर भाग २; ७७५; कूर्म्मवंसविलास १८८ ब; वंश भाग ४, ३०११-२ रोजनामचा. ११८; बहादुर. १२० ब; वारिद. १८५ अ; दिलकुशा-भाग २, १७३ अ; सीयर. १८; मआसिर. ६४०; रुस्तमअली. २१७; इरविन. भाग १, ६८; । ३. भाग १, २८६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३७; सतीशचन्द्र. ३५; बहादुरशाह. १५८।
लगभग सभी फारसी के इतिहासकारों का मत है कि अजीतसिंह जोधपुर पर अधिकार कर लेने के उपरान्त स्वयं आम्बेर गये थे। इरविन व सतीशचन्द्र ने भी इसी मत का समर्थन किया है। उदयराज चन्द ने अपने शोध ग्रन्थ (बहादुरशाह. १५८) में लिखा है कि रामचन्द्र को आंशिक सफलता मिली थी अतः राजाओं ने पुनः आम्बेर पर स्वयं जाकर आक्रमण किया। परन्तु यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता। ख्यातों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि दोनों राजा ३ जुलाई से १६ जुलाई तक जोधपुर में ही थे और श्रावण सुदी (जुलाई) में उन्हें वही आम्बेर में शाही सैनिकों की पराजय का समाचार मिला था।

के दो परगनों पर अधिकार कर लिया। आम्बेर की सुरक्षा का समाचार पाकर शाही शिविर में खूब खुशी मनाई गई और बादशाह ने शुजात खाँ के लिए खिलअत भेजी। साथ ही उसने आगरा के सूबेदार अमीर खाँ को यह आदेश दिया कि वह हिन्डौन व बयाना वापस लेने के लिए प्रयत्न करे। रविवार, ११ जुलाई (४ जमादिउल-अव्वल) को अवध के सूबेदार खानेदौराँ चिन कुलीज खाँ, इलाहाबाद के सूबेदार खानेजहाँ और मुरादाबाद के फौजदार अमीक खाँ को भी अमीर खाँ की सहायता के लिए जाने का आदेश मिला।[७०]

कुछ ही दिन बाद ११ अगस्त को बहादुरशाह को यह समाचार मिला कि शुजात खाँ द्वारा भेजी गई सूचना असत्य थी, आम्बेर पर राजपूतों का अधिकार हो गया है। बादशाह इस पर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने असद खाँ को इन दोनों राजाओं का दमन करने के लिए आदेश भेजा। परन्तु वर्षा ऋतु के कारण असद खाँ स्वयं नहीं गया और उसने सैयद हुसैन खाँ को एक लाख रुपया भेजकर यह आदेश दिया कि वह इस कार्य के लिए नए सैनिक भर्ती करे। वर्षा ऋतु बीत जाने पर सैयद हुसैन खाँ ने आम्बेर पर अधिकार करने का एक और प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता न मिल सकी।[७१]

इसी बीच शाहजादा जहाँदारशाह ने सोमवार, ५ जुलाई (२७ रबीउस्सानी) का लिखा एक निशान राणा अमरसिंह को भेजा जिसमें लिखा कि राणा द्वारा भेजे गए अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास के पत्र बादशाह के सम्मुख रखे गए थे, परन्तु इसी समय शुजात खाँ के पत्र द्वारा राजाओं के आम्बेर पर आक्रमण करने का समाचार मिला। फलतः उन्हें क्षमा नहीं कराया जा सका। अब उन्हें फिर समझाया जाय कि वे पुनः नए प्रार्थना-पत्र भेजें और जयसिंह अपने दीवान रामचन्द्र को नौकरी से हटा दे। राणा ने इसके उत्तर में लिखा कि जब तक राजाओं को उनके राज्य नहीं मिल जायेंगे, वे शान्ति से नहीं बैठेंगे। अतएव उन्हें राज्य वापस देना अत्यन्त आवश्यक है। राणा ने इसी आशय का पत्र असद खाँ को भी लिखा।[७२]

इधर अजीतसिंह व जयसिंह को जब शाही सेना के पुनः आम्बेर पर आक्रमण करने का समाचार मिला तो उन्होंने प्रतिक्रिया स्वरूप अजमेर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अजीतसिंह, जयसिंह व दुर्गादास ने एक विशाल सेना के साथ अगस्त के अन्त (आश्विन के आरम्भ) में अजमेर की ओर प्रस्थान किया।[७३]

---

७०. बहादुर. १२६ ब जयपुर १०७ अ; अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष २ ८६; इरविन. भाग १, ६८; बहादुरशाह १५६; सतीशचन्द्र ३५।

७१. इरविन. भाग १, ६६; बहादुरशाह. १६१।

७२. वीर. भाग २, ७७५-८; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. १४, १४५, ६३६, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान, तिथिहीन, नं. १८४६, रा. पु. बी,; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३७-८; बहादुर शाह. १६०।

७३. वीर. भाग २, ८३४-५।

अजीतसिंह व जयसिंह का विचार इस अभियान में राणा अमरसिंह को भी बुलाने का था, परन्तु किसी अज्ञात कारणवश यह कार्यान्वित न हो सका।[७४] यह लोग बृहस्पतिवार, १६ सितम्बर (आश्विन सुदि १३) को मेड़ता पहुँचे और वहाँ से चलकर पुष्कर में रुके। अजमेर के सूबेदार शुजात खाँ को जब यह समाचार मिला तो उसने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया। उसने कनीराम ऊदावत द्वारा अजीतसिंह के पास यह सन्देश भेजा कि अजमेर धार्मिक स्थल है, अतः वह उस पर आक्रमण न करे। साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिलाया कि वह बादशाह को पत्र लिखकर उसको जोधपुर, तथा जयसिंह को आम्बेर दिलवा देगा, और उनके इस अभियान के खर्च के तीन लाख रुपये भी उन्हें देगा। यह सदेश पाकर अजीतसिंह ने समस्त समाचार विट्ठलदास के द्वारा जयसिंह को भेजा, और जयसिंह ने भी इसे स्वीकार करना उचित समझा। इस प्रकार अजमेर पर आक्रमण न करके वे पुष्कर में ही रुके रहे। इधर शुजात खाँ ने सहायता के लिए तुरन्त बादशाह को लिखा। शीघ्र ही आगरा, मथुरा, नारनौल व आम्बेर में पराजित सेनाएँ उसकी सहायता के लिए आ पहुँची।[७५] यह समाचार पाकर दोनों राजा बहुत अप्रसन्न हुए। उनकी सारी योजना बेकार हो गई और उन्हें आम्बेर की ओर लौटना पड़ा। मार्ग में सांभर के फौजदार अली अहमद ने बृहस्पतिवार, ३० सितम्बर (कार्तिक बदि १३) को उन पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में दोनों पक्ष के बहुत से व्यक्ति मारे गए, परन्तु अन्त में अली अहमद परास्त हो गया।[७६]

प्रतिक्रियास्वरूप अजीतसिंह और जयसिंह ने आगे बढ़कर अपनी बीस-पच्चीस हजारसेना के साथ मुस्लिम सेना की छावनी सांभर को घेर लिया। मेवात के फौजदार

---

७४. वीर. (भाग २, ८३५-६) में दुर्गादास द्वारा लिखा गया एक पत्र संग्रहीत है जो उसने ११ सितम्बर (आश्विन सुदि ८) को पंचोली बिहारीदास को लिखा था। इसमें उसने लिखा है कि वह, १४ सितम्बर (आश्विन सुदि ११) को राणा को बुलाने के लिये प्रस्थान करेगा।

७५. ख्यात भाग २, १३८-९; जुनी. ८७; दानेश्वर. २२५।
राजरूपक (४३४); अजितोदय (सर्ग १७; श्लोक ३५); कूर्म्मवंसविलास (१८६); वीर. (भाग २, ७७८) में लिखा है कि शुजात खां राजपूत राजाओ से परास्त हो गया था और उसने उन्हें पेशकश देकर छुटकारा पाया था आधुनिक इतिहासकारों में टॉड (भाग २, ६०) आसोपा (२६४) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। इसके विपरीत खफी खाँ (भाग २, ६५०, के अनुसार अजमेर के सूबेदार ने राजपूतों को बुरी तरह परास्त किया था। खफी खाँ ने अजमेर के सूबेदार का नाम सैयद हुसैन खां लिखा है, परन्तु सैयद हुसैन खाँ इन दिनों मेवात का फौजदार था। आधुनिक इतिहासकार सतीशचन्द्र (३५) ने भी लिखा है कि अजमेर के सूबेदार शुजात खां ने राजपूतों को हराया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोनों मत पक्षपातपूर्ण है। जोधपुर राज्य की ख्यात का वर्णन ही अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता है।

७६. मुतफर्रिक महाराजगन, रा. पु. बी., नं. २०७६, २०७७; मुतफर्रिक महाराजगन, तिथिहीन, रा. पु. बी., नं० २११८; ख्यात. भाग २, १३६; मूंदियाड़ २३५-६; दानेश्वर. २२५; अजितोदय, सर्ग १७, श्लोक ३५; आसोपा २६४।

सैयद हुसैन खां को जब से राजपूतों ने आम्बेर में परास्त किया था, वह इनसे चिढ़ा बैठा था और इन्हें परास्त करने के लिये अवसर खोज रहा था। अब उसने सांभर में इनका सामना करने का निश्चय किया और आम्बेर के फौजदार सैयद अहमद सईद खाँ, सांभर के फौजदार अली अहमद खाँ, नारनौल के फौजदार गैरत खाँ और सैयद इज्जत खाँ तथा सात-आठ हजार सैनिकों के साथ वह राजपूतों के समक्ष आ डटा। रविवार, ३ अक्तूबर (कार्तिक सुदि१)[७७] को भयानक युद्ध हुआ जिसमें राजपूत परास्त होकर भाग गये और सैयदों ने राजपूतों की समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया।[७८]

जिस समय शाही सेना विजयोल्लास में मग्न थी, सैयद हुसैन खाँ बारहा की दृष्टि नरूका संग्रामसिंह[७९] नामक राजपूत सरदार पर पड़ी जो अपने दो हजार साथियों के साथ भागने की तैयारी कर रहा था। हुसैन खाँ तुरन्त थोड़ी सी सेना के साथ उसकी ओर बढ़ा। नरूका संग्रामसिंह ऊँचे स्थान पर था। जब उसने सैयदों को अपनी ओर आते देखा तो अपनी स्थिति का लाभ उठाकर राज-

---

७७. राजरूपक. ४४०; ख्यात. भाग २, १३६; जुनी. ८७; बांकीदास. ३७; कविराज. ८७; गुटका. ३१० अ।

रुस्तमअली (११८ अ) ने इस घटना की तिथि २ अक्टूबर (२८ रजब) लिखी है। चूँकि हिजरी तिथियाँ सांयकाल से बदलती हैं अत: इनमें अनिश्चितता रहती है। राजरूपक में निश्चित रूप से दीवाली के दूसरे दिन का उल्लेख भी किया गया है, अत: ३ अक्टूबर को ही स्वीकार करना उचित है।

७८. वारिद १८५ अ ब; रोजनामचा ११८-९; इरविन. भाग १, ६९; दी थर्टी डिसाइसिव बैटल्स ऑफ जयपुर. ६८-९; बहादुरशाह १६१-२।

वारिद (१८५ ब) ने लिखा है कि राजा इतने डर गये थे कि वे अपने वस्त्र उतार कर साधारण वस्त्र पहिन कर भागे थे। रुस्तमअली (२१७ ब व २१८ अ) ने लिखा है कि राजपूतों की विशाल सेना को आते देखकर सैयद भाग खड़े हुये परन्तु जब वे घर पहुँचे तो उनकी स्त्रियों ने हाथ मे डंडे लेकर उनका मार्ग रोक लिया। और कहा कि यदि वे मृत्यु से डरकर भागे हैं तो उनके लिये घर में स्थान नहीं है। तब वे लज्जित होकर लौटे और राजपूतों पर इतना तीव्र आक्रमण किया कि राजपूत सेना के पैर उखड़ गये। परन्तु ये कथन कपोल-कल्पित प्रतीत होते हैं।

वारिद (१८५ अ) ने राजपूतों की सेना की संख्या एक लाख बताई है तथा रुस्तमअली (२१७ अ) ने पचास हजार। मुस्लिम सेना के विषय में रुस्तमअली ने केवल एक सौ पचास सयदों का उल्लेख किया है स्पष्टतया ये कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। ख्यात भाग २, १३९ में लिखी गई संख्या को स्वीकार करना ही तर्कसम्मत प्रतीत होता है। राजस्थानी ख्यातों व ग्रन्थों में इस पराजय का उल्लेख नही है।

७९. ख्यात. भाग २; १३९; कूर्म्मवंसविलास. १८९; दी थर्टी डिसाइसिव. बैटल्स ऑव जयपुर. ६९।

नरुका संग्रामसिंह उणियारा का रावत था तथा जयपुर के प्रमुख सरदारों में से एक था। रुस्तमअली (११८अ) ने इस सरदार का नाम खन्नू खंडेला बताया है, परन्तु राजपूत सरदारों के नाम के विषय में राजस्थानी ग्रन्थों को मान्यता देना ही अधिक उचित है।

पूतों ने एक साथ दो सौ बन्दूकें चला दीं। सैयद हुसैन खाँ व उसके साथियों को म्यान से तलवारें निकालने तक का अवसर न मिल सका, और इस पहली ही आकस्मिक बाढ़ में वह अपने दो भाइयों तथा पचास सैनिकों सहित मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही शाही सैनिकों का भाग्य पलट गया और वे घबराकर इधर उधर भाग खड़े हुए। अजीतसिंह व जयसिंह इस बीच दो कोस आगे पहुंच गये थे। उन्हें जब हुसैन अली व उसके साथियों के मारे जाने का समाचार मिला तो वे सहसा विश्वास न कर सके। पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद वे सांभर लौटे और उन्होंने हुसैन अली को हौदे में मरा हुआ पाया। शेष मुगल सैनिकों को आसानी से भगा दिया गया। तब अजीतसिंह व जयसिंह ने ३ अक्तूबर को सांभर नगर में प्रवेश किया।[८०] राजपूतो ने शाही सैनिकों का लगभग पाँच कोस तक पीछा किया। सांभर का फौजदार अली अहमद पकड़ा गया और लगभग दो हजार मुगल सैनिक मारे गये व चालीस घायल हुए सांभर का काजी खालिक मुहम्मद भी बन्दी बना लिया गया और उसके घर को खोदकर तीन लाख रुपया निकाला गया। शाही शिविर को लूट लिया गया और इस लूट में राजपूतों को पालकी, नक्कारा, निशान, तोपखाना, चार हाथी तथा लगभग दो सौ घोड़े मिले। दो हाथी जयसिंह को, एक अजीतसिंह को व एक नरूका संग्रामसिंह को दिया गया।[८१]

सांभर का युद्ध राजस्थान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह राजपूताने के दो महत्त्वपूर्ण राज्यों जोधपुर व जयपुर का शाही सेना के विरुद्ध सम्मिलित प्रयत्न था। फलस्वरूप यहां दोनों शासकों ने सम्मिलित अधिकार स्थापित किया। अजीतसिंह और जयसिंह दोनों ने ही अपना-अपना फौजदार और कोतवाल नियुक्त किया और यह निश्चय किया कि यहां की पैदावार दोनों के बीच आधी-आधी बाँटी जायेगी। अजीतसिंह ने भंडारी खीवसी रामावत को फौजदार तथा जगराम को कोतवाल नियुक्त किया और इस युद्ध में वीरता दिखाने वाले अपने कई सरदारों को सिरोपाव दिये।[८२]

सांभर के युद्ध मे एक विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि दुर्गादास राठौड़ महाराजा अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर, मेवाड़ के राणा अमरसिंह की शरण में चला गया।[८३]

---

८०. वारिद १८५ अ व ब १८६ अ; रोजनामचा ११८-९; कामवर. ३१५; खफी खाँ भाग २, ६४०-१; इरविन. भाग १, ६९-७०; दी थर्टी डिसाइसिव बैल्टस ऑफ जयपुर. ६९-७०; बहादुरशाह. १६३-४।
राजस्थानी ग्रन्थो एवं ख्यातों. में इस घटना का विवरण सैयदों की स्पष्ट पराजय के रूप में किया गया है।

८१. ख्यात. भाग २, १३९-४० व१४१; जुनी. ८७; दानेश्वर. २२५; आसोपा २६५।

८२. ख्यात. भाग २, १४०-१; जुनी. ८८; मूंदियाड़ २३६; वीर. भाग २, ८३७; राठौड़ा. ४८; प्राचीन राजवश २१७-७।

८३. दुर्गादास ने अपने जीवन के अन्तिम दस वर्ष राणा की सेवा में ही व्यतीत किये। राणा की आज्ञा से रामपुरा के हाकिम के रूप में कार्य करते हुये वहीं पर, सन् १७१८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। (विस्तार के लिये देखिये श्री विश्वेश्वरनाथ द्वारा लिखित राठौड़ दुर्गादास. ४७ ५२।

अजीतसिंह और दुर्गादास में यह विरोध किस कारण हुआ, इस विषय में कई मत मिलते हैं। कहा जाता है कि दुर्गादास के शरीर में सैंकड़ों घाव थे, इसलिये वह झुककर अभिवादन नहीं कर सकता था। उसके विरोधी सरदार अजीतसिंह को भड़काते थे कि दुर्गादास उसे समुचित आदर नहीं देता है। अतः अजीतसिंह ने उसे निकाल दिया।[८४] परन्तु यह मत पूर्णतया तर्कहीन प्रतीत होता है। कुछ लेखकों का मत है कि बहादुरशाह ने अजीतसिंह को राज्य की सनद देते समय यह आदेश दिया कि दुर्गादास मारवाड़ मे न रहने पाये। इसी कारण अजीतसिंह ने उसे निष्कासित किया था।[८५] परन्तु यह मत भी भ्रामक है क्योंकि इस समय तक बादशाह ने अजीतसिंह का जोधपुर, पर अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इसके साथ ही दुर्गादास को मुगल सम्राट से बाद में सम्मान मिलता रहा, इसका प्रमाण अखबारात व अन्य ग्रन्थों में मिलता है।

ख्यातों में लिखा है कि सांभर की विजय के उपरान्त दुर्गादास ने अपनी सेना सहित अलग डेरा किया। जब अजीतसिंह ने उसे मिसल (सरदारों की पंक्ति) में डेरा करने के लिये कहा तो उसने प्रार्थना की कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ। (दुर्गादास की आयु इस समय लगभग सत्तर वर्ष की थी) अतएव मुझे इस सेवा से मुक्त कर दिया जाय। उसने यह भी कहा कि मेरे वंशज अन्य सरदारों के साथ ही डेरा किया करेंगे। महाराजा उसके उत्तर से अप्रसन्न हो गया और दुर्गादास भी इस बात को ताड़ गया उसने अजीतसिंह के समक्ष प्रस्ताव रक्खा कि जब शाही सेना से भागकर हम मेवाड़ गये थे तो महाराणा ने हमारा स्वागत किया था, अतः हमें भी उसे निमंत्रित करना चाहिये। अजीतसिंह ने उसकी बात स्वीकार करली और दुर्गादास को उदयपुर जाकर राणा को लाने का आदेश दिया। दुर्गादास उदयपुर जाकर वापस नहीं लौटा।[८६] ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि दुर्गादास ने सांभर के युद्ध के बाद अपना अलग हिस्सा माँगा था। इसी बात को लेकर जयसिंह ने अजीतसिंह को दुर्गादास के विरुद्ध उत्तेजित किया और उसने दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया।[८७] सम्भव है अजीतसिंह व दुर्गादास के मतभेद का तात्कालिक कारण रहा हो, परन्तु इसे मूल कारण नहीं माना जा सकता।

वीर विनोद में लिखा है कि दुर्गादास को यह गर्व हो गया था कि मैंने अजीतसिंह को राज्य दिलवाया है और मैं बादशाह मनसबदार हूँ। इसी बात पर विरोध हुआ और अजीतसिंह ने दुर्गादास को मारवाड़ से निष्कासित कर दिया।[८८]

---

८४. वीर दुर्गादास राठौड़ ले० जगदीशसिंह गहलोत-११३।

८५. तुहफए राजस्थान. ले० फरहती १८५; जिसका उल्लेख रामरतन हालदार ने वीर शिरोमणी दुर्गादास. (१३९) में किया है।

८६. ख्यात. भाग २, १८५; मूंदियाड़ २३६-८।

८७. मूल. २१५-६;। ३ भाग १, २९५ टि.।

८८. वीर. भाग २, ६९१।

वास्तव में अजीतसिंह के प्रकट होने के बाद से दुर्गादास का व्यवहार उसके प्रति विशेष अच्छा न था। सन् १६८७ ई० में अजीतसिंह के प्रकट होने तथा सन् १६६२ ई० में दुर्गादास की सलाह न मानकर अजीतसिंह के अजमेर पर आक्रमण करने पर वह अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर अपने गाँव भीमरलाई चला गया था। जब ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३ सम्वत् १७६५) को अजीतसिंह ने प्रधान का पद चांपावत मुकुन्ददास को दे दिया,[८९] तो दुर्गादास को यह स्पष्ट हो गया कि वह शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में नहीं ले सकता। सम्भवतः इसी कारण वह अजीतसिंह की सेवा छोड़कर चला गया था।

सांभर का प्रबन्ध करने के बाद अजीतसिंह ने सम्भवतः अक्तूबर के महीने में ही डीडवाना पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया और फिर दोनों आम्बेर गये। आम्बेर के सिंहासन पर जब जयसिंह बैठा तो अजीतसिंह ने उसे टीका किया। कुछ ही दिन बाद अजीतसिंह सांभर होता हुआ जोधपुर लौट गया।[९०]

अब अजीतसिंह ने नागोर पर आक्रमण करके राव इन्द्रसिंह तथा उसके पुत्र मोहकमसिंह को दण्ड देने का निश्चय किया। बृहस्पतिवार, २५ नवम्बर (पौष बदी ६) को उसने नागोर के लिये प्रस्थान किया। अभी वह कूचे नामक स्थान तक ही पहुँचा था कि उसे यह समाचार मिला कि मोहकमसिंह नागोर से भाग गया है। जब वह मूंडवा नामक स्थान पर पहुँचा तो इन्द्रसिंह की माँ अपने पौत्र अजबसिंह को साथ लेकर आई और उसने नागोर पर आक्रमण करने के लिये अजीतसिंह से बहुत अनुनय-विनय की। अजीतसिंह ने अपनी भाभी की बात स्वीकार कर ली। इन्द्रसिंह स्वयं भी आकर उससे मिला और उसने एक लाख रुपया नकद तथा हाथी, घोड़े आदि भेंट दिये। अजीतसिंह ने उसे तथा उसके पुत्रों को घोड़े व सिरोपाव दिये और कुछ दिन उपरान्त जोधपुर लौट आया।[९१]

उधर बहादुरशाह के दरबार में इन दिनो उसके दूसरे पुत्र अजीमुश्शान का प्रभुत्व बढ रहा था। अजीमुश्शान चूँकि जुल्फिकार खाँ से सम्बन्ध रखता था, वह भी अजीतसिंह और जयसिंह को विस्तृत अधिकार देने के पक्ष मे था। सम्भवतः उसी के प्रभाव के फलस्वरूप बादशाह ने रविवार, २६ सितम्बर (२२ रजब) को अजीतसिंह को चार हजार जात साढ़े तीन हजार सवार का मनसब तथा एक लाख दाम दिये और २ अक्तूबर (२८ रजब) को उसे राजा की पदवी, खिलअत तथा हाथी दिया। इसी दिन दुर्गादास को भी एक हजार जात दो हजार सवार का मनसब, राव की पदवी,

---

८९. ओहदाबही नं. १, १८।

९०. ख्यात. १४१ व १४२; जनी. ८८ दानेश्वर २२५-६; गुटका ३१० अ; कूर्म्मवंसविलास. १८६ अ; । ३. भाग १, २६७; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५३।

९१ ख्यात. भाग २, १४३-४; जुनी; ८८; गुटका ३१० अ ब; अजितोदय. सर्ग १६; श्लोक १-७; अजितचरित्र सर्ग १०, श्लोक ८-१०; वीर. भाग २, ८३८; दानेश्वर २२६-७; राठौड़ा. ५४; रेउ. भाग १, ६६८; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४५।

खिलअत, घोड़ा व तलवार दिया गया। जयसिंह को भी ढ़ाई हजार जात दो हजार सवार का मनसब, पचास लाख दाम, राजा की पदवी, खिलअत तथा हाथी दिया गया।[६२]

अजमेर का सूबेदार शुजात खाँ अजीतसिंह तथा जयसिंह का दमन न कर सका था, अतः बहादुरशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया और सैयद अब्दुल्ला खाँ बारहा को उसके स्थान पर नियुक्त किया। अब्दुल्ला खाँ ने अपनी कई माँगें प्रस्तुत कीं, जिनमें से एक यह भी थी कि जोधपुर व मेड़ता की क़िलेदारी भी उसे दी जाय और इन स्थानों पर क्रमशः हसनअली और सैयद अबदुल्ला को नियुक्त करने की अनुमति दी जाय। उसकी यह माँगें स्वीकृत हो गई परन्तु वह अजमेर नहीं गया। सम्भवतः उसे यह भय था कि यदि वह शाही दरबार से हट जायेगा तो उसके विरोधियों का प्रभुत्व बढ़ जायेगा। अब्दुल्ला खाँ के अजमेर न पहुँचने के कारण शुजात खाँ ही पूर्ववत् कार्यभार सम्भालता रहा।[६३]

इधर जब शुजात खाँ को अपने हटाए जाने का समाचार मिला, तो उसने अजीतसिंह को परास्त करने के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया। उसने अजीत-सिंह को एक छलयुक्त पत्र लिखा कि राजाओं के सांभर व डीडवाना में सफल होने का समाचार सुनकर बादशाह ने अप्रसन्न होकर मुझे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया है। जिस व्यक्ति को मेरे स्थान पर नियुक्त किया गया है वह आप लोगो के भय से नहीं आ रहा है। इस प्रकार मैं बादशाह तथा आप दोनों की दृष्टि में बुरा बन रहा हूँ। फलतः मैं चाहता हूँ कि आप अजमेर आयें और अपना अधिकार स्थापित करलें। यह पत्र पाकर अजीतसिंह ने तुरन्त अजमेर जाने का निश्चय किया। बृहस्पतिवार, ३ फरवरी, सन् १७०९ ई० (फाल्गुन सुदि ५) को उसने विट्ठलदास को आगे भेज दिया और शीघ्र ही स्वयं भी बीस पच्चीस हजार सैनिकों को लेकर उस ओर प्रस्थान किया। वह जोधपुर से चलकर मेड़ता में रुका और फिर अजमेर की ओर बढ़ा।

---

६२. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, १०६ व ११०; सतीशचन्द्र ३५ ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्ण मनसब तथा जयसिंह को दो हजार जात दो हजार सवार एक हजार अस्पा का मनसब व पन्द्रह लाख दाम मिले थे। परन्तु मनसब के विषय में अखबारात को ही प्रमाणिक मानना उचित है।
ख्यात. (भाग २, १४२-१); जुनी. (८८) व दानेश्वर (२२६) के अनुसार रूप नगर के राजा राजसिंह ने शाहजादा अजीम-उश शान से अनुरोध किया कि वह बादशाह से कहकर दोनों राजाओं को उनका वेतन दिलवा दें। अजीम-उश-शान ने उसकी बात स्वीकार की और बहादुरशाह से प्रार्थना करके राजाओं को उनके देश दिलवा दिये। वंश (भाग ४, ३०२३-४) के अनुसार राव राजा बुधसिंह ने बादशाह से प्रार्थना करके राजाओं को स्वदेश दिलाये थे। अभय विलास (११ अ) में लिखा है कि अजीतसिंह, को जोधपुर मिल गया था; परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि फारसी इतिहासकारों ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है साथ ही यदि राजाओं को अपने देश मिल गये होते तो उनका विरोध अवश्य दब जाता।

६३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ११९-२०; रोजनामचा. १२९-२०; इरविन. भाग १, ७१।

मार्ग में दांतड़ा नामक स्थान पर उसे विदित हुआ कि शुजात खाँ ने उसे धोखा दिया है, उसने युद्ध की पूरी तैयारी कर रक्खी है, और पुर तथा मांडल के थानेदार फीरोज-खाँ मेवाती के पुत्र को। अपनी सहायता के लिए बुला लिया है अजीतसिंह ने वहीं रुककर अपनी सेना व तोपखाने का संगठन किया और शनिवार, १९ फरवरी (चैत्र बदि ७, संवत् १७६६) को आगे बढ़कर अजमेर पर आक्रमण कर दिया।[९४]

अजीतसिंह ने मेड़ता से ही जयसिंह को भी एक पत्र लिखा था जिसमें उसे अजमेर जाने की सूचना देते हुए शीघ्र वहाँ पहुँचने के लिए लिखा था। यह पत्र पाकर जयसिंह ने उस ओर जाने का विचार भी किया।[९५] परन्तु बाद में वह शुजात-खाँ के विरुद्ध अजमेर के घेरे के समय अजीतसिंह की सहायता के लिए नहीं गया।[९६] सम्भवतः आम्बेर पर अधिकार करने के बाद उसने वहाँ की शासन व्यवस्था सम्भालना अधिक उचित समझा।

शुजात खाँ अजीतसिंह की विशाल सेना को देखकर घबरा गया और उसने बादशाह को सब समाचार भेजा। बहादुरशाह ने सोमवार, २८ मार्च (२७ मुहर्रम, ११२१ हि०) को खानेजहाँ बहादुर, हाकिम खाँ, तथा मुहम्मद अमीन खाँ को आज्ञा भेजी कि वे अजीतसिंह के विरुद्ध जाँय। दो दिन बाद ३० मार्च (२९ मुहर्रम) को बहादुर शाह ने गुजरात के सूबेदार फीरोज जंग के नाम एक फरमान भेजा जिसमें उसे शुजात खाँ की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दी।[९७]

अजमेर का युद्ध कई दिन तक चला। फलतः नगरवासियों के लिए खाद्यान्न की कमी होने लगी। शुजात खाँ व उसके साथियों को भी कठिनाई होने लगी। शुजात खाँ ने राजा जयसिंह को लिखा कि वह किसी प्रकार अजीतसिंह को घेरा उठाने के लिए मनाएँ।[९८] जयसिंह ने दौलतसिंह व कुछ व्यक्तियों को अजीतसिंह के पास भेजा।[९९] सम्भवतः वह स्वयं भी अजमेर गया और उसने अजीतसिंह से बातचीत की। परन्तु अजीतसिंह व उसके साथी वतन और अन्य जागीर से सम्बन्धित शाही फरमान न पाने के कारण बहुत व्यग्र थे।[१००] अन्त में रूपनगर के राजा राजसिंह के माध्यम से सन्धि हुई। अजीतसिंह ने पैंतालीस हजार रुपया लेकर घेरा हटा लिया।[१०१] इस प्रकार शुजात खाँ की योजना पूरी तरह असफल रही और अजीतसिंह की धाक जम गई।

---

९४. ख्यात. भाग २, १४५-६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४६।

९५. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग २, खंड २, १४।

९६. फारसी. पत्र; रा. पु. बी. नं. ११४७।

९७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, २५; वर्ष ३, ४०; कामवर. ३२३; मीरात. २४१।

९८. मुफरिक महाराजगान, नं. २१६७, रा. पु. बी.।

९९. वही., नं० २१७० व २१७२।

१००. वही, नं. २१६२।

१०१. ख्यात, भाग २, १४६-७; जुनी, ८८; वीर. भाग २, ८३८; अजीतोदय. सर्ग १९; श्लोक. १-११; अजीतचरित्र. सर्ग १०; श्लोक. १-६; दानेश्वर. २२७; रेउ. भाग १. १९९; ओझा.

अजमेर से अजीतसिंह देवलिया गया, जहाँ ११ मार्च (चैत्र सुदि १२) को उसका विवाह वहाँ की राजकुमारी से हुआ। देवलिया के राव ने एक हथिनी, आठ घोड़े तथा दो सौ वस्त्र दहेज में दिया। तत्पश्चात् वह जोधपुर के लिए रवाना हुआ और शनिवार, १६ मार्च (बैशाख बदि ५) को वहाँ पहुँचा।[१०२]

राजपूतों की समस्या पूरी तरह सुलझ न पाई थी। बहादुरशाह ने अब आसफुद्दौला असद खाँ को यह आदेश दिया कि वह अजीतसिंह और जयसिंह को शान्त करने का प्रयत्न करे।[१०३] सम्भवत: यह आज्ञा शाहजादा अजीमुश्शान के प्रभाव के फलस्वरूप ही दी गई थी। असद खाँ ने अजीतसिंह तथा जयसिंह के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि वे सांभर व डीडवाना से अपना अपना अधिकार हटालें तो उन्हें उनके वतन जागीर में दे दिए जायेंगे। इस प्रस्ताव के अनुसार अजीतसिंह की नियुक्ति काबुल में तथा जयसिंह की अहमदाबाद में की गई थी। असद खाँ ने वासल खाँ के द्वारा वतन जागीर के लिए अपनी मुहर का फरमान अजीतसिंह और जयसिंह को भेज दिया। उसने अपने इस कार्य की सूचना बादशाह को दे दी और प्रार्थना की कि वह भी उन्हें वतन देना स्वीकार करले। असद खाँ का पत्र पाकर बादशाहने भी इस आशय के फरमान जारी किए। परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह इस प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार न थे, क्योंकि उनकी नियुक्ति उनके वतन से बहुत दूर की गई थी। काबुल जोधपुर से और अहमदाबाद आम्बेर से काफी दूर था, फलत: इतनी दूर रहकर अपने राज्यों का प्रबन्ध सुचारू रूप से करना उनके लिए सम्भव न था। इसके साथ ही इस प्रस्ताव के अनुसार वे एक दूसरे से बहुत दूर हो जाते थे। चूँकि दोनों ही बादशाह के विरोधी थे और दोनों की समस्याएँ समान थीं, अत: वे एक दूसरे के निकट रहकर एक दूसरे की सलाह से काम करना चाहते थे। सम्भवत: असद-खाँ ने भी यह प्रस्ताव इसी विचार से रक्खा था कि एक दूसरे से दूर रहकर उनकी शक्ति संगठित न हो सकेगी और उन पर ही प्रभुत्व बढ़ सकेगा।[१०४]

असद खाँ ने साँभर की ओर वासल खाँ के पुत्र को भेजा था। अजीतसिंह के आदेशानुसार उसके कर्मचारियों ने उसे साँभर का अधिकार नहीं सौंपा। वे लोग सारी वसूली तथा शासन के अन्य सभी कार्य पूर्ववत् करते रहे। वासल खाँ के पुत्र

---

१०२. ख्यात. भाग २, १४७; जुनी. ८८. अजीतोदय. सर्ग १६, श्लोक. १३-५; वीर. भाग २, ८३९ व १७६२; अजीतचरित्र. सर्ग १० श्लोक ७: दानेश्वर. २२७; खरीता जयपुर रिकार्ड्स, २६ मार्च (वैशाखबदी १४) का लिखा हुआ अजीतसिंह का जयसिंह को पत्र, रा. पु. बी.; जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ३, ४२; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४७।

१०३. वकील रिपोर्टस, रा. पु. बी., नं. १४५७।

१०४. जयपुर रिकार्डस्, हिन्दी, भाग २, खंड २, १५ व ६२-४; भाग २, खंड ४, १७०-१ १८२-३ व १७४; जयपुर अखबारात, रा. पु. बी. नं. १२८, १२३ व १३८; मुनर्फरिक महराजगान, रा. पु. बी नं. १७७; वकील रिपोर्ट्स, रा. पु. बी. नं. ३७३, ३७६ व ३७७।
बहादुरशाह (१६५-६) में असद खाँ द्वारा सन्धि के लिये किये गये इस प्रयत्न का उल्लेख अजमेर के लिये किये गये युद्ध से पूर्व किया गया है, परन्तु तिथिक्रम के अवलोकन से यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

को व्यय के लिए कुछ धन दे दिया जाता था। अजीतसिंह ने जयसिंह को लिखा कि वह अपने अधिकारियों को इसी प्रकार की व्यवस्था करने के लिए लिखे।[१०५]

मेवाड़ के राणा अमरसिंह ने भी बादशाह से प्रार्थना की कि अजीतसिंह और जयसिंह को उनके वतन दे दिए जायँ और क्षमा कर दिया जाय। परन्तु मुगल-सम्राट ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि जब तक अजीतसिंह काबुल में तथा जयसिंह अहमदाबाद में अपनी नियुक्ति स्वीकार नहीं करेंगे, वह उनकी माँगें स्वीकार नहीं करेगा।[१०६]

असद खाँ की इस असफलता से दरबार में उसके विरोधी-दल को सम्भवतः प्रोत्साहन मिला और इस के फलस्वरूप बहादुरशाह ने मंगलवार, २४ मई, सन् १७०६ ई० को अजमेर तथा गुजरात की सूबेदारी को इकट्ठा कर दिया और गाजिउद्दीन खाँ फीरोज जंग को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया।[१०७] अजीतसिंह और जयसिंह इस परिवर्तन से आशंकित हो उठे क्योंकि गाजिउद्दीन खाँ एक शक्तिशाली व्यक्ति था। बादशाह औरंगजेब के समय से ही वह सात हजारी मनसबदार था और अब अजमेर व गुजरात की सूबेदारी मिल जाने से उसकी शक्ति और भी बढ़ गई थी। इसके साथ ही भौगोलिक दृष्टि से गुजरात का सूबा जोधपुर के निकट था और अजमेर आम्बेर के निकट था। अतः अजीतसिंह व जयसिंह का आशंकित होना नितान्त स्वाभाविक था। फलस्वरूप इन दोनों ने पारस्परिक पत्रों में यह निश्चय किया कि यदि फ़ीरोज जंग उन पर आक्रमण करेगा तो वे मिलकर उसका विरोध करेंगे।[१०८]

बहादुरशाह ने गाजिउद्दीन खाँ को राजपूतों के विरुद्ध तुरन्त जाने की आज्ञा दी और शुजात खाँ, राजसिंह और छत्रसाल को भी उसकी सहायता करने का आदेश दिया। परन्तु फ़ीरोज़ जंग ने बादशाह की आज्ञा का पालन नहीं किया, उल्टे राजपूतों के साथ गुप्त मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वह राजपूतों से अच्छे सम्बन्ध बनाकर अपनी शक्ति बढाना चाहता था। उसने अपने एक पत्र में अजीतसिंह को अपना एक विश्वस्त व्यक्ति भेजने के लिए लिखा। अजीतसिंह ने भण्डारी रघुनाथ को भेजा, जिसके द्वारा फ़ीरोज़ जग ने अपनी ओर से सम्भवतः मित्रता एवं विश्वास दिखाने के लिए 'कमल तथा रोटी'[१०९]

---

१०५. जोधपुर खरीता ५/७ रा. पु. बी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, २९ सितम्बर (आश्विन सुदी ७)

१०६. खरीता नं. १०२, रा. पु. बी.. १७ अक्टूम्बर (कार्तिक बदी १०) का लिखा जगजीवनदास का पत्र जयसिंह को राजस्थानी पत्र. नं. ३६१, रा. पु. बी ; १५ सितम्बर (आश्विन बदी ८) जमाल बेग का पत्र जयसिंह को।

१०७. सतीशचन्द्र. ३६; बहादुरशाह. १६८।

१०८. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी भाग २, खंड ३, १५; खंड ४, १७०-१, १७२-३ व १७४।

१०९. कमल तथा रोटी का सम्भवतः यह प्राचीनतम उपयोग था जो कि बाद में सन् १८५७ ई० के विद्रोह में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया था।

अजीतसिंह को भेजे और दोनों राजाओं को वतन दिलाने का वचन भी दिया। उसने यह भी कहलाया कि यदि बादशाह उसकी बात स्वीकार नहीं करेगा तो अपना मनसब छोड़ देगा। उसने यह संदेश भेजा कि वह ससैन्य अजमेर आ रहा है, परन्तु यह केवल दिखावा है, उससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।[११०]

परन्तु अजीतसिंह व जयसिंह—दोनों ही फ़ीरोज़ जंग पर विश्वास नहीं कर सके। अजीतसिंह ने सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करने का निश्चय किया और स्थान-स्थान से अपने प्रमुख सरदारों को बुलाया। उसने सभी परगनों में सेनाएँ एकत्र करने के लिए आदेश भेजे और जोधपुर, मेड़ता, सोजत, फलोदी, जालोर, सांचोर, सिवाना आदि सभी परगनों से स्त्री बच्चों को हटाने की आज्ञा दी तथा राज परिवार को भी सुरक्षित स्थान में भेजने का प्रबन्ध किया। उसने जयसिंह को भी एक पत्र लिखा जिसमें अपने सुरक्षात्मक प्रबन्ध का विवरण देते हुए बताया कि वह शाही सेना से युद्ध करने के लिए सदैव तैयार रहेगा और जहाँ तक सम्भव होगा शाही मुल्क भी लूटेगा। अजीतसिंह ने अपने पत्र में जयसिंह को भी इसी नीति का पालन करने की सलाह दी। अजीतसिंह व जयसिंह ने निश्चय किया कि वे सांभर में एकत्र होकर भावी योजना बनाएगे।[१११] सांभर की ओर जाते हुए मार्ग से अजीतसिंह ने नागोर के राव इन्द्रसिंह को लिखा कि वह मार्ग में मेड़ता में आकर ससैन्य उससे मिले। परन्तु इन्द्रसिंह ने उत्तर भेजा कि मैं शाही नौकर हूँ अतः बादशाह के विरुद्ध मैं सहायता नहीं दूँगा। अजीतसिंह ने क्रोधित होकर अपने लड़के को सेना देकर इन्द्रसिंह पर आक्रमण करने के लिए भेजा व शीघ्र ही स्वयं भी उस ओर गया। यह घेरा कई दिन चला। तब उदयपुर के राणा अमरसिंह ने अपने वकील मुन्नाराम को अजीतसिंह के पास भेजा और नागोर से हट जाने के लिए कहा। चार दिन तक बात चीत चलती रही। इस बीच इन्द्रसिंह का दूत भी अजीतसिंह के पास आया। उसने कुछ धन दिया और यह भी कहा कि यदि महाराजा घेरा उठाने के लिए कुछ और धन चाहता है तो इन्द्रसिंह कुछ दिन उपरान्त दे देगा। इन्द्रसिंह, ने

---

११०. जोधपुर खरीता ७/८ रा. पु. बी. ५ सितम्बर (भाद्रपद सुदी १२); का लिखा जयसिंह को अजीतसिंह का पत्र जयपुर अखबारात. (नं. १३७, रा. पु. बी.) के अनुसार १६ जून, सन् १७०६ ई० (२१ रबीउस्सानी, ११२२ हि०) को बादशाह को पता चला कि सम्भवत: फिरोज जंग राजाओं को सहायता देने के लिये तैयार है, इसी कारण वह अजमेर नहीं गया है। एक राजस्थानी. पत्र नं. १४३१, रा. पु. बीं.. १६ जून आषाढ़ बदी ५, छैलदास का पत्र (जयसिंह को) में लिखा है कि फिरोज जंग ने असद खाँ को एक पत्र लिखकर यह सूचित किया है कि दोनों राजा आज्ञाकारी हैं और उन्होंने थाना उठा लिया है अत: उसे (फीरोज जंग) को अजमेर न भेजा जाय, अन्यथा अजीतसिंह व जयसिंह को सन्देह होगा।

१११. जोधपुर खरीता ७/८, रा. पु. बी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, ५ सितम्बर (भाद्रपद सुदी १३); जोधपुर खरीता.७/५, रा. पु. बी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, २६ सितम्बर (आश्विन सुदी ७)।

अजीतसिंह को सहायता देने का वचन दिया और अपने पुत्र को भी उसके साथ भेज दिया।[११२]

मार्ग से ही अजीतसिंह ने हिम्मतसिंह के नेतृत्व में दो हज़ार सवार रामपुरा भेजे। उन्होंने कई गाँव लूटे, परन्तु अन्त में वहाँ के अधिकारी रज़ा मुस्लिम ख़ाँ ने उन्हें परास्त करके भगा दिया। बादशाह को यह समाचार, ४ दिसम्बर के (१२ शव्वाल) को मिला।[११३]

अजीतसिंह ने मारोठ को भी घेरा। वहाँ के अधिकारी अधिक समय तक उसका सामना न कर सके और अन्त में मेड़तिया कल्याणसिंह रार्जसिहोत के माध्यम से १६ अप्रेल सन् १७१० ई० (वैशाख बदि १४, संवत् १७६७) को शान्ति स्थापित हुई और मारोठ पर अजीतसिंह का अधिकार मान लिया गया। महाराजा ने भण्डारी विजयराज को वहाँ का हाकिम नियुक्त किया।[११४]

सम्भवतः यहीं से अजीतसिंह ने भण्डारी पोमसी को कुछ सैनिकों के साथ देवगाँव (ज़िला अजमेर) पर अधिकार करने के लिए भेजा। वह २८ जुलाई (श्रावण सुदि १४) को वहाँ पहुँचा और उसने वहाँ के अधिकारी नाहर ख़ाँ से गढ़ी ख़ाली करने के लिए कहा। नाहर ख़ाँ ने उत्तर दिया कि मुझे दुर्गादास राठौड़ ने यहाँ का अधिकार सौंपा था, इसलिए उसकी आज्ञा के बिना मैं यहाँ से नहीं हटूँगा। इसके बदले में मुझे जो कुछ कहा जाय मैं करने के लिए तैयार हूँ। अन्त में सन्धि हुई जिसके अनुसार नाहर ख़ाँ ने पन्द्रह हज़ार रुपया पेशकश देना तथा अपने बेटे को अजीतसिंह की सेवा में भेजना स्वीकार किया।[११५]

इस प्रकार मार्ग में कई स्थानों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद अजीतसिंह साँभर पहुँचा और जयसिंह से मिला। इसी बीच बादशाह, के साथ सुलह, के विषय में बातचीत होती रही और पूर्ण आश्वस्त होकर अजीतसिंह और जयसिंह ने एक साथ बादशाह, के पास जाने के लिए सांभर से प्रस्थान किया।[११६]

(घ) द्वितीय सन्धि (१७०९–१२ ई.)

कामबख्श की स्वातन्त्र्य घोषणा का समाचार सुनकर बादशाद बहादुरशाह को अजीतसिंह व जयसिंह की समस्या का समाधान किए बिना ही दक्षिण जाना पड़ गया था। नर्मदा नदी के निकट तक साथ आने के बाद जब ये दानों राजा बिना उसकी अनुमति लिए शाही शिविर से भाग गए, तब भी दक्षिण की समस्या की

---

११२. जोधपुर खरीता ७/१२, रा. पु. बी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, २१ जनवरी सन् १७१० ई० (माधव सुदी १० संवत् १७६६); जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग २, खंड४, १८०-१; अखबारात, लन्दन संग्रह, भाग १, ५८ व ६८; अजीतोदय. सर्ग १९, श्लोक २०-५; राजरूपक. ४४५-६; टॉड. भाग २, ६१; रेउ. भाग. १, ३०० ।

११३. जयपुर अखबारात, नं. १२५८, रा. पु बी. ।

११४. ख्यात. भाग २, १५५; मूंदियाड. २४५; अजितोदय. सर्ग १९, श्लोक २७-८; कूर्म्मवंस विलास १८९ ब; राजरूपक. ४५१; दानेश्वर. २३१; राठोड़ा. ५६; रेउ. भाग १, ३०० ।

११५. ख्यात. भाग २, १५७; मुनी. ८८-९; दानेश्वर. २३०; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५९-६० ।

११६. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ६६ ।

गम्भीरता को देखते हुए बहादुरशाह उनके विरुद्ध सेना न भेज सका। बादशाह के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद जोधपुर व आमेर में नियुक्त शाही कर्मचारी वहाँ अपना अधिकार स्थाई न रख सके और अजीतसिंह और जयसिंह का विद्रोह निरन्तर बना रहा। एसी परिस्थिति में ४ जनवरी, सन् १७०९ ई. को जब बहादुरशाह के अन्तिम प्रतिद्वन्द्वी कामबख्श की मृत्यु हो गई[११७] तो उसने तुरन्त उत्तर भारत लौटकर अजीतसिंह व जयसिंह की समस्या को सुलझाने का निर्णय किया। दक्षिण में यद्यपि मरहठों की समस्या गम्भीर हो रही थी, परन्तु उत्तर-भारत में दो प्रबल राजपूत शासकों का विद्रोह होना अधिक गम्भीर समझकर उसने दक्षिण में आवश्यक अधिकारियों को नियुक्त किया और १८ जुलाई को औरंगाबाद से उत्तर-भारत के लिए प्रस्थान किया। १५ दिसम्बर को नर्मदा पार करके वह माण्डू व नालचा के मार्ग से आगे बढ़ा और ९ जनवरी, सन् १७१० ई. को दीपालपुर पहुँचा। तत्पश्चात् कलियादह, मुकुन्ददर्रा, कालीसिन्ध तथा लोकोरी से होते हुए वह ५ मई को टोंक पहुँचा और वहाँ से दन्दवा सराय गया जो अजमेर से केवल तीस कोस दूर थी।[११८]

बहादुरशाह के अजमेर के इतने निकट पहुँचने का समाचार सुनकर अजीतसिंह को घबराहट हुई। उस समय उनकी आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण[११९] सेना इकट्ठा करना भी कठिन था। विरोध से कोई लाभ न देखकर उन्होंने समझौते की नीति अपनाने का निश्चय किया। फलतः कामबख्श पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह ने दो सौ मुहरें तथा दो हज़ार रुपया भेजा जो सोमवार, १५ अगस्त, सन् १७०९ ई. (१९ जमादिउस्सानी) को बादशाह को मिला। जयसिंह ने भी इतनी ही धन राशि बादशाह को भेजी थी। दोनों राजाओं ने अजमेर व अहमदाबाद के फ़ौजदार फ़ीरोज़ जंग को भी लिखा कि वे बादशाह से क्षमा चाहते हैं। अजीतसिंह के वकील गुलाबराय तथा जगजीवनदास शनिवार, ८ अप्रेल (१९ सफ़र) को चम्बल नदी के किनारे बादशाह से मिले। उनके साथ ही जयसिंह के वकील भी थे। दूसरे दिन इन लोगों ने अपने-अपने राजाओं के प्रार्थना-पत्र बहादुरशाह के समक्ष रक्खे, जिनमें अजीतसिंह तथा जयसिंह दोनों ने ही अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी थी। बादशाह ने इन दूतों को एक-एक खिलअत दी।

---

११७. बहादुरशाह १९६।

११८. इरविन भाग १,७१।

११९. २१ अप्रैल सन् १७०९ ई० (२१ सफर, ११२१ हि०) को बादशाह को समाचार मिला कि राणा अमरसिंह ने एक लाख रुपया तथा पाँच घोड़े अजीतसिंह को दिये हैं। ७ अक्तूबर (१३ शाबान) को पता चला कि जोधपुर के साहूकार. अजीतसिंह से दो लाख रुपया माँग रहे हैं और १२ जनवरी सन् १७१० ई० (२२ जिल्काद) को सूचना मिली कि अजीतसिंह ने अपने और जयसिंह के आदमी सांभर भेजे हैं जो एक रुपये एक बार नमक के थैले बेचकर धन वसूल कर रहे हैं। (जयपुर अखबारात; नं० १९१०, १२१६, १२८०, रा. पु. बी.)।

२३ अप्रेल (५ रबीउलअव्वल को खोर नामक स्थान पर अजीतसिंह की एक अर्जी पुन: आई जो ख़ानेख़ाना के द्वारा बादशाह के सम्मुख रक्खी गई।[१२०]

बादशाह ने मंगलवार, १४ मार्च, सन् १७१० ई. (२४ मुहर्रम, ११२२ हि०) को नाहर ख़ाँ को सांभर भेजा था और यह आदेश दिया था कि वह अजीतसिंह और जयसिंह को मुग़ल-सम्राट् की ओर से आश्वस्त करके दरबार में आए। नाहर ख़ाँ और यार मुहम्मद क़ोल शाही आज्ञानुसार दोनों राजाओं से मिले और अजीतसिंह के वकील भण्डारी खींवसी तथा जयसिंह के वकील भिखारीदास को लेकर लौटे। १० मई (२२ रबीउलअव्वल) को दन्दवा सराय में शाहज़ादा अज़ीमुश्शान की मध्यस्थता से अजीतसिंह व जयसिंह के वकील जब बादशाह से मिले और उन्होंने राजाओं के प्रार्थना-पत्र उसके सम्मुख रक्खे तो उसने इन दोनों राजपूत शासकों के अपराध क्षमा कर दिए और उनके प्रतिनिधियों को ख़िलअतें दी[१२१] सम्भवत: इसका कारण यह था कि उत्तर पश्चिम सीमा में इस बीच एक गम्भीर समस्या उठ खड़ी हुई थी और २३ अप्रेल को बादशाह को यह समाचार मिल चुका था कि लाहोर व सरहिन्द में सिक्खों ने विद्रोह कर दिया है।[१२२]

राजाओं के वकीलों ने बादशाह से अजीतसिंह के लिए अहमदाबाद तथा जयसिंह के लिए मालवा की सूबेदारी माँगी। बहादुरशाह के मैत्री पूर्ण रुख़ को देखकर उन्होंने दोनों राजाओं को भी दरबार में आने के लिए लिखा।[१२३]

१७ मई (२९ रबीउलअव्वल) को मुनीम ख़ाँ की प्रार्थना पर उसके बड़े लड़के बख़्शिउलमुल्क महावत ख़ाँ को राजाओं को लाने के लिए विदा किया गया, और उसे यह आदेश दिया गया कि उनके पास पहुँच कर उन्हें समझाए कि बादशाह से मिलने में किसी प्रकार का भय नहीं है। कुछ ही दिन बाद मुनीम ख़ाँ ने बहादुरशाह

---

१२०. जयपुर अख़बारात; बहादुरशाह, वर्ष ३, ७२; वर्ष ४, ५० व ६७; अखबारात, लन्दन-संग्रह, भाग १, १५, ३०, ४५. ५० व १५४; जयपुर अखबारात, नं. १३०४, रा. पु. बी. राजस्थानी पत्र, नं. ३६१, रा. पु. बी.; कामवर. ३३३।

ख्यात. (भाग २,१५५); मूंदियाड़ (२४४) दानेश्वर (२३०); राठोड़ां (५५); कूर्म्मवंसविलास (१८९ ब) में भी लिखा है कि अजीतसिंह ने भंडारी रवीवंसी तथा जयसिंह ने भिखारीदास को बादशाह के पास भेजा था।

१२१. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ३३; कामवर ३४६ व ३४७; ख्यात भाग २, १५५; मूंदियाड़ २४४-५; दानेश्वर २३०; राठोड़ां ५५ व ५६; इरविन भाग १, ७२।

राजस्थानी ख्यातों में लिखा है कि इसी समय भंडारी खींवमी ने अजीतसिंह के लिये काबुल के सूबे में नियुक्ति स्वीकार कर ली थी और परवाना लेकर लौट आया। परन्तु अजीतसिंह को यह स्वीकार नहीं हुआ और उसने खींवसी को पुन; भेजा। तब उसने बादशाह से प्रार्थना करके यह नियुक्ति रद्द करवाई।

१२२. बहादुरशाह २२१।

१२३. वकील रिपोर्टस राजस्थानी, नं. १५, १६ व २६, रा; पु. बी।

को यह सूचना दी कि उसके पुत्र ने गंगवाना नामक स्थान पर राजाओं से मिलकर उन्हें १० जून को बादशाह से मिलने के लिए राज़ी कर लिया है।[१२४]

कुछ ही दिन बाद बहादुशाह को यह समाचार मिला कि सरहिन्द का फौजदार वजीर खाँ ११ मई को युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया है।[१२५] इससे बहादुरशाह उत्तर-पश्चिमी सुरक्षा के लिये विशेष चिन्तित हो उठा और उसने शीघ्रातिशीघ्र राजपूतों की समस्या को सुलझाकर स्वयं उस ओर जाने का निश्चय किया। यह परिस्थिति अजीतसिंह तथा जयसिंह के लिये बहुत हितकर हुई। बादशाह की इस विवशता का उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया और निम्नलिखित मांगें अपने वकीलों के द्वारा बादशाह के सम्मुख रखवाईं :

(१) अजीतसिंह और जयसिंह बादशाह की सवारी के समय सेवा में उपस्थित होंगे।

(२) बादशाह से मिलने के उपरान्त वे तत्काल अपने राज्यों को लौट जायेंगे।

(३) राजाओं को ६ माह का अवकाश दिया जायेगा, ताकि वे अपने राज्यों का प्रबन्ध कर सकें।

(४) छः माह उपरान्त उन्हें जहां भी नियुक्त किया जायेगा उसे वे स्वीकार करेंगे।

(५) बादशाह से भेंट के समय शाहजादा अजीमुश्शान उनके साथ रहेगा।

अपने शासनारम्भ में बहादुरशाह ने अजीतसिंह और जयसिंह को आतंकित करके उनकी विद्रोह करने की शक्ति को कुचलना चाहा था; परन्तु धीरे-धीरे उसे यह स्पष्ट हो गया था कि अजीतसिंह और जयसिंह को इस प्रकार अधीन रखना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही सिक्खों के विद्रोह के कारण स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी थी कि उसने अजीतसिंह और जयसिंह की उक्त शर्तों को स्वीकार करना ही उचित समझा।[१२६]

मई के तीसरे सप्ताह (रबीउस्सानी के प्रथम सप्ताह) में यार मुहम्मद खां और नाहर खां को अजीतसिंह व जयसिंह के पास इस आशय का फरमान देकर भेजा गया कि उनका राज्य उन्हें वापस दिया जाता है और वे तुरन्त दरबार में उपस्थित

---

१२४. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष–४, ८८; कामवर ३४८; इरविन भाग १, ७२।

१२५. बहादुरशाह २२१।

१२६. रोजनामचा १२१–२; मआसिर १७४; इरादत खां ६१; अहवाल ३२ ब ३३ अ; सतीशचन्द्र २२१।

अजित चरित्र (सर्ग १०, श्लोक १३–६) में भी लगभग इसी प्रकार की शर्तों का उल्लेख है।

हों। दोनों राजदूतों को आदेश मिला कि वे दोनों राजाओं को समझा-बुझाकर दरबार में लायें। इनके साथ ही राजाओं के वकीलों को भी विदा किया गया। इसी समय महाब्रत खां, छत्रसाल तथा राजा गोपालसिंह को यह आज्ञा दी गई कि जब दोनों राजा एक मजिल की दूरी पर रह जाय तो वे आगे जाकर उनका स्वागत करें और उन्हें तसल्ली दिलाकर बादशाह की सेवा में लायें।[१२७]

बार-बार आश्वासन पाकर अजीतसिंह तथा जयसिंह ने बादशाह से मिलने का निश्चय किया। रविवार, २८ मई (१० रबीउस्सानी) को बहादुरशाह को यह समाचार मिला कि राजाओं ने दरबार में आने के उद्देश्य से सांभर से मनोहरपुर की ओर कूच किया है।[१२८] रविवार, ११ जून सन् १७१० ई० (२४ रबीउस्सानी ११२२ हि०) को जब बादशाह अजमेर के निकट देवराई नामक स्थान पर ठहरा हुआ था, तब दोनों राजा आकर उससे मिले। शाही आज्ञानुसार महाबत खां ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उसी दिन वे अजीमुश्शान के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित किये गये। इस अवसर पर अजीतसिंह ने दो सौ मुहरें और दो हजार रुपये भेंट किये। जयसिंह ने भी इसी प्रकार भेंट की।[१२९] शनिवार, १७ जून (३० रबीउस्सानी) को अजीतसिंह को चार हजार जात चाह हजार सवार का मनसब मिला।[१३०] बहादुरशाह ने अजीतसिंह व जयसिंह दोनों को ही तत्काल वतन लौट जाने की अनुमति दी। विदा होते समय अजीतसिंह को खिलअत, बड़ी

---

१२७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ८६; कामवर ३४८।

रा. पु. बी. में एक फरमान (नं. २०) है जो १६ मई (१ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के नाम लिखा गया है जिसमें लिखा है कि शाही सेवा करने की शर्त पर अजीतसिंह को जोधपुर दिया गया है।

१२८. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ६६।

१२९. कामवर ३४८; रोजनामचा १२२; इरादत खाँ ६१; ख्यात भाग २, १५५; मूंदियाड़ २४५; कूर्मवंसविलास १८६ ब; इरविन भाग १, ७३; ओझाभाग ४, खंड २, ५४८।

इस भेंट के समय दोनों राजपूत शासक बादशाह की ओर पूर्णतया आश्वस्त नहीं थे; वे पूरी सैनिक तयारी के साथ बादशाह से मिलने आये थे। रोजनामचा में लिखा है कि राजाओं की बारह हजार सेना तैयार थी और एक हजार इनके साथ उपस्थित थी। कामवर खां, जो इस समय शाहजादा रफीउश्शान के साथ था, लिखता है कि मैंने स्वयं देखा कि सारा जंगल राजपूतों से भरा हुआ है। हजारों ऊंट जंगलों व पहाड़ों में खड़े हैं और प्रत्येक ऊंट पर दो-तीन व्यक्ति सशस्त्र बैठे हैं। जबकि बादशाह के शिविर में उसके चार पुत्रों तथा प्रमुख सरदारों के अतिरिक्त और कोई भी नहीं था।

१३०. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह; वर्ष ४, १११-२।

इस अखबार में लिखा है कि अजीतसिंह के पुत्र तख्तसिंह को एक हजार जात पांच सौ सवार, समरसिंह को एक हजार जात दो सौ सवार और जैतसिंह को सात सो जात दो सौ सवार का मनसब दिया गया था। परन्तु इस नाम के अजीतसिंह के कोई पुत्र नहीं थे। सम्भवतः बख्तसिंह को ही तख्तसिंह लिखा गया है।

तलवार, जड़ाऊ जमधर, हाथी तथा ईराकी घोड़े उपहार स्वरूप दिया। जयसिंह को भी इसी प्रकार के उपहार मिले।[131]

जोधपुर के राठौड़ों तथा मुगल सम्राट् के बीच जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जो संघर्ष आरम्भ हुआ था और जोधपुर में निरन्तर अस्थाई स्थिति बनी हुई थी, उसका अब अन्त हो गया। अजीतसिंह ने प्रथम बार मुगल बादशाह से जोधपुर राज्य का अधिकार प्राप्त किया। अजीतसिंह और जयसिंह एक साथ पुष्कर गये, वहाँ स्नान करने के उपरान्त वे अपने-अपने राज्यों को चले गये। अजीतसिंह जुलाई, सन् १७१० ई० को जोधपुर पहुंचा।[132]

अगले कुछ महीनों में अजीतसिंह जोधपुर में ही रहकर वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करने में संलग्न रहा। बादशाह के साथ उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। बादशाह ने उसके बड़े पुत्र अभयसिंह को धोलका का परगना दिया।[133] अजीतसिंह को उसने अपनी सन्धि की शर्तों के अनुसार कहीं भी नियुक्त नहीं किया।

बहादुरशाह इस बीच सिक्खों के विद्रोह को दबाने में व्यस्त रहा। शाही अधिकारियों द्वारा बार-बार प्रयत्न किये जाने पर भी सिक्खों के गुरु बन्दा को पकड़ा न जा सका था। वहाँ की समस्या गम्भीर रूप लेती जा रही थी, अतः वहां और सैन्य-शक्ति की आवश्यकता थी। अतः जैसे ही अजीतसिंह का छः महीने का अवकाश-काल समाप्त हो गया, बहादुरशाह ने उसे सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने का आदेश भेजा। ऐसी ही आज्ञा जयसिंह को भी दी गई और इन दोनों को बुलाने के लिये तुराब अली को भेजा गया। परन्तु न तो अजीतसिंह ने उसकी आज्ञा का पालन किया और न उसके मित्र जयसिंह ने २१ मार्च; सन् १७११ ई० (१३ सफर,

---

१३१. कामवर ३२८; खफी खां भाग २, ६६२; इरविन भाग १, ७३; ओझा भाग ४, खंड २, ५४८; पूर्व १४८;। उमराए १०५ तथा फारूकी २४२–३ राजाओं का हाथ बांधे हुये बादशाह से मिलना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है। राजा इस समय ससम्मान बादशाह से मिले थे।

राजपूतों के साथ इस संधि में अजीमउश-शान का बड़ा हाथ था इरादत खां (६०) का मत है कि सम्भवतः शाहजादे ने राजपूतों का पक्ष इस विचार से लिया था कि वे भविष्य में जब उसके पिता की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार—युद्ध में उसे सहायता दें।

अजितोदय (सर्ग १९, श्लोक २९–३७) में अन्य स्थानों की भांति यहाँ भी बादशाह की सेना से युद्ध व महाराजा अजीतसिंह की विजय लिखी है। इस पराजय को सुनकर खानेखाना ने बादशाह को संधि करने की सलाह दी जिसे बादशाह ने स्वीकार कर लिया। तब खानेखाना जाकर अजीतसिंह को लेकर आया। अजीमउशशान तथा बादशाह ने उसका स्वागत किया। परन्तु यह विवरण केवल पक्षपात पूर्ण है।

१३२. कूर्मवंशविलास. १८६ ब; राजरूपक. ४४९; अजित चरित्र सर्ग १०, श्लोक २०; टॉड. भाग २, ६१; इरविन. भाग १, ७३; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४६।

१३३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ४१८।

११२३ हि.) को अब्दुलगनी बेग व अजीज बेग को राजाओं को बुलाने के फरमान देकर पुनः भेजा गया।[134]

इसी बीच फरवरी, सन् १७११ ई० में मुनीम खां की मृत्यु हो गई।[135] इससे अजीतसिंह व जयसिंह के समर्थक अजीमुश्शान तथा जुल्फिकार खां का प्रभाव दरबार में बढ़ गया था, और इन दोनों मित्रों को यह आशा हुई कि सम्भवतः अब उन्हें अहमदाबाद व मालवा के सूबे प्राप्त हो जायेंगे। अजीमुश्शान ने उनके पास बार-बार संदेश भेजा कि उनके स्वयं दरबार में उपस्थित होने पर ही उनकी मांगे पूरी हो सकतीं हैं। एक निशान द्वारा उसने उन्हें साधौरा पहुंचने का आदेश दिया और उनके लिये सिरोपाव भी भेजा। दरबार में उपस्थित अजीतसिंह और जयसिंह के वकीलों द्वारा भी उसने कहलाया कि राजाओं को यथाशीघ्र शाही सेवा में उपस्थित हो जाना चाहिये। शेख कुदरतुल्ला[136] ने उन्हें इसी आशय के पत्र लिखे और वकीलों ने भी उन्हें बार-बार साधौरा जाकर शाही सेवा में उपस्थित होने की सलाह दी।[137] फलस्वरूप अजीतसिंह व जयसिंह ने दरबार में जाने का निश्चय किया और यह भी तय किया कि इस यात्रा में वे साथ-साथ रहेंगे। जयसिंह आम्बेर से निकलकर मनोहरपुर के निकट अजीतसिंह की प्रतीक्षा में रुका रहा। उसने अजीतसिंह को बार-बार शीघ्र आने के लिये लिखा और अपने वकीलों को भी लिखा कि जब अजीतसिंह आ जायेगा तभी वे दोनों एक साथ शाही दरबार में पहुंचने के लिये यात्रारम्भ करेंगे। अजीतसिंह राजगढ़ के केसरसिंह की कन्या के साथ विवाह करने के लिये राजगढ़ गया हुआ था, और विवाह का कार्य समाप्त होते ही मई के महीने में जयसिंह के पास पहुंच गया। तब दोनो ने यात्रारम्भ की।[138]

रविवार, ३ जून (२७ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह और जयसिंह नाहरखेरा पहुँचे और १० जून (५ जमादिउलअव्वल) को नरनौल पहुचे। इन्हें देखकर नरनौल की प्रजा भय के कारण भागने लगी। तब दोनों राजाओं ने लोगों को दिलासा दिया और कहा कि हम शाही सेवक हैं और बादशाह के पास जा रहे हैं, अतः हमसे डरने की कोई बात नहीं है। बहादुरशाह ब्यास नदी पार करने के बाद जब निकट ही रुका हुआ था, तब २७ जून (२२ जमादिउलअव्वल) को उसे यह समाचार मिला

---

१३४. वही, १३ व १५७।

१३५. बहादुरशाह २३०।

१३६. शेख कुदरतुल्लमा शाहजादा अजीमुश्शान का कृपा पात्र था और इन दिनो उसका महत्व भी बढ़ गया था। पत्रों में इसे शाह कुदरतुल्ला लिखा गया है।

१३७. वकील रिपोर्ट्स, नं० ८१; ८२ व ९०, रा. पु. बी; राजस्थानी पत्र, नं. १९५ व १९८, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान, तिथिहीन; ५२७ व ५४५, रा. पु. बी; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, ७०७, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारान; नं. १७९१. रा. पु. बी.।

१३८. मुतफर्रिक महाराजगान, नं, ६४७. ६४९, ६५५, ६६४, ६६८, ६८०, २४३०, २४७७, रा. पु. बी.; खरीता, जोधपुर, पुरालेखागार. से प्राप्त फाइल नं. १, बुक नं, १, ४ व ५।

कि अजीतसिंह व जयसिंह नारनौल पहुँच गये हैं। शनिवार, २८ जुलाई (२३ जमादि-उस्सानी) को जब बादशाह लाहौर के निकट पहुँचा, राजाओं के वकीलों ने यह सूचना दी कि अजीतसिंह नारनौल से चलकर रविवार, १५ जुलाई (१० जमादि-उस्सानी) को दिल्ली से बारह कोस की दूरी पर पहुंच गये हैं। कुछ ही दिन उपरान्त बहादुरशाह ने अजीतसिंह और जयसिंह के पास यह आदेश भेजा कि वे यथाशीघ्र दाबर[१३९] की ओर जायें।[१४०] शाही आज्ञानुसार राजपूत सेनाएँ आगे बढ़ी। सिक्खों का गुरू बन्दा इन दिनों अपने सहयोगियो के साथ कानपुर की पहाड़ियों में उपद्रव कर रहा था। उसे जब राजपूतों की इस विशाल सेना के आने का समाचार मिला तो वह कानपुर की पहाड़ियों को छोड़कर ससैन्य रामपुर की पहाड़ियों में चला गया और वहां लूटमार करने लगा। इधर अजीतसिंह और जयसिंह ६ अक्तूबर (५ रमजान) को साधौरा जा पहुंचे। यहां से उन दोनों ने पांच-पांच हजार रुपया बादशाह को भेंट करने के लिये लाहौर भेजा।[१४१]

राजस्थान से साधौरा तक के मार्ग में राजाओं ने निरन्तर बख्शिउलमुल्क महावत खां और शेख कुदरतुल्ला आदि शाही अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया और अहमदाबाद उन्होंने लिखा कि उनके पास उनके मनसब से अधिक सेना है. फलतः वे उसका व्यय उठाने में असमर्थ हैं। इसलिये जब तक अहमदाबाद व मालवा की सूबेदारी उन्हें नहीं दी जाती, अस्थाई रूप से इन प्रान्तों की फौजदारी ही दे दी जाय।[१४२] परन्तु अजीतसिंह व जयसिंह की इच्छाएं पूर्ण नहीं हुई। बहादुरशाह ने अजीतसिंह को उसका इच्छित सूबा नहीं दिया, और शनिवार, १०

---

१३९. दाबर नामक स्थान साधौरा से ७-८ कोस दूर है। सिक्खों के गुरु बन्दा का सैनिक केन्द्र यहीं था। (इरविन भाग १, १०८ व १०९)

१४०. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, २०३, २५१, ३५७।

बहादुरशाह (१७३) में लिखा है कि दोनों राजा २७ जून को रावी नदी के किनारे से हुआ नामक स्थान पर बहादुरशाह से मिले थे और २ जुलाई को रावी नदी पार करते समय बादशाह ने उन्हें साधौरा जाने की आज्ञा दी। परन्तु यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जून-जुलाई के महीनों में ये दोनों राजा दिल्ली के निकट थे; इसका स्पष्ट उल्लेख अखबारात में मिलता है। साथ ही राजाओं द्वारा लिखे गये पत्रों में अथवा उनको लिखे गये पत्रों में सधौरा में नियुक्त किये जाने का उल्लेख पहले ही बार बार मिलता है। (मुतफर्रिक महाराजगान, ६८७, ६९३, ७१८, ७४८, २५७६, २५७७, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारन. १८२३, रा. पु बी.)

१४१. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, ३९० व ४०६; मुतफर्रिक अहलकारान, नं. १८२२, रा. पु. बी; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन नं. ७२, रा. पु बी। विभिन्न राजस्थानी ग्रन्थों में भी लिखा है कि अजीतसिंह व जयसिंह नारनौल, बदली, कुरुक्षेत्र होते हुये सिक्खों के विरुद्ध साधौरा गये थे। (राजरूपक ४५२; कूर्मवंशविलास १९० अ; अजितोदय. सर्ग १६, श्लोक ६९-७१ व गुटका ३१० ब)

१४२. मुतफर्रिक अहलकारान, नं १८२२, रा. पु. बी. मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ३, १२ व १०१२, रा. पु. बी.।

नवम्बर (१० शव्वाल) को चार हजार जात चार हजार सवार का मनसब देकर सोरठ की फौजदारी प्रदान की। अजीतसिंह की ही भांति जयसिंह को भी मालवा न देकर अहमदाबाद खोरा की फौजदारी दी गई।[१४३]

अजीतसिंह ने सिक्खों के विरुद्ध अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। उसने अपने एक हजार सैनिक पहाड़ियों में गश्त लगाने के लिये नियुक्त किये ताकि वे हर समय विद्रोहियों का पता लगाते रहें। साथ ही अपने बाख्शियों को हर समय तैयार रहने की आज्ञा दी। यह समाचार पाकर बन्दा ने अजीतसिंह को यह सन्देश भेजा कि चूंकि अजीतसिंह ने सिक्खों के विरुद्ध अभियान में भाग लिया है और पीछा करते हुए उनके प्रदेश में प्रवेश किया है अतः वह (बन्दा) भी अपना बदला लेने के लिये शीघ्र ही राजपूताना पहुंच जायेगा। परन्तु अजीतसिंह ने इसकी कुछ चिन्ता नहीं की, और उसके दूत को मरवा दिया। उसने यह निश्चय किया कि वह जल्दी ही बन्दा को कैद कर लेगा अथवा कत्ल कर लेगा। उसने अपनी सेना में यह घोषणा करवा दी कि उसके सैनिक जहां भी गुरु के साथियों को पायें, उसे तत्काल कत्ल कर दें। सिक्खों के विरुद्ध किये गये सभी कार्यों में जयसिंह अजीतसिंह के साथ-साथ रहा।[१४४]

इन्हीं दिनों अजीतसिंह व जयसिंह बादशाह की आज्ञा से नाहन नामक पहाड़ी राज्य की ओर गये और वहां के उपद्रवी शासक भूप प्रकाश का दमन किया।[१४५] कुछ दिनों बाद भूपप्रकाश कैद कर लिया गया। बहादुरशाह ने उसे सलेमगढ़ में रखने की आज्ञा दी। बन्दी-गृह से उसने राजाओं के पास भेंट भेजी और यह प्रार्थना की कि वे बादशाह से कहकर उसे मुक्त करा दें। परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया और उसे सलाह दी कि वह नाहन में उपस्थित अपने कर्मचारियों को यह लिखे कि वे सिक्खों के गुरु को पकड़ने अथवा मारने का प्रयत्न करे। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर बहादुरशाह स्वयं ही उसे मुक्त कर देगा।[१४६]

अजीतसिंह सोरठ की फौजदारी पाकर सन्तुष्ट नहीं था, अतः वह बादशाह से निरन्तर अपने वतन वापस जाने की अनुमति मांग रहा था। जयसिंह की स्थिति भी इसी प्रकार की थी। इनकी प्रार्थनाओं से तंग आकर बहादुरशाह ने उन्हें आदेश दिया कि वे साधौरा में अपनी अपनी सेनाएं छोड़कर अपने वतन चले जायें। जनवरी, सन् १७१२ ई० में अजीतसिंह और जयसिंह ने एक साथ राजस्थान की ओर प्रस्थान

---

१४३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, ४४६; रा. पु. बी. में बहादुरशाह का एक तिथिहीन, फरमान नं. ५; कूर्मवंसविलास. १६० ब.।
कामवर (३७२) ने इस नियुक्ति की तिथि २३ जनवरी सन् १७१२ ई० (२५ जिल्हिज) स्वीकार की है। परन्तु अखबारात की तिथि को ही प्रमाणिक मानना उचित है।

१४४. जयपुर अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष ५, ४८१-२।

१४५. [illegible] ४५०; टॉड भाग २, ६५; ओझा भाग ४; खंड २, ५५०; मूल २१७-८।

१४६. जयपुर अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष ५, ४०४ व ४८२।

किया।[१४७] कुछ ही दिन उपरान्त १८ फरवरी को लाहौर में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।[१४८]

इस प्रकार बहादुरशाह के राज्यत्व-काल के प्रारम्भिक कई वर्षों में अजीतसिंह तथा मुगल सम्राट् के बीच विरोध रहा। अन्तिम लगभग डेढ़ वर्ष में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध यद्यपि शान्तिपूर्ण था, परन्तु अजीतसिंह को उसका इच्छित सूबा गुजरात कभी न मिल सका। फलस्वरूप वह मन ही मन असन्तुष्ट रहा। इन वर्षों में अजीतसिंह ने आसपास के कई स्थानों पर अधिकार करके अथवा पेशकश वसूल करके अपनी शक्ति काफी बढ़ा ली थी। राजस्थान के दो प्रमुख राज्यों—उदयपुर व जयपुर—के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखकर उसने अपनी स्थिति को और भी सुदृढ़ कर लिया था।

---

१४७. रोजनामचा १२२; सतीशचन्द्र ३९; बहादुरशाह १७४।

१४८. बहादुरशाह १३४।

६

अजीतसिंह का चरमोत्कर्ष

(सन् १७१२ ई. से सन् १७१६ ई.)

(क) अजीतसिंह व जहाँदारशाह (सन् १७१२-३ ई०)

उत्तराधिकार की समस्या को युद्ध द्वारा सुलझाना मुगल राजनीति का एक अंग बन चुका था। बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार-युद्ध की पुनरावृत्ति हुई। फलस्वरूप साम्राज्य में अशान्त और अनिश्चित वातावरण फैल गया। अजीतसिंह के लिये यह स्वर्णिम अवसर था। पाँच वर्ष पूर्व एक बार ऐसी ही परिस्थिति में उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया था। अबकी बार भी उसने अपनी शक्ति बढ़ाने का पूरा प्रयास किया। जोधपुर राज्य के विभिन्न परगनों में नियुक्त शाही अधिकारियों का भगा कर उन पर अपना अधिकार करना और उनकी सुरक्षा के लिये अपने कर्मचारी नियुक्त करना, नये थाने स्थापित करना तथा शाही कर्मचारियों से पेशकश वसूल करना आरम्भ कर दिया। बघवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, रूपनगर और मालपुरा उसके अधिकार में आ गये।[1]

शीघ्र ही उसे समाचार मिला कि जहाँदारशाह ने जुल्फिकार खाँ की सहायता से अपने विरोधियों को हटाकर १६ मार्च, सन् १७१२ ई को गद्दी पर अधिकार कर लिया है।[2] तुरन्त उसने नये बादशाह को अपनी बधाई की अर्जदाश्त के साथ-साथ एक सौ अशर्फी और एक हजार रुपया भेंट स्वरूप भेजा ताकि आरम्भ से ही वह उसका कृपा-पात्र बन जाय। साथ ही गुजरात की सूबेदारी के लिये भी प्रार्थना की। उसकी अर्जदाश्त बुधवार, २८ मई (३ जमादिउलअव्वल, ११२४ हि.) को दरबार में पहुँची।[3] इधर जहाँदारशाह ने गद्दी पर बैठते ही अजीतसिंह और जयसिंह को उनके राज्य का वैध अधिकारी मान लिया था और २४ मई (१८ रबीउस्सानी) को उसने एक फरमान अजीतसिंह को भेजकर उसे यह सूचित किया कि उसे सात हजार

---

१. अजितोदय. सर्ग २९; श्लोक. ४-५; गुटका. ३१० ब ३११ ब; राजस्थानी. पत्र, सं. २३७. रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान. नं. १५२७ रा. पु. बी; रेउ भाग २, ३०४।

२. इरविन. भाग १, १८६।

३. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह. वर्ष १ १०५; मुतफर्रिक महलकारान, नं. १८०१, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक बपलकारान, तिथिहीन, नं. ११८, रा. पु. बी.।

घात सात हजार सवार का मनसब तथा महाराजा की पदवी दी गई है। साथ ही उसे हर प्रकार की सुविधाएं देने का आश्वासन भी दिया गया।[४]

जहाँदारशाह के सिंहासनारोहण से पूर्व ही २७ मार्च (२९ सफर) को पटना में उसके भाई अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया था। यह समाचार पाकर जहाँदारशाह ने अपने पुत्र ऐज्जुद्दीन को एक बड़ी सेना के साथ फर्रुखसियर के विरुद्ध जाने का आदेश दिया और २७ अप्रेल (१ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के पास यह आदेश भेजा कि वह शाहजादे की सेना में तुरन्त सम्मिलित हो जाय। इसी दिन उसने फखरुद्दीन खाँ को सांभर की फ़ौजदारी, अजमेर की दीवानी तथा मेड़ता की फौजदारी की अमीनी पर नियुक्त किया। अजीतसिंह के साथ-साथ आम्बेर के शासक जयसिंह को भी इसी प्रकार का आदेश भेजा गया।[५] यह समाचार पाकर अजीतसिंह ने सांभर जाकर जयसिंह से विचार-विमर्श करने का निश्चय किया। जयसिंह ने सांभर पहुँचकर उसे शीघ्र आने के लिये कई पत्र लिखे।[६] फलस्वरूप अजीतसिंह सांभर में जयसिंह से मिला और विचार-विमर्श किया। तदुपरान्त उसने शाहबेग नामक शाही दूत के साथ अपने वकील रघुनाथदास को इस आदेश के साथ दिल्ली भेजा कि वह बादशाह से महाराजा के लिये गुजरात की सूबेदारी प्राप्त करने का प्रयास करे। जयसिंह ने भी अपने वकील भिखारीदास के द्वारा मालवा के सूबे के लिये प्रार्थना करवाई।[७] अजीतसिंह तथा जयसिंह के विभिन्न शाही अधिकारियों तथा उनके वकीलों ने कई पत्र लिखे, जिनमें उनसे बार-बार सांभर से अधिकार हटाने का अनुरोध किया, और जहाँदारशाह ने बार-बार अपने दूत भेजकर उन्हें बुलाया।[८] परन्तु अजीतसिंह ने शाही सेवा के लिये जाना स्वीकार नहीं किया, न जयसिंह ही उधर गया। इन दोनों ने सांभर से अपना अधिकार भी नहीं हटाया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह गुजरात का अधिकार पाये बिना सांभर से हटना नहीं चाहता था, और साथ ही मुग़ल शाहज़ादों के गृह-कलह में भाग लेकर अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता था। अजीतसिंह की इस अवज्ञा पर जहाँदारशाह ने ध्यान नहीं दिया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि फर्रुखसियर इन दिनों तेजी के साथ दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। इस गम्भीर स्थिति में अजीतसिंह व जयसिंह से सम्बन्ध न बिगाड़ कर और

---

४. मुतफर्रिक अहलकारान, नं १८०१, रा. पु, बी. मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ६३८, रा. पु. बी.; फारसी पत्र, नं० १५२७, रा. पु. बी, मुतफर्रिक महाराजगान, नं २६४९, रा. पु. बी. फरमान नं. २६ रा. पु. बी।

५. जयपुर अखबारात. जहाँदारशाह, वर्ष १, ७६; वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं १४३, रा. पु. बी.।

६. जयपुर खरीता, फाइल नं. १, बुक नं. ९, जोधपुर रिकार्डस. ऑफिस, १२, १३, १५, १६ व १८।

७. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह. वर्ष १, २९८; राजस्थानी पत्र नं. ४२२, रा. पु. बी.।

८. राजस्थानी पत्र, नं, १९३, रा. पु बी.; फारसी पत्र, नं. १५२८ व १६२६, रा. पु. बी; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, नं. १६७, रा. पु. बी.।

उन्हें प्रलोभन देकर अपनी ओर बनाये रखने का प्रयास करना ही जहाँदारशाह ने उचित समझा। शुक्रवार, १४ नवम्बर (२५ शव्वाल) को अजीतसिंह को नौ हज़ार ज़ात नौ हज़ार सवार का मनसब तथा गुजरात की सूबेदारी दी गई, और जड़ाऊ सिरपेच, कंठा, खास खिलअत, पाँच थान, और एक हाथी भी पुरस्कार-स्वरूप दिया गया। जयसिंह के मनसब में भी वृद्धि करके उसे मालवा की सूबेदारी और उचित पुरस्कार दिया गया।[९]

उधर शाहज़ादा ऐज्ज़ुद्दीन फर्रुखसियर के विरुद्ध युद्ध में असफल रहा। उसकी असफलता का समाचार पाकर जहाँदारशाह ने २९ नवम्बर, (११ ज़िल्काद) को फर्रुख़सियर का दमन करने के लिये स्वयं प्रस्थान किया और लगभग चौदह मील चलकर बुधवार, ३ दिसम्बर (१५ ज़िल्काद) को तिलपत नामक स्थान से उसने अजीतसिंह को शीघ्र आने का आदेश भेजा।[१०] इधर अजीतसिंह और जयसिंह को अपनी इच्छित सूबेदारियों पर नियुक्त होने का समाचार साँभर में ही मिला था और समाचार पाते ही वे अपने-अपने राज्यों को लौट चुके थे। अजीतसिंह ने नवम्बर, सन् १७१२ ई. के अन्त (मार्गशीर्ष, संवत् १७६९) में जोधपुर से गुजरात के लिये प्रस्थान कर दिया था।[११] फलतः वह दरबार में स्वयं उपस्थित न हो सका। इस समय पुनः वही स्थिति हो गई थी जो औरंगजेब की मृत्यु के समय थी। जहाँदारशाह और फर्रुखसियर मुगल-सिंहासन के दो प्रतिस्पर्धी थे। अजीतसिंह ने पहले की ही भाँति इस बार भी एक का पक्ष लेकर दूसरे को अप्रसन्न करना उचित न समझा। बादशाह का बार-बार आदेश मिलने पर उसने भंडारी विजयराज के नेतृत्व में एक सेना तो भेजी, परन्तु उसे स्पष्ट आदेश दिया कि वह युद्ध में सक्रिय भाग न ले और, जो पक्ष विजयी होता दिखाई दे, सावधानीपूर्वक उसी की ओर हो जाय। परन्तु इस सेना के पहुँचने से पूर्व ही युद्ध का निर्णय हो चुका था। २२ दिसम्बर (१३ जिल्हिज) को जहाँदारशाह युद्ध-भूमि से भाग निकला था और ९ जनवरी, सन् १७१३ ई. (२२ ज़िल्हिज, ११२४ हि.) को फर्रुख़सियर को बादशाह घोषित कर दिया गया था।[१२]

---

९. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह, वर्ष १, ३०९; राजस्थानी, पत्र, नं. २४५, २६९, रा. पु. बी; रोजनामचा. १२२; गुटका. ३११ अ; राजरूपक. ४५४; टॉड भाग २, ६५।
मुतफर्रिक अहलकारान (नं. २२०३, रा. पु. बी.) में लिखा है कि अजीतसिंह के वकील गुलाबचन्द को मुतरा (?) की फौजदारी का परवाना भी दिया गया था।

१०. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह, वर्ष १, ३२५; इरविन. भाग १, २२२-३।
कामवर (३९२) ने लिखा है कि बादशाह ने २३ जनवरी (७ मुहर्रम) को राजाओं को बुलाने के लिये दूत भेजे थे, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँदारशाह तथा फर्रुखसियर के बीच युद्ध इससे पूर्व हो चुका था।

११. जयपुर अखबारात, नं. १८९२, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान तिथिहीन, नं. ५४, रा. पु. बी.; राजरूपक. ४५५।

१२. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १०३९, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारान तिथिहीन, नं. ४८ व ५४; रा. पु. बी. ख्यात. भाग २, १५६; मूंदियाड़. २४५; वानेंश्वर २३२; राठौड़ां. ९६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२१-३; इरविन. भाग १, २२३।

अजीतसिंह को जहाँदारशाह के पराजित होने का समाचार गुजरात पहुँचने से पूर्व ही मिल गया, अतः उसने अपने मित्र जयसिंह से पत्र-व्यवहार किया। दोनों का विचार था कि नये बादशाह की अनुमति पाये बिना आगे नहीं जाना चाहिये। फलतः अजीतसिंह जोधपुर वापस चला गया और जयसिंह मालवा न जाकर आम्बेर लौट गया।[१३]

इस प्रकार जहाँदारशाह के अल्पकालीन शासनकाल में अजीतसिंह ने आस-पास के कई स्थानों पर अधिकार करके अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया था। जयसिंह से उसकी घनिष्टता पूर्ववत् बनी रही। मुगल-सम्राट् ने भी उसका प्रभाव एवं समय की आवश्यकता को समझते हुए उसे उच्च मनसब एवं चिर-इच्छित गुजरात का सूबा दे दिया था। फलतः बादशाह से उसके सम्बन्ध अच्छे रहे, लेकिन गृह-युद्ध में उसने जहाँदारशाह को किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया और सदैव अवसर को देखकर लाभ उठाने के लिये ही प्रयत्नशील रहा।

(ख) फर्रुखसियर के साथ प्रारम्भिक सम्बन्ध (सन् १७१३-५ ई.)

मुगल-सिंहासन पर किसका अधिपत्य रहेगा, इससे अजीतसिंह की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ता था। फलस्वरूप जहाँदारशाह के बाद जब फर्रुखसियर बादशाह हुआ तो उसने उसके साथ अच्छे सम्बन्ध रखने का प्रयास किया और उसके पास बधाई का एक पत्र भेजा जो रविवार, १८, जनवरी, सन् १७१३ ई. (२ मुहर्रम, ११२५ हि.) को उम्दतुलमुल्क के द्वारा दरबार में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद भी अजीतसिंह के पत्र बादशाह के पास आते रहे, और उसने मुगल-सम्राट् को उपहार भी भेजे।[१४] फर्रुखसियर ने भी बुधवार, २५ फरवरी (१० सफ़र) को

---

१३. जयपुर खरीता, फाइल नं.१, बुक नं. ९, २३ व २७। रोजनामचा (१२३) में भी लिखा है कि अजीतसिंह गुजरात की ओर गया था, और जहाँदारशाह की पराजय का समाचार सुनकर वापस जोधपुर चला गया।

१४. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष १, २७।

सोमवार, २६ जनवरी (१० मुहर्रम) को अजीतसिंह द्वारा भेजे गये फल तथा बृहस्पतिवार, ५ फरवरी (२० मुहर्रम) को इसका पत्र दरबार से पहुँचा। सोमवार, ९ फरवरी (२४ मुहर्रम) को अजीतसिंह द्वारा भेजी गई अर्जदाश्त, एक सौ मुहर और एक हजार रुपया दरबार में बादशाह को भेंट किया गया। बृहस्पतिवार, २३ अप्रेल (८ रबीउस्सानी) को महाराजा द्वारा भेजा गया पेशकश, चार चीते और चार घोड़े फर्रुखसियर को नजर किये गये।

(जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष १. ४०, ६६, ७९; वर्ष २. खंड १, १७९)

यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह के पत्रों का विषय क्या था? वह सदैव गुजरात की सूबेदारी का अधिकार पाना चाहता था। सम्भव है कि उसने इसी विषय में प्रार्थना की हो। कामवर (३९४) ने मुहरें व रुपया भेट करने की तिथि ६ फरवरी (२१ मुहर्रम) स्वीकार की है, परन्तु इस विषय से अखबारात को ही प्रमाणिक मानना अधिक उचित है।

पाँच हजार जात, पाँच हजार सवार का मनसब और समय-समय पर विभिन्न पुरस्कार देकर अजीतसिंह को सन्तुष्ट रखने का प्रयास किया।[१५] परन्तु फर्रुखसियर सम्भवतः इतने से सन्तुष्ट न था और चाहता था कि अजीतसिंह स्वयं दरबार में उपस्थित हो। फलतः उसने अजीतसिंह को कई बार दरबार में बुलाया। शनिवार, १ अगस्त (२० रजब) को नाहर खाँ को अजीतसिंह के लिये कुछ जवाहरात और खास-खिलअत के साथ यह आदेश देकर भेजा कि वह महाराजा को साथ लेकर आये। ३ अगस्त (२४ रजब) को उसे बुलाने के लिये एक दूत को पुनः भेजा गया। इस बार अजीतसिंह के लिये बरसाती खिलअत भेजी गई।[१६] परन्तु बार-बार बुलाये जाने पर भी अजीतसिंह दरबार में नहीं गया। सम्भवतः उसे मुगल-सम्राट् पर विश्वास नहीं था। फर्रुखसियर ने जहाँदारशाह के वजीर जुल्फिकार खाँ को धोखा दिया। जब जुल्फिकार खाँ पहली बार बादशाह से मिला तो उसने उसके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया। परन्तु बाद में उसे धोखे से कैद करवा दिया था और फिर उसे मरवा डाला था। सम्भवतः इसी कारण अजीतसिंह को यह आशंका थी कि दरबार में जाने पर फर्रुखसियर उसके साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार न करे। जब बादशाह ने बार-बार दूत भेजकर उसे शाही दरबार में आने का आदेश दिया तो उसने यह प्रार्थना की कि उसे दरबार में आने से डर लगता है, अतः जोधपुर राज्य के समीप ही उसे कहीं भी नियुक्त कर दिया जाय। एक-दो वर्ष में जब वह बादशाह की ओर से आश्वस्त हो जायेगा तो स्वयं ही दरबार में आ जायेगा।[१७] इसके साथ ही उसने दरबार में उपस्थित अपने वकीलों के द्वारा बादशाह से गुजरात की सूबेदारी के लिये प्रार्थना भी करवाई। उसके मित्र जयसिंह ने भी बादशाह से मालवा की सूबेदारी देने का अनुरोध कराया था।[१८] इन्हीं दिनों

---

१५. जयपुर अखबारात, नं. २००४, रा. पु. बी.।
कामवर (३९५) ने मनसब मिलने की तिथि २ मार्च (१५ सफर) स्वीकार की है, परन्तु इसे ठीक नहीं माना जा सकता।
शनिवार; १८ अप्रेल (३ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह को एक तलवार व जडाऊ पदक भेजा गया और सोमवार, ११ मई (१६ रबीउस्सानी) को फर्रुखसियर ने उनके लिये खास खिलअत, तलवार व जड़ाऊ चुगा विजयराज तथा गुलाबचन्द नामक उसके वकीलों को दिया। इन वकीलों को भी एक-एक खिलअत देकर अजीतसिंह के पास जाने के लिये विदा किया गया। कुछ महीनों के बाद शनिवार, १८ जुलाई को इसे एक जोड़ा कुन्डल का, मोती और एक जड़ाऊ पदक पुरस्कार में भेजा गया।
(जयपुर अखबारात, नं. २०६४, रा. पु. बी.; जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, खंड १, २२४ व २२९; खंड २, ९)
ख्यात (भाग २, १५७); मूंदियाड़ (२४६); दानेश्वर (२३२) राठोड़ां (५७) में भी लिखा है भंडारी विजयराज फर्रुखसियर से मिलकर लौटा था।

१६. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, ३८ व ४७ ८।

१७. रोजनामचा १२३; सतीशचन्द्र ९९।

१८. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १५१४, रा. पु. बी.।

मालवा में कुछ उपद्रव हुआ तो अमीर-उल-उमरा हुसैन अलीखाँ ने अजीतसिंह और जयसिंह दोनों को यह सन्देश भेजा कि यदि वे उधर जाकर उपद्रवकारियों का दमन करें तो बादशाह उन पर प्रसन्न हो जायेगा। परन्तु न तो अजीतसिंह ने इस सलाह को माना, न जयसिंह ने।[१९] सम्भवतः गुजरात व मालवा के सूबे पाने से पूर्व वे किसी शाही सेवा में भाग नहीं लेना चाहते थे।

अजीतसिंह के इस व्यवहार से बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया था। संभवतः बादशाह का यह रुख देखकर ही नागोर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने फर्रुखसियर को अजीतसिंह के विरुद्ध भड़काकर जोधपुर लेने का प्रयास करना प्रारम्भ किया। जब अजीतसिंह को यह समाचार मिला तो उसने इस काँटे को अपने मार्ग से हटाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिये शनिवार, १५ अगस्त, सन् १७१३ ई. (भाद्रपद सुदि ५, संवत् १७७०) को व्यास दीपचन्द, भाटी अमरसिंह, राठौड़ अमरसिंह व उसके भाई मोहकमसिंह, राठौड़ कर्णसिंह तथा राठौड़ दुर्जनसिंह को कुछ सैनिकों के साथ दिल्ली भेजा। वहाँ पहुँचकर ये लोग कुछ दिन तक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। कुछ दिन उपरान्त एक दिन जब मोहकमसिंह जुम्दतुलमुल्क के घर से लौट रहा था तो इन लोगों ने उसका पीछा किया। इन्हें देखकर वह भागकर किनारे के खेतों में छिप गया, परन्तु धूप में उसकी पगड़ी का तुर्रा चमक उठा जिससे राठौड़ों ने उसे देख लिया और भाटी अमरसिंह ने खेत में घुसकर उसे मार डाला। तत्पश्चात् तुरन्त ये लोग जोधपुर लौटे। अजीतसिंह ने प्रसन्न होकर हाथी, घोड़े, सिरोपाव, कड़े व मोतियों की जोड़ियाँ पुरस्कार रूप में दीं और भाटी अमरसिंह को तीस हजार का पट्टा भी दिया। इधर मोहकमसिंह के मारे जाने का समाचार सुनकर बादशाह का रोष अजीतसिंह के प्रति और बढ़ गया।[२०]

जहाँदारशाह के समय में अजीतसिंह ने रूपनगर में अपने-अपने थाने स्थापित कर लिये थे, इससे वहाँ का शासक राजसिंह असन्तुष्ट था। अब सुअवसर देखकर उसने भी फर्रुखसियर से अजीतसिंह की शिकायत की। रूपनगर के अतिरिक्त टोडा व मालपुरा में भी अजीतसिंह ने नये थाने स्थापित किये थे। अजीतसिंह के इन कार्यों से फर्रुखसियर असन्तुष्ट था। फलतः उसने राजसिंह की सहायता के लिये अजमेर जाने का निश्चय किया। परन्तु अमीर-उल-उमरा ने उसे समझा-बुझा कर

---

१९. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १५४७, १५४९, रा. पु. बी; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, १९७ व २०४, रा. पु. बी.।

२०. राजरूपक ४५६ ८; ख्यात-भाग २, १५७-९; मूंदियाड़ २४६-७; जुनी. ९०; अजितोदय सर्ग २०, श्लोक २४-३२; वीर-भाग २, ८४१; दानेश्वर. २३३; राठौड़ा. ५७; जयपुर अखबारात, नं. २२२५, रा. पु. बी.; टॉड. भाग १, ६५; रेउ. भाग १, ३०५-६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५४-५।

इरविन (भाग १, २८५ टि.) ने मोहकमसिंह के स्थान पर मुकुन्द अथवा मुलकान नाम लिखा है। जो ठीक नहीं है।

रोक लिया। इस प्रकार अजीतसिंह के विरुद्ध शाही अभियान कुछ दिनों के लिये टल गया।[२१]

अजीतसिंह के इन कार्यों के कारण फर्रुखसियर उससे यद्यपि असन्तुष्ट था,[२२] तथापि १५ अक्तूबर (६ शव्वाल) को उसने उसके मनसब को बढ़ाकर सात हजार जात सात हजार सवार कर दिया और थट्टा की सूबेदारी पर नियुक्त कर दिया। इसी दिन जयसिंह को भी सात हजार जात, सात हजार सवार का मनसब देकर मालवा की सूबेदारी दी गई। मंगलवार, २० अक्तूबर (११ शव्वाल) को उरमानखाँ को अजीतसिंह के लिये फरमान, खास खिलअत, सिरपेच व बालाबंद देकर जोधपुर भेजा गया और कुछ दिन बाद रविवार, १ नवम्बर (२३ शव्वाल) को एक जड़ाऊ पदक, मोतियों का गोशवारा, खिलअत, पाँच थान और एक जड़ाऊ तलवार अजीतसिंह के वकील गुलाबचन्द को महाराजा के पास भेजने के लिये दिया गया।[२३] फर्रुखसियर का सम्बन्ध अपने वजीर सैयद अब्दुल्लाखाँ और मीर बख्शी सैयद हुसैनअलीखाँ से सिंहासनारूढ़ होते ही मनमुटाव पूर्ण हो गये थे। संभवतः यही कारण था कि बादशाह यद्यपि अजीतसिंह से रुष्ट था, तथापि उसने महाराजा के साथ अच्छा व्यवहार करके उसे अपनी ओर बनाये रखने का प्रयास किया। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बादशाह ने अजीतसिंह को उच्च मनसब तो दिया परंतु गुजरात की सूबेदारी नहीं सौंपी; इसके विपरीत जयसिंह को उसका इच्छित मालवा का सूबा प्रदान कर दिया। सम्भवतः फर्रुखसियर यह समझता था कि अजीतसिंह तथा जयसिंह की सम्मिलित शक्ति किसी भी समय हानिकर हो सकती है। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि जबतक दोनों राजाओं की समस्याएँ समान हैं, इनकी घनिष्टता कम नहीं हो सकती। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों राजाओं को एक दूसरे से दूर करके उनकी शक्ति कम करने के लिये ही फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को गुजरात न देने का निश्चय किया था। यह निश्चय अजीतसिंह के विपक्ष में क्यों किया गया, इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं जान पड़ता। अनुमानतः अजीतसिंह के विभिन्न विद्रोही कारणों से बादशाह मन ही मन अप्रसन्न था और वह उसे ही दण्डित करना चाहता था।

अजीतसिंह को जब यह समाचार मिला कि मुगल सम्राट ने उसे गुजरात की सूबेदारी न देकर थट्टा में नियुक्त किया है, तो वह अप्रसन्न हो गया; और उसने थट्टा

---

२१. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १५२७, १५५२ व १५५८; रा. पु. बी.; राजस्थानी पत्र, नं. २३७, रा. पु. बी.;

२२. हुसैनअली खाँ और जयसिंह के पत्रों में इसका संकेत मिलता है। (मुतफर्रिक महाराजगान, नं. ११५३, १५६० व २०४१, रा. पु. बी.)

२३. रोजनामचा. १२३; जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड १, १४१, १५१ व १६६; कामवर ४००; वकील रिपोर्ट्स. राजस्थानी, नं. २१४ व २७३, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान, नं. २८८५, रा. पु. बी; मुंदियाड़ २४७।

की सूबेदारी को अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझ कर वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया। महाराजा की इस अवज्ञा से फर्रुखसियर का उसके प्रति रोष सम्भवतः बढ़ गया और उसने जोधपुर पर आक्रमण करने का निश्चय किया।[२४]

फर्रुखसियर ने कुतुबुलमुल्क अब्दुल्लाखाँ, अमीर-उल-उमरा हुसैनअलीखाँ, खानेदौरां समसामुद्दौला व मीर जुमला आदि अपने उच्चाधिकारियों को बुलाकर विचार-विमर्श किया। बादशाह का विचार अजीतसिंह के विरुद्ध स्वयं जाने का था; परन्तु अमीर-उल-उमरा ने सलाह दी कि चूँकि बादशाह बीमारी से उठा है[२५] अतः उसे आराम करना चाहिये। उसने यह भी कहा कि यदि अजीतसिंह शाही सेना को देखकर रेगिस्तान से भाग गया तो बादशाह के सम्मान को धक्का लगेगा। अतएव उसने प्रार्थना की कि इस कार्य के लिये उसे भेज दिया जाय। बादशाह ने उसकी सलाह को स्वीकार कर लिया और उसे अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना का नेतृत्व सौंप दिया।[२६]

हुसैनअलीखाँ के साथ एक बड़ी सेना नियुक्त की गई जिसमें नवाब औलिया सैयदखां, नजमुद्दीनअलीखाँ, सैफुद्दीनअलीखाँ, आलमअलीखाँ, सैयद हुसनखाँ, रुस्तमखाँ, मीर मुशर्रफ अमानतखाँ, तुर्राबाजखाँ, जाँबाजखाँ, अलीअजहरखाँ,

---

२४. रोजनामचा. १२३; मूंदियाड़. २४७; राठौड़ा. ५८; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, नं. २७४, रा. पु. बी.।

अजीतसिंह पर फर्रुखसियर ने क्यों आक्रमण किया, इस विषय में विभिन्न मत मिलते हैं। अहवाल (६६ ब); इबरतनामा (८३ अ ब); मीरात उल-वारिदात (वारिद-१३४ ब); तारीख-ए-हिन्द (रुस्तम अली. २२७ ब. २२८ अ) सीयर (६७); तारीख-ए-मुजफ्फरी (२०६); वीर. भाग २, (११३५-६) में लिखा है कि अजीतसिंह ने अपने राज्य में गौ-वध, अजान व नमाज बन्द करवा दिया था, मस्जिदों को तोड़ा था और मुसलमानों को देश से निकाल दिया था और वह अजमेर और उसके आगे तक शाही प्रान्तों में लूटमार किया करता था, जिससे बादशाह उससे अप्रसन्न था। आधुनिक इतिहासकार इरविन (भाग १, २८५) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु यह मत उपयुक्त नहीं है। अजीतसिंह पर लगाये गये यह आरोप औरंगजेब की मृत्यु के तुरन्त बाद के हैं। साथ ही सन् १७०९ ई० के बाद से जोधपुर पर अजीतसिंह का ही अधिकार था।

खफी खाँ (भाग २७३, ८) व शिवदास (४ अ) ने लिखा है कि अजीतसिंह ने बधाई पत्र व भेंट नहीं भेजा था, अतः शाही सेना को भेजा गया था; परन्तु अखबारात में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि महाराजा ने बधाई व भेंट भेजा था। इस प्रकार यह स्वीकार करना ही न्यायोचित प्रतीत होता है कि अजीतसिंह से बादशाह कई कारणों से अप्रसन्न था और जब उसने थट्टा जाना अस्वीकार कर दिया तब फर्रुखसियर ने उस पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

२५. फर्रुखसियर. ८ दिसम्बर से १६ दिसम्बर (९ जिल्हिज से १ जिल्हिज) तक बीमार था (इरविन भाग १, २८६ टि.)।

२६. अहवाल. ६६ ब ७० अ ब; इरविन-भाग १, २८५-६।

दिलावर खाँ, सैयद शेर खाँ, बसालत खाँ, सैफ़खाँ, सलावत खाँ, दाऊद खाँ, जाँनिसार खाँ, नाहरखाँ, शाकिरखाँ, शुकरुल्लाखाँ तथा अजीज़बेग आदि प्रमुख सरदार थे।[२७] इस अभियान के लिये हुसैनअलीखाँ को तीन करोड़ रुपया नक़द, पचास हाथी, ख़ासखिलअत, छः लिबास, जड़ाऊ तलवार, खंजर, मोतियों की माला, साज सहित दस अरक़ी-ईराकी घोड़े, पचास छोटी-बड़ी तोपें तथा बहुत-सा गोला बारूद दिया गया।[२८] मंगलवार, १७ नवम्बर, सन् १७१३ ई० (१० जिलकाद, ११२५ हि०) को अहमदाबाद के सूबेदार दाऊद खाँ को एक फरमान द्वारा जालोर जाने की आज्ञा दी गई।[२९] अमीर-उल-उमरा को रविवार, ६ दिसम्बर (२९ जिल्क़ाद) को दरबार से विदा किया गया। विदा के समय उसे जड़ाऊ खंजर, दो ईराकी घोड़े और दो हाथी दिये गये। हुसैनअलीखाँ ने २७ दिसम्बर (२० जिल्हिज) को अपने हरावल को दिल्ली से भेजा और कुछ ही दिन बाद स्वयं भी जोधपुर के लिये चल पड़ा।[३०]

उधर अजीतसिंह ने अपने मुंशी रघुनाथ को एक हजार सवारों के साथ सन्धि की बातचीत करने के लिये भेजा। रघुनाथ ने सरायस हल से अमीर-उल-उमरा के पास महाराजा का सन्देश भेजा, परन्तु हुसैनअलीखाँ ने उसकी बात स्वीकार नहीं की और अपनी सेना को सराय अलाहवर्दीखाँ से सराय सहल की ओर बढ़ने का आदेश दिया। जोधपुर जाते हुए मार्ग में हुसैनअली को समाचार मिला कि राठौड़ सैनिक सांभर से बारह कोस दक्षिण में झाड़ियों मे छिपे हैं, और अवसर पाते ही शाही सेना पर आक्रमण करने की उनकी योजना हैं। परन्तु यह सूचना सत्य नहीं निकली। अमीर-उल-उमरा ने साँभर परगने को पार करते हुए सनमगढ़ का विनाश किया। राठौड़ों ने कहीं भी उस पर आक्रमण नहीं किया।[३१]

---

२७. अहलवाल ७० ब। इबरतनामा (८३ अ) में शाही सेना की संख्या ११,००० सवार, रोज-नामाचा. (१२३-४) में ४०,००० तथा राजरूपक (४६०) में १,००,००० स्वीकार की गई है। राजरूपक में स्वीकृत संख्या को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि शिवदास (४ अ) ने भी लिखा है कि हुसैनअली जब जोधपुर की ओर जा रहा था तो मार्ग में स्थान-स्थान से शाही कर्मचारी अपनी-अपनी सेनाओं सहित उसके पास आने लगे, और मेड़ता पहुँचने तक उसकी सेना में पचास हजार सवार पचास हजार पैदल हो गये।

२८. शिवदास. ४ अ।

२९. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २११।

३०. अहवाल ७० ब; इरविन भाग १, २८६।
इसी बीच २२ दिसम्बर (१५ जिल्हिज) को उस्मान खाँ अजीतसिंह का एक पत्र और उसके द्वारा भेजा हुआ घोड़ा लेकर आया। यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह ने इस पत्र में क्या लिखा था। इस पत्र का बादशाह पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा और युद्ध की तैयारियां जारी रहीं। (जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २६५-६ कामवर ४०२; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी. नं. २१७, रा. पु. बी.; इर्विन भाग १, २८७)।

३१. इरविन. भाग १, २८७।

अमीर-उल-उमरा मार्च-अप्रेल, सन् १७१४ ई० (वैशाख, संवत् १७७१) को अजमेर पहुँचा।[32] विशाल शाही सेना के आने से अजमेर के आस-पास के और मेड़ता की ओर के ग्रामवासी भयभीत होकर अपने-अपने गाँव से भाग खड़े हुए थे। हुसैनअली खाँ ने इन खाली गाँवों को जला देने की आज्ञा दी। इन स्थानों पर अजीतसिंह तथा जयसिंह के गाँव पास-पास थे, अतः जोधपुर वालों ने जयसिंह के क्षेत्र के किसानों के द्वारा हुसैनअली से प्रार्थना करवाई कि वह गाँव विनष्ट न करे। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई, और अमीर-उल-उमरा ने अपना आदेश वापस लेकर लूट का सारा माल लौटा देने का आदेश दिया[33] इसके बाद वह पुष्कर होता हुआ मेड़ता की ओर बढ़ा। मार्ग में उसे पानी की कमी, अत्यधिक गर्मी, अनाज की महँगाई और अकाल जैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। अपने सरदारों से परामर्श कर उसने अजीतसिंह से सुलह का प्रयत्न करने का निश्चय किया, और मियाँ जी गिरि को महाराजा के पास इस संदेश के साथ भेजा कि यदि अजीतसिंह अपने लड़के को शाही सेवा में भेज दे और अपनी लड़की का विवाह फर्रुखसियर से कर दे तो शाही आक्रमण रोक दिया जायेगा। यह संदेश भेजने के बाद भी शाह सेना निरन्तर मेड़ता की ओर बढ़ती गई। कुछ ही दिन उपरान्त हुसैनअली खाँ ने मेड़ता पहुँचकर अपना थाना स्थापित कर लिया।[34]

उधर महाराजा अजीतसिंह को जब हुसैनअलीखाँ के निरन्तर आगे बढ़ने का सामाचार मिला तो वह जोधपुर के किले से निकल कर नगर के बाहर स्थित राई के बाग में चला गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। उसने अपने सभी सरदारों को यह आदेश दिया कि वे शीघ्र ही उसके पास पहुँचें। धीरे-धीरे उसकी सेना बढ़ती गई, और जब लगभग अट्ठारह हजार सैनिक एकत्र हो गए तो उसने प्रस्थान किया और आगे बढ़कर रांहण नामक गाँव में डेरा डाला।[35]

सम्भवतः इन्हीं दिनों चूड़ामन जाट जोधपुर आकर अजीतसिंह से मिला था। अजीतसिंह प्रथम शासक था जिसने चूड़ामन जाट को अपने समकक्ष बैठाकर सम्मान दिया। परन्तु शाही सेना के विरुद्ध जाटों ने कोई सैनिक सहायता दी हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, अजीतसिंह ने जयसिंह के विरुद्ध उसे सुरक्षा देने का कुछ आश्वासन अवश्य दिया था।[36]

सम्भवतः इसी बीच मियाँ जी गिरि आकर अजीतसिंह से मिला।[37] अजीतसिंह ने भी अमीर-उल-उमरा की विशाल सेना को देखकर सुलह कर लेना ही उचित

---

३२. राजरूपक. ४५६।

३३. मआसिर ६३०; अहवाल. ७२ अ; इरविन भाग १, २८८।

३४. अहवाल. ७१ अ ब; कामराज. ५६ अ; इरविन. भाग १, २८७-८।

३५. ख्यात-भाग २, ११९; मूंदियाड़. २४७–८; राजरूपक ४६०; राठौड़ां ५८।

३६. हिस्टौरिकल एसेज—ले० कानूनगो. ६० व ६३।

३७. राजरूपक में लिखा है कि अजीतसिंह व मियाँ के बीच सन्धि की बातचीत हुई थी।

समझा। इस कार्य के लिए उसने चांपावत भगवानदास, भंडारी रघुनाथ, जोधा भीव, जोधा हरनाथ, ऊदावत लालसिंह, ऊदावत हृदयराम तथा मेडतिया कल्याणसिंह आदि को कुछ सैनिकों के साथ हुसैनअली के पास भेजा। ये लोग शाही सेना से कुछ दूर जाकर रुके और भंडारी रघुनाथ कुछ लोगों को साथ लेकर हुसैनअली से मिलने गया। सम्भवतः इनकेससैन्य आने के कारण शाही सेनापति को उनपर विश्वास नहीं हुआ। उसे यह आशंका हुई कि सम्भव है, राजपूत उसे धोखा दे रहे हों। अतः उसने कहा कि यदि वे सचमुच सुलह करना चाहते है तो कुछ समय तक बन्धन में रहना स्वीकार करें। पहले तो इन लोगों ने यह प्रस्ताव अपमानजनक समझकर अस्वीकार कर दिया, परन्तु बाद में विचार—विमर्श करके उन्होंने हुसैनअली की बात मान ली। इन राजपूतों को बन्धन में देख कर शाही सैनिकों ने यह अनुमान लगाया कि सम्भवतः राजपूत पराजित हो गये हैं, अतः उन्होंने राजपूत शिविर पर भी आक्रमण कर दिया। अजीतसिंह को सूचना देने के लिये जोधा हरनाथसिंह ने चांपावत भगवानदास को भेज दिया और स्वयं शाही सैनिकों का सामना करता हुआ अपने बहुत से सैनिकों सहित मारा गया। शाही सैनिकों के इस कुकृत्य का समाचार पाते ही हुसैनअली ने उन्हें रोका और राजपूत नेताओं से भी क्षमा—याचना की। अजीतसिंह को भी यह सूचना तुरन्त भेज दी गई।[३८]

उधर चांपावत भगवानदास से शाही सैनिकों के आक्रमण का समाचार पाकर अजीतसिंह भी चिन्तित हुआ, और उसने खीची- जोधा को जोधपुर जाकर राजपरिवार को वहां से किसी अन्य सुरक्षित स्थान में ले जाने का आदेश दिया, और भंडारी पोमसी को जोधपुर के किले की सुरक्षा का भार सौंपा।[३९] जब उसे यह

---

३८. मआसिर. ६३१; ख्यात. भाग २, १६२; मूंदियाड़. ५८; दानेश्वर. २३४; राठौड़ां ५८; इरविन. भाग १, २४९।

जयपुर अखबारात (फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २८५) में भी लिखा है कि मंगलवार, १९ जनवरी, सन् १७१४ ई. (१४ मुहर्रम, ११२६ हि०) को बादशाह को विदित हुआ कि रघुनाथ भंडारी पांच सौ सवारों को लेकर नाहर खां के साथ आया और अमीर-उल-उमरा से उसने बात की।

राजस्थानी ख्यातों में लिखा है कि हुसैनअली ने राठौड़ां को धोखा देकर उन पर पहरा बैठा दिया था। परन्तु चूंकि हुसैनअली भी सुलह करने का विचार रखता था, अतः यह मत उचित प्रतीत नहीं होता।

३९. ख्यात. भाग २, १६३; मूंदियाड़. २४९; दानेश्वर. २३४; राठौड़ां ५९; राजरूपक ४६०; खफी खां भाग २, ७३८, टॉड भाग २,६५।

रोजनामचा (१२४); मीरात-उल-वारिदात (वारिद १३५ अ); इबरतनामा (८४ ब); इबरतनामा (कामराज. ५५ ब); मुनबर-उल-कलाम (शिवदास. ४ अ); तारीख-ए-मुजफ्फरी (२०७) आदि अधिकांश फारसी ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह शाही सेना से डरकर पहाड़ों व जंगलों में भाग गया था और उसकी सेना तितर-बितर हो गई थी। मआसिर. (६३०) में उसका बीकानेर भाग जाना लिखा है। परन्तु यह मत भ्रामक प्रतीत होता है। अजीतसिंह अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करके ससैन्य मेड़ता की ओर बढ़ रहा था, इसकी पुष्टि ख्यातों के विवरण से होती है। साथ ही यदि स्थिति इस प्रकार की होती तो हुसैनअली संधि के लिये उत्सुकता प्रकट न करता।

विदित हो गया कि राजपूतों पर शाही सैनिकों ने जो आक्रमण किया था वह हुसैन अली की आज्ञा से नहीं हुआ था, तब उसने भंडारी खींवसी को सन्धि की बातचीत करने के लिए हुसैनअली के पास भेजा।[४०]

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय दोनों ही पक्ष सुलह करने के लिए उत्सुक थे। हुसैनअली के साथ विशाल सेना थी और वह मेड़ता पर अधिकार कर चुका था। जालोर पर भी अहमदाबाद के सूबेदार ने अधिकार कर लिया था और शाही आज्ञानुसार, फ़ीरोज़ खाँ जालोरी को वहां का अधिकार सौंप दिया था।[४१] इसके साथ ही अन्य किसी राजपूत शासक ने उसे कोई सहायता नहीं दी थी। सम्भवतः वे बादशाह के साथ सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहते थे। यहाँ तक कि पिछले सात वर्षों से उसके अन्तरंग मित्र जयसिंह ने भी उसका साथ नहीं दिया था। फर्रुख़सियर के शासनकाल में जयसिंह ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जिससे बादशाह अप्रसन्न हो जाय। फलस्वरूप उनके पारस्परिक सम्बन्ध सदैव अच्छे रहे और बादशाह ने उच्च मनसब व मालवा की सूबेदारी देकर उसे पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया था। परन्तु केवल मालवा की सूबेदारी पाकर जयसिंह ने अपनी पुरानी मैत्री छोड़ दी हो, यह संगत प्रतीत नहीं होता। सम्भवतः पिछले एकाध वर्षों से अजीतसिंह और जयसिंह के सम्बन्धों में कुछ तनाव आ गया था। अजीतसिंह ने चूड़ामन जाट को जयसिंह के विरुद्ध जो आश्वासन दिया था उससे इस मत की पुष्टि होती है। निश्चितरूप से यह कहना कठिन है कि इसका कारण क्या था। जहाँदारशाह के समय मे मालपुरा में जयसिंह के थाने हटाकर अपने थाने बनाते तथा टोडा में भी अपने थाने स्थापित करने का अजीतसिंह ने प्रयत्न किया था। सम्भव है, जयसिंह को अपने राज्य में अजीतसिंह का यह अनधिकार प्रवेश भला न लगा हो और धीरे-धीरे उनका पारस्परिक खिचाव बढ़ता गया हो। दूसरी ओर अमीर-उल-उमरा भी दिल्ली से आने वाली सूचनाओं के कारण इस कार्य को जल्दी समाप्त करना चाहता था। दिल्ली में उसकी अनुपस्थिति में मीरजुमला का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था और सैयदों के विरोधी उसके बड़े भाई कुतुबुलमुल्क अब्दुल्ला ख़ाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे। अब्दुल्ला ख़ाँ उसे बार-बार शीघ्र लौटने के लिए लिख रहा था। अतः वह भी अजीतसिंह से सुलह करने के लिए उत्सुक हो रहा था।[४२]

परिस्थिति सुलह के अनुकूल थी। बृहस्पतिवार २६ अप्रेल (२५ रबीउस्सानी) को तीसरे प्रहर महाराजा का ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह हुसैनअली से मिला।[४३] विचार-विमर्श के उपरान्त दोनों के बीच एक गुप्त समझौता हुआ, जिसके फलस्वरूप महाराजा अजीतसिंह तथा सैयदों के बीच मैत्री का बीजारोपण हुआ। इस गुप्त

---

४०. ख्यात. भाग २, १६३; मूंदियाड़. २४६; शिवदास. ४ ब।

४१. जयपुर अखबारात. फर्रुखसियर. वर्ष ३. खंड १, १६६-७०।

४२. खफी खां. भाग २, ७३८; मआसिर ६३१; तारीख–ए–मुजफ्फरी २०७।

४३. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, ६६।

समझौते के अनुसार अजीतसिंह ने थट्टा जाना स्वीकार कर लिया। हुसैनअली ने गुप्त रूप से उसे यह आश्वासन दिया कि वह थट्टा की ओर प्रस्थान करके अपनी स्वामिभक्ति का केवल प्रदर्शन करे; उसे थट्टा पहुँचने से पूर्व ही गुजरात का सूबा दे दिया जायेगा।[४४] सन्धि की अन्य शर्तों के अनुसार महाराजा अजीतसिंह ने अपनी लड़की का विवाह फर्रुख़सियर से करना तथा अपने पुत्र अभयसिंह को दिल्ली दरबार में भेजना तथा बादशाह के बुलाने पर स्वयं भी दरबार में उपस्थित होना स्वीकार किया।[४५]

---

४४ रोजनामचा, १२४; ख्यात. भाग १ १६३; मू दियाड़. २४६।

४५. रोजनामचा १२४; वारिद. १३५ अ; कामराज ५६ अ; अहवाल. ७२ ब ७३ ब; इबरतनामा ८४ ब ८५ अ; खफी खाँ भाग २; ७३८ मआसिर. ६३०–१; सीयर. ६८; तारीख-ए-मुजफ्फरी २०७; स्काट १३६; वीर. भाग २, ११३६; ख्यात. भाग १, १६३; मूंदियाड़ २४६; दानेश्वर. २३४; राठौड़ा ५६; गुटका. ३११ अ।

अहवाल० में लिखा है कि अजीतसिंह, ने शाही सेना का खर्चा देना भी स्वीकार किया था। इबरतनामा के अनुसार उसने घोड़े, हाथी भी दिये और कुछ दिनों बाद पेशकश देने का वचन दिया था। सीयर; तारीख-ए-मुजफ्फरी और वीर० में लिखा है कि महाराजा ने धन व भेंट दिया था।

वारिद (१३५ अ) तथा सैयद गुलाम हुसैन खाँ (सीयर ६७) ने लिखा है कि फर्रुखसियर ने एक ओर तो हुसैनअली खाँ को अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये भेजा था, और दूसरी ओर महाराजा को गुप्त पत्र लिखकर हुसैनअली खाँ को मार डालने का आदेश दिया था। इसके बदले में उसने अजीतसिंह को अमीर-उल-उमरा की समस्त सम्पत्ति और अन्य अनेक सुविधाएँ देना स्वीकार किया था। कविराज श्यामलदास (वीर. भाग २, ११३६) तथा जोनाथन स्काट (१३६) ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है। मीरांत-उल वारिदात (१३५ अ) के अनुसार अजीतसिंह ने इन पत्रों के द्वारा अपने देश को रक्तपात से बचाने की योजना बनाकर स्वयं ही सब पत्र हुसैनअली खाँ के पास भेज दिये। सीयर-उल-मुताखरीन में लिखा है कि अजीतसिंह ने अपनी कन्या को जब दिल्ली भेजा तो ये पत्र उसे सौंपकर बादशाह को वापस देने के लिये कहा। मार्ग में अथवा हुसन अली के घर में निवास के दिनों में यह पत्र किसी प्रकार अमीर-उल-उमरा के हाथ में पड़ गये।

परन्तु इस बात को स्वीकार करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। प्रथम, किसी भी समकालीन फारसी अथवा राजस्थानी ग्रन्थ अथवा ख्यात. में इसका उल्लेख नहीं मिलता। अजीतसिंह तथा बादशाह का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण न था। गुजरात न पाकर अजीतसिंह उससे असन्तुष्ट था और अजीतसिंह द्वारा शाही अवज्ञा किये जाने के कारण बादशाह उससे अप्रसन्न था। अतएव इस स्थिति में बादशाह का उस पर विश्वास करना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त बादशाह से मित्रता रखकर भावी उन्नति की संभावना अधिक थी। अतः यदि अजीतसिंह को इस प्रकार के पत्र मिले होते तो वह हुसैन अली को अवश्य ही जोधपुर के रेगिस्तानों में बढ़ने देता और फिर बन्दी बनाने का प्रयत्न करता। पुनः यदि महाराजा के बादशाह से गुप्त सम्बन्ध होते तो वह हुसैनअली के साथ गुजरात के विषय में गुप्त समझौता न करता। अन्त में इन इतिहासकारों ने हुसैनअली के हाथ पत्र लगने की जो सम्भावनाएँ बताई हैं, वह कपोल कल्पित अधिक जान पड़ती हैं। यदि वारिद का कथन स्वीकार किया जाय तो अजीतसिंह द्वारा निश्चित शर्तों पर सन्धि स्वीकार करना मूर्खतापूर्ण लगता है। सैयद गुलाम हुसैनखाँ की बात मानने पर पत्रों को वापस करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। अतएव फर्रुखसियर के विरुद्ध इस अरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सन्धि के पश्चात् हुसैनअली खाँ तुरन्त अभयसिंह को साथ लेकर मेड़ता से अजमेर लौट गया, जहां वह शुक्रवार, २१ मई (१८ जमादिउलअव्वल को पहुँचा।[४६] यहां से उसने अपनी अधिकांश सेना को वापस भेज दिया और स्वयं शासकीय प्रबन्ध के लिए अजमेर में रुका रहा। मंगलवार ८ जून (६ जमादिउस्सानी) को उसने अजमेर से कूच किया और चार कोस की दूरी पर कंकराणा नामक गाँव में डेरा डाला। यहीं पर अभयसिंह उससे पुनः मिला। बातचीत के उपरान्त विदा के समय अमीर-उल-उमरा ने उसे हाथी, घोड़े व वस्त्र दिये।[४७] अभयसिंह को साथ लेकर हुसैनअली खाँ ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। मंगलवार, ६ जुलाई (५ रजब) को बादशाह को यह समाचार मिला कि अमीर-उल-उमरा सराय अलाहवर्दी तक आ पहुँचा है। अगले दिन ७ जुलाई (६ रजब) को हुसैनअली खाँ बादशाह से मिला और उसने बताया कि महाराजा ने पूर्ण रूप से समर्पण करके सन्धि की सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया है।[४८] शुक्रवार, ९ जुलाई (८ रजब) को हुसैनअली खाँ अभयसिंह को पालकी में लेकर दीवाने-आम गया। फिर स्वयं दीवाने-ख़ास गया और बादशाह से अनुमति लेकर अभयसिंह को अन्दर ले गया। अभयसिंह ने एक सौ अशर्फी तथा एक हजार रुपया नजर व निछावर किया। उसे एक घोड़ा, एक हाथी, सिरपेच तथा मोतियों की माला दी गई। उसके साथियों ने भी मुहरें व रुपये बादशाह को भेंट किये, और बादशाह ने उन्हें खिलअतें दीं। अगले दिन १० जुलाई (९ रजब) को अभयसिंह बख्शिउलमुल्क के साथ दरबार में पुनः आया। सोमवार २ अगस्त (२ शाबान) को जन्म-दिवस के अवसर पर अभयसिंह ने इक्कीस अशर्फियाँ निछावर कीं। तब उसे ख़ास ख़िलअत, सुनहरी जीन सहित एक घोड़ा तथा पान दिया गया। इसके उपरान्त भी अभयसिंह दरबार में आता जाता रहा।[४९]

इधर अजीतसिंह ने शुक्रवार, १४ मई (११ जमादिउलअव्वल) को अपने अधिकारी थट्टा की ओर भेज दिए। उसने हुसैनअली के दीवान तोलाराम को खिलअत,

---

४६. जयपुर अखबारात फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १३१।

४७. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १७०।

हुसैन अली खाँ अजमेर में २१ मई से ८ जून तक रहा था। चूँकि अखबारात में इन तिथियों का स्पष्ट उल्लेख है. अतः इरविन का यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता कि हुसैन अली दो महीने तक अजमेर में रहा था।

४८. जयपुर अखबारात नं. २४६६; रा० पु० बी०; जयपुर अखबारात; फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १६७: वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं. २३१, रा० पु० बी०।

४९. जयपुर अखबारात, वर्ष ३, खंड १, १६६ व २०५; खंड १; ६, ३३, ५७, ६१; खंड १, १०१; जयपुर अखबारात, नं. २५१७, रा० पु० बी०; कामवर. ४०५; वकील रिपोर्ट्स. राजस्थानी, नं. २३३, रा० पु० बी०; राजरूपक. ४६८।

सूरजप्रकाश. (७५) में लिखा है कि अभयसिंह को पाँच हजार का मनसब, सिरोपाव तलवार, जमधर, जड़ाऊ; खंजर व हाथी भी दिया गया। टॉड (भाग २, ६६) ने भी पाँच हजार का मनसब मिलना स्वीकार किया है। परन्तु इसकी पुष्टि किसी फारसी ग्रन्थ से नहीं होती।

घोड़ा व पाँच सौ रुपया और नाहर खाँ को खिलअत व घोड़ा देकर विदा किया और यह संदेश भेजा कि अपने सम्बन्धियों के आ जाने पर वह स्वयं भी थट्टा चला जाएगा। मंगलवार, १ जून (२९ जमादिउल अव्वल) को उसने अपना हरावल आगे भेजा और ३ जून (१ जमादिउस्सानी) को स्वयं भी उस ओर कूच कर दिया।[५०] बृहस्पतिवार, १ जुलाई (२९ जमादिउस्सानी) को उसने बादशाह फ़र्रुखसियर को एक पत्र लिखा जिसमें अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगी थी।[५१] सोमवार, २ अगस्त (२ शाबान) को बादशाह को अजीतसिंह का एक पत्र मिला, जिसमें उसने सूचित किया था कि यद्यपि उसने दो सौ ऊँटों पर पानी भरवा कर सेना के साथ रक्खा हैं, तथापि पानी की अत्यधिक कमी है। फलस्वरूप उसने अपनी सेवा को तीन भागों में बाँट दिया है जो बीस-बीस कोस की दूरी पर यात्रा करते हैं।[५२] इस प्रकार वह धीरे-धीरे थट्टा की ओर जा रहा था।

अजीतसिंह के सन्धि करने तथा शाही आज्ञा स्वीकार कर लेने से धीरे-धीरे बादशाह का रोष भी कम होने लगा और उसने समय-समय पर महाराजा के लिए खिलअत व अन्य वस्तुएँ भेजीं। नवम्बर-दिसम्बर (ज़िल्हिज) के महीने में उसने अजीतसिंह को जोधपुर, मेड़ता व सोजत के परगने जागीर में दे दिए। अजीतसिंह ने भी कई बार बादशाह को भेंट भेजी।[५३] रविवार, १७ अप्रेल (२३ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को अब्दुलहमीद के स्थान पर सोरठ का फ़ौजदार नियुक्त किया गया, और इसके लिए उसे एक हज़ार सवार तथा अट्ठाईस लाख दाम इनाम में दिए गए।[५४] तीन दिन बाद २० अप्रेल (२६ रबीउस्सानी) को फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को छः हज़ार जात, पाँच हज़ार सवार, दो हज़ार सवार दो अस्पा का मनसब देकर गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया, और इसके लिए

---

५०. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १३१ व १५३।

५१. मुतफर्रिक अहलकारान, नं. १५०४, रा० पु० बी।

५२. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड २, ४।

५३. मुतफर्रिक अहलकारान, नं. ९९१, रा० पु० बी०

बादशाह ने बृहस्पतिवार, ५ अगस्त (५ शाबान) को अजीतसिंह के लिये बरसाती खिलअत भेजी। १६ मार्च, सन् १७१५ ई० (२१ रबीउलअव्वल, ११२७ हि०) तथा २० मार्च (२५ रबीउलअव्वल) को अजीतसिंह के लिये खास खिलअत के साथ तथा ११ अप्रेल (१७ रबीउस्साना) को खिलअत के साथ हाथी; घोड़ा व तलवार भेजे गये। शनिवार, १८ दिसम्बर, सन् १७१४ ई० (२२ जिल्हिज, ११२६ हि०) को उत्सव के अवसर पर अजीतसिंह द्वारा भेजी गई जहाँगीरी जड़ाव की अँगूठी तथा २२ जनवरी (२७ मुहर्रम) को जोधपुर से भेजे गये अनार बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत किये गए (जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड ३, ११, १८९ व २५५; वर्ष ४, खंड १, ३७ व ६६ जयपुर अखबारात, नं. २५५४ व २५९९ रा० पु० बी०)।

५४. जयपुर अखबारात. फर्रुखसियर, ४, खंड १, ७३; वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं. २४७, रा. पु. बी.; मीरात. ३६७।

उसे एक हज़ार सवार और बीस लाख दाम दिए गए। अजीतसिंह की ओर से भंडारी विजयराज को गुजरात का नायब और अभयसिंह की ओर से कायस्थ फतेसिंह को सोरठ का नायब नियुक्त किया गया।[५५]

इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह की माँग पूरी करने के बाद फ़र्रुखसियर ने अपने मामा शाइस्ता ख़ाँ को महाराजा की लड़की को लाने के लिये बृहस्पतिवार, ५ मई (१२ जमादिउलअव्वल) को भेजा।[५६] शाही आज्ञानुसार अजीतसिंह ने अपनी पुत्री इन्द्रकुँवर को दिल्ली के लिए विदा किया और भंडारी खींवसी को दहेज के समान के साथ सपरिवार राजकुमारी के साथ जाने का आदेश दिया।[५७]

यह लोग सोमवार १५ अगस्त, १७१५ ई. (२५ शाबान, ११२७ हि.) को दिल्ली पहुँचे तथा शाही आज्ञानुसार अमीर-उल-उमरा की हवेली में ठहरे। शुक्रवार,

---

५५. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ४, खंड १, ८५; मीरात, २६७; मआसिर १७४; राजरूपक. ४७१; ख्यात. भाग २; १६४; मूंदियाड़ २४६; वीर. भाग २, ८४१; दानेश्वर. २३५ अ।

ख्यात. भाग (२, पृ. २६४); मूंदियाड़ (१४६); राठौडा (५६) में भी लिखा गया है कि अजीतसिंह ने सितम्बर, अक्तूबर (आश्विन), (संवत् १७७१) को जोधपुर से कूच किया और जब वह सिवाना होता हुये बाड़मेर कोट पहुँचा तो भंडारी खींवसी को पत्र लिखा कि वह उस समय तक थट्टा नहीं जायेगा तथा अपनी लडकी का डोला नही भेजेगा। जब-तक उसे गुजरात का सूबा तथा मारोठ, परबतसर; बवाल व केकड़ी के परगनें नही दे दिये जायेंगें। तब भंडारी खीवसी के बादशाह से अनुनय-विनय करने पर अजीतसिंह को गुजरात का सूबा दिया गया।

यह स्वीकार करना कठिन है कि बादशाह ने भंडारी खींवसी के प्रभाव से अजीतसिंह को गुजरात का सूबा दिया हो। सम्भवत: हुसनअली ने अपने वायदे के अनुसार प्रयत्न करके अजीतसिह को गुजरात का सूबा दिलवाया था। परन्तु ख्यातकारों का यह कथन कि इस समय अजीतसिंह को मरोठ परबतसर, बवाल और केकडी के सूबे भी दिये गये, थे, सत्य जान पड़ता है। क्योकि सन् १७२३ ई० मे जब अजीतसिंह ने बादशाह मुहम्मद से सन्धि की थी तब उसे इन परगनों से अधिकार हटाना पड़ा।

५६. रोजनामचा. ७७ व १२४; खफीखाँ भाग २, ७३८; इरविन. भाग १ ३०४। मआसिर (६३१) के अनुसार हुसैनअली जब अजमेर से वापस गया था, तभी कुछ व्यक्तियों को डोला लेकर आने के लिये छोड़ दिया था। अहवाल (७२ व ७३ ब) में लिखा है कि जब अमीर-उल-उमरा अजमेर में था उसी समय अजीतसिंह ने अपनी लड़की को भेज दिया था और हुसैनअली ने स्वयं आगे जाकर उसका स्वागत किया था, परन्तु यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होते।

५७. ख्यात. भाग २, १६४; वीर-भाग ३, ८४१ व ११३६; रोजनामचा, ७७; रुस्तमअली. २२८ अ।

ख्यात के अनुसार अजीतसिंह ने अपनी कन्या को सितम्बर, सन् १७१५ ई. (आश्विन, संवत् १७७२) में विदा किया था। परन्तु यह ठीक नही है क्योंकि उसका निकाह दिल्ली में अगस्त के महीने में हुआ था।

१६ अगस्त (२६ शाबान) को बादशाह की माँ हुसैनअली खाँ के घर गई तथा महाराजा की लड़की को कलमा पढ़ाया। इसी दिन रात को निकाह सम्पन्न किया गया जिसमें मेहर में एक लाख रुपया तय किया गया और निकाह पढ़ाने वाले क़ाज़ी को दो हज़ार रुपया मिला।[५८] परन्तु वास्तविक विवाह अत्यन्त शान शौक़त के साथ पूर्ण हिन्दू ढंग से लगभग तीन महीनों के उपरान्त सम्पन्न हुआ।[५९] इन दो विवाहों के बीच यह लम्बा समय इसलिए पड़ा कि फ़र्रुखसियर इस बीच बीमार पड़ गया था।[६०] जब अजीतसिंह को उसके स्वस्थ होने का समाचार मिला तो उसने अपनी अर्जदाशत तथा नजर के लिए कुछ धन अमीर-उल-उमरा को भेजा और उपयुक्त अवसर देखकर इस भेंट को बादशाह के सम्मुख रखने के लिए लिखा।[६१] इस बार विवाह का प्रबन्ध सैयद भाइयो को सौंपा गया।[६२] विवाहोत्सव जसवन्तपुरा के पास नदी के किनारे कुतुबुल्मुल्क की हवेली में किया गया।[६३] सारे नगर को सजाया गया; रोशनी और आतिशबाज़ी का ऐसा प्रबन्ध किया गया जैसा पहले कभी देखने में नहीं आया था।

---

५८. कामवर. ४१२-३।
शिवदास (४ ब) के अनुसार ५० करोड़ अशर्फी, सोना व चाँदी मेहर में तय हुआ था। इरविन (भाग १, ३०४) ने इस घटना के लिये रमजान के महीने की २५ व २६ तारीख स्वीकार की है, जो ठीक नहीं है।

५९. यह कहना कठिन है कि इस प्रकार मुस्लिम व हिन्दू रीति से दो बार विवाह होने का क्या कारण है? सम्भवतः बादशाह ने शीघ्रता से दूल्हन के पहुँचते ही विवाह सम्पन्न करवा लिया हो तथा बाद में अपने पद के अनुरूप विवाहोत्सव का आयोजन करवाया हो अथवा उसकी इच्छा हिन्दू रीति से विवाह की हो ख्यात में लिखा है कि उसने ऐसी आज्ञा दी थी, अथवा अजीतसिंह अथवा सैयद बन्धु मुस्लिम विवाह से सन्तुष्ट न हों। कारण कुछ भी रहा हो, इतना अवश्य निश्चित जान पड़ता है कि इन्द्रकुँवर व फर्रुखसियर का विवाह एक बार इस्लामी धर्म के अनुसार और एक बार हिन्दू रीति से हुआ था।
कामवर. (४१४) ने लिखा है कि बृहस्पतिवार, १ दिसम्बर (१५ जिल्हिज) को फर्रुखसियर की माँ ने दूल्हन को अमीर-उल-उमरा के घर पहुँचा दिया था। रोजनामचा (७८) में भी इसी दिन फर्रुखसियर का दूल्हन के घर जाना तथा कुतुबुलमुल्क का उसका स्वागत करना वर्णित है।

६०. स्काट. १३६; इरविन भाग १, ३०५।

६१. मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ६०८, रा. पु. बी.

६२. रोजनामचा. ७८ तथा इबरतनामा, ८५ ब के अनुसार यह प्रबन्ध कुतुबुल्मुल्क को सौंपा गया। रुस्तमअली (२२७ ब २२८ अ तथा स्काट (१३६) के अनुसार हुसैनअली को। सीयर (पृ. ७६) के अनुसार बादशाह ने यह प्रबन्ध गृह-प्रबन्धकों को सौंपा था। उन्होंने प्रबन्ध किया, परन्तु अमीर-उल-उमरा को इससे सन्तोष नही हुआ उसने विचार किया कि वह स्वयं बात तय करके कन्या को लाया है और वह उसके घर कुछ दिन रही भी है अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह यह कार्य महाराजा तथा बादशाह के सम्मान के अनुकूल करे, अतः उसने स्वयं प्रबन्ध किया।

६३. इबरतनामा ८५ ब।

६४. सीयर ७६-७; रोजनामचा. ७८; शिवदास ४ ब; कामवर ४१४; अहवाल; ७४ अ; स्काट १३६।

मंगलवार, ६ दिसम्बर (२० ज़िल्हिज) को दूल्हन के घर से मेंहदी आई, जो दूल्हा के हाथों व पैरों में लगाई गई। अगले दिन ७ दिसम्बर (२१ ज़िल्हिज) को अजीतसिंह की ओर से वस्त्र, चुग़ा, जड़ाऊ सिरपेच व कीमती खंजर भेजा गया जिन्हें पहनकर बादशाह, दो घड़ी रात्रि व्यतीत हो जाने के पश्चात् सिंहासन पर बैठकर दिल्ली द्वार से निकला तथा ढोल, नगाड़े, व आतिशबाज़ी के बीच अमीर-उल-उमरा की हवेली में गया। क़ुतुबुल्मुल्क ने उसका स्वागत किया तथा रुपया व मोती आदि निछावर किए।[६५] बादशाह ने राजस्थानी विधि के अनुसार तोरण बांधा। भंडारी खींवसी की पत्नी ने उसकी आरती की, केसर का तिलक करके मोती के अक्षत चढ़ाये तथा बादशाह की नाक खींची। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पुरोहित अखेराज को गुरुपदा का सिरोपाव व हाथी, बारहठ केसरीसिंह को तोरण का सिरोपाव व हाथी दिया और भंडारी खींवसी को सिरोपाव, सिरपेच, कलंगी, पदक व हाथी दिया गया।[६६] विवाहोपरान्त रात्रि के अन्तिम भाग में बादशाह, दूल्हन को लेकर लाहौरी द्वार से क़िले में लौटा। अगले नौ-दस दिन तक विवाह के उपलक्ष में उत्सव मनाये जाते रहे।[६७] विवाह के अवसर पर राजपूतों ने बरातियों को गुलाब-जल, चीनी तथा अफ़ीम का मिश्रण पीने के लिए दिया। राजपूतों ने कहा कि यह उनके देश की रीति है। कुछ मुसलमानों ने इस पेय को ग्रहण किया, कुछ ने नहीं लिया। एक अन्य नया प्रदर्शन यह था कि एक ऐसा स्वर्ण-थाल बनाया गया जिसके पाँच भाग थे। इन पाँचों भागों में भिन्न जवाहरात रखकर उसे सजाया गया था।[६८] महाराजा ने पचास लाख रुपया नक़द, सोने व चांदी के साज़ सहित अरबी व ईराक़ी घोड़े, सोने व चांदी के हौदे सहित दस हाथी, तथा क़ीमती जवाहरात दहेज में दिए।[६९] विवाह के तुरन्त ही बाद ६ दिसम्बर (२३ ज़िल्हिज) को बादशाह ने महाराजा के नाम गुजरात सूबे की सूबेदारी का फ़रमान जारी किया।[७०]

---

६५. रोजनामचा ७८; कामवर. ४१४; शिवदास ४ ब।

रोजनामचा का लेखक मिर्जामोहम्मद तथा उसका भाई भी दीवान-ए-खास से दूल्हन के घर तक बरात के पीछे गये थे; परन्तु भीड़ की अधिकता के कारण वहाँ अन्दर प्रविष्ट न हो सके।

६६. ख्यात. भाग २, १६४; वीर भाग २, ८४१ व ११३६।

वंश (भाग ४, ३०५०) में लिखा है कि अजीतसिंह स्वयं अपनी कन्या को लेकर दिल्ली गया था और उसने डोला देकर बादशाह से क्षमा माँगी थी। परन्तु यह ठीक नहीं है।

६७. रोजनामचा ७६; कामवर. ४१४।

सीयर (७७) में विवाह की तिथि ८ दिसम्बर (२२ जिल्हज) स्वीकार की गई है परन्तु समकालीन ग्रन्थ रोजनामचा को ही मान्यता दी गई है।

६८. इरविन. भाग १, ३०५।

६९. शिवदास ४ ब।

कामवर (४१४) ने लिखा है कि १२ दिसम्बर (२६ जिल्हिज) को अजीतसिंह द्वारा दहेज में भेजे गये इकतीस घोड़े व सोने चाँदी के हौदे सहित सात हाथी नजर किये गये थे।

७०. फरमान नं.१०, रा. पु. बी.।

मुग़ल-सम्राट् अकबर ने मुग़ल शासकों के राजपूत कन्याओं के साथ विवाह की जो परिपाटी आरम्भ की थी, उसमें यह अन्तिम विवाह था। पुत्री के विवाह के लिये स्वीकृति देकर अजीतसिंह ने मारवाड़ राज्य को युद्ध एव रक्तपात से बचा लिया और शान्ति व स्थायित्व प्रदान किया। इस विवाह के फलस्वरूप अजीतसिंह का दिल्ली दरबार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो गया तथा उसके गौरव व मान में विशेष वृद्धि हुई। इस सम्बन्ध के कारण ही अजीतसिंह को गुजरात सूबे का फ़रमान मिल सका जिससे महाराजा तथा सैयदों से घनिष्टता के लिए मार्ग खुल गया। औरंगज़ेब के समय से राठौड़ों व मुग़लों के बीच जो खाई बन गई थी, वह कुछ समय के लिए समाप्त हो गई। इस प्रकार इन्द्रकुँवर का विवाह भावनात्मक तथा नैतिक दृष्टि से भले ही हेय समझा जाय, राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[७१]

(ग) गुजरात की प्रथम सूबेदारी:—(सन् १७१५-७ई०)

महाराजा अजीतसिंह को जब अहमदाबाद में अपनी नियुक्ति का समाचार मिला तो उसने विजयराज भंडारी को गुजरात भेजा।[७२] भंडारी विजयराज बृहस्पतिवार, २८ जुलाई, सन्१७१५ ई. (७ शाबान, ११२७ हि०) को अहमदाबाद पहुँचा और पहुँचते ही उसने राज्य के शासन प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। अब्दुल हमीद ख़ाँ को बख़्शी तथा वाक़यानवीस के पद पर नियुक्त किया गया और साथ ही वह पहले की तरह हज़रत अहमद खट्टू की दरगाह का दरोग़ा भी बना रहा। विजयराज ने विभिन्न स्थानों पर फ़ौजदारों तथा थानेदारों की नियुक्तियाँ भी की।[७३]

कुछ महीनों के बाद सम्भवतः सन् १७१६ ई. के आरम्भ में अजीतसिंह ने स्वयं भी गुजरात की ओर प्रस्थान किया। उसका पहला पड़ाव जोधपुर से तीन कोस की दूरी पर व्यास के तालाब पर हुआ। तदुपरान्त वह जालोर व भीनमाल होता हुआ आबू पर्वत के निकट जा पहुँचा। वहां सगतसिंह नामक एक व्यक्ति ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी और यात्रियों व व्यापारियों को लूटा करता था। अतः महाराजा ने उसके स्थान को घेर कर गोलाबारी करने की आज्ञा दी। सगतसिंह ने तब घबराकर समर्पण कर

---

७१. कुछ विद्वानों ने इस विवाह को भारत में अंग्रेजी शक्ति के आरम्भ के लिए उत्तरदायी ठहराया है। फर्रुखसियर की बीमारी में डा० हैमिल्टन ने उसका इलाज किया था और बादशाह ने इसके बदले में उसे कई सुविधाएँ भी दी थीं। परन्तु इसके लिए फर्रुखसियर की बीमारी उत्तरदायी थी; न कि इन्द्रकुंवर का विवाह, जो कि बादशाह के स्वस्थ होने के उपरान्त हुआ था। (स्काट १३९ टि.; इरविन भाग १, ३०५-६)।

७२. मीरात ३६७; ख्यात भाग २, १६४; मूंदियाड़ २४९; बांकीदास ३८; कविराजा १२; राजरूपक ४७२; दानेश्वर-२३५।

७३. मीरात-३६७।

दिया और अजीतसिंह को धन व घोड़े नज़र किये। यहां से वह ससैन्य पालनपुर गया, जहां पर इस्माइल खां ने उसे घोड़ा नज़र किया। यहीं से उसने निकटवर्ती बापी नामक स्थान के राजा पंचाइण पर आक्रमण करने के लिए अपने सैनिकों को भेजा। इस विशाल सेना को देखकर वह डर गया और उसने महाराजा से मिलकर धन व घोड़े भेंट किये। तदुपरांत कोलीवाड़ा के कुछ गाँवों से धन वसूलने के उपरांत उसने अनहिलपाटन पर अधिकार करके वहाँ अपना हाकिम नियुक्त किया। मालगढ़ का अधिकारी अनूपसिंह कोलियों की सेना एकत्र करके उपद्रव कर रहा था, अतः अजीतसिंह ने अपने कुछ सैनिकों को धीरजमल के नेतृत्व में उस पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अनूपसिंह ने भी शीघ्र ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुछ दिन पाटन में रुकने के बाद अजीतसिंह ने अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया।[७४]

बृहस्पतिवार, २२ फरवरी सन् १७१६ ई० (१० रबीउलअव्वल, ११२८ हि०) को महाराजा अजीतसिंह, अहमदाबाद के निकट शाही बाग़ में पहुँचा। विजयराज भंडारी, मेहरअली खां, सफ़दर ख़ाँ बाबी, नसीरउद्दीन अहमद ख़ाँ (सूबे का अध्यक्ष व उपदीवान), क़ाज़ी खैरुल्लाह ख़ाँ, मुहम्मद मुनीम ख़ाँ (वाक़यानवीस) मीर हसमउद्दीन ख़ां (मुहतासिब), मीर अबू तालिब (कोतवाल), मुफ्ती मुहम्मद अकबर, अब्दुल हामिद ख़ाँ बहुत से मनसबदार अफ़सर, अमीर, हिन्दू व मुसलमान नेता, साहूकार, तथा नगर के प्रमुख नागरिक राजा के स्वागत के लिए गये। शुभ मुहूर्त में राजा ने भद्र नामक क़िले में प्रवेश किया। दरबार का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न फ़ौजदार तथा थानेदार अपने-अपने स्थान पर दरबार की रीति के अनुसार खड़े हुए। अजीतसिंह ने अहमदाबाद का शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। नाहर ख़ाँ को उसने नगर का दारोग़ा नियुक्त किया।[७५] उसने ग़ज़नी ख़ाँ जालोरी को पालनपुर का तथा जवांमर्द ख़ाँ को राधनपुर का हाकिम नियुक्त किया।[७६]

उधर दरबार में शनिवार, ७ जनवरी, सन् १७१६ ई. (२३ मुहर्रम, ११२८ हि०) को अजीतसिंह द्वारा भेजे गये अनार बादशाह के सम्मुख रक्खे गये। दो दिन बाद ६ जनवरी (२५ मुहर्रम) को अभयसिंह को बादशाह

---

७४. अजितोदय; सर्ग २२, श्लोक १५-२८; राजरूपक-४७५-७; टाड. भाग २, ६६।

७५. मीरात ३६६-७०; राजरूपक ४७७; टाड भाग २, ६६।

बादशाह ने गुजरात का फरमान नाहर खां व तोलाराम के हाथ अजीतसिंह के पास भेजा था। नाहर खां ने हुसैन अली खां के आक्रमण के समय मध्यस्थ का कार्य किया था और अजीतसिंह से उसका पूर्व-परिचय था। अतः बादशाह ने उसे महाराजा के साथ अहमदाबाद जाने की आज्ञा दी थी, ताकि वह अजीतसिंह के कार्यों पर दृष्टि रक्खे जिससे वह उचित मार्ग से न हटे।

७६. बाम्बे गैज़े. २६६।

ने ख़िलअत दी। मंगलवार, २४ जनवरी (१० सफ़र) को अजीतसिंह के लिए एक फ़रमान, ख़िलअत व जड़ाऊ सिरपेच भेजा गया, जो अगले दिन मुहम्मद वासे नामक दूत के द्वारा महाराजा के पास भेजा गया। कुछ दिन बाद सोमवार, ६ फरवरी (२३ सफ़र) को शिकार के समय अजीतसिंह के लिए दो बाज़ दो साहीबीन, आदि इनाम रक्खा गया।[७७] इस प्रकार अजीतसिंह तथा फ़र्रुख़सियर के सम्बन्ध अच्छे बने रहे। कुछ दिनों बाद बादशाह ने नागौर की फ़ौजदारी (ज़मींदारी) भी अजीतसिंह को दे दी। इस आशय का फ़रमान लेकर बहुमूल्य ख़िलअत तथा जड़ाऊ सिरपेच के साथ रज़ायार ख़ाँ अहमदाबाद आया। उसके साथ ही अहमदाबाद की सूबेदारी का फ़रमान लेकर मुहम्मद ज़माँ भी आया। महाराजा ने यथोचित सम्मान के साथ शाही फ़रमान ग्रहण किये।[७८]

अजीतसिंह ने अब अपनी सत्ता जमाना आरम्भ कर दिया। उसने मेड़ता के हाकिम भंडारी पोमसी तथा जोधपुर के हाकिम भंडारी अनूपसिंह को नागौर पर अधिकार करने के लिए ससैन्य जाने का आदेश दिया। उसकी आज्ञानुसार जोधपुर तथा सोजत की सम्मिलित सेना ने मंगलवार, २२ मई (ज्येष्ठ सुदि १३, संवत् १७७३) को उस ओर प्रस्थान किया। भंडारी पोमसी के नेतृत्व में यह सेना बुधवार, ६ जून (आषाढ़ बदि १३) को नाराधणो नामक गाँव में पहुँची, जहां इन्द्रसिंह की सेना ने इसका सामना किया। तीन प्रहर तक युद्ध होता रहा और अन्त मे नागोर की सेना भाग गई। भंडारी पोमसी ने आगे बढ़कर २३ जून (आषाढ़ सुदि १५) को नागोर के किले को घेर लिया। इसी बीच कानोत दीपावड़ी तथा कूंपावत अनूपसिंह आदि भी अपनी सेनाएँ लेकर उससे आ मिले। इन्द्रसिंह ने अब राठौड़ भींव रणछोड़ दासोत के माध्यम से सन्धि की बातचीत की परन्तु कोई आशा न देखकर अन्त में नागोर छोड़कर दिल्ली चला गया। शनिवार, ३० जून (श्रावण बदि ७) को जोधपुर की सेना ने नागोर पर पूर्णाधिकार कर लिया। जब महाराजा को यह समाचार मिला तो उसने अहमदाबाद से अपने सरदारों के लिए सिरोपाव तथा सोने की मूठ की तलवारें भेजीं, पोमसी को नागोर का हाकिम तथा भंडारी गिरधरदास को मेड़ता का हाकिम नियुक्त किया।[७९] मंगलवार, १० जुलाई (१ शाबान) को इन्द्रसिंह पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह की ओर से एक सौ अशर्फ़ियाँ बादशाह को नज़र की गईं।[८०] कुछ

---

७७. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ४, खण्ड २, २२८, २६० व २७७; जयपुर अखबारात, नं. २७७५, रा. पु. बी ; फरमान नं. ६, रा. पु. बी.।

७८. मीरात ३७०; जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ५, खण्ड २, २२९-३०। ख्यात (भाग २, १६५) व दानेश्वर (२३६) में लिखा है कि नागोर अभयसिंह को दिया गया था; परन्तु इस विषय मे मीरात-ए-अहमदी को अधिक प्रामाणिक मानना उचित प्रतीत होता है।

७९. ख्यात भाग २, १६५-६; मूंदियाड़ २५०-१; वीर-भाग २, ८४१; अजितोदय सर्ग २३, श्लोक २ १३; राजरूपक ४७८-९; राठौड़ा ५९-६०।

८०. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष, ५ खण्ड २, २७४।

महीनों के बाद फ़रवरी, सन् १७१७ ई. (रबीउलअव्वल, ११२९ हि०) को अजीत-सिंह के नाम नागोर की जमीन्दारी का फ़रमान भी जारी हुआ।[८१]

नागोर से निकलकर इन्द्रसिंह अपने पुत्र मोहनसिंह के साथ दिल्ली की ओर गया। अजीतसिंह के आदेशानुसार व्यास दीपचन्द, राठौड़ दुर्जनसिंह, राठौड़ सिवासिंह, राठौड़ मोहकमसिंह व राठौड़ फतेसिंह एक बड़ी सेना लेकर उसकी ओर गये और जब वे शेखावटी में स्थित कासली नामक गाँव में रुके हुए थे तो अवसर पाकर दुर्जनसिंह ने शिविर में प्रवेश करके मोहनसिंह को सोते में मार डाला। उसकी इस सेवा से अजीतसिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने दुर्जनसिंह का बहुत सम्मान किया और अपने साथ भोजन कराया।[८२]

सोमवार, ५ नवम्बर, सन् १७१६ ई. (१ ज़िल्हिज, ११२८ हि०) को फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को सात हजार जात, सात हजार सवार डेढ़ हजार दो अस्पा का मनसब दिया। इसके साथ ही जोधपुर व नागोर की फ़ौजदारी तथा अहमदाबाद की सूबेदारी और पचास लाख दाम भी दिये गये। इसके अलावा अहमदा-बाद के लिए एक करोड़ दाम तथा नागोर के लिए एक हजार सवार और मिले।[८३] अजीतसिंह ने बुधवार, २१ नवम्बर (१७ ज़िल्हिज) को अपने वकील गुलालचन्द तथा खींवसी भंडारी के द्वारा जड़ाऊ चुग़ा नजर कराया।[८४]

अहमदाबाद में अजीतसिंह ने मुसलमानों को सन्तुष्ट रखने का प्रयास किया। ईद के दिन वह स्वयं ईदगाह गया[८५] खुतबा सुना और बाद में क़ाज़ियों को ख़िलअत व धन दिया।[८६]

इसी बीच ३० जुलाई, सन् १७१६ ई. (२१ शाबान, ११२८ हि०) को अभयसिंह से सोरठ की फ़ौजदारी वापस लेकर अहमदाबाद के दीवान हैदरक़ुली ख़ाँ को दे दी गई।[८७] यह समाचार पाकर हैदरक़ुली ने सैयद आकिल ख़ाँ को अपना नायब बनाकर भेजा। वह जम्बूसर में सेना एकत्र करके लोलियानह नामक स्थान पर रुका। फिर उसने पलिताना लूटा। चूँकि अजीतसिंह और हैदरक़ुली के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, अतः महाराजा ने उन सभी व्यक्तियों को, जिन्होंने हैदरक़ुली की सेवा स्वीकार की थी, यह धमकी दी कि यदि सोरठ में किसी प्रकार का उपद्रव किया गया तो उनके परिवारों से बदला लिया जायेगा। गृह-युद्ध की आशंका उत्पन्न हो

---

८१. फरमान, नं. ७, रा. पु. बी.।

८२. अजितोदय सर्ग २३, श्लोक ९-१०; मूंदियाड़ २५२; ख्यात-भाग १, १६०; वीर. भाग २, ८४१; दानेश्वर २३४; ओझा भाग ४, खण्ड २, ५५५।

८३. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ५, खण्ड १, १६३।

८४. वही, खण्ड २, १२२।

८५. जयपुर अखबारात, नं. २९००, रा. पु. बी.।

८६. मीरात ३७१।

८७. कामवर. ४१९।

गई, परन्तु गोहलवार के नायब सलाबत ख़ाँ बाबी के प्रयत्न से बात सुलझ गई और सैयद आक़िल ख़ाँ सोरठ लौट गया और उसके स्थान पर हैदरकुली खाँ ने रजा क़ुली को भेजा। जब वह अमरेली तक पहुँचा तो अभयसिंह का नायब फतेहसिंह कायस्थ स्थान छोड़कर चुपचाप चला गया।[८८]

कुछ दिनों उपरान्त अजीतसिंह स्वयं पेशकश वसूल करने के विचार से निकला। जब वह नवा नगर पहुँचा तो वहाँ के जाम तमाईची से उसका युद्ध हो गया, और कई दिन युद्ध करने के बाद जाम ने पेशकश व घोड़ा आदि देकर सुलह की। मार्च, सन् १७१७ ई. (चैत्र सुदि, संवत् १७७४) में जगतशिरोमणि के दर्शन के विचार से महाराजा द्वारिका की ओर गया। मार्ग में उसने सर्वत्र पेशकश वसूल किया। इस प्रयास में हलवद के शासक झाला जसराज से युद्ध हुआ जिसमें झाला पराजित होकर भाग गया। इसके उपरान्त अजीतसिंह द्वारिकाधीश के दर्शन करने के लिये गया।[८९]

उधर अहमदाबाद में महाराजा के नायब ने विभिन्न क्षेत्रों में कठोरता का व्यवहार किया था तथा अनुचित ढंग से धन संग्रह करना आरम्भ कर दिया था। अब्दुल हमीद के एक नौकर के साथ किसी बात पर राठौड़ों का झगड़ा हो गया। बात इतनी बढ़ गई कि गृह-युद्ध की आशंका होने लगी। चूँकि उस नगर में बहुत से शाही मनसबदार तथा सैनिक अफसर उपस्थित थे, अतः राठौड़ों ने सुलह करना ही ठीक समझा।[९०] परन्तु अहमदाबाद के कुशासन के समाचार दिल्ली तक पहुँच चुके थे और कुछ ही दिन उपरान्त मई, सन् १७१७ ई. में अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया गया।

(घ) सैयद बन्धुओं से मित्रता (सन् १७१७-९ ई.)

फ़र्रुख़सियर के राज्यत्व के आरम्भ में ही उसका सैयद भाइयों के साथ जो मतभेद आरम्भ हो गया था, वह धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अब इस स्थिति तक पहुँच

---

८८. मीरात. ३७४-५; बाम्बे गैज़े. २९९-३००।

८९. मीरात ३७५-६; राजरूपक. ४८५-९३; अजितोदय. सर्ग १३, श्लोक २३-४३; सर्ग १४; श्लोक ११-६; ख्यात-भाग २, १६७; दानेश्वर. २३६; गुटका-३११ ब; जोधपुर रै राठौड़ाँ री ख्यात ७ ब; टॉड, भाग १, ६६ व ६७।

९०. मीरात. ३७६।

ख्यातों में लिखा है कि सैयद भाईयों से महाराजा का सम्बन्ध बढ़ता देख कर फ़र्रुख़सियर ने उसे गुजरात से हटा दिया। जब अजीतसिंह को यह समाचार मिला तो उसने दिल्ली में उपस्थित अपने वकील भण्डारी खींवसी को लिखा है कि चूँकि वह इन दिनों द्वारिका जी की यात्रा पर जा रहा है, अतः वह बादशाह से प्रार्थना करे कि उसे कुछ दिनों के लिए गुजरात में और रहने दिया जाय। भंडारी ने ऐसा ही निवेदन फ़र्रुख़सियर से किया। फलस्वरूप उसे चार महीने के लिए गुजरात में रहने दिया गया। परन्तु मीरात के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है।

गया था कि उसे अब दूर करना सम्भव नहीं था। फ़र्रुख़सियर की अयोग्यता के फलस्वरूप उसके सहयोगियों की संख्या क्रमशः कम होती जा रही थी। मीर जुमला उसके व्यवहार से अप्रसन्न होकर सैयद अब्दुल्ला खाँ की सहायता लेने के लिये बाध्य हो गया था। इनायतुल्ला खाँ काश्मीरी के हिन्दू-विरोधी कार्यों का समर्थन करके अब्दुल्ला खाँ ने हिन्दुओं की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी।[६१] इस प्रकार सैयदों की शक्ति काफ़ी बढ़ गई थी। यह देखकर फ़र्रुख़सियर ने विभिन्न सशक्त व्यक्तियों को अपनी सहायता के लिये बुलाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिये उसने अपने श्वसुर अजीतसिंह को शीघ्र दिल्ली आकर सैयदों का समूल विनाश करने के लिये लिखा। उसने यह आश्वासन दिया कि इसके बदले में उन्हें बहुत-सा पुरस्कार दिया जायेगा और अच्छे स्थानों में नियुक्ति की जायेगी। इसी प्रकार का संदेश उसने पटना के सूबेदार सरबुलन्द खाँ तथा मुरादाबाद के सूबेदार निज़ामुलमुल्क को भी भेजा।[६२] रविवार, १३ जनवरी, सन् १७१७ ई. (१० सफ़र, ११२६ हि.) को महाराजा के नाम फ़रमान जारी हुआ जिसमें उसे जल्दी दिल्ली पहुँचने का आदेश दिया गया था। मंगलवार, २ अप्रेल (१ जमादिउल अव्वल) को पुनः एक फ़रमान उसके नाम जारी हुआ और उसके वकील को सौंपा गया।[६३]

परन्तु बार-बार फ़रमान पाने के बाद भी अजीतसिंह स्वयं दिल्ली नहीं गया। उसने अपने वकील के द्वारा भेंट भेजकर ही बादशाह को आश्वस्त करने का प्रयास किया।[६४] सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह दिल्ली की राजनीति में स्वय को उलझाना नहीं चाहता था। साथ ही यह भी सम्भव है कि चूँकि गुजरात की सूबेदारी उसे सैयद भाइयों के प्रयत्न से मिली थी, अतः वह उनके विरुद्ध बादशाह की सहायता करने का इच्छुक न रहा हो। बादशाह ने अजीतसिंह की इस अवज्ञा तथा गुजरात में कुशासन का समाचार पाकर ही संभवतः अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया और उसके स्थान पर समसामुद्दौला खानेदौराँ नुसरतजंग को नियुक्त किया और शनिवार, २५ मई (२४ जमादिउस्सकी) को अब्दुल हमीद खाँ ख़ानेदौरां को नायब नियुक्त किया गया। यह समाचार पाकर महाराजा उत्तेजित हो उठा और तेजी के साथ अहमदाबाद लौटकर उसने शाही बाग़ को घेर लिया। अब्दुल हमीद उसका सामना करने के लिये पूरी तरह तैयार था। स्थिति गम्भीर देखकर नाहर खाँ ने अजीतसिंह को समझाया कि इस समय

---

६१. सतीशचन्द्र. ११६ व १२८।

६२. रोजनामचा १६६; खफी खाँ भाग २, ७६१; सीयर ११६; मआसिर ७१०; स्काट. १५४; ख्यात भाग २, १७०; इरविन भाग १, ३४८।

६३. फरमान, नं. ८, रा. पु. बी., जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ६, खण्ड १, १६५।

६४. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ६, खण्ड १, ४३ व २५३।

सोमवार, १८ फरवरी (१७ रबीउलअव्वल) को अजीतसिंह के वकील भण्डारी खींवसी ने उसकी ओर से दो सौ मुहरें बादशाह को नजर कीं॥

वह शाही सेना का सामना न कर सकेगा, और यह भी कहा कि बादशाह की आज्ञा का विरोध न करके उसे जोधपुर वापस चले जाना चाहिये।[९५] अजीतसिंह ने उसकी सलाह मान ली और जोधपुर के लिये प्रस्थान करके जुलाई, सन् १७१७ ई. (श्रावणबदि, संवत् १७७४) के महीने मे जोधपुर जा पहुँचा।[९६] उसने बादशाह को अर्जदाश्त भेजी जो ९ सितम्बर (१३ शव्वाल, ११२९ हि) को उसके वकील भंडारी खींवसी तथा गुलालचन्द ने बादशाह के सम्मुख रक्खी। इसमें महाराजा ने फ़र्रुख़सियर से नाहर ख़ाँ को भेजने का अनुरोध किया था, और लिखा था कि जब तक नाहर ख़ाँ जोधपुर नहीं आयेगा, वह दिल्ली के लिये प्रस्थान नही करेगा। चूँकि पिछले कई वर्षों से नाहर ख़ाँ अजीतसिंह के पास था, सम्भवतः इसीलिये अजीतसिंह को उस पर विश्वास था। फ़र्रुख़सियर ने उसकी बात स्वीकार करके नाहर ख़ाँ को जोधपुर भेज दिया।[९७]

नाहर ख़ाँ यद्यपि बादशाह की ओर से जोधपुर गया था, परन्तु वास्तव में वह सैयदों से मित्रता रखता था। अजीतसिंह भी गुजरात वापस लिये जाने के बाद से ही बादशाह से असन्तुष्ट था। सम्भवतः वह समझ गया था कि बादशाह से मित्रता करना लाभकर नहीं है। इसके विपरीत सैयदों से एक बार गुप्त समझौता करके वह गुजरात का सूबा प्राप्त कर चुका था। अतः यद्यपि बादशाह उसका दामाद था, तथापि उसने नाहर ख़ाँ की सलाह स्वीकार करके सैयदों का साथ देने का निश्चय किया।[९८] नाहर ख़ाँ से बातचीत करके उसने यह तय किया कि वह दशहरे के उपरान्त दिल्ली के लिये प्रस्थान करेगा। बादशाह को यह समाचार १० सितम्बर, सन् १७१७ ई० (१४ शव्वाल, ११२९ हि०) को मिला और उसने ९ अक्तूबर (१४ ज़िल्क़ाद)को अजीतसिंह के नाम फ़रमान, खिलअत, तथा पुरस्कार भेजा।[९९]

बृहस्पतिवार, २८ नवम्बर (५ मुहर्रम, ११३० हि.) को बादशाह को पता चला कि अजीतसिंह ने बुधवार, ६ नवम्बर (१२ ज़िल्हिज) को जोधपुर से दिल्ली के लिये प्रस्थान कर दिया है। सोमवार, ३० दिसम्बर (७ सफ़र) को अजीतसिंह के मेड़ता पार करने का समाचार उसे मिला। शनिवार, ८ फ़रवरी, सन् १७१८ ई० (१८ रबीउल-अव्वल) को अजीतसिंह ने खींवसी के द्वारा एक सौ अशर्फ़ियाँ तथा दो सौ

---

९५. मीरात. ३७७।

९६. राजरूपक ४९४।

९७. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ६, खण्ड १, ४३; रोजनामचा. १९६; ख्यात. भाग १, १७०।

९८. रोजनामचा. २९६।

मुन्तखल-उल-लुबाब (खफी खाँ भाग २, ७९३ व ७९३; सीयर (११६) मआसिर (१७५) में भी लिखा है कि अजीतसिंह ने सैयदों का पक्ष लिया था। अजितोदय (सर्ग २५, श्लोक २२-६) तथा राजरूपक. (६९४-५) में लिखा है कि कुतुबुल्मुल्क ने महाराजा अजीतसिंह को पत्र लिखा था और सहायता देने की प्रार्थना की थी।

९९. जयपुर अखबारात, वर्ष ६, खण्ड १, २५४ व ३४४।

मुहरें बादशाह को नज़र करवाई।[१००] जब अजीतसिंह दिल्ली से कुछ दूरी पर रह गया तो मंगलवार, १५ जुलाई (२७ शाबान) को पुन: अजीतसिंह के नाम फरमान भेजा गया। अगस्त के मध्य (शव्वाल के आरम्भ) में अजीतसिंह दिल्ली के निकट पहुँच गया। यह समाचार पाकर सोमवार, १८ अगस्त, (२ शव्वाल) को इतिक़ाद ख़ाँ को अजीतसिंह के लिए जड़ाऊ कमरपटका तथा फ़रमान आदि देकर उसे राजधानी में लाने का आदेश दिया गया।[१०१] इस प्रकार अजीतसिंह को जोधपुर से दिल्ली पहुँचने में लगभग आठ महीने लग गये। सम्भवत: इतना अधिक समय उसने इस कारण लगाया कि वह दिल्ली जाने के लिए विशेष उत्सुक न था।

बुधवार, २० अगस्त (४ शव्वाल) को जब अजीतसिंह मल्हनशाह के बाग़ में ठहरा था तो इतिकाद ख़ाँ बादशाह द्वारा भेजी गई भेंट लेकर अजीतसिंह के पास गया। सम्भवत: इसी समय बादशाह ने अजीतसिंह को एक फ़रमान भी भेजा था, जिसमें जोधपुर व मुग़ल दरबार के बीच कई पीढ़ियों से चली आ रही मित्रता पर बल दिया गया था और भविष्य मे भी शाही सहयोग का आश्वासन दिया था। इतिक़ाद ख़ाँ महाराजा से मिला और उसने उससे अगले दिन बादशाह से भेंट करने के लिए कहा। परन्तु अजीतसिंह को फ़र्रुख़सियर की बातों पर विश्वास न था, अत: उसने कहा कि जब तक अब्दुल्ला ख़ाँ उसके साथ दरबार में नही जायेगा तब तक बादशाह से नहीं मिलेगा। इतिक़ाद ख़ां ने अनेक प्रकार से अजीतसिंह को समझाया, परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला।[१०२] सम्भवत: इसी समय अजीतसिंह ने अन्य शर्तें भी रक्खी। उसने कहा कि उसके स्वागत के लिए कुछ बड़े-बड़े सरदार भेजे जायँ, उसके सवार पद में उन्नति की जाय, इनाम में जागीर दी जाय और माही मरातिब तथा राजराजेश्वर की उपाधि दी जाय।[१०३]

इतिक़ाद ख़ाँ ने बादशाह के पास जाकर सब बातें सुनाईं। सम्भवत: फ़र्रुख़सियर अभी तक यही समझता था कि महाराजा उसकी सहायता के लिए जोधपुर से आ रहा है। अब स्थिति स्पष्ट हो जाने पर स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए अथवा महाराजा को सन्तुष्ट करके अपनी ओर करने के विचार से उसने अपने वज़ीर अब्दुल्ला ख़ाँ को यह संदेश भेजा कि वह अगले दिन दरबार में उपस्थित हो और महाराजा को भी इस बात की सूचना देकर दरबार में आने के लिये कहे।[१०४]

---

१००. वही वर्ष ६, खण्ड २, ६१ व १७८; वर्ष ७,३३।
१०१. वही, भाग २१ वर्ष ७, ७५, ७९-८०।
१०२. रोजनामचा. १९९; फरमान, नं. २७, रा. पु. बी.।
कामवर. (४२९) ने इतिकाद खां के भेंट करने की तिथि ३० अगस्त (१४ शव्वाल) स्वीकार की है, परन्तु मिर्जा मुहम्मद के उल्लेख को ठीक मानना अधिक उचित है।
ख्यात. (भाग २, १७०) में खाँनेदौरां तथा कोटा के महाराव भीमसिंह को महाराजा के पास भेजना स्वीकार किया गया है। राजरूपक (४९८) के अनुसार जब अजीतसिंह सराय अलाहवर्दी की सराय पर पहुँचा तो सैयद अब्दुल्ला खाँ उससे मिला और दोनों के बीच जयसिंह तथा मुगलों के विरुद्ध मित्रता हो गई। परन्तु फारसी ग्रन्थों को ही मान्यता दी गई है।
१०३. मुतर्फरिक अहलकारान, नं. ३१३, रा. पु. बी.।
१०४. रोजनामचा. २००; इरविन-भाग १, ३७९।

बृहस्पतिवार, २१ अगस्त (५ शव्वाल) को इतिक़ाद ख़ाँ तथा खानेदौरां महाराजा को लाने के लिये गये। क़ुतुबुल्मुल्क भी इस दिन दरबार मे उपस्थित हुआ। महाराजा के मन में बादशाह के प्रति अविश्वास इतना अधिक था कि वह पग-पग पर रुक जाता था। सर्वप्रथम क़िले के द्वार पर पहुँचते ही वह रुक गया, और जब उसे विश्वास हो गया कि अब्दुल्ला ख़ाँ अन्दर उपस्थित है तब वह किले में प्रविष्ट हुआ। दीवाने-आम के द्वार पर पहुँचकर उसने पुनः आगे जाने से इन्कार कर दिया। इतिक़ाद ख़ाँ और खानेदौराँ ने बड़ी कठिनाई से उसे आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। पुनः दीवाने-खास के द्वार पर पहुँचकर तो वह अड़ ही गया। तब क़ुतुबुल्मुल्क स्वयं वहाँ आया और उस का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर ले गया।[१०५]

भेंट के समय अजीतसिंह ने बादशाह को एक हज़ार एक सौ मुहरें तथा पाँच हज़ार रुपया निछावर किया और तीन हाथी पेशकश में दिये। बादशाह यद्यपि मन ही मन महाराजा के व्यवहार से असन्तुष्ट था, तथापि उसने उदारता का प्रदर्शन करके उसे अपनी ओर मिलाने का एक प्रयत्न और किया। उसने महाराजा को सात हजार ज़ात, सात हज़ार सवार, एक हजार सवार, दो अस्पाका मनसब तथा एक करोड़ पचास लाख दाम इनाम में दिये। पुनः पुरस्कार में एक हज़ार सवार तथा एक करोड़ दाम की वृद्धि की गई। 'राजराजेश्वर' की उपाधि जोधपुर राज्य के इतिहास में प्रथम बार अजीतसिंह को प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त जड़ाऊ सिरपेच, जड़ाऊ खंजर, दो घोड़े, एक हाथी, माहीमशतिब, तथा छः थान पुरस्कार में मिले। अजीत सिंह के साथियों को भी ख़िलअतें मिलीं।[१०६]

बादशाह की इस उदारता का प्रभाव राजराजेश्वर अजीतसिंह पर तनिक भी न पड़ा। सम्भवतः हुसैन अली के आक्रमण के बाद से अजीतसिंह का सम्पर्क सैयद भाइयो से बना हुआ था, और उनके समर्थक नाहर ख़ाँ ने धीरे-धीरे महाराजा के मन में बादशाह के प्रति गहरा अविश्वास उत्पन्न कर दिया था। फलतः दिल्ली पहुँचने पर वह बादशाह पर विश्वास न कर सका। धीरे-धीरे अब्दुल्ला ख़ाँ से उसकी घनिष्टता बढ़ती गई। बादशाह से भेंट करने के उपरान्त अगले लगभग बीस दिन तक न तो अजीतसिंह दरबार में आया न अब्दुल्ला ख़ाँ। परस्पर एक दूसरे के घर दोनों आते-जाते रहे। ८ सितम्बर (२३ शव्वाल) को अजीतसिंह क़ुतुबुल्मुल्क के घर गया और उसने महाराजा को दो घोड़े, दो थान पारचा, तथा एक तलवार देकर उसका मान बढ़ाया। उनके दूत प्रायः एक दूसरे के घर जाते आते रहे।[१०७] इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी मित्रता पक्की होती गई।

---

१०५. रोजनामचा. २००; इरविन. भाग १, ३४९-५०।
अजितोदय. (सर्ग २६, श्लोक १-३७); राजरूपक (५०१-२); दानेश्वर (२३७) में भी अजीतसिंह के बादशाह से भेंट करने का वर्णन है।

१०६. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, ८१; ख्यात भाग २, २००-१; रोजनामचा. २००-१; खफी खाँ. भाग २, ९९३; मआसिर-१७५; सीयर ११६; राजरूपक ५०२-३; दानेश्वर. २३७।

१०७. रोजनामचा. २०१ जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १००। राजरूपक (५०३-४); अजितोदय. (सर्ग २६, श्लोक ४८-५१) में अजीतसिंह व कुतुबुल्मुल्क की मैत्री बढ़ने का उल्लेख है।

अजीतसिंह तथा वजीर अब्दुल्ला खाँ की बढ़ती हुई मित्रता से फ़र्रुख़सियर शंकित हो उठा, और उसने अपने उच्चाधिकारियों को भेज-भेज कर दोनों को दरबार में आने के लिये प्रेरित किया। सर्वप्रथम इतिक़ाद ख़ाँ इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया। परन्तु वह महाराजा को बादशाह की ओर से आश्वस्त न कर सका। तब अफ़ज़ल ख़ाँ ने प्रयत्न किये, परन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली। अन्त में सरबुलन्द ख़ाँ और ख़ानेदौरां को यह कार्य सौंपा गया। यह दोनों अजीतसिंह और अब्दुल्ला ख़ाँ से मिले और उन्हें समझा-बुझाकर दरबार में आने के लिये तैयार कर लिया। बुधवार, १० सितम्बर (२५ शव्वाल) को वे दोनों पुनः अजीतसिंह के शिविर में गये और यह तय हुआ कि अगले दिन वह अब्दुल्ला के साथ दरबार में उपस्थित होगा।[१०८] बृहस्पतिवार, ११ सितम्बर (२६ शव्वाल) को अजीतसिंह क़ुतुबुलमुल्क के घर गया। निश्चित योजनानुसार वहीं पर सरबुलन्द ख़ाँ और, ख़ानेदौरां भी आ गये। यह दोनों व्यक्ति एक ही हाथी पर आगे-आगे चले और उनके पीछे दूसरे हाथी पर महाराजा व वज़ीर दरबार की ओर गये।[१०९] अजीतसिंह ने भेंट के समय बादशाह को आठ घोड़े पेशक़श नज़र किये। बादशाह ने उसे ख़ास ख़िलअत, एक जड़ाऊ कलंगी व एक मोतियों की माला दी।[११०]

---

१०८. रोजनामचा. २०१; जयपुर अखबारात; फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १०१। ख्यात (भाग २, २७०) व दानेश्वर (२३७) में १० सितम्बर के स्थान पर ११ सितम्बर (आश्विन बदि. १३) की तिथि स्वीकार की गई है। परन्तु समकालीन इतिहासकार मिर्जा मुहम्मद और अखबारात को ही प्रामाणिक मानना उचित है।

१०९. रोजनामचा २०२-३; कामवर-४३०; ख्यात भाग २, १७०-१; दानेश्वर-२३८। दानेश्वर व ख्यात के अनुसार अजीतसिंह व अब्दुल्ला खाँ लौटती बार एक ही हाथी पर बैठे थे। उन्हें एक साथ बैठता देखकर ऊदावत अमरसिंह कुशलसिंहोत (नीबाज का) सम्भवतः महाराजा की सुरक्षा के विचार से चंवर करने के निमित्त हाथी के हौदे के पीछे जा बैठा। इसी समय से सरदारों के पीछे बैठने की प्रथा चल पड़ी। इन ग्रन्थों में लिखा है कि बादशाह ने अजीतसिंह को इसी समय गुजरात की सूबेदारी दी थी जो ठीक नहीं है। गुजरात कुछ महीनों के बाद दिया गया था।

११०. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १०२; कामवर ४३० ख्यात. भाग २, १७०; दानेश्वर २३८।

रोजनामचा (२०३) में लिखा है कि कुतुबुलमुल्क के कहने पर बादशाह ने अजीतसिंह को बीकानेर दिया था। इरविन (भाग १, ३५१) ने भी इसे स्वीकार किया है। परन्तु अन्यत्र कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है, न अखबारात में ही इसे स्वीकार किया गया है। ऐसी स्थिति में इस कथन की प्रामाणिकता में संदेह है। यदि ऐसा होता तो अजीतसिंह बीकानेर पर तुरन्त अधिकार करता, पर ऐसा नहीं किया गया।

पाउलेट (४७) ने लिखा है कि सन् १७१९ ई. में अजीतसिंह ने सुजानसिंह को पकड़ने का एक प्रयत्न किया था। उसने व्यास दीपचन्द की अध्यक्षता में लगभग पांच सौ सैनिक भेजे। यह दल अजीतसिंह के राजकुमार उत्पन्न होने की खुशी में भेंट व बधाई लेकर गया था। महाराजा ने इन्हें गुप्त आदेश दिया था कि यदि अवसर मिले तो राजा को पकड़ लाना अन्यथा भेंट देकर लौट आना। इस समय सुजानसिंह केवल थोड़े से व्यक्तियों के साथ शिकार के लिए गया था। एक जैन साधु सृपुज्जा को आन्तरिक प्रेरणा से विदित हुआ कि महाराजा का जीवन संकट में है। उसने सुजानसिंह को संदेश भेजा कि जोधपुर वाले उसकी घात में हैं। तब राजा तुरन्त किले में लौट गया। थोड़ी ही देर बाद जोधपुर का दल आया व भेंट देकर लौट गया। अजीतसिंह का आंतरिक उद्देश्य असफल रहा। ओझा. (ओझा. भाग ५, खण्ड १, १९९; भाग ४, खण्ड २, ५६८-९) ने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु बादशाह ने बीकानेर का अधिकार अजीतसिंह को सौंपा हो, इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

इस प्रकार फ़र्रुखसियर ने बार-बार प्रयत्न किया कि अजीतसिंह उसके विरोधी सैयद भाइयों का साथ छोड दे, परन्तु महाराजा पर उसके इन प्रयत्नों का कोई प्रभाव नही पड़ा। चूंकि अजीतसिंह की पिछले कई दिनों से सैयद अब्दुल्ला खाँ के साथ घनिष्ठता थी, अतः सम्भवतः उसी के प्रभाव से अजीतसिंह के हृदय में बादशाह के प्रति अविश्वास दिनप्रतिदिन बढ़ता गया था। इसके साथ ही वह स्पष्ट देख रहा था कि फ़र्रुखसियर अस्थिर मति का व्यक्ति है, और किसी भी व्यक्ति के प्रभाव में आकर बिना सोचे समझे कुछ भी कर बैठता है। बादशाह की इस दुर्बलता के कारण उसके सहयोगियों की संख्या दिनप्रतिदिन कम होती जा रही थी और सैयद भाइयों की शक्ति बढती जा रही थी। सम्भवतः यही कारण था कि महाराजा ने बादशाह का पक्ष नही लिया।

अजीतसिंह को पुरस्कार, मनसब व पदवी देकर भी जब फ़र्रुखसियर उसे अपनी ओर न मिला सका तब उसने उसे क़ैद करने का निश्चय किया। एक दिन वह शिकार पर गया और लौटती बार क़ुतुबुलमुल्क के घर जाने का निश्चय किया, जो उन दिनों बीमार था। योजना यह थी कि चूंकि अजीतसिंह का घर मार्ग में आता है, अतः वह निश्चय ही भेंट आदि लेकर रास्ते में उपस्थित होगा, इसलिये उसी समय उसे पकड़ लिया जायेगा। उधर अजीतसिंह को सम्भवतः बादशाह की योजना का पता चल गया अतः वह उस दिन पहले से ही अब्दुल्ला खाँ के घर चला गया। बादशाह को जब यह समाचार मिला तो वह अपने षडयंत्र की असफलता पर खीझ उठा। यद्यपि शाही अधिकारी बादशाह के आने की सूचना देने के लिये वज़ीर के घर जा चुके थे, और वह बादशाह के स्वागत के लिये द्वार पर खड़ा था, तथापि बादशाह ने उसके घर जाने से इन्कार कर दिया और सीधा महल में चला गया।[१११] सम्भवतः इस

---

१११. खफ़ी खाँ भाग २, ८०२-३; सीयर. १२२।
रोजनामचा (२११) के अनुसार बादशाह २० सितम्बर, सन् १७१८ ई० को (६, जिल्काद, ११३० हि०) को शिकार पर गया था। इस ग्रन्थकार ने इस घटना को साधारण रूप में दिया है, षड़यन्त्र नही बताया है। इरविन (भाग १, ३५३-४) का भी यही मत है। परन्तु बादशाह को दोष-मुक्त नहीं किया जा सकता। यदि उसके मन में पाप न होता तो वह अब्दुल्ला खाँ के घर जाने का विचार न छोड़ता। वह कई बार अजीतसिंह को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न कर चुका था। कुतुबुलमुल्क के घर उसे इसका सहज ही एक अन्य अवसर मिलता। सम्भवतः बादशाह के मन मे संदेह उत्पन्न हो गया था कि महाराजा को उसके षड़यन्त्र का पता चल गया है।

राठौड़ा (६१); दानेश्वर (२३८); ख्यात-(भाग २, १७१) में इस घटना से पूर्व भी एक बादशाह द्वारा अजीतसिंह को मारने के एक प्रयत्न का वर्णन है। इनमें लिखा है कि एक बार बादशाह ने दावत दी जिसमें एक स्थान खोखला रक्खा गया तथा ऊपर चादर बिछा दी गयी। यह निश्चित हुआ कि इसी स्थान पर अजीतसिंह को बैठाया जायेगा और जब वह गिर जायेगा तो उसे कैद कर लिया जायेगा। परन्तु महाराजा की पुत्री इन्द्रकुंवर ने उसे सूचना दे दी। फलतः वह सावधान हो गया तथा निश्चित स्थान पर नहीं बैठा। प्रस्तुत घटना के विषय में ख्यातकार ने लिखा है कि बादशाह ने शिकार के बहाने महाराजा की हवेली पर आक्रमण करने का निश्चय किया था। अब्दुल्ला खाँ को इसका पता चल गया और वह लगभग २० हजार सवार लेकर महाराजा के डेरे पर चला गया। तब बादशाह ने विचार छोड़ दिया। अजितोदय (सर्ग २७, श्लोक १-५; सर्ग २७, श्लोक १२-३) में भी ऐसे प्रयत्नों का उल्लेख है।

महाराजा ने सीकदार दयालदास को एक पत्र लिखा था (ग्लोरीज़, परिशिष्ट ब ९, ११४-५) जिसमें उसने बताया है कि बादशाह ने जयसिंह तथा मियाँ (?) की सलाह से उसे मारने के कई प्रयत्न किये हैं। अतः इस घटना को सत्य मानना ही उचित जान पड़ता है।

घटना का परिणाम यह हुआ कि अजीतसिंह के मन में बादशाह के प्रति अविश्वास और बढ़ गया और वह अब्दुल्ला ख़ाँ का अन्तरग साथी बन गया और अगले वर्षों में दिल्ली की राजनीति में जो भी परिवर्तन हुये उनमें अजीतसिंह का प्रमुख हाथ रहा।

अजीतसिंह की शक्ति इस समय तक बहुत बढ़ चुकी थी। फलतः वे सभी शाही पदाधिकारी, जो फ़र्रुख़सियर से असन्तुष्ट थे, उससे अच्छा सम्बन्ध बनाये रखना हितकर समझते थे। इन्हीं दिनों इतिक़ाद ख़ाँ (मुहम्मद मुराद काश्मीरी) को उच्च पद देने के कारण ख़ानेदौराँ तथा सरबुलन्द ख़ाँ फ़र्रुख़सियर से अप्रसन्न हो गये, और शुक्रवार, १२ सितम्बर (२७ शव्वाल) को अजीतसिंह के डेरे पर जाकर उससे मिले। अजीतसिंह ने भी उनसे अच्छा सम्बन्ध रखना उचित समझा और उन्हें घोड़ा, सिरपेच, हाथी देकर उनका सम्मान किया। दो दिन बाद १४ सितम्बर (२९ शव्वाल) को वह स्वयं भी ख़ानेदौरां के घर गया। ख़ानेदौरां ने उसे एक हाथी, पाँच घोड़े, सात पारचा, एक जड़ाऊ तलवार तथा एक जड़ाऊ खंजर भेंट किया।[११२]

स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी थी कि अजीतसिंह और अब्दुल्ला ख़ाँ बादशाह की ओर से सदैव आशंकित रहते थे और उनका जीवन भी संकट मुक्त न था। फलतः उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया। अब्दुल्ला ख़ाँ ने बहुत से नये सैनिकों की भर्ती की। फ़र्रुख़सियर इस सूचना से चिन्तित हो उठा। इसी समय सैयद हुसैन अली ख़ाँ के मरहठा सैनिकों के साथ दक्षिण से आने का समाचार भी उसे मिला। अब बादशाह मित्रता के लिए विशेष उत्सुक हो उठा। इसी उद्देश्य से १७ नवम्बर, सन् १७१८ ई० (५ मुहर्रम, ११३१ हि०) को वह कुतुबुलमुल्क के घर गया और उसने सुलह की बातचीत आरम्भ की। फलस्वरूप अगले ही दिन १८ नवम्बर (६ मुहर्रम) को अजीतसिंह व अब्दुल्ला ख़ाँ दोनों दरबार में आये और दोनों पक्षों ने मेल जोल के वायदे किये।[११३] बादशाह अजीतसिंह की शक्ति से इतना भयभीत हो गया था कि उसने महाराजा को सन्तुष्ट रखने का पूरा प्रयत्न किया। ८ दिसम्बर (२६ मुहर्रम) को जब शाही तोपख़ाने के बीका (टीका) हज़ारी नामक एक सरदार के अधीनस्थों का किसी बात पर अजीतसिंह के सैनिकों से मतभेद हो

---

११२. जयपुर अखबारात फ़र्रुख़सियर, भाग २१, वर्ष ७, १०३ व १११; सतीशचन्द्र १३६।

इसके बाद अजीतसिंह का सम्बन्ध उन सभी शाही कर्मचारियों से अच्छा रहा जो बादशाह से असन्तुष्ट थे। कुछ दिन बाद जब सरबुलन्द ख़ाँ को काबुल की सूबेदारी पर नियुक्त किया गया और उसने उस ओर प्रस्थान किया तो २९ जनवरी, सन् १७१९ ई० १६ (रबीउलअव्वल, ११३१ हि०) को महाराजा अपने अन्य साथियों के साथ शहर से बाहर नमक की मण्डी के पास उससे मिलने गया था। (रोज़नामचा २३६; कामवर ४३५–६; इरविन. भाग १, ३७०)।

११३. खफ़ी ख़ाँ. भाग २, ८००; स्कॉट १५६; सीयर ११८; अजितोदय, सर्ग २७, श्लोक ७–११।

सीयर में लिखा है कि बादशाह ने अजीतसिंह को भेजकर अब्दुल्ला ख़ाँ से मैत्री की थी; परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि अजीतसिंह स्वयं ही बादशाह से अप्रसन्न था।

गया और नगर में युद्ध होने लगा तो फ़र्रुख़सियर ने तत्काल ख़ुसरोनामगार, ग़ाज़ी-उद्दीन ख़ाँ बहादुर, सैयद क़ुली ख़ाँ, सैयद नज़मुद्दीन अली ख़ाँ आदि को भेजकर शान्ति स्थापित करवाई। बादशाह ने तुरन्त ही जफ़र खाँ बहादुर को अजीतसिंह के पास भेजकर उसे शान्त करवाया। फ़र्रुख़सियर के इस प्रयत्न के फलस्वरूप अजीतसिंह तथा बादशाह के सम्बन्ध ठीक रहे, और अगले ही दिन अजीतसिंह अब्दुल्ला के साथ दरबार में गया और दोनों ने मुहरें निछावर की।[११४] शुक्रवार, १३ दिसम्बर (१ सफ़र) को शिकार से लौटते समय अब्दुल्ला खाँ के साथ बादशाह अजीतसिंह के घर गया। इसके बाद महाराजा दरबार में आता जाता रहा।[११५] मंगलवार, २३ दिसम्बर (११ सफ़र) को अजीतसिंह के नाम एक फ़रमान जारी हुआ जिसके अनुसार उसे पुराना मनसब तथा जोधपुर राज्य पुनः दिया गया। पाँच दिन बाद २८ दिसम्बर (१६ सफ़र) को अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी दूसरी बार दी गई, और इसके साथ ही उसे कमरपटका, जड़ाऊ सिरपेच, घोड़ा व हाथी इनाम में दिया गया।[११६]

इस प्रकार बादशाह के प्रयत्नों के फलस्वरूप अजीतसिंह व अब्दुल्ला ख़ाँ दरबार में आने-जाने लगे। सम्भव था कि अजीतसिंह तथा फ़र्रुख़सियर के बीच धीरे-धीरे सौहार्द्र बढ़ जाता, परन्तु कुछ ही दिन बाद हुसैन अली खाँ दक्षिण से वापस आ गया और राजधानी के निकट पहुँचा तो मंगलवार, १० फ़रवरी (१ रबीउस्सानी) को अब्दुल्ला ख़ाँ, अजीतसिंह और कोटा का महाराव भीमसिंह उससे मिले। परस्पर विचार-विमर्श हुआ। हुसैनअली ख़ाँ बादशाह के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहता था और उसे सिंहासन से हटाने के पक्ष में था। अजीतसिंह भी सम्भवतः ऐसा ही विचार रखता था। बादशाह की दुर्बलता उसे स्पष्ट हो चुकी थी और सम्भवतः उसे यह आशा थी कि फ़र्रुख़सियर के बाद उसकी और अधिक प्रगति हो सकेगी। अन्त में यह निश्चय किया गया कि बादशाह से दीवाने-ख़ास की दरोगाई तथा तोपख़ाने पर पूर्णाधिकार तथा जयसिंह को जयपुर

---

११४. कामवर. ४३४; इरविन भाग १, ३६३।

११५. इस अवसर पर अजीतसिंह ने बादशाह को नौ थान वस्त्र, एक जड़ाऊ तलवार, एक जड़ाऊ जमधर, एक सिरपेच, एक चुग़ा, सात घोड़े, चार हाथी व एक लाख रुपये नक़द भेंट किया। बादशाह ने लौटते हुये उसे ख़िलअत, जड़ाऊ सिरपेच व दो घोड़े इनाम दिये। अगले ही दिन अजीतसिंह अब्दुल्ला खाँ के साथ दरबार में गया।

कुछ दिन बाद १८ दिसम्बर-(६ सफ़र) को वह पुनः दरबार गया तो उसे वस्त्र, चुग़ा व जड़ाऊ सिरपेच मिला।

(रोज़नामचा. २१९-२० व २२५; कामवर. ४३४ व ४३५; राजरूपक. ५०७; टाड. भाग २, ६७; इरविन : भाग १, ३६३)।

११६. फ़रमान नं० ६, रा० पु० बी०; रोजनामचा २२७; कामवर ४३४; इरविन-भाग १, ३६४।

अजितोदय (सर्ग २७, श्लोक १११) में भी लिखा है कि अजीतसिंह व अब्दुल्ला ख़ाँ दोनों साथ-साथ दरबार में आया करते थे।

वापस भेजने की मांग की जाय। जब वह इन बातों को स्वीकार करले और सभी स्थानों पर विश्वसनीय व्यक्ति नियुक्त हो जायें, तभी हुसैन अली खाँ नगर में प्रवेश करे।[११७]

इस समय तक अजीतसिंह तथा अब्दुल्ला खाँ ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। हुसैनअली खाँ के दक्षिण से ससैन्य वापस आने से इन लोगों की शक्ति बहुत बढ़ गई। दूसरी ओर फर्रुखसियर दिन प्रतिदिन शक्तिहीन होता जा रहा था। खानेदौरां, सरबुलन्द ख़ाँ, मीर जुमला आदि उसके सभी सहयोगी धीरे-धीरे उसका साथ छोड़ चुके थे। इस स्थिति में सैयद भाइयों की उक्त सभी माँगों को स्वीकार करने के अतिरिक्त बादशाह के पास दूसरा कोई मार्ग नहीं था। बादशाह की स्वीकृति मिल जाने के बाद यह निश्चित किया गया कि शनिवार, १४ फ़रवरी (५ रबी--उस्सानी) को महल व तोपख़ाने में अजीतसिंह और सैयदों के सैनिक नियुक्त किये जायेंगे और उसके बाद हुसैनअली ख़ाँ बादशाह से भेंट करेगा। निश्चित तिथि को अजीतसिंह और अब्दुल्ला ख़ाँ सबेरे ही दरबार में गये और उन्होंने सभी शाही अधिकारियों को हटाकर अपने व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया। सब प्रबन्ध हो जाने पर एक प्रहर दिन बीतने के उपरान्त हुसैनअली ख़ाँ आकर बादशाह से मिला। भेंट के समय केवल दोनों सैयद भाई तथा अजीतसिंह ही उपस्थित थे। बातचीत रात तक चलती रही। परन्तु मतभेद इतने बढ़ चुके थे कि बात सुलझना दुष्प्राय था।[११८] इस वार्ता का परिणाम केवल इतना हुआ कि फ़र्रुख़सियर तीन दिन के लिये और मुग़ल-सम्राट बना रहा।

इसी बीच सैयद--बन्धु, अजीतसिंह भीमसिंह तथा किशनगढ़ के राजा राजसिंह ने मिलकर बादशाह के मित्र बूँदी के शासक बुधसिंह के शिविर पर आक्रमण किया। बुधसिंह के कई व्यक्ति मारे गये, पर वह स्वयं भाग निकला।[११९]

मंगलवार, १७ फरवरी (८ रबीउस्सानी) को अब्दुल्ला ख़ाँ बादशाह से पुनः मिला। इस बार भेंट में दोनों ही क्रोधित हो गये। बादशाह ने स्पष्ट रूप से और सुविधाएँ देना अस्वीकार कर दिया और क्रोधित होकर हरम में चला गया। इस पर अब्दुल्ला ख़ाँ ने शाही बन्दूकची, तोपची तथा दुर्ग-रक्षकों व अन्य सभी अधिकारियों को हटाकर अपने सहयोगियों को नियुक्त कर दिया। बादशाह के पास इतिक़ाद ख़ाँ, जफर ख़ाँ तथा दो-तीन नौकरों के अतिरिक्त कोई नहीं रहा। सैयद अब्दुल्ला ख़ाँ ने पेशख़ाना में स्थिति सम्भाली और महाराजा अजीतसिंह, महाराव भीमसिंह तथा राजा गजसिंह नरवरी को दीवानी तथा ख़ानेसामान पर अधिकार करने भेजा।

---

११७. रोज़नामचा. २३८; ख्यात. भाग २, १७२; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ३४-८; इरविन भाग १, ३७४।

११८. रोज़नामचा २३९-४०; ख़फ़ी ख़ाँ भाग २, ८०६; सीयर. १२९; इबरतनामा ९८ ब; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ३९; इरविन. भाग १, ३७६।

११९. वंश-भाग ४, ३०६६-७।

दीवाने-ख़ास, शयनागार तथा अदालत की कुंजियाँ भी मँगवा लीं गईं और क़िले व महल के समस्त द्वार बन्द कर दिये गये तथा महल के चारों तरफ कड़ी निगरानी रक्खी गई। अजीतसिंह के राजपूत, सैयद बन्धुओं की सेना तथा चूड़ामन जाट के साथी स्थान-स्थान पर नियुक्त किये गये और उन्हें सदैव सचेत रहने की आज्ञा दी गई। अजीतसिंह, अब्दुल्ला ख़ाँ तथा भीमसिंह सारी रात क़िले में रहे और रात्रि भर विचार-विमर्श करते रहे। यद्यपि कुतुबुलमुल्क की इच्छा फ़र्रुख़सियर को ही बादशाह बनाये रखने की थी परन्तु अन्य सभी उसको क़ैद करने के पक्ष में थे। महाराजा अजीतसिंह ने भी फ़र्रुख़सियर को हटाने की सलाह दी। बादशाह ने जब क़ुतुबुलमुल्क की माँगें मानने तथा हरम से बाहर आने से इन्कार कर दिया तो अब्दुल्ला ख़ाँ ने भी फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारना स्वीकार कर लिया।[१२०] बादशाह को हरम से बाहर लाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वह सम्भवत: वहीं अपने को सुरक्षित समझता था, अत: वह बाहर नहीं आया। तब कुछ व्यक्ति ज़बरदस्ती अन्दर घुसे और उसे बलपूर्वक बाहर लाकर क़ैद कर लिया गया।[१२१] इस प्रकार मुग़ल-सम्राट् को गद्दी से हटाने में अजीतसिंह का मुख्य हाथ रहा।

---

१२०. रोज़नामचा २४० व २४३–४; मआसिर ६३४, ७११ व १०५६; ख़फ़ी ख़ाँ. भाग २, ८०७, ८०६; स्कॉट. १६०–१; अहवाल. १४३ ब व १४५ अ; शिवदास २५ ब; ख्यात. भाग २, १७२–३; दानेश्वर. १३६–४०।

शिवदास (२५ब व २६अ) ने लिखा है कि इसी बीच फर्रुखसियर ने अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने के लिये एक प्रयत्न किया था। बादशाह ने स्वयं एक पत्र अजीतसिंह को लिखा जिसमें बताया कि यमुना नदी की ओर किले का पूर्वी भाग अरक्षित है। उसने अनुरोध किया कि वह उसके प्राणों की रक्षा के लिये अपने थोड़े से व्यक्ति उस ओर भेज दे। यह पत्र पाकर महाराजा ने तुरन्त उत्तर भेज दिया कि अब अवसर नहीं रहा। ऐसा भी विचार है कि अजीतसिंह ने इस पत्र को ज्यों का त्यों अब्दुल्ला खाँ के पास भेज दिया, जिसने चूड़ामन जाट को किले के पूर्वी भाग की सुरक्षा के लिये तुरन्त नियुक्त कर दिया।

ख्यातों (ख्यात. भाग २, १७३; दानेश्वर. २४०; राठौड़ां ६१) के अनुसार बादशाह ने अपने नौकर के हाथ एक फूल की माला अजीतसिंह को भेजी और उसमें एक पत्र रक्खा जिसमें महाराजा से सहायता माँगी थी। भंडारी खीवसी, महाराव भीमसिंह तथा राजा राजसिंह ने महाराजा को इस अवसर का लाभ उठाने की सलाह दी और कहा कि बादशाह को सहायता देने से शासन की बागडोर उसके हाथ में आ जायेगी। परन्तु अजीतसिंह ने कुतुबुल्मुल्क की सहायता तथा उसे दिये हुये वचन का स्मरण करके इसे स्वीकार नहीं किया।

बादशाह अजीतसिंह की प्रवृत्ति से पूर्णतया परिचित था, अतएव उक्त घटनाएँ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती।

१२१. खफी खाँ भाग २, ८१३-४; शिवदास २६ अ; ख्यात. भाग २, १७३; अजितोदय सर्ग २७, श्लोक ४६-८; ग्लोरीज़-परिशिष्ट ब ६, ११४।

इस गड़बड़ी में शहर में विभिन्न प्रकार की अफवाहें उड़ीं और यह समाचार भी फैला कि अजीतसिंह तथा कुतुबुल्मुल्क में मतभेद हो गया है, तथा महाराजा ने अपने दामाद की रक्षा के लिये अब्दुल्ला खाँ को मार दिया है। बादशाह के कुछ समर्थक इस बात को सुनकर किले की ओर बढ़े भी; किन्तु शीघ्र ही उन्हें सत्यता विदित हो गई। (रोज़नामचा २४२; स्काट १६१; इरविन भाग १, ३८४)।

फ़र्रुख़सियर को क़ैद करने के बाद अजीतसिंह तथा सैयद भाइयों एवं उनके अन्य साथियों के बीच नए बादशाह के चुनाव के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। सबने बेदार-दिल को ही इसके लिए उपयुक्त समझा। इस शाहज़ादे को लाने के लिए अजीतसिंह, के भंडारियों तथा-कुतुबुलमुल्क के मीरतुजुक क़ादिरदाद ख़ाँ को कुछ सैनिकों के साथ भेजा गया। परन्तु हरम की स्त्रियों ने भयभीत होकर द्वार बन्द कर लिए। बहुत कहने पर भी जब वे द्वार खोलने के लिए तैयार न हुईं तो इन लोगों ने अब्दुल्ला ख़ाँ की आज्ञा से द्वार तोड़ डाले और रफ़ीउद्दरजत को ही पकड़ लिया। इस प्रकार, १८ फ़रवरी (९ रबीउस्सानी) को रफ़ीउद्दरजत को एक ओर से अब्दुल्ला ख़ाँ ने और दूसरी ओर से महाराजा अजीतसिंह ने पकड़ कर तख़्त-ए-ताऊस पर बैठाकर बादशाह घोषित कर दिया।[१२२]

महाराजा अजीतसिंह ने नए बादशाह को एक हजार मुहरें निछावर कीं और रफ़ीउद्दरजत ने उसे खिलअत दी। इसी दिन महाराजा अजीतसिंह, महाराव भीमसिंह तथा राजा रतनसिंह, के कहने पर बादशाह ने जज़िया कर हटाने की घोषणा की।[१२३] अजीतसिंह के प्रभाव से तीर्थों पर से भी कर हटा दिया गया।[१२४] रफ़ीउद्दरजत ने अजीतसिंह को पहले की भाँति गुजरात का सूबा दे दिया और महाराजा के नायब के पहुँचने तक मेहरअली ख़ाँ को वहाँ का कार्यभार सम्भालने का आदेश दिया। शुक्रवार, २० मार्च (१० जमादिउलअव्वल) को नाहर ख़ाँ को अहमदाबाद का नायब सूबेदार नियुक्त किया गया।[१२५]

रफ़ीउद्दरजत के सिंहासनारोहण के लगभग दो महीने बाद शनिवार, १८ अप्रेल (९ जमादिउस्सानी) को फ़र्रुख़सियर की हत्या करवा दी गई।[१२६] फ़र्रुख़सियर के पतन में पूरी तरह से सहायक बने रहने के कारण अजीतसिंह जनसाधारण में काफ़ी बदनाम हो गया था लोग उसे 'दामाद-ए-कुश' (दामाद की हत्या करने वाला)

---

१२२. रोजनामचा २४४-५; इरविन. भाग १, ३८८-९।

१२३. खफी ख़ाँ भाग २, ८१७; कामवर ४४२; मीरात ३८८; सीयर १३७; स्काट १६४ वीर. भाग २, ९५५; टॉड भाग १, ३२५; इरविन भाग १, ४०४; ग्लोरीज़, परिशिष्ट ब ८, १११; परिशिष्ट ब ९, ११४।

१२४. ग्लोरीज, परिशिष्ट-ब ८, १११; परिशिष्ट-ब ९, ११४।

१२५. मीरात ३८६ व ३८७; खफी ख़ाँ भाग २, ८१९; वीर. भाग २, ८४२।

१२६. इरविन भाग १, ३९२।

फ़र्रुख़सियर की मृत्यु किस प्रकार हुई इस सम्बन्ध में मतभेद हैं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि अजीतसिंह की सहमति इस कार्य में अवश्य रही होगी। वह कई वर्षों से सैयद बन्धुओं का सहयोगी था, अतः उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करना उनके हित में ठीक न होता।

फ़र्रुख़सियर की मृत्यु के बाद जनसाधारण में हुई अजीतसिंह की बदनामी से भी इसी मत की पुष्टि होती है।

कहा करते थे। इन व्यक्तियों को रोकने की चेष्टाएँ विफल रहीं। फलतः अजीतसिंह ने इन तानों और व्यंग्य से मुक्ति पाने के लिए जोधपुर जाने की अनुमति चाही।[१२७] रविवार, २६ अप्रेल (१७ जमादिउस्सानी) को अजीतसिंह को ख़ास खिलअत, यराक़ सहित तलवार, चार बड़े मोती, दो याकूत, एक जड़ाऊ सिरपेच, साज़ सहित ईराक़ी घोड़ा तथा दो हाथी देकर विदा किया गया।[१२८]

परन्तु अजीतसिंह के जोधपुर जाने से पूर्व ही दिल्ली में यह समाचार मिला कि आगरा में मित्र सेन नामक एक व्यक्ति ने शाहज़ादा मुहम्मद अकबर के पुत्र ने कुस्सियर को बादशाह घोषित कर दिया है और इस कार्य में उसने राजा जयसिंह, छबीलाराम नागर, तथा निज़ामुल्मुल्क आदि शक्तिशाली व्यक्तियों का सहयोग पाने का भी प्रयत्न किया है। सैयद-बन्धुओं तथा अजीतसिंह ने विचार-विमर्श करके शुक्रवार, १५ मई (७ रजब) को हुसैन अली को इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा।

इन्हीं दिनों बादशाह का स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा था। अतः उसके अनुरोध पर सोमवार, २५ मई (१७ रजब) को उसे सिंहासन से हटा दिया गया, और उसकी इच्छानुसार बुधवार, २७ मई (१९ रजब) को उसके बड़े भाई रफ़ीउद्दौला को सिंहासनारूढ़ किया गया। अजीतसिंह ने इस अवसर पर एक हज़ार रुपया नज़र किए। अगले दिन २८ मई (२० रजब) अजीतसिंह को ख़ास-खिलअत और मोतियों की माला दी गई। बृहस्पतिवार, ११ जून (४ शाबान) को बादशाह की सवारी के समय अजीतसिंह, ने एक हज़ार रुपया तथा एक हज़ार मुहर निछावर किया। बादशाह ने उसे ख़ास-खिलअत, जड़ाऊ सिरपेच यराक़ सहित तलवार और मोतियों की माला दिया।[१२९]

उधर आगरा का विद्रोह गम्भीर रूप लेता जा रहा था। जुलाई के आरम्भ में दिल्ली में यह सूचना पहुँची कि राजा जयसिंह ने आगरा के विद्रोहियों की सहायता के लिए आम्बेर से कूच कर दिया है। फलतः बादशाह तथा वज़ीर ने स्वयं उस ओर जाने का निश्चय किया। इस स्थिति में अजीतसिंह दिल्ली से प्रस्थान न कर सका।[१३०]

रफ़ीउद्दौला ने अजीतसिंह, को आगरा जाने वाली सेना के हरावल का नेतृत्व सौंपा और इस अवसर पर उसे खिलअत, तसबीह व हाथी दिया। परन्तु महाराजा ने यह कहकर इस नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया कि वह फ़र्रुख़सियर से विवाहित

---

१२७. खफी खाँ, भाग २, ८१९ व ८२२-३; सीयर १३८; मआसिर १७५; इरविन भाग १, ४०८।

१२८. कामवर ४४६; इरविन भाग १, ४०८।

सीकदार दयालदास को लिखे गये अपने एक पत्र में अजीतसिंह ने (ग्लोरीज परिशिष्ठ-ब ६, ११४) सूचना दी है कि वह कुछ ही दिनों में जोधपुर पहुँचने वाला है।

१२९. कामवर ४४७।

१३०. रफीउद्दरजत और रफीउद्दौला के काल की घटनाओं के विस्तार के लिये देखिये—इरविन, भाग १, ४०८-४१८।

लड़की इन्द्रकुंवर के प्रबन्ध से सन्तुष्ट नहीं है। उसने कहा कि यदि वह उसे अकेले छोड़कर चला गया तो या तो विष खाकर मर जाएगी या उसकी मर्यादा व प्रतिष्ठा को आँच आ जाएगी, अतः वह दिल्ली छोड़कर नहीं जाएगी। तब अब्दुल्ला ख़ाँ ने ९ जुलाई (३ रमज़ान) को इन्द्रकुंवर को उसकी एक करोड़ से भी अधिक सम्पत्ति के साथ उसके पिता के पास पहुँचा दिया। महाराजा ने हिन्दू पद्धति से उसका शुद्धिकरण करवाया, और मुस्लिम वेश-भूषा व सामान आदि बदलवाकर, जोधपुर भेज दिया। क़ाजियों ने इसका विरोध किया; परन्तु अब्दुल्ला ख़ाँ ने इस पर ध्यान न दिया और अजीतसिंह की इच्छा पूरी कर उसे अपने पक्ष में बनाए रखना आवश्यक समझा।[131] इन्द्रकुंवर के लिए १०८०० रुपए मासिक पेन्शन निश्चित की गई, और यह निश्चित हुआ कि यह धन अहमदाबाद के प्रान्तीय-कोश से दिया जाएगा।[132] यह घटना भारतीय इतिहास में नितान्त अकेली है। विभिन्न राजपूत राजपरिवारों की कई कन्याओं का विवाह मुग़ल शासकों से हुआ; परन्तु कभी भी बादशाह की विवाहिता को पुनः हिन्दू बनाकर वापस नहीं ले जाया गया था।

इसके बाद अजीतसिंह, बादशाह रफ़ीउद्दौला, तथा वज़ीर अब्दुल्ला ख़ाँ के साथ आगरा गया। शनिवार, २५ जुलाई (१९ रमज़ान) को जब यह लोग करहका तथा कोरी नामक स्थान के बीच पहुँचे तो महाराजा अजीतसिंह मथुरा स्नान के लिए अनुमति लेकर विदा हुआ।[133]

इसी बीच सैयद बन्धुओं ने महाराजा अजीतसिंह के द्वारा छबीलाराम नागर को अपनी ओर मिलाने का भी प्रयत्न किया। अजीतसिंह ने छबीलाराम को एक पत्र लिखकर सैयदों का साथ देने का सुझाव दिया।[134]

उधर हुसैन अली ख़ाँ ने आगरा का किला घेर लिया था। लगभग एक महीने के घेरे में पड़े रहने के बाद रविवार, २ अगस्त (२७ रमज़ान) को विद्रोहियों ने आत्म-समर्पण कर दिया था।[135] हुसैनअली ख़ाँ ने अपनी इस सफलता का समाचार बादशाह को भेजा और साथ ही यह भी कहलाया कि अब बादशाह व और शाही सेना के आने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया गया

---

१३१. खफी खाँ. भाग २, ८३३; कामवर ४४९; मीरात ३९०; स्काट. १६४; सीयर. १३७; ख्यात. भाग १, १७३; वीर. भाग २, ८४१ व ११४२; वंश. भाग ४, ३०९५; वार्ता. १२५-ब; इरविन. भाग १, ४०१, ४०९, ४१८-९।

१३२. मीरात. ३९०।

वीर (भाग २, ११४२) में लिखा है कि इन्द्रकुंवर के लिये बारह हजार रुपया पेन्शन निश्चित हुई थी। परन्तु फारसी इतिहास के उल्लेख को सत्य मानना अधिक उचित है।

१३३. कामवर. ४४९; खफी खाँ. भाग २, ८३३; अजितोदय सर्ग २८, श्लोक ६ व ११-२; इरविन. भाग १, ४१८।

१३४. अजायब-उल-अफाक. १०९।

१३५. इरविन. भाग १, ४१६।

है। यह समाचार अब्दुल्ला ख़ाँ को मंगलवार, ४ अगस्त (२६ रमज़ान) को मिला। परन्तु दोनों सैयद भाइयों में भी परस्पर अविश्वास था। अब्दुल्ला खाँ को भय हुआ कि आगरा के किले की संचित सामग्री पर हुसैनअली अपना अधिकार कर लेगा। अत: उसने तेज़ी से आगरा जाने का निश्चय किया। रविवार, १६ अगस्त (११ शव्वाल) को अजीतसिंह ओल नामक स्थान पर मथुरा से लौट कर शाही सेना में मिल गया। २२ अगस्त (१७ शव्वाल) को यह दल विद्यापुर नामक स्थान पर पहुँचा।[१३६] तीन दिन बाद मगलवार, २५ अगस्त (२० शव्वाल) को इसी स्थान पर हुसैनअली ख़ाँ नेकुस्सियर को लेकर आ पहुँचा। कुछ ही दिन उपरान्त विद्यापुर में ही ७ या ८ सितम्बर (४ या ५ जिल्क़ाद) को रफ़ीउद्दौला की मृत्यु हो गई।[१३७]

बादशाह की मृत्यु का समाचार दिल्ली से दूसरे शाहज़ादे के आने तक छिपाया गया और शाहज़ादा मुहम्मदशाह के विद्यापुर पहुँचने पर, रफ़ीउद्दौला की मृत्यु की घोषणा की गई और शुक्रवार, १८ सितम्बर (१५ जिल्क़ाद) को नये बादशाह का सिंहासनारोहण हुआ। महाराजा अजीतसिंह ने इस अवसर पर एक हज़ार अशर्फ़ी तथा एक हज़ार रुपये निछावर किए और उसे ख़ास-खिलअत दी गई।[१३८]

इसी बीच सवाई जयसिंह आगरा के विद्रोहियों की सहायता के लिये आम्बेर से चल कर आगरा से लगभग अस्सी मील दक्षिण–पश्चिम मे टोडा (टोंक) नामक स्थान तक आ पहुँचा था। उसकी इस विद्रोही प्रवृत्ति को कुचलना नितान्त आवश्यक था। सोच विचार के बाद यह निश्चित किया गया कि बादशाह अजमेर की दरगाह जाने के बहाने से सीकरी होता हुआ ससैन्य उधर बढ़े ताकि विशाल शाही सेना देख कर जयसिंह पीछे हट जाय।[१३९]

अजीतसिंह सम्भवत: अब मुग़ल दरबार की राजनीति से दूर जाकर अपने देश के शासन प्रबन्ध को देखना चाहता था। अत: उसने सैयद बन्धुओं के समक्ष

---

१३६. कामवर. ४५०; इरविन. भाग १, ४२९-३०।

ख्यात (भाग २, १७३); सूरजप्रकाश (८४-५) में भी लिखा कि अजीतसिंह बादशाह व सैयदों के साथ आगरा गया था।

१३७. इरविन. भाग १, ४३० व ४३१।

१३८. कामवर. ४५३; इरविन. भाग २, १।

ख्यात (भाग २. १७४); मूंदियाड़ (२५६-७); दानेश्वर. (२४१); के अनुसार नये बादशाह के पद के लिये शाहजादे को लाने के लिये राजा रत्नसिंह तथा भंडारी खीवसी को भेजा गया था। जब ये लोग दिल्ली पहुँचे और शाहजादे को मांगा तो मुहम्मदशाह की माँ ने अपने पुत्र को भेजने में आपत्ति की, तब भंडारी ने शाहजादे की सुरक्षा का आश्वासन देने के सम्बन्ध में एक कौल पंजा लिख कर दिया। परन्तु इसकी पुष्टि किसी फारसी के इतिहास से नहीं होती।

१३९. इरविन. भाग २, २।

प्रस्ताव रक्खा कि यदि वे राजी हों तो वह स्वयं जाकर जयसिंह को समझाये। अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैनअली खाँ भी जयसिंह की समस्या को जल्दी हल करना चाहते थे। अत: उन्होंने अजीतसिंह की बात को स्वीकार कर उसे अहमदाबाद की सूबेदारी दी और सोमवार, ५ अक्तूबर (२ ज़िल्हिज) को उसे खास खिलअत सिरपेच, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की माला, अरबी घोड़ा, सुनहरे साज सहित हाथी देकर वतन के लिये विदा कर दिया।[१४०] मार्ग में अजीतसिंह जयसिंह से मिला और उससे बात-चीत की। समझाने बुझाने पर जयसिंह ने आम्बेर लौटना स्वीकार कर लिया और रविवार, १ नवम्बर (२९ ज़िल्हिज) को टोडा से आम्बेर के लिये रवाना हुआ।[१४१] जयसिंह के साथ अजीतसिंह ने जो शर्तें तय की, उनके अनुसार जयसिंह को अजीतसिंह की लड़की से विवाह करने के लिये भेंट के रूप में बीस लाख रुपया दिया गया[१४२] और साथ ही सोरठ की फौजदारी भी दी गई। शेष अहमदाबाद पूर्ववत् अजीतसिंह के ही अधिकार में रहा।[१४३]

उधर जयसिंह की समस्या को सुलझाने का भार अजीतसिंह को सौंपकर सैयद बन्धु आश्वस्त हो गये और मुहम्मदशाह को लेकर दिल्ली की ओर लौट चले। दिल्ली की ओर जाते हुये मार्ग में २६ अक्तूबर (२३ ज़िल्हिज) को अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी सौंप दी गई।

---

१४०. शिवदास. ३२-ब; मीरात. ३६३; राजरूपक. ५१८; ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाड़ २५९; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ५७; बाँकीदास. ३८; गुटका, ३११-ब; दानेश्वर. २४२।

१४१. कामवर. ४५५; शिवदास. ३२-ब; इरविन. भाग २, ४।

इरविन (भाग २, ४) के अनुसार अजीतसिंह आगे गया, परन्तु उसे मार्ग में ही विलम्ब हो गया। परन्तु यह ठीक नहीं लगता। कामवर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि अजीतसिंह जयसिंह से मिला था। राजस्थानी ग्रन्थों व ख्यातों में लिखा है कि सैयद भाई जयसिंह पर आक्रमण करना चाहते थे। जयसिंह ने यह समाचार पाकर अपने वकील को अजीतसिंह के पास भेजकर यह प्रार्थना की कि वह उसकी रक्षा करे। तब अजीतसिंह ने सैयद भाइयों से आम्बेर पर आक्रमण न करने का अनुरोध किया। परन्तु सैयदों ने उसे प्रलोभन दिया कि वह अपना एक राजकुमार उनके साथ भेज दे। वह आम्बेर विजय करके वहाँ का अधिकार उसे सौंप देंगे। परन्तु अजीतसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया और उन पर दबाव डालकर आम्बेर पर आक्रमण करने की योजना समाप्त करवा दी। (ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाण २५७ ८; राजरूपक ५१७-८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक २१-८; सूरजप्रकाश. ८६-७; दानेश्वर. २४२) यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु इससे इस बात की पुष्टि होती है कि जयसिंह व सैयद बन्धुओं के बीच सन्धि कराने में अजीतसिंह का प्रमुख हाथ था।

१४२. इबरतनामा ११९-अ; इरविन. भाग २, ४।

१४३. खफी खाँ. भाग २. ८३८; इरविन. भाग २, ४।

खफी खाँ ने लिखा है कि संधि की मुख्य शर्त यह थी कि अजीतसिंह उन परगनों पर से हाथ हटा ले, जिन पर उसने वतन के निकट होने के कारण अधिकार कर लिया है। सम्भवत: खफी खाँ का आशय सोरठ की फौजदारी लिये जाने से ही है।

१४४. कामवर. ४५५; खफी खाँ. भाग २, ८३८; राजरूपक. ५१८; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ५७; गुटका. ३११-ब ३१२-अ; इरविन. भाग २, ४।

जोधपुर की ओर जाते हुये मार्ग में आम्बेरके निकट कालाधर नामक स्थान पर अजीतसिंह ने जयसिंह से पुन: भेंट की। [१४५] और उसे अपने साथ जोधपुर चलने के लिये तैयार कर लिया। मार्ग में मनोहरपुर में गौड़ कन्या से विवाह करके अजीतसिंह जोधपुर पहुँचा और उसने जयसिंह के निवास के लिये सूरसागर में प्रबन्ध किया।[१४६] बृहस्पतिवार, १९ मई (ज्येष्ठ बुदि ६, सम्वत् १७७७) को अजीतसिंह ने अपनी कन्या सूरजकुँवर का विवाह धूमधाम से जयसिंह से कर दिया। [१४७] सम्भवत: पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करके अजीतसिंह अपने और जयसिंह के आपसी वैमनस्य को दूर करना चाहता था। परन्तु उसे अपना ध्येय प्राप्त न हो सका। उसकी सफलता के दिन सम्भवत: पूरे हो चुके थे। अगले ही वर्ष मुग़ल राजनीति में इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये कि अजीतसिंह का महत्त्व धीरे-धीरे घटने लगा।

सन् १७१२-९ ई० तक का समय अजीतसिंह के जीवन का चरमोत्कर्ष का समय था। अजीतसिंह ने इस काल में अपने पैतृक राज्य के अतिरिक्त गुजरात और अजमेर के महत्त्वपूर्ण सूबे प्राप्त कर लिये थे। सैयदों से मित्रता करने के उपरान्त दिल्ली की राजनीति पर उसका प्रभाव क्रमश: गहरा होता गया। सैयद-बन्धु भी उसके सहयोग एवं सलाह के इच्छुक रहा करते थे। मुगल-सिंहासन पर एक के बाद एक तीन शासकों को बैठाने में उसका प्रमुख हाथ था। जज़िया और तीर्थ-कर हटवाना तथा इन्द्रकुँवर को जोधपुर वापस भेजना उसके प्रभाव की आश्चर्यजनक सफलताएँ थीं। मेवाड़ तथा जयपुर के दो प्रमुख राजपूत राज्य इस समय राजनीति की दौड़ में उससे कहीं पीछे रह गये थे। नि:सन्देह वह इस समय का सर्वाधिक प्रभावशाली राजपूत शासक था।

---

१४५. बालमुकुन्दनामा. पत्र ५ व ६।

१४६ ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाड़. २५८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक ३७; राजरूपक. ५१८ टॉड, भाग २, ६८।

वंश भाग ४, ३०७५ के अनुसार अजीतसिंह मुहम्मदशाह से विदा होकर सीधा जोधपुर आया था। वहाँ उसके सरदारों ने उसे सलाह दी कि जयसिंह से मित्रता रखनी चाहिए। सैयदों का क्या भरोसा ? तब उसने जयसिंह को विवाह के लिए आमंत्रित किया। परन्तु यह ठीक नहीं है।

१४७. ख्यात. भाग २. १७६; मुंदियाड़. २५८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक ३-३३; राजरूपक. ५१९-२१; वीर. भाग २, ८४२; वंश. भाग ४, ३०७५-६; दानेश्वर. १४२; टॉड भाग २, ६९।

ब्याह बही नं० १ रा. पु. बी. में इस विवाह का विस्तृत वर्णन है।

७

अन्तिम वर्ष (सन् १७१६ ई० से सन् १७२४ ई०)

(क) गुजरात की द्वितीय सूबेदारी : (सन् १७१६–२१ ई०)—

राजराजेश्वर महाराजा अजीतसिंह को बादशाह फ़र्रुख़सियर ने रविवार, २८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई० (१६ सफ़र, ११३१ हि०) को गुजरात की सूबेदारी दूसरी बार दी थी। रफ़ीउद्दरजत तथा रफ़ीउद्दौला के शासनकाल में इस नियुक्ति की पुष्टि हुई और मुहम्मदशाह ने अपने राज्यत्व के प्रारम्भ में ही उसे पुनः इस सूबे का अधिकार दे दिया। इस पूरी अवधि में महाराजा की ओर से मेहरअली खाँ इस सूबे का नायब तथा नाहर खां दीवान रहा।[1]

बादशाह मुहम्मद शाह से विदा होकर जब अजीतसिंह जोधपुर पहुँचा तो उसने अप्रेल, सन् १७२० ई० (जमादिउस्सानी, ११३२ हि०) में भंडारी अनूपसिंह रघुनाथोत को अपना नायब बनाकर अहमदाबाद भेजा।[2] भंडारी अनूपसिंह जब शाही बाग़ के निकट पहुँचा तो मेहरअली खाँ विभिन्न शाही अधिकारियों तथा प्रान्तीय मनसबदारों को साथ लेकर उसके स्वागत के लिए गया। अहमदाबाद आकर अनूपसिंह भद्र नामक क़िले में रहने लगा और उसने सूबे के प्रशासन पर अपना पूरा-पूरा नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। मेहरअली खाँ सम्भवतः अपना अधिकार छिन जाने से मन ही मन अप्रसन्न था। कुछ ही दिनों बाद उसका अनूपसिंह के साथ आय-व्यय के हिसाब को लेकर मतभेद हो गया। धीरे-धीरे यह मनमुटाव इतना बढ़ गया कि मेहरअली को अपने जीवन की भी चिन्ता होने लग गई। फलतः वह अहमदाबाद छोड़कर अपने अधीन खंभात नामक बन्दरगाह में चला गया।[3]

उधर मुग़ल-दरबार की राजनीति में इन दिनों क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। फ़र्रुख़सियर की मृत्यु के बाद सैयद बन्धु बहुत बदनाम हो गये थे। बादशाह भी उनके प्रभुत्व से अपने को मुक्त करना चाहता था। फलतः निज़ामुलमुल्क व मुहम्मद अमीन ख़ाँ आदि उनके विरोधियों का महत्त्व बढ़ रहा था। मई, सन् १७२० ई० में निज़ामुलमुल्क मालवा छोड़कर दक्षिण की ओर चला गया और ६ जून को

---

१. मीरात. ३६० व ३६३।

२. मीरात. ३६६; ख्यात. भाग १, १०५; मूं'डियाड़. २२६; गुटका, ३११ ब, ३१२ अ; बांकीदास. ३८; कविराजा. १२।

३. मीरात. ३६६।

उसने हुसैनअली खाँ के बख्शी दिलावर खाँ को बुरहानपुर और नर्मदा के बीच स्थित पन्धर नामक स्थान पर परास्त कर दिया। स्थिति बहुत गम्भीर हो गई।[४] सैयद भाइयों ने यह विचार किया कि गुजरात में सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय ताकि उस ओर से निज़ामुल्मुल्क उत्तर की ओर न आ सके। फलतः अजीतसिंह को यह आदेश भेजा गया कि वह पाँच हजार सैनिकों को सूरत के बन्दरगाह पर नियुक्त करे तथा इतने ही सैनिकों को विभिन्न मार्गों की सुरक्षा के लिए भेज दे। साथ ही अहमदाबाद के दीवान नाहर खाँ को यह आदेश भेजा गया कि वह अहमदाबाद की खालसा भूमि की आय और चुँगी में से पाँच लाख रुपये की हुंडियां दक्षिण के नायब सैयद आलम अली की सेना के व्यय के लिए औरंगाबाद भेज दे। इसके अतिरिक्त नाहरखां को तीन हजार सवार तीन हजार पैदल लेकर सूरत के मार्गों की सुरक्षा के लिए जाने का आदेश भी दिया गया। सुरक्षा के लिए नियुक्त सभी सेनाओं का व्यय प्रान्तीय कोश से दिए जाने की सूचना भी अजीतसिंह और नाहर खाँ को दी गई।[५]

कुछ दिनों बाद ३१ जुलाई को बालापुर से दो-तीन कोस की दूरी पर निज़ामुल्मुल्क तथा आलम अली में युद्ध हुआ, जिसमें आलम अली मारा गया।[६] अब हुसैन अली खाँ और बादशाह ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण के लिए प्रस्थान किया। इस समय अब्दुल्ला खाँ ने अजीतसिंह को पत्र लिखा कि वह जोधपुर से अजमेर आ जाय। सैयद भाइयों का विचार था कि अपने दक्षिण अभियान में महाराजा को उसकी राजपूत सेना के साथ ले जायँ।[७]

परन्तु सैयदों के इस दुर्दिन में महाराजा ने कोई सहायता नहीं दी। २९ सितम्बर को हुसैनअली ख़ाँ अपने विरोधियों के षड्यन्त्र का शिकार हुआ और टोडा भीम नामक स्थान पर हैदर बेग द्वारा मारा गया, और कुछ दिन बाद नवम्बर के महीने में हसनपुर के युद्ध में उसका बड़ा भाई अब्दुल्ला खाँ बन्दी बना लिया गया।[८] अजीतसिंह के इस व्यवहार का कोई स्पष्ट कारण नहीं दिखाई पड़ता। सम्भवतः उसे यह स्पष्ट हो चुका था कि सैयद बन्धुओं का भाग्य-सूर्य अब अस्त हो रहा है। अतः उनका पक्ष लेकर बादशाह को अप्रसन्न करना सम्भवतः उसने उचित नहीं समझा।

उधर अहमदाबाद में भी अनूपसिंह और नाहर खाँ ने शाही आज्ञाओं का सम्भवतः पालन नहीं किया।

सूबे के शास्त्रागार का निरीक्षण करके अनूपसिंह ने बादशाह को यह सूचना भेजी थी कि वहाँ तोपों तथा बारूद की कमी है, और जो अस्त्र वहाँ हैं, उनकी भी

---

४. विस्तार के लिये देखिये इरविन. भाग २; १६-३२।

५. मीरात. ३९७।

६. इरविन. भाग २, ४७।

७. कामवर. ४६५; बालमुकुन्दनामा पत्र १२; इरविन. भाग २, ५२।

८. इरविन. भाग २, ५८-६० व ९०।

मरम्मत होनी चाहिए। यह समाचार पाकर बादशाह ने इस कार्य के लिये पाँच हजार रुपया देने का आदेश दिया था। परन्तु इस धन का कुछ उपयोग हुआ हो, इसमें सन्देह है, क्योंकि नाहर खाँ तथा अनूपसिंह ने प्रान्तीय कोष से क्रमशः ८५००० रुपये व ४६२३८३ रु. लेकर यह कह दिया था कि यह राशि सुरक्षा के लिये नियुक्त की गई सेना पर व्यय की गई है।[९]

अजीतसिंह का नायब अनूपसिंह अभिमानी व अत्याचारी व्यक्ति था। वह भली-भाँति जानता था कि महाराजा उस पर पूरा-पूरा विश्वास करता है। वह यह भी देख रहा था कि मुग़ल दरबार में अव्यवस्था फैली है। इन दिनों सैयद बन्धु अपनी रक्षा का अन्तिम प्रयत्न कर रहे थे और उनके विरोधी उनका अन्त करने पर तुले हुए थे। अनूपसिंह ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और जनता से अनुचित वसूली करना आरम्भ कर दिया तथा साधारण नागरिकों को झूठे अपराधों के लिये दंड देने लगा। फलस्वरूप साधारण जनता का जीवन अत्यन्त कष्टमय हो गया था और वे उससे बहुत असन्तुष्ट हो गये।[१०] यह स्थिति देखकर कपूरचन्द भन्सोली नामक एक प्रसिद्ध नगर-सेठ ने भंडारी से निवेदन किया कि वह जनता पर अत्याचार न करें। परन्तु अनूपसिंह ने न केवल उसकी प्रार्थना की अवहेलना की, वरन् कपूरचन्द को अपने मार्ग में बाधक समझकर उसे हटाने की चेष्टा भी करने लगा। यह देखकर कपूरचन्द ने भद्र किले में जाना-आना बन्द कर दिया और अपनी सुरक्षा के लिये लगभग पाँच सौ व्यक्तियों को उसने अपने घर के चारों ओर नियुक्त कर दिया। जब कभी वह घर से बाहर जाता था तो अपनी सुरक्षा के लिये कुछ व्यक्तियों को साथ रखता था। जब कभी उसे यह समाचार मिलता कि मारवाड़ के सैनिक किसी नागरिक पर अत्याचार कर रहे हैं तो वह अपने कर्मचारी भेजकर उस असहाय व्यक्ति की सहायता भी करता था। इस प्रकार अनूपसिंह तथा कपूरचन्द के बीच तनाव बढ़ता गया। यह स्थिति लगभग एक महीने तक चलती रही। अन्त में अनूपसिंह ने कपूरचन्द को मारने के लिए ख्वाजा बख्श नामक एक व्यक्ति को नियुक्त किया। एक दिन यह व्यक्ति एक दरबारी के वेष में कपूरचन्द के नाम कुछ पत्र लेकर रात्रि के समय उसके घर गया। संयोगवश उस समय कपूरचन्द के रक्षक वहां उपस्थित नहीं थे। जब वह पत्र पढ़ने लगा तो ख्वाजा बख्श ने उसे मार डाला और स्वयं दीवार फाँदकर भाग गया। कपूरचन्द के सहयोगी उसका शव लेकर अन्तिम संस्कार के लिए ले गये। चूँकि नगर का द्वारा बन्द था, अतः उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। भंडारी के व्यक्तियों ने इन लोगों की विवशता का लाभ उठाकर

---

९. मीरात. ३९६।

१०. सीयर. २२७-८; स्कॉट १८५।

मुन्तखब-उल-लुबाब (खफी खाँ. भाग २, ९३६-७); तारीख-ए-मुज्जफरी (३१३) व दानेश्वर (२४४) में लिखा है कि अजीतसिंह ने इस सूबे में गौ-वध बन्द करवा दिया था व अन्य मुस्लिम विरोधी कार्य कर रहा था और मुसलमानों के धन-जन को हानि पहुँचा रहा था। सम्भव है अनूपसिंह के प्रशासन का एक अंग यह भी रहा हो।

उन्हें इतना तंग किया कि वे लोग शव छोड़कर भाग गये। सुबह हो जाने पर भी लगभग साढ़े तीन घंटे तक शव वहीं पड़ा रहा और अन्त में भंडारी की आज्ञा मिल जाने पर ही उसका अन्तिम संस्कार किया जा सका।[११] सम्भवतः इस घटना के परिणामस्वरूप जनसाधारण में अनूपसिंह की अप्रियता और भी बढ़ गई।

उधर मेहर अली ने जब से अहमदाबाद छोड़ा था, अपनी स्थिति से असन्तुष्ट था और पहले की भाँति अहमदाबाद के दीवान का पद पाना चाहता था। अनूपसिंह की अप्रियता का समाचार उसे मिल रहा था और थोड़े ही दिन बाद नवम्बर, सन् १७२० ई० को जब सैयद भाईयों का पतन हो गया तो उसने यह घोषित करवा दिया कि उसे सूबे का नायब नियुक्त कर दिया गया है। इसके साथ ही एक बड़ी सेना लेकर उसने खंभात से अहमदाबाद के लिये प्रस्थान कर दिया। सम्भवतः उसका अनुमान था कि हुसैनअली खाँ और अब्दुल्ला खाँ का प्रभुत्व समाप्त हो जाने से महाराजा की शक्ति भी इतनी क्षीण हो गई है कि उसका नायब घबराकर अहमदाबाद छोड़ देगा। मेहरअली वतवा नामक स्थान पर आकर रुका इस समाचार से सूबे के अधिकारियों में अव्यवस्था फैल गई। समस्त सूचना पाकर अनूपसिंह ने मेहरअली को अधिकार सौंपना स्वीकार नहीं किया और कहा कि जबतक शाही सनद न आ जाय, वह उसकी बात पर विश्वास नहीं कर सकता। अन्त में बातचीत के उपरान्त यह तय हुआ कि शाही सनद आने तक कार्य पूर्ववत् चलता रहे। सम्भवतः मेहर अली को आशा थी कि चूँकि मुग़ल दरबार में अब सैयदों का प्रभुत्व नहीं रहा है, अतः बादशाह का निर्णय उसके पक्ष में ही होगा। परन्तु आशा के विपरीत शाही सनद भंडारी के पक्ष में आ गई।[१२] सम्भवतः इसका कारण यह था सैयदों के पतन के बाद मुहम्मदशाह पर उसके वज़ीर मुहम्मद अमीन खाँ का प्रभुत्व स्थापित हो गया था जिसने सैयदों के मित्रों से भी अच्छा सम्बन्ध बनाये रक्खा था।[13] सम्भवतः अमीन खाँ सब लोगों को सन्तुष्ट करके अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। इसीलिये उसने अजीतसिंह को छेड़ना भी उचित नहीं समझा। फलस्वरूप अहमदाबाद का प्रशासन पूर्ववत् चलता रहा और अनूपसिंह वहाँ बना रहा।

कुछ दिनों बाद अप्रेल-मई, सन् १७२१ ई० (रजब ११३३ हि०) मुहम्मद शाह ने अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया। उसके स्थान पर मुईज्जुद्दौला हैदरक़ुली बहादुर जफ़रजंग को वहाँ का सूबेदार और नाहर खाँ के स्थान पर जफ़र क़ुली खाँ को दीवान नियुक्त किया गया। काज़िम बेग को शुजात खाँ की पदवी देकर

---

११. मीरात. ३९८-९; ख्यात. भाग २, १७५-६; मूंदियाड़. २५९।

मूंदियाड़ के अनुसार अनूपसिंह ने कपूरचन्द को कैद कर लिया था और वह बन्दीगृह में ही मरा था; परन्तु मीरात. और ख्यात. दोनों में हत्या करवाने का उल्लेख है। इसी को स्वीकार किया गया है।

१२. मीरात. ४०१।

१३. इरविन. भाग २, १०४-५।

अहमदाबाद की नायब सूबेदारी प्रदान की गई। हैदरक़ुली ने अहमदाबाद के समस्त मनसबदारों को लिखा कि अनूपसिंह व नाहरखाँ को पकड़ने में शुजात खाँ की सहायता करें।[१४]

अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाये जाने के लिये अनूपसिंह का कुशासन मुख्यतः उत्तरदायी था। इसके अतिरिक्त बादशाह को इस निश्चय के लिये सम्भवतः उसके दरबारियों ने भी उत्तेजित किया होगा। दरबार में इन दिनों हैदर-क़ुली खाँ का प्रभाव बढ़ रहा था जोकि सैयदों का विरोधी था। सन् १७१८ ई० में अब्दुल्ला खाँ ने हैदरक़ुली को गुजरात के दीवान तथा सूरत के मुत्सद्दी के पद से हटाया था।[१५] अतः गुजरात में पुनः अधिकार पाने का प्रयत्न करना उसके लिये स्वाभाविक था। चूँकि अजीतसिंह को हटाकर हैदरक़ुली को अहमदाबाद की सूबेदारी सौंपी गई, अतः यह अनुमान लगाना उचित जान पड़ता है कि सम्भवतः महाराजा को हैदरक़ुली के प्रभाव के कारण ही अहमदाबाद की सूबेदारी से हटाया गया था।

उधर अजीतसिंह को सूबेदारी से हटाये जाने का समाचार जब अहमदाबाद पहुँचा तो अनूपसिंह के लिये नियन्त्रण रखना कठिन हो गया। इन्हीं दिनों मेहरअली खाँ के एक नौकर तथा एक मारवाड़ी सैनिक में झगडा हो गया जिसमे मेहरअली का नौकर घायल हो गया। फलतः बाजार के बीच अनूपसिंह तथा मेहरअली के सैनिकों में युद्ध हो गया। साधारण जनता भी चूँकि अनूपसिंह के अत्याचारों से थक चुकी थी, अत. उन लोगों ने भी मेहरअली के सैनिकों का ही साथ दिया। जब यह समाचार मेहरअली को मिला तो वह भी सेना लेकर आगे बढ़ा और उसने भद्र नामक क़िले को घेर लिया। साधारण नागरिकों ने भी उसका साथ दिया। यह देखकर मारवाड़ के सैनिक घबरा गए। अनूपसिंह ने देखा कि नगर के सभी मार्गों में जनता के आक्रमण का भय है, अतएव उसने क़िले से बाहर निकलना उचित नहीं समझा और बाग की ओर की खिड़की से साबरमती नदी की ओर कूदकर शाही बाग में जा छिपा और अवसर पाकर वहां से भाग गया। उधर मेहरअली बलपूर्वक किले में प्रविष्ट हो गया। इसके साथ के लोगों ने राठौड़ों का सारा सामान खूब लूटा। अनूपसिंह ने क़िले के पूर्व की ओर जो नवीन इमारत बनवाई थी उसे भी मेहरअली की आज्ञा से तोड़ डाला गया।[१६] इस घटना के दूसरे ही दिन गोधरा के नायब

---

१४. मीरात. ४०२; खफी खाँ. भाग २, ८३८; सीयर. २२७–८; मआसिर. १७५; तारीख-ए मुजफ्फरी. ३१३; स्कॉट १८५; वीर-भाग २ ११४६; मूंदियाड. २५६।

शिवदास. (७७ ब) ने लिखा है कि अजीतसिंह को शुक्रवार, ४ अगस्त (२१ शव्वाल) को पदच्युत किया गया था और इर्विन. (भाग २, १०८) ने २ अक्तूबर की तिथि स्वीकार की है। परन्तु इस सम्बन्ध में मीरात-ए-अहमदी के उल्लेख को ही सत्य मानना अधिक उचित है।

१५. सतीशचन्द्र. १७१।

१६. मीरात. ४०२–३।

फ़ौजदार सफ़दर मुहम्मद खाँ तथा नाहर खाँ के बीच किसी धन सम्बन्धी बात पर तनाव हो गया और युद्धारम्भ हो गया, जिसमें परास्त होकर नाहर खाँ ने एक लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया और अहमदाबाद छोड़ दिया। सिद्धपुर नामक स्थान पर वह अनूपसिंह से मिला और फिर दोनों मित्रों ने साथ-साथ यात्रा की।[१७]

इस प्रकार अहमदाबाद का सूबा अजीतसिंह के हाथ से निकल गया। अजीतसिंह ने इसका कोई विरोध नहीं किया और न इसे पुनः लेने का ही कोई प्रयत्न किया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि इन्हीं दिनों निज़ामुलमुल्क ने दिल्ली की विज़ारत स्वीकार कर ली थी।[१८] मुगल-दरबार में अपने साथियों के पतन के उपरान्त अजीतसिंह ने सम्भवतः इस प्रबल व्यक्ति से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा।

(ख) अजीतसिंह का अन्तिम विद्रोह (सन् १७१९-२२ ई०):—

बादशाह मुहम्मदशाह ने अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी सोमवार, २६ अक्तूबर, सन् १७१९ ई० (२३ ज़िल्हिज, ११३१ हि०) को दी थी।[१९] अगले वर्ष जब महाराजा जोधपुर पहुँचा तो सम्भवतः अप्रेल के महीने में उसने भंडारी विजयराज को अपना नायब नियुक्त करके अजमेर भेजा[२०] अजमेर पहुँचकर विजयराज ने वहाँ के निवासियों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। सम्भव है गुजरात के नायब अनूपसिंह की भाँति उसने भी वहाँ अनुचित वसूली की हो। इसके साथ ही उसने सूबे में हिन्दुत्व के प्रसार का प्रयत्न भी किया।[२१] इस समाचार से मुग़ल-सम्राट् का अजीतसिंह से अप्रसन्न होना स्वभाविक ही था। नवम्बर, सन् १७२० ई० में सैयद भाईयों का पतन हो जाने के बाद मुग़ल दरबार में उनके विरोधी दल का प्रभुत्व बढ़ रहा था। सम्भव है इस दल के लोगों ने मुहम्मदशाह को अजीतसिंह के विरुद्ध और उत्तेजित किया हो। परिणाम यह हुआ कि केवल दो वर्ष की सूबेदारी के

---

१७. मीरात. ४०३।

सीयर (२२९) में लिखा है कि नाहर खाँ ने बिना युद्ध के ही अहमदाबाद छोड़ दिया था; जो ठीक प्रतीत नहीं होता।

१८. खफी खाँ. भाग २, ९३७; वीर. भाग २, ११४९।

१९. पृ. क्रमाङ्क २१३

२०. गुटका ३११ ब ३१२ अ; जोधपुर राठौड़ां री ख्यात. ७ ब।

२१. खफी खाँ. भाग २, ९३६-७; सीयर. २२८; स्कॉट. १८५; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१३; दानेश्वर. २४४।

राजरूपक (५२२-४); ख्यात (भाग २,१७८); मूँदियाड़. (२६०); सूरजप्रकाश. (९४); अभयविलास. (१२ अ ब); वीर (भाग २, ८४२); अजितोदय. (सर्ग २९, श्लोक ६८; सर्ग ३०, श्लोक १-९); चतुर कुलचरित्र (१२३); दानेश्वर. (२४३); आदि लगभग सभी राजस्थानी ख्यातों व ग्रन्थों में लिखा है कि सैयदों के पतन का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने ससैन्य अजमेर पर आक्रमण कर दिया था और वहाँ अपना अधिकार स्थापित करके वहाँ हिन्दुत्व का प्रसार किया था। परन्तु इस कथन को पूरा-पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि महाराजा ने अजमेर पर आक्रमण नहीं किया था वरन् बादशाह ने ही उसे दो वर्ष पूर्व वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया था।

बाद ४ अगस्त, सन् १७२१ई० (२१ शव्वाल, ११३३ हि०) को महाराजा को अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया। बादशाह ने उसके स्थान पर मुज़फ़्फ़र अली खाँ को सूबेदार नियुक्त किया और सिरपेच, ख़िलअत व हाथी देकर अजमेर के लिये विदा किया।[२२]

इस प्रकार अजीतसिंह के अधिकार से गुजरात व अजमेर—दोनों सूबे निकल गये। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों सूबों से हटाये जाने के लिये मुख्य रूप से मुग़ल दरबार की परिवर्तित स्थिति उत्तरदायी थी। पिछले कुछ वर्षों की राजनीति के नीति-निर्धारक सैयद भाइयों का पतन हो चुका था। मुहम्मदशाह भली-भाँति जानता था कि अजीतसिंह सैयदों का दायाँ हाथ रह चुका था और पिछले कुछ वर्षों से उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। अतः सैयद बन्धुओं का दमन करने के उपरान्त उसकी शक्ति कम करने का प्रयत्न स्वाभाविक ही था। इसके साथ ही गुजरात व अजमेर साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण सूबे थे; अतएव इनका विरोधी दल के निकटतम सहयोगी के अधिकार में रहना हितकर न था। सम्भवतः अजीतसिंह को दोनों सूबों से विलग करने का मूल कारण यही था।

अजीतसिंह को जब यह समाचार मिला कि उसे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया है तो वह उद्विग्न हो उठा। अहमदाबाद का सूबा उससे पहले ही वापस लिया जा चुका था। अब वह शान्त न रह सका उसने बादशाह का विरोध करने का निश्चय किया और अपने राज्य के प्रमुख सरदारों तथा लगभग तीस हज़ार सवारों को लेकर, अजमेर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने अनासागर के महलों में पड़ाव डाला और अपना अधिकार दृढ़ करने का प्रयत्न किया। साथ ही उसने यह घोषित करवा दिया कि सभी व्यापारी तथा कारीगर शान्तिपूर्वक अपना कार्य करें और किसी प्रकार का भय मन में न रक्खें। उसने वहाँ के क़ाज़ियों और मौलवियों को बुलाकर सांत्वना दी और उनके धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया। इतना ही नहीं, उनकी मस्जिदों की मरम्मत के लिए उसने धन भी दिया। इसके उपरान्त उसने विभिन्न शाही अधिकारियों तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर बादशाह के हाथ-पंजे का एक फ़रमान दिखाया, जो मुहम्मदशाह की माँ ने अपने पुत्र के सिंहासनारोहण के समय अजीतसिंह को दिया था, और जिसमें बादशाह ने अहमदाबाद तथा अजमेर के सूबे महाराजा को जन्म भर के लिए सौंपे थे। अजीतसिंह ने इस फ़रमान की नक़ल और अपना प्रार्थना-पत्र बादशाह की सेवा में भेजा, जिसमें लिखा कि उस फ़रमान के अनुसार यद्यपि बादशाह दोनों सूबों को उसके अधिकार में देने के लिए वचनबद्ध है, तथापि शाही आज्ञा मानकर उसने गुजरात से अपना अधिकार हटा लिया था। परन्तु अब उसे अजमेर से भी पदच्युत कर दिया गया है। यह प्रत्यक्ष रूप से उसका अपमान है। यदि वह शाही आज्ञा स्वीकार कर लेगा तो सभी लोग यह विचार करेंगे कि वह दुर्बल हो गया है, और अपनी प्रतिष्ठा को बनाए

---

२२. शिवदास ७७ ब; खफी खाँ भाग २, ६३६; मआसिर. १७५; सीयर. २२८; स्काट. १८५; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३११।

रखने में असमर्थ है। इस प्रकार सर्वत्र उसकी अपकीर्ति होगी। अतएव उसने प्रार्थना की कि अजमेर उसके अधिकार में छोड़ दिया जाय।[२३]

परन्तु उसकी इस प्रार्थना का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। बादशाह ने अजमेर के नए सूबेदार मुज़फ्फ़र अली की सहायता के लिए शाही-कोष से छः लाख रुपया देने का निश्चय किया। चूँकि शाही-कोष में इतना धन नहीं था, अतः केवल दो लाख रुपया उसे तत्काल दिया गया और शेष किश्तों में देने का निश्चय किया गया। मुज़फ्फ़र अली ने इस धन से नए सैनिक भर्ती करने प्रारम्भ कर दिए और शीघ्र ही उसकी सेना में लगभग बीस हज़ार सैनिक हो गए। परन्तु आशा के विपरीत उसे शाही-कोष से धन की अगली क़िश्त नहीं मिली और दिल्ली से अजमेर की ओर जाते हुए मार्ग में मनोहरपुर तक पहुँचते-पहुँचते उसका सारा रुपया खर्च हो गया।[२४]

उधर मुज़फ्फ़र अली के ससैन्य अजमेर की ओर आने का समाचार जब अजीतसिंह को मिला तो उसने अपने बड़े लड़के अभयसिंह को मुज़फ्फ़र अली का सामना करने के लिए भेजा।[२५]

बादशाह को जब यह समाचार मिला तो उसने मुज़फ्फ़र अली को यह आदेश भेजा कि उसकी सहायता के लिए शाही सेना भेजी जा रही है, अतः वह मनोहरपुर में रुककर प्रतीक्षा करे।[२६] मुहम्मदशाह ने मुज़फ्फ़र अली सहायता के लिए अकबराबाद के सूबेदार सआदत खाँ को जाने की आज्ञा भेजी। सआदत खाँ स्वयं तुरन्त राजधानी की ओर चल पड़ा और उसने अपनी सेना को भी शीघ्रातिशीघ्र पीछे आने का आदेश दिया। दिल्ली पहुँचकर उसने मुहम्मदशाह से सहायता माँगी, परन्तु वहाँ से उसे कोई सहायता न मिल सकी। फलतः उसने अजमेर जाने का विचार त्याग दिया।[२७]

शाही आज्ञानुसार मुज़फ्फ़र अली तीन महीने तक मनोहरपुर में ही रुका रहा। इस बीच उसकी स्थिति दयनीय होती गई। उसका धन समाप्त हो चुका था, और शाही-कोष से धन मिल नहीं रहा था। फलतः वह अपने सैनिकों को वेतन देने में असमर्थ था। वेतन न मिलने के कारण उसके सैनिक बहुत परेशान थे। धीरे-धीरे स्थिति इतनी बिगड़ गई कि अपनी भूख मिटाने के लिए उन्हें अपने अस्त्र-वस्त्र भी बेचने पड़े। थोड़े ही दिनों बाद में वे भूखों मरने लगे। सेना का अनुशासन भंग हो गया। शाही सैनिकों ने निकटवर्ती दो-तीन गाँव लूट लिए और बहुत से जानवरों को

---

२३. सीयर २३०-१; तारीख़-ए-मुजफ्फरी ३१५-६; स्काट १८५; मआसिर. १७५।

२४. शिवदास. ७७ ब; इरविन. भाग २, १०८-९।

२५. अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक १०-१; सूरजप्रकाश. १०२; अभयविलास. १२ ब; गुटका ३१२ अ; इरविन. भाग २,१०९।

२६. शिवदास. ७७ ब; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ६; इरविन. भाग २; १०९।

सीयर (२३०) व तारीख़-ए-मुजफ्फरी (३१५) में लिखा है कि मुजफ्फर अली रेवाड़ी में ही रुक गया था। परन्तु शिवदास के कथन को मान्यता देना अधिक उचित है।

२७. सीयर २३१-२; स्काट. १८६; तारीख़-ए-मुजफ्फरी ३१८; खफी खाँ भाग २, ९३६-७।

इरविन (भाग २, १२१) व कानूनगो (हिस्टोरिकल एसेज ६३) ने लिखा है कि चूड़ामन जाट ने ससैन्य आगे बढ़कर सआदत खाँ का मार्ग रोका था। फलस्वरूप वह वापस लौट गया।

पकड़ लिया। वे इतने में ही सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने अपने सेनाध्यक्ष को भी घेर लिया और उसके व्यक्तिगत प्रयोग के हाथी, घोड़े तक छीन लिए। मुजफ़्फ़र अली अपनी जान बचाकर भाग निकला और आम्बेर के राजा जयसिंह की शरण में चला गया। वहाँ जाकर उसने अपनी शाही ख़िलअत तथा अजमेर की सूबेदारी की सनद दिल्ली वापस भेज दी।[२८]

इधर अजीतसिंह अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था। उसके मित्र चूड़ामन जाट ने इसी समय अपने पुत्र मोहकमसिंह की अधीनता में कुछ सैनिकों को उसकी सहायता के लिए भेजा।[२९] अजीतसिंह ने शाही सेना की अव्यवस्था का पूरा लाभ उठाया और शाही सूबेदार के पहुँचने से पूर्व ही राजकुमार आनन्दसिंह की अधीनता में सैनिकों को भेजकर सांभर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। महाराजकुमार अभयसिंह को एक विशाल सेना के साथ नारनौल पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। अभयसिंह के साथ बारह हजार ऊँट थे जिन पर दो-दो बरक़न्दाज़ व तीरन्दाज़ बैठे हुए थे। जब यह विशाल सेना नारनौल से चालीस कोस की दूरी पर पहुँची, तो वहाँ के फ़ौजदार बायजीद ख़ाँ के नायब ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; परन्तु वह असफल रहा और भागकर बायज़ीद ख़ाँ के पास चला गया। इसके पश्चात् राठौड़ सैनिकों ने नारनौल को अच्छी तरह से लूटा और फिर अलवर, तिजारा व शाहजहाँपुर को लूटते हुए वे दिल्ली से केवल सोलह मील दूर स्थित सराय अलाहवर्दी तक पहुँच गए। इन विजयों के कारण अभयसिंह धोंकलसिंह (उपद्रव करने वाला) के नाम से विख्यात हुआ।[३०]

---

२८. शिवदास ७७ ब ७८ अ; सीयर २३२; तारीख-ए मुजफ्फरी. ३१६; स्काट. १८७; राजरूपक ५२५-३४; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ११; सूरजप्रकाश १०२; अभयविलास १२ ब; गुटका ३१२ अ; टाड भाग २.६८; इरविन भाग २, १०६-१० ।

राजस्थानी ग्रन्थों के अनुसार अभयसिंह को आता देखकर मुजफ्फर अली भयभीत होकर भाग गया था। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि इन इतिहासकारों ने अभयसिंह को अधिक महत्व देने के लिये ही ऐसा उल्लेख किया है।

सीयर में लिखा है मुजफ्फर अली जयसिंह के नायब की शरण में गया था। इरविन का मत है कि जयसिंह का नायब उसकी सहायता के लिये आया था। परन्तु शिवदास के मत की पुष्टि अन्य ग्रन्थों से भी होती है और वही अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता है, अतः उसी को मान्यता दी गई है।

२९. राजरूपक ५५२; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११०; हिस्टोरिकल एसेज. ६३ ।

३०. शिवदास. ७९ अ ब ८२ अ; स्काट १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१६-२०; रुस्तम अली. २५१ ब; राजरूपक. ५३५-६; ख्यात. भाग २, १७८; मूंदियाड़ २६०; अजितोदय. सर्ग ३; श्लोक १२ ८; सूरजप्रकाश ९५ व १०३-९; अभयविलास. १२ ब १३ अ; दानेश्वर. २४४; वार्ता १२६ अ; टॉड. भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११० ।

सीयर (२३२) में लिखा है कि नारनौल का फौजदार देख रेख के लिये स्वयं नारनौल से बाहर निकला, और जब उसने देखा कि अभयसिंह ससैन्य आक्रमण के लिये आ रहा है तो वह अपने सम्बन्धियों सहित भाग गया। नारनौल के निवासियों ने राठौड़ो का सामना किया; परन्तु परास्त हुए और राठौड़ों ने नारनौल को बर्बरतापूर्वक लूटा। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती ।

अजीतसिंह की इन विजयों और लूटमार का समाचार सुनकर बादशाह ने अपने अधिकारियों से विचार-विमर्श किया। समसामुद्दौला खानेदौरां का विचार था कि रिक्तकोष तथा दरबार की दलबन्दियों के कारण अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान आरंभ करना उचित नहीं है। उसका कहना था कि चूँकि अजमेर मुसलमानों के लिए धार्मिक महत्त्व का स्थान है, और सूबे की राजधानी है, अत: अजमेर पर तो शाही अधिकार कर लेना चाहिए; परन्तु अजीतसिंह को अहमदाबाद का सूबा वापस देकर सन्तुष्ट रखना चाहिए। लेकिन मुहम्मदशाह तथा उसके अन्य उच्चाधिकारियों का मत था कि अजीतसिंह को उसके अपराधों के लिए दण्ड मिलना आवश्यक है।[३१]

परन्तु यह निर्णय लेना जितना सरल था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन था। शाही-कोष रिक्त था, और दरबार के उच्चाधिकारियों में परस्पर सहयोग नहीं था। प्रत्येक को यह आशंका थी कि यदि वह दिल्ली से बाहर चला गया तो उसके विरोधी बादशाह पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगें। इस स्थिति में अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना का नेतृत्व सम्भालने के लिए कोई भी तैयार न था। बादशाह ने यह कार्य सर्वप्रथम खानेदौरां को सौंपा। परन्तु वह अजीतसिंह के विरुद्ध सेना भेजने के पक्ष में नहीं था, अत: उसने विभिन्न बहाने बनाकर अजमेर जाने से इनकार कर दिया।[३२]

इसके उपरान्त हैदरकुली खां को अजीतसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया, परन्तु वह जानता था कि खानेदौरां युद्ध के विरुद्ध बादशाह के कान सदैव भरा करता है और समझाया करता है कि रिक्त-कोष, सैनिकों के असन्तोष व पारपरिक मतभेदों के बीच अजीतसिंह के विरुद्ध विजय की आशा नहीं, और यदि विजय हो भी गई तो महाराजा भागकर अपने राज्य के जंगलों व घाटियों में छिप जाएगा, वहां से उसे पकड़ना सम्भव न होगा। ऐसे विरोधी वातावरण में हैदरकुली ने इस कार्य से अपना हाथ खींच लेना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त हैदरकुली को यह भी भय था कि अजीतसिंह के विरुद्ध युद्ध काफी लम्बा होगा और शाही-कोष उसका भारवहन नहीं कर सकेगा।[३३]

अन्त में क़मरुद्दीन खां को यह कार्य भार सौंपा गया और उसने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु प्रस्थान करने से पूर्व उसने कुछ ऐसी मांगे रक्खीं जो बादशाह को

---

३१. सीयर २३१; स्काट १८५-६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१७-८।

३२. सीयर. २३१; स्काट. १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३२०; शिवदास. ७९ अ; खफी खां; भाग २, ११०।

३३. सीयर २३०; शिवदास ७६ अ; खफी खां. भाग २, ९३६-७; वीर भाग २, ११४९; इरविन. भाग २, ११०।

तारीख-ए-मुजफ्फरी में लिखा है कि हैदरकुली खां को खानेदौरां के साथ ही नियुक्त किया गया था। स्काट (१८६) ने भी इसी का समर्थन किया है। परन्तु शिवदास तथा खफी खां समकालीन इतिहासकार हैं, अत: उनका मत स्वीकार करना ही अधिक उचित है।

अरुचिकर थीं। उसकी मुख्य माँग यह थी कि अब्दुल्ला खाँ और नजमुद्दीन अली खाँ को मुक्त करके उसके हवाले कर दिया जाय। इसका विरोध सभी दरबारियों ने किया, और इस प्रकार क़मरुद्दीन की यात्रा आरम्भ से पूर्व ही समाप्त हो गई।[३४]

अब बादशाह ने नुसरतयार खाँ को महाराजा के विरुद्ध जाने का आदेश दिया। वह एक विशाल सेना लेकर अजमेर की ओर रवाना हुआ, परन्तु उसके अजमेर पहुँचने से पूर्व ही दोनों पक्षों में सुलह हो गई।[३५]

महाराजा अजीतसिंह ने अकस्मात् ही मुग़ल-सम्राट् के साथ मैत्री करने का निश्चय किया। इस विचार परिवर्तन के दो सम्भावित कारण जान पड़ते हैं। प्रथम यह कि इस समय निज़ामुलमुल्क दिल्ली के निकट पहुँच गया था, और दिल्ली की राजनीति में अब कुशल व कठोर शासन की सम्भावना दिखाई देने लगी थी।[३६] दूसरी बात यह है कि इस समय अजीतसिंह और खानेदौराँ के बीच पत्र-व्यवहार होने लगा था।[३७] खानेदौरां की इस नीति के पीछे क्या उद्देश्य था, यह कहना कठिन है। सम्भवतः वह निज़ामुलमुल्क के आने से पूर्व ही अजीतसिंह की समस्या को हल करके इसका श्रेय स्वयं लेना चाहता था अथवा यह भी हो सकता है कि वह निज़ामुलमुल्क के विपक्ष में अपना एक दल संगठित करना चाहता था।[३८] वास्तविकता जो भी हो, अजीतसिंह ने बादशाह को एक प्रार्थना-पत्र लिखा जिसमें उसने फ़र्रुखसियर के समय से अपनी सेवाओं का उल्लेख करते हुए यह लिखा कि जब आपने मुझे अहमदाबाद और अजमेर के सूबे सौंपे, तो मैंने शाही आज्ञानुसार वहाँ का यथोचित प्रबन्ध किया। जब अहमदाबाद का सूबा मुझसे वापस लेकर, हैदरकुली को दे दिया गया, तब भी मैंने कोई विरोध नहीं किया और उसे चुपचाप अहमदाबाद का अधिकार दे दिया। अजमेर के सम्बन्ध में भी मैंने अपने अधिकारियों को लिखा था कि वे मुज़फ़्फ़र अली को अधिकार सौंप दें। परन्तु मुज़फ़्फ़र अली अजमेर तक पहुँचा ही नहीं। अतएव मेरा कोई दोष नहीं है। नारनौल व अन्य स्थानों पर मैंने मेवातियों के उपद्रव को दबाने के लिए अपने सैनिकों को भेजा था। मेरे विरोधियों ने मुझे व्यर्थ ही बदनाम किया है। आप यदि चाहें तो खोज करवा लें और मेरा दोष होने पर मुझे दण्ड दें। यदि आज्ञा हो तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँ,

---

३४. सीयर २३३; स्काट. १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३२०; शिवदास. ७६ अ; खफी खां भाग २; ६३६-७; वीर. भाग २, ११४६; इरविन. भाग ५, ११०-१।

३५. शिवदास. ७८ ब व ७६ अ; इरविन. भाग २, १११।

इन इतिहासकारों का मत है कि सुलह के बाद अजीतसिंह अजमेर छोड़कर अपने राज्य को लौट गया था। परन्तु यह उपयुक्त प्रतीत नही होता, क्योंकि जब अजमेर-युद्ध का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ तो अजीतसिंह जोधपुर में नही आया था। वह सदैव अजमेर ही रहा था और बादशाह से दूसरी सन्धि हो जाने के बाद ही जोधपुर गया था।

३६. शिवदास. ८३ ब; खफी खाँ. भाग २, ६३७; इरविन भाग २; १११।

३७. सीयर २३४; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३२१।

३८. सतीशचन्द्र. १८१।

अथवा यदि अनुमति दें तो जोधपुर जाकर वहाँ का शासन सम्भालूँ।[३९]

अजीतसिंह का प्रार्थना-पत्र लेकर भंडारी खींवसी तथा नाहर खाँ शुक्रवार, ९ फ़रवरी, सन् १७२२ ई० (४ जमादिउल अव्वल, ११३४ हि०) को दरबार में पहुँचे।[४०] मुहम्मदशाह को इस समय तक स्पष्ट हो चुका था कि उसका कोई भी सरदार दिल्ली से बाहर जाना नहीं चाहता है। फलस्वरूप अजीतसिंह के विरुद्ध शाही सेना नहीं भेजी जा सकती। सम्भवतः इसी कारण उसने अजीतसिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली और दोनों सूबों मे हटाए जाने के लिए उससे क्षमा माँगते हुए उसे अजमेर का सूबा पुनः दे दिया, और इस नियुक्ति के अवसर पर उसके लिए खास खिलअत, जड़ाऊ सिर पेच, एक घोड़ा व एक हाथी भेजा और साथ ही निकट भविष्य में अहमदाबाद भी देने का आश्वासन दिया।[४१]

मुग़ल-दरबार के कुछ प्रमुख सरदारों का मत था कि अजीतसिंह के हाथ में अजमेर जैसा महत्त्वपूर्ण सूबा नहीं रहने देना चाहिए। सम्भवतः इसी कारण कुछ महीनों के बाद २८ नवम्बर, सन् १७२२ ई० को उसने नाहर खाँ को अजमेर का दीवान तथा सांभर का फ़ौजदार बनाकर भेजा और उसे अपरिमित अधिकार भी दिए। इसके साथ ही उसके भाई रुहुल्ला खाँ को गढ़पुतली (अथवा गढ़ बीटली, आधुनिक तारागढ़) का किलेदार नियुक्त करके उसकी शक्ति को और भी बढ़ा दिया गया था। अतः नाहर खाँ ने भंडारी खींवसी को साथ लेकर अजमेर के लिए प्रस्थान किया।[४२]

नाहर खाँ इससे पूर्व कई बार महाराजा के सम्पर्क में रह चुका था, अतः उसने अजीतसिंह पर विश्वास करके उसके निकट ही डेरा डाला। अजीतसिंह को अपने अधिकार में यह हस्तक्षेप सहन नहीं था। एक दिन नाहर खाँ ने बातचीत करते हुए महाराजा को कुछ कड़े वचन कह दिए। फलस्वरूप अजीसिंह उससे अप्रसन्न हो गया और उसकी आज्ञानुसार उसके कुछ सैनिकों ने २७ दिसम्बर, सन् १७२२ ई० (२९ रबीउलअव्वल, ११३५ हि०) को प्रातःकाल नाहर खाँ के शिविर पर आक्रमण कर दिया और नाहर खाँ व रुहुल्ला खाँ—दोनों भाइयों को सोते हुए मार डाला। शाही सैनिकों ने उनका सामना किया। युद्ध में पच्चीस सैनिक मारे गए और नाहर खाँ के कई सम्बन्धी पकड़े गए। जो व्यक्ति जीवित बचे, वे भागकर जयसिंह की शरण में चले गए। राजपूतों ने उनके शिविर को अच्छी तरह लूटा।

---

३९. शिवदास. ८३ ब ८४ अ; खफी खाँ भाग २, ९३७; इरविन. भाग २, १११।

४०. कामवर. ४८०; इरविन. भाग २, १११।

इरविन ने लिखा है कि नाहर खां व भंडारी खींवसी ११ मार्च (२१ मार्च) को दिल्ली पहुँचे थे, जो ठीक नहीं है। दरबार में पहुँचकर इन दोनों ने बादशाह को सात घोड़े व हाथी भेंट किये। मुहम्मदशाह ने उन्हें जड़ाऊ सिरपेच दिया।

४१. शिवदास. ८५ ब; इरविन. भाग २, १११-२।

अजितोदय (सर्ग ३०, श्लोक २२-३) के अनुसार जयसिंह की प्रार्थना पर अजीतसिंह ने उपद्रव बन्द किये थे और शान्तिपूर्वक दो-तीन वर्ष तक अजमेर में था। परन्तु इसका समर्थन अन्यत्र कहीं नहीं होता।

४२. कामवर. ४८१. इरविन भाग २, ११२।

मुहम्मदशाह को यह समाचार सोमवार, २८ जनवरी, सन् १७२३ ई० (२ जमादिउल अव्वल ११३५ हि०) को मिला।[४३]

नाहर खाँ का वध करवाकर महाराजा ने मुग़ल सत्ता का प्रत्यक्ष अपमान किया था। साँभर, नारनौल, अलवर आदि स्थानों में वह अपना आतंक स्थापित कर चुका था। अजीतसिंह की बढ़ती हुई शक्ति से बादशाह की चिन्ता स्वाभाविक थी। दरबार में अजीतसिंह के विरोधियों को एक उचित बहाना मिल गया और उन्होंने बादशाह को अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिए भड़काया। फलतः मुहम्मदशाह ने पूरी ताकत के साथ अजीतसिंह की शक्ति को कुचलने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए शरफ़ुद्दौला इरादतमन्द खाँ को नियुक्त किया गया। उसकी शक्ति बढ़ाने के लिए इसका मनसब बढ़ाकर सात हजार जात छः हजार सवार कर दिया गया और पचास हजार सैनिक उसके अधीन नियुक्त हुए। शुक्रवार, १ फरवरी (६ जमादिउलअव्वल) को उसे ख़ास खिलअत, छः पारचा, जड़ाऊ सिरपेच व ईराकी घोड़ा देकर विदा किया गया और चार दिन बाद उसकी सेना के वेतन के लिए शाही-कोष से दो लाख रुपया भी दिया गया।[४४]

इस विशाल सेना के आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने भी सम्भवतः अपनी शक्ति और बढ़ाई। मुहम्मदशाह इससे और चिन्तित हुआ और उसने शनिवार, २३ मार्च (२६ जमादि उस्सानी) को राजा जयसिंह, मुहम्मद खाँ बंगश तथा राजा गिरधर बहादुर व अन्य बड़े-बड़े सरदारों को इरादतमन्द खाँ की सहायता के लिये जाने की आज्ञा दी।[४५] कुछ ही दिन बाद बुद्धवार, २७ मार्च (१रजब) को हैदरक़ुली खाँ को अजमेर की सूबेदारी तथा साँभर की फौजदारी पर नियुक्त करके अजीतसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया। शाही आज्ञानुसार हैदरक़ुली ने तुरन्त उस ओर प्रस्थान किया और नारनौल में शरफ़ुद्दौला से जा मिला।[४६]

---

४३. कामवर. ४८६; राजरूपक. ५५१; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक. ३१-३; सूरजप्रकाश. ११२ व ११४; गुटका.३१२ अ; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११२।

४४. कामवर ४८६; रुस्तमअली. २५१ ब; तारीख-ए-मुजफ्फरी ३२६-७; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ३४-८; राजरूपक. ५५३; दानेश्वर. २४६; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात ७ ब; इरविन. भाग २, ११३।

इरविन ने लिखा है कि इरादतमद खाँ को १६ फरवरी को विदा किया था; परन्तु यह ठीक नहीं है।

४५. कामवर. ४८८; रुस्तम अली. २५१ ब; खुजिस्ता कलाम. ३२, ८८ व १३०; फरमान न. ११२ (प्रतिलिपि) रा. पु. बी.; राजरूपक. ५५३; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११३।

चतुरकुल चरित्र (१२३) मे लिखा है कि महाराणा ने भी शाही आज्ञानुसार कुछ सेना अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी थी।

४६. कामवर. ४८८; वारिद. १७८ ब; सीयर २४१; स्काट १८८; राजरूपक. ५५३; अजितोदय सर्ग ३०, श्लोक ४१; ख्यात-भाग २, १८०; दानेश्वर २४६; मूंदियाड़ १६३; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात. ७ ब।

अजितोदय (सर्ग ३०, श्लोक ४५) के अनुसार हैदरकुली रेवाड़ी में ही इरादतमद से जा मिला था। ख्यात (भाग २, १८०) में हैदरकुली के स्थान पर हसनकुली नाम लिखा गया है। परन्तु ये तथ्य ठीक नहीं है।

इस विशाल सेना के आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने गढ़पुतली का प्रबन्ध भण्डारी विजयराज तथा ऊदावत अमरसिंह के अधिकार में दे दिया तथा स्वयं ससैन्य आगे बढ़कर मनोहरपुर में डेरा डाला। शाही सेना उससे केवल चार कोस की दूरी तक पहुँच गई। इसी समय राजा जयसिंह ने अजीतसिंह को यह संदेश भेजा की शाही सेना की शक्ति बहुत अधिक है वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता और युद्ध में राजपूतों का व्यर्थ ही हनन होगा। अतएव उचित यही है कि वह वापस चला जाय। अजीतसिंह ने उसकी सलाह स्वीकार करली और अजमेर लौट गया और वहां से मेड़ता चला गया।[४७] अजीतसिंह के बिना लड़े जोधपुर वापस चले जाने का समाचार बादशाह को सोमवार, २० मई, सन् १७२३ ई० (२५ शाबान) को मिला। चार ही दिन उपरान्त उसे सूचना मिली कि हैदरक़ुली के नेतृत्व में शाही सेना ने सांभर में प्रवेश कर लिया है।[४८] शाही सेना ने आगे बढ़कर ७ जून को गढ़पुतली पर घेरा डाल दिया।[४९] गढ़ मे अजीतसिह के लगभग चार सौ सवार उपस्थित थे। ऊदावत अमरसिंह ने शाही सेना का वीरतापूर्वक सामना किया, परन्तु अन्त में राठौड़ों को गढ़ खाली करना पड़ा और शाही सेना ने उस पर अधिकार कर लिया।[५०] अजीतसिंह ने शाही सेना से मित्रता करना ही उचित समझा। जयसिंह ने मध्यस्थ का कार्य किया।[५१] बातचीत के उपरान्त दोनों पक्षों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार उसने अपने बड़े पुत्र को दरबार में भेजना और एक वर्ष बाद स्वयं भी दरबार में उपस्थित होना स्वीकार किया।[५२] इसके साथ ही अजमेर, भिणाय, तोड़ों, परबतसर, मारोठ, हरसोर, भैरूदो, तोसीणा, बंवाल,

---

४७. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड २६३-४; अजितोदय सर्ग ३०, श्लोक ४७-५२; दानेश्वर २४३-७; अभयविलास. १३ अ ब; कूर्म्मवंसविलास. १६५ ब; गुटका. ३१२ अ ब; वार्ता १२६ ब; कामवर. ४८८; वादि. १७८ ब; सीयर २४१; मआसिर १७५; इरविन भाग २, ११३-४।

रुस्तमअली. (२५१ ब) ने लिखा है कि अजीतसिंह ने स्वयं गढ़पुतली में रुककर थोड़ा-सा युद्ध किया और बाद में जोधपुर गया परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र नहीं होती।

४८. कामवर. ४८८; इरविन. भाग २, ११३।

४९. इरविन, भाग २, ११४।

५०. कामवर. ४८८; वारिद. १७८ ब; तारीख-ए-मुजफ्फरी ३२७; मआसिर १७५; इरविन. भाग २, ११४।

राजरूपक (५६०); अजितोदय. (सर्ग ३०, श्लोक ५२-६०); सूरजप्रकाश. (११४-१२४); जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात (७ ब) आदि में जोधपुर सेना के हारने का उल्लेख नहीं है। इनमें लिखा है कि शाही अधिकारियों ने ही संधि करने का प्रयत्न किया था, परन्तु अजीतसिंह ने बाद में शाही सेना के साथ जो सन्धि की उसे देखते हुये इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

५१. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड़. २६४; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ६३-८१; राजरूपक ५६०-२, वंश भाग ४, ३०८२।

५२. वारिद १७८ ब; रुस्तम अली २५१ ब २५२ अ; तारीख-ए-मुजफ्फ़री ३२७; मआसिर १७५; वीर. भाग २, ८४२; इरविन. भाग २, ११४।

सांभर, नागोर, डीडवाना, बाहाल तथा कैकड़ी नामक चौदह परगनों से अपना अधिकार हटाना भी अजीतसिंह ने स्वीकार कर लिया।[५३] इस सन्धि के पश्चात् महाराजा मेड़ता से मण्डोर होता हुआ नवम्बर, सन् १७२३ ई० (मार्गशीर्ष, संवत् १७७९) में जोधपुर पहुँचा।[५४]

(ग) अजीतसिंह का दुःखद अन्त : परिवार व चरित्र (सन् १७२४ ई०)

उधर अभयसिंह हैदरकुली के साथ अजमेर से दिल्ली गया जहां उसका यथोचित सम्मान किया गया।[५५] मुग़ल दरबार में इन दिनों राजा जयसिंह भी उपस्थित था जिसका प्रभाव दरबार मे काफी बढ़ चुका था। महाराजकुमार ने सम्भवतः उसका प्रभाव देखते हुये उसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना उचित समझा। धीरे-धीरे इनका सम्बन्ध घनिष्ट होने लगा। जब जोधपुर में यह समाचार पहुँचा तो महाराजा को सम्भवतः यह आशंका होने लगी कि दरबार में उसके विरोधी अभयसिंह को विद्रोह के लिये उत्तेजित न कर दें। फलतः उसने अपने पुत्र को वापस बुलाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिये पुरोहित जगू और चांपावत सगतसिंह को भेजा।[५६] परन्तु अभयसिंह वापस नहीं आया और महाराजा की आशंका ठीक निकली। मुहम्मद शाह के कहने पर राजा जयसिंह ने अभयसिंह को अजीतसिंह के विरुद्ध उत्तेजित किया। अजीतसिंह के दीवान भण्डारी रघुनाथ, जो-कि अभयसिंह के साथ दिल्ली आया था, ने भी अभयसिंह को समझाया कि जोधपुर राज्य की सुरक्षा के लिये जयसिंह की सलाह मानना उचित है। फलतः अभयसिंह ने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को एक पत्र लिखा जिसमें उसे पिता की हत्या करने के लिये लिखा। तदनुसार बख्तसिंह ने मंगलवार, २३ जून, सन् १७२४ ई० (आषाढ़ सुदि १३, संवत् १७८१) को अर्द्धरात्रि के समय अपने पिता को सोते हुये मार डाला।[५७]

---

५३. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड़. २६४; दानेश्वर २४७।

५४. ख्यात भाग २, १८१; मूंदियाड़ २६५; गुटका. ३१२ ब।

५५. अजितोदय. सर्ग ३० श्लोक ८५; अभयविलास. १३ ब; इरविन भाग २, ११४।

५६. ख्यात भाग २, १८२-३; मूंदियाड़ २६५-६; दानेश्वर. २४८।

५७. ख्यात. भाग २, १८३; वीर. भाग २, ८४२ व ९९७; कविराजा १२६ ब; चतुरकुल-चरित्र १२४; दानेश्वर २४९; राजरूपक ५७९; अजितोदय सर्ग ३१, श्लोक १५; वारिद १७९ अ; रुस्तमअली. २५२ अ; खफी खां भाग २, ९७४; मआसिर. १७५; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३३४।

राजरूपक तथा अजितोदय में केवल मृत्यु का उल्लेख है, यह नहीं लिखा है कि बख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या की थी। लेकिन फारसी के सभी इतिहासकारों तथा राजस्थानी के अन्य ग्रन्थों एवं ख्यातों में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

केवल सतीशचन्द्र (१८२) ने लिखा है कि अजीतसिंह की मृत्यु उसके एक पुत्र द्वारा विष दिए जाने से हुई थी।

अजीतसिंह की हत्या के विशेष विवरण के लिए देखिये परिशिष्ट घ।

अजीतसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर जोधपुर नगर में हाहाकार मच गया। सभी सरदारों ने बख्तसिंह के महल को घेर लिया। उसने नम्रतापूर्वक अभयसिंह का पत्र दिखा दिया जिससे सरदारो को यह पता चला कि जोधपुर राज्य की सुरक्षा के लिये अभयसिंह द्वारा लिखे जाने पर उसने महाराजा की हत्या की थी। तब सब लोग यद्यपि शान्त हो गये [५८] परन्तु बख्तसिंह राज्य भर में बहुत बदनाम हो गया।[५९]

अगले दिन २४ जून (आषाढ़ सुदि १४) को महाराजा अजीतसिंह का अन्तिम संस्कार मडोर मे हुआ। अजीतसिंह के शव के साथ सती होने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। बड़ी भटियाणी रानी, चौहान रानी, छोटी भटियाणी, तुंवर लाडी, चावडी रानी तथा कछवाही रानी के अतिरिक्त उनकी सहेलियां तथा नौकर-चाकर आदि लगभग ६७ व्यक्ति उसकी चिता में कूद कर मरे थे।[६०]

अजीतसिंह का रनिवास बहुत बड़ा था। उसकी अट्ठारह रानियाँ थीं जिनके नाम इस प्रकार थे :—

१. रानी अमोलक दे—पीहर का नाम उदोतकंवर–राणा जयसिंह के भाई गजसिंह की पुत्री।

---

५८. वंश. भाग ४, ३०८३; टाड. भाग २, ५८४; वीर. भाग २, ८४३-४। वीर में मुहम्मदशाह का फरमान दिखाना भी लिखा है।

५९. बख्तसिंह के विषय में विभिन्न दोहे व छप्पय प्रसिद्ध है। एक बहुत प्रसिद्ध दोहा और छप्पय इस प्रकार है:—

बखता बखत बाहिरा, क्यूं मारियो अजमाल।
हिन्दवाणी रो सेवरो, तुरकांणी को साल॥
प्रथम तात मारियो, मात जीवती जलाई।
असी च्यार आदमी, हत्यां त्यारी पंण आई॥
कर गाढ़ो इकलास, बेगि जयसिंह बुलायो।
मेटी धरम मरजाद, भरम गांठ को गमाओ॥
कबि अणां हूंत केवा करे धरा उदक लेवण धरी।
बखत सी जनम पाया पछैं कसा बात आही करी॥

हे भाग्यहीन! तूने हिन्दुओ के रक्षक एवं मुसलमानो को कष्ट देने वाले अजीतसिंह का बध क्यों किया? तुमने जयसिंह से घनिष्ट मित्रता करके उसे शीघ्रता से बुलाया और धर्म की मर्यादाओं को भूल कर पहले तो पिता की हत्या की और फिर माता को जीवित जला डाला। इसके अतिरिक्त चौरासी व्यक्तियों की हत्या का कलंक भी तुम्हारे सिर पर है। कवि कहता है कि राज्य लेने के लिये तुमने यह कैसा दुःखदायी काम किया? हे बख्तसिंह! तुमने अच्छे कुल में जन्म पाकर यह कैसा दुष्कर्म किया है?

६०. ख्यात वाल ५३ अ ब; गुटका ७८ ब-७९ ब; ख्यात. भाग २, १८३-५; मु'डियाड़ २६६-८; अजितोदय सर्ग ३१, श्लोक २०-४; अभयविलास १३ ब; दानेश्वर २५०।

वंश. (भाग ४, ३०८३) व वीर (भाग २,८४२) में चौरासी व्यक्तियों का जलकर मरने का उल्लेख है, परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

२. बड़ी चौहान रानी—होटलू गाँव के चतुरभुज दयालदासोत की भांजी।
३. बड़ी भटियाणी रानी—जैसलमेर के रावल अमरसिंह की पुत्री।
४. छोटी चौहाण रानी—गाँव रोइडचा के फतेसिंह प्रीथीराजोत की बेटी।
५. छोटी भटियाणी—देरावर के भाटी दलेलसिंह की पुत्री।
६. बड़ी तुंवर अमरंग दे—पीहर का नाम विजयकुंवर-पाटण के राव बख्शीराम जसवंततोत की पुत्री।
७. रानी जाड़ेची—नवानगर के जमालखाँ की बेटी।
८. रानी लाडी तुंवर—लखासर के तुंवर किरतसिंह की पुत्री।
९. रानी चावडी—चावडा प्रथीसिंह की बेटी।
१०. रानी चौहाण—सांचोर की।
११. रानी देवड़ी—सिरोही के राव उमेदसिंह की पुत्री।
१२. रानी गौड़—राजगढ़ के केसरीसिंह की बेटी।
१३. बडी सीसोदणी—देवलिया के रावत प्रथीराज की पुत्री।
१४. रानी चौहाण—नीबराणा के राजा टोडरमल की बेटी।
१५. छोटी सीसोदणी—
१६. झाली उत्तमदे—हलोद के झाला चन्द्रसेण की पुत्री।
१७. रानी सेखावत—मनोहरपुर के सेखावत भगतसिंह की बेटी।
१८ छोटी चौहाण—सांचोर के चीतलवाला के चौहाण की बेटी।
१ पासवान—सांचोर चौहान बलदेव महेमदासोत की बेटी।
३ खवास—अजीतगुल, गुलबदन, नेणसुख।

महाराजा अजीतसिंह के २१ पुत्र हुये जिनमें से दस की मृत्यु पिता के जीवनकाल में ही हो गई थी। शेष ग्यारह पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. अभयसिंह २. बख्तसिंह ३. तेजसिंह ४. आनन्दसिंह ५. किसोरसिंह ६. प्रतापसिंह ७. रायसिंह ८. रतनसिंह ९. रूपसिंह १०. सुरताणसिंह ११. सौभागसिंह

दस मृत पुत्रों में से छः के नाम विदित हैं जो इस प्रकार हैं :—

१. दौलतसिंह २. जोधसिंह ३. अखैसिंह ४. जोरावर सिंह ५ छत्रसिंह ६. मानसिंह

महाराजा अजीतसिंह के आठ पुत्रियां भी थीं जिनके नाम इस प्रकार थे :—

१ फूलकुंवर २ इन्द्रकुंवर ३. फतेकुंवर ४. सूरजकुंवर ५, किसोरकुंवर ६ अखैकुंवर ७ बख्तावरकुंवर ८. सोभागकुंवर[६१]

महाराजा अजीतसिंह का लगभग सम्पूर्ण जीवन कठिनाइयों एवं संघर्ष का जीवन था। जन्म से पूर्व ही उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी और जब वह कुछ ही महीनों का था तो माँ की छत्र-छाया भी उसके सिर से उठ गई। इतना ही नहीं, राठोड़ सरदारों के विरोध से असन्तुष्ट होकर सम्राट् ने सोजत व जैतारण

६१. ख्यात. भाग २, १८७-१९२ मूं नियाड़, २४२-४।

के वे दोनों परगने भी खालसा कर लिये, जो उसने जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसके राजपरिवार के पालन-पोषण के लिये दिये थे। इस प्रकार अजीतसिंह के होश सम्भालने से पूर्व ही उसका सारा पैतृक राज्य खो चुका था। उसका पालन-पोषण सिरोही राज्य में स्थित कालन्द्री नामक गाँव के पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव के घर में हुआ। आठ वर्ष की अवस्था में गुप्तावस्था से बाहर आने के उपरान्त अगले लगभग तेईस वर्षों तक (सन् १६८७ ई० से १७१० ई०) वह सदैव मुग़ल-सम्राट् के विरुद्ध संघर्ष-रत रहा।

११ जून, सन् १७१० ई० को जब बहादुरशाह ने अजीतसिंह का जोधपुर राज्य पर वैधानिक अधिकार स्वीकार कर लिया, तब जोधपुर में लगभग इकतीस वर्षों के उपरान्त शान्ति स्थापित हुई। तत्पश्चात् अजीतसिंह ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति सुदृढ़ करना आरम्भ किया। मुग़ल-दरबार से भी उसका सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ने लगा, और केवल नौ वर्षों के बाद ही सन् १७१६ ई० में उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि सैयद-भाइयों ने भी उसे अपने पक्ष में रखना आवश्यक समझा। उसके सहयोग से ही बादशाह फ़र्रुख़सियर को सिंहासन से हटाया जा सका और तीन नये बादशाहों को बिठाया गया। परन्तु चरमोत्कर्ष के ये दिन अधिक समय तक न रह सके। केवल दो ही वर्ष बाद उसका महत्त्व दरबार में घट गया और स्थति यह हो गई कि सन् १७२१ ई० में अजमेर में उसने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। तीन वर्षों के उपरान्त २३ जून, सन् १७२४ ई० को मुग़ल-दरबार के षड्यन्त्र के फलस्वरूप उसके पुत्र ने ही उसका वध कर दिया।

अजीतसिंह की शारीरिक बनावट के विषय में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। केवल प्राप्य-चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसका क़द विशेष लम्बा नहीं था, और वह स्थूलकाय शरीर का व्यक्ति था। उसकी आँखें सुन्दर तथा मस्तक चौड़ा था।

जीवन के आरम्भ से ही उसे निरन्तर कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, अतः वीरता एवं साहस उसके स्वाभाविक गुण बन गये थे। स्थान-स्थान पर शाही सेनाओं को परास्त करके तथा अजमेर को घेर कर उसने अपने इन गुणों का यथेष्ट परिचय दिया।

अजीतसिंह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने अपने खोये हुये पैतृक राज्य पर न केवल अधिकार कर लिया, वरन् उसे बढ़ाने में भी वह सफल रहा। शक्ति बढ़ाने का कोई अवसर वह हाथ से नहीं जाने देता था और इसके लिये हर सम्भव उपाय अपनाता था। अपनी कन्या का विवाह मुग़ल-सम्राट् से करके और फिर अपने दामाद की हत्या में पूरा सहयोग देकर उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह घोर राजनीतिक व्यक्ति था।

अपने व्यक्तिगत जीवन में अजीतसिंह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। हिंगुलाज देवी का वह उपासक था,[६२] और पूजा पाठ व यज्ञादि में वह विश्वास

---

६२. ख्यात, भाग २, १८५।

करता था।[६३] जोधपुर राज्य में उसने सर्वत्र हिन्दुत्व के सिद्धान्तों के प्रसार का प्रयत्न किया। उसने कई नये मन्दिर बनवाये तथा पुरानों का जीर्णोद्धार करवाया।[६४] साधु-सन्यासियों का वह आदर-सम्मान करता था, और विभिन्न अवसरों पर उन्हें भोजन करवाकर दान-दक्षिणा दिया करता था।[६५] विभिन्न चारणों को उसने गाँव दान में दिये थे।[६६] लेकिन राजनीतिक जीवन में उसने धर्म को कभी बाधक नहीं बनाया। अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये वह समय को देखकर मुसलमानों के साथ ईदगाह में बैठकर खुतबा सुनने में[६७] भी संकोच नहीं करता था।

अजीतसिंह में प्रशासनिक गुणों का अभाव नहीं था। हुसैनअली के आक्रमण के समय जोधपुर की सुरक्षा के सम्बन्ध में उसने एक पत्र जोधपुर भेजा था।[६८] इस पत्र में दिये गये विस्तृत आदेशों से यह स्पष्ट है कि प्रशासन सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों का भी उसे पुरा ध्यान रहता था।

अजीतसिंह साहित्य एवं कला-प्रेमी शासक था। उसने न केवल विभिन्न साहित्यकारों को प्रश्रय दिया वरन् स्वयं भी गद्य एवं पद्य—दोनों में रचनाएँ करके साहित्य की सेवा की। जोधपुर एवं मण्डोर में विभिन्न भवनों का निर्माण करवाकर उसने अपने कला-प्रेम का भी परिचय दिया।

अजीतसिंह को निष्प्रयोजन किसी से सम्बन्ध बिगाड़ना रुचिकर नहीं था। उसने लगभग सभी राजपूत राजाओं से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया। कुछ राजाओं से उसके सम्बन्ध अवश्य बिगड़े; परन्तु उसका मूल कारण यह था कि उन शासकों तथा अजीतसिंह ने फर्रुखसियर के समय में मुगल-दरबार में भिन्न-भिन्न दलों का पक्ष लिया था। अपने सरदारों से भी वह साधारणतया अच्छा सम्बन्ध रखता था।[६९]

अजीतसिंह में कुछ स्वाभाविक दोष भी थे। वह कान का कच्चा था और लोगों पर शीघ्र ही विश्वास कर लेता था।[७०] इसके साथ ही वह अपने अधिकारियों

---

६३. ब्याव री बही नं. १, १-२६ में स्थान-स्थान पर इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

६४. पीछे देखिये पृ. १४१।

६५. ख्यात. भाग २, १८५।

६६. रेउ भाग १, ३२६ टि.।

६७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, १३।

६८. ग्लोरीज. परिशिष्ट ब ७, १०३-५।

६९. ८ फरवरी, सन् १७०६ ई० में अजीतसिंह भंडारी विट्ठलदास के घर गया था और मई, सन् १७१८ ई० में भंडारी खीवसी के पौत्र व पौत्री के विवाह में उसने भाग लिया था (ख्यात भाग २, १५५ व १६८)।

७०. अजमेर के सूबेदारों ने सन् १६६२ ई० तथा सन् १७०६ ई० में दो बार उसे छल-युक्त पत्र लिखे थे और महाराजा उन पर विश्वास करके अजमेर चला गया।

पर बहुत निर्भर हो जाता था, और उन पर से अपना अंकुश हटा लेता था। परिणामत: उसके अधिकारी बहुधा मनमानी करने लग जाते थे।[७१] वह अपने विरोधियों को कठोर दंड देता था और उन्हें छल से मरवा भी दिया करता था।[७२]

जोधपुर राज्य के इतिहास में अजीतसिंह का विशेष महत्त्व है। वह प्रथम शासक था जिसे मुग़ल-सम्राट् ने राजराजेश्वर की पदवी एवं माही मरातिब प्रदान किया। जोधपुर के राजाओं में केवल उसे ही इतना महत्त्व मिल सका कि उसने मुग़ल उत्तराधिकार के प्रश्न में हस्तक्षेप किया। फ़र्रुख़सियर की मृत्यु हो जाने पर उसकी विवाहिता अपनी पुत्री को हिन्दू बनाकर वापस जोधपुर लाकर उसने भारतीय इतिहास में एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया।

---

७१ अजीतसिंह सन् १६९८ ई० के बाद जालोर में रहा तो उसने चांपावत उदयसिंह पर ही सारा शासन भार छोड़ दिया था। (पीछे देखिये पृ० १२८) गुजरात तथा अजमेर में भी उसके नायब भंडारी अनूपसिंह तथा भंडारी विजयराज ने मनमानी की थी व कुशासन फैलाया था। (पीछे देखिये पृ० ११७ व २२०)

७२. २९ सितम्बर, १७०९ ई० में उसने विट्ठलदास के चार पुत्रों को हवेली में कैद कर दिया और उसकी सम्पत्ति छीन ली थी। इसी वर्ष उसने सोढा भगु नामक व्यक्ति को धोखे से मरवाया। मई सन् १७१८ ई० में उसने सुजानसिंह के करण व जुझारसिंह नामक दो पुत्रों को मरवाया था। (ख्यात. भाग २, ४९-५०, १५४ व १५१-३)

८

अन्य राजपूत राज्यों से सम्बन्ध

महाराजा अजीतसिंह का जीवन बहुत उतार-चढ़ाव का जीवन था। मुग़ल बादशाहों के विरुद्ध कभी वह युद्ध मे संलग्न रहा तो कभी उनका मित्र बना रहा, और कभी वह मुग़ल-दरबार का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। इसी प्रकार विभिन्न राजपूत राज्यों के साथ भी उसके सम्बन्ध समय-समय पर परिवर्तित होते रहे। विभिन्न राजपूत राज्यों के मुग़ल-सम्राट के साथ सम्बन्धों के आधार पर अथवा किन्हीं पारस्परिक व्यक्तिगत कारणों से उसका और अन्य राजपूत राजाओं का सम्बन्ध कभी मैत्रीपूर्ण रहा, कभी उदासीन। कभी किसी राज्य के साथ उसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ गई और कभी उनमें परस्पर शत्रुता का बीजारोपण भी हो गया। मेवाड़, आम्बेर, व नागोर के साथ उसका लगभग जीवन-भर विशेष सम्पर्क रहा और बीकानेर, सिरोही, बूँदी, रतलाम किशनगढ़ व प्रतापगढ़, के साथ भी यदा-कदा सम्बन्ध बना रहा। इन राजपूत राजाओं के अतिरिक्त अपने जीवन-काल के अन्तिम वर्षों में जाट व मरहठों के साथ भी उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।

(क) मेवाड़—

१६७८ ई. में जब महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई इस समय जोधपुर राज्य के साथ मेवाड़ के राणा राजसिंह का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण था।[1] जसवन्तसिंह के मरते ही जोधपुर राज्य में अत्यधिक अव्यवस्था फैल जाने के कारण जब औरंगज़ेब ने नवजात राजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का उत्तराधिकारी स्वीकार न करके इन्द्रसिंह को वहां का राज्याधिकार सौंप दिया और इससे अप्रसन्न होकर राठौड़ सरदारों ने स्थान-स्थान पर विरोध प्रगट करना आरम्भ कर दिया, तब राणा राजसिंह ने जोधपुर की राजनीति में कोई रुचि नही दिखाई।[2] वह सम्भवत: बिना किसी विशेष प्रयोजन के मुग़ल सम्राट के साथ अपना सबंध बिगाड़ना नहीं चाहता था। कुछ ही दिन उपरान्त जब राठौड़ों के उपद्रव ने गम्भीर रूप ले लिया तो ३ सितम्बर, सन् १६७९ ई० को औरंगज़ेब से स्वयं उनके दमन के लिये दिल्ली से प्रस्थान किया। यह समाचार पाकर जब राठौड़ सरदारों ने सिंघवी दयालदास तथा राठौड़ गोपीनाथ को राणा के पास भेजकर उससे अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की तो उसने संभवत:

---

१. पीछे देखिये पृ० ६।

२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय २।

यह सोचा कि निकटवर्ती राज्य पर शाही आधिपत्य स्थापित हो जाने से उसका अपना राज्य अरक्षित हो जायेगा, और सम्भव है बादशाह मारवाड़ के पश्चात् मेवाड़ की ओर भी बढ़े। कारण कुछ भी रहा हो, उसने अजीतसिंह को आश्रय देना स्वीकार कर लिया।[3] इस प्रकार जोधपुर तथा मेवाड़ का पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गया। फलस्वरूप अगले लगभग पौने दो वर्ष तक जोधपुर के विद्रोही राठौड़ व उदयपुर के सीसोदिया राजपूत एक दूसरे के सहयोगी बने रहे, और उन्होंने सम्मिलित रूप से स्थान-स्थान पर शाही सैनिकों का सामना किया, शाही अधिकारियों पर आक्रमण किया और शाही चौकियों व रसद को लूटा। अन्त में उनके सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप ३ जनवरी, सन् १६८१ ई० को शाहज़ादा अकबर ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु जब अकबर का विद्रोह असफल हो गया और वह राठौड़ दुर्गादास के साथ दक्षिण की ओर भाग गया, तब राणा राजसिंह के उत्तराधिकारी राणा जयसिंह ने बादशाह के साथ सन्धि करने का विचार किया। सम्भवतः जयसिंह दीर्घकालीन युद्ध से तंग आ चुका था, और यह देख रहा था कि इससे उसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं है। फलतः १४ जून, सन् १६८१ ई० को राणा तथा मुग़ल-सम्राट के बीच सन्धि हो गई।[4] इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जोधपुर तथा मेवाड़ राज्यों की पारस्परिक घनिष्ठता मे व्याघात आ गया। राणा ने राठौड़ों के साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

सन् १६८१–७ ई० तक जब मारवाड़ के राठौड़ सरदार निरन्तर विरोध प्रकट करने तथा लूटमार में व्यस्त रहे, मेवाड़ के सीसोदिया राजपूतों ने उन्हें किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया। १८ मार्च, सन् १६८७ ई० को अजीतसिंह के गुप्तावस्था से बाहर आ जाने के बाद भी राणा जयसिंह ने उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध रक्खा हो, ऐसा विवरण नहीं मिलता। सम्भवतः वह बादशाह के विरोधियों से सम्पर्क रखकर मुग़ल-सम्राट से अकारण अपना सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहता था। परन्तु अजीतसिंह के प्रकट होने के पाँच वर्ष बाद मार्च–अप्रैल सन् १६९२ ई० में जब राणा तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के बीच मनमुटाव हो गया, तब मारवाड़ तथा मेवाड के राज्यों के बीच एक बार फिर सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस समय राणा को पुत्र का विद्रोह दबाने के लिये सैनिक सहायता की आवश्यकता थी। चूँकि मेवाड़ के दक्षिण में स्थित डूंगरपुर, प्रतापगढ़ तथा बांसवाड़ा के शासकों से राणा का सम्बन्ध विशेष सौहार्द्रपूर्ण नहीं था, अतः उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती थी। इतना ही नहीं, यह भी सम्भव था कि वे विद्रोही राजकुमार की सहायता करें अथवा मेवाड़ के गृह-कलह से स्वयं लाभ उठायें। बीकानेर, जयपुर तथा बूँदी के शासक दक्षिण में शाही सेवा में नियुक्त थे, अतः इन राज्यों से भी इस संकट में सहायता मिलने की

---

३. पीछे देखिये पृ. ९८।

४. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ३।

आशा नहीं थी। इस स्थिति में जयसिंह ने जोधपुर की ओर दृष्टि फेरी और अजीतसिंह को पत्र लिखकर सैनिक सहायता भेजने का अनुरोध किया। उधर अजीतसिंह को इस समय तक जोधपुर का अधिकार नहीं मिल सका था और उसके सरदार शाही प्रभुत्व के विरुद्ध अकेले ही यत्र-तत्र उपद्रव कर रहे थे। इस स्थिति में जब अजीतसिंह के पास राणा का पत्र पहुँचा तो उसके सामने एक सशक्त राजपूत राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का एक सुअवसर सहज ही उपस्थित हो गया। भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उसे भी मेवाड़ से सहायता मिल सकेगी, इसकी पूर्ण आशा थी। इसके साथ ही इसी वर्ष जोधपुर के फ़ौजदार शुजात ख़ाँ ने राठौड़ सरदारों को भूमि के पट्टे तथा तत्सम्बन्धी विस्तृत अधिकार दिये थे। फलतः राज्य मे अपेक्षाकृत शान्ति थी। इस स्थिति में अजीतसिंह ने इस सुअवसर को खोना उचित नहीं समझा और तत्काल ही एक विशाल सेना देकर दुर्गादास को मेवाड़ जाने का आदेश दिया। वहां पहुँचकर दुर्गादास के प्रयत्न से पिता-पुत्र का मेल हो गया। इस प्रकार लगभग ग्यारह वर्ष बाद मारवाड़ तथा मेवाड में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो गया। केवल चार वर्ष बाद जब मई, सन् १६९६ ई. में अमरसिंह ने पुनः पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और राणा के बुलाने पर अजीतसिंह ने स्वयं उदयपुर जाकर राजकुमार को शान्त किया, तब राणा और अजीतसिंह एक–दूसरे के और निकट आ गये। १२ जून, सन् १६९६ ई० को राणा ने अपने भाई गजसिंह की पुत्री का विवाह अजीतसिंह के साथ कर दिया[५]। इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप इन दोनों शासकों की मैत्री और दृढ़ हो गई।

राणा जयसिंह के उत्तराधिकारी राणा अमरसिंह के सिंहासनारोहण के लगभग दो वर्षों के बाद सन् १७०२ ई० में जब बादशाह ने सिरोही व आबू की जागीर राव बैरीसाल के अधिकार से हटाकर राणा अमरसिंह को दे दी, तब अजीतसिंह ने वहां राणा का अधिकार स्थापित होने में कुछ बाधा डाली थी, यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह ने ऐसा क्यों किया? कहा जाता है कि चूँकि अजीतसिंह का बाल्यकाल सिरोही राज्य में व्यतीत हुआ था, इसी कारण उसका भावनात्मक सम्बन्ध उस राज्य से था और राणा का वहां अधिकार करना उसे असह्य हुआ। परन्तु चूँकि अजीतसिंह को बाल्यकाल में मेवाड़ में भी प्रश्रय मिला था, अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। साथ ही केवल भावनात्मक सम्बन्ध के कारण एक सशक्त राज्य से सम्बन्ध बिगाड़ना उचित नहीं प्रतीत होता। सम्भव है कि अजीतसिंह ने यह निश्चय अपनी विमाता रानी देवड़ी के प्रभाव से लिया हो जोकि सिरोही की राजकन्या थी। परन्तु इतना स्पष्ट है कि इस निश्चय के फलस्वरूप दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये। यह स्थिति लगभग चार वर्ष तक बनी रही और इन वर्षों में अजीतसिंह ने

---

५. पीछे देखिये पृ. १८७-१९०।

बादशाह के विरुद्ध जो भी कार्य किये उनमें उसे राणा से कोई सहयोग प्राप्त न हो सका। सन् १७०५ ई० में जब राठौड़ दुर्गादास, अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर शाही सेवा में चला गया और जनवरी, सन् १७०६ ई. में चांपावत उदयसिंह तथा जेतावत अर्जुनसिंह ने अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर मोहकमसिंह को जालोर पर आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया, तब अपने प्रमुख सरदारों के असहयोग को देखकर अजीतसिंह ने सम्भवतः मेवाड़ के राणा के साथ अपना तनाव दूर करने का निश्चय किया। उसकी आज्ञा से चांपावत मुकुन्ददास ने राणा के प्रधान दामोदरदास की मध्यस्थता से बातचीत आरम्भ की। फिर भण्डारी विट्ठलदास ने राणा को अजीतसिंह का तथा अपना पत्र भेजा, और अन्त में गोस्वामी नीलकंठगिरि की मध्यस्थता से दोनों शासकों का पारस्परिक तनाव दूर हो गया।[६]

औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने अपने शासनारम्भ में अजीतसिंह और आम्बेर के शासक जयसिंह को आतंकित करके उनकी शक्ति कुचलने का जो प्रयत्न किया, उसके फलस्वरूप जोधपुर, आम्बेर, मेवाड़, व बूंदी के शासकों में परस्पर पत्र-व्यवहार होने लगा। फलतः अजीतसिंह और अमरसिंह का पारस्परिक सम्बन्ध भी धीरे-धीरे मैत्रीपूर्ण होने लगा। कुछ दिनों बाद बादशाह के साथ दक्षिण जाते हुए मार्ग में जब अजीतसिंह और जयसिंह को यह स्पष्ट हो गया कि बहादुरशाह उन्हें उनके राज्य वापस देने का विचार नहीं रखता है, तब २० अप्रैल, सन् १७०८ ई. को वे शाही शिविर से भाग कर राणा अमरसिंह की शरण में चले गये। राणा ने दोनों राजाओं का स्वागत किया और इसी समय इन तीनों शासकों के बीच एक त्रिगुट बना, जिसमें यह निश्चय हुआ कि वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस प्रकार अजीतसिंह और अमरसिंह के सम्बन्ध घनिष्ट हो गये। इसके पश्चात् अजीतसिंह को जब आवश्यकता पड़ी, राणा अमरसिंह ने उसे सहायता दी। जून-जुलाई, सन् १७०८ ई. में उसने जोधपुर पर अधिकार करने के लिये उसे सैनिक सहायता दी। इसी समय अजीतसिंह और जयसिंह का पक्ष लेते हुये उसने शाहज़ादा जहाँदारशाह को भी पत्र लिखकर बताया कि राजाओं को उनके राज्य वापस देने पर ही शान्त रहेंगे। फ़रवरी, सन् १७०९ ई. में जब अजीतसिंह और जयसिंह में कुछ तनाव उत्पन्न हुआ तो अमरसिंह ने ही उन्हें शान्त किया। इसी वर्ष नागौर के शासक इन्द्रसिंह पर अजीतसिंह ने जब आक्रमण किया तो उनमें राणा ने सन्धि करवाई थी। इस प्रकार सन् १७०९ ई. तक अजीतसिंह और अमरसिंह की घनिष्टता अबाधिक रूप से बनी रही। अगले वर्ष ११ जून, सन् १७१० ई. को अजीतसिंह और बहादुरशाह के बीच सन्धि हो गई। बहादुरशाह के उत्तराधिकारी जहांदारशाह के समय में भी अजीतसिंह का सम्बन्ध मुग़ल-सम्राट से अच्छा रहा। फलतः अमरसिंह द्वारा अजीतसिंह को सक्रिय सहायता दिये जाने

---

६. वीर. भाग २, ७६४-७; ओझा भाग ४, खंड २, ५९५-७।

की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी और अगले चार वर्ष तक इनकी पारस्परिक मित्रता बनी रही।[७]

परन्तु फ़र्रुख़सियर के शासनारम्भ में इनकी मित्रता में व्याघात पड़ गया। सन् १७१४ ई. में जब अमीरुलउमरा हुसैन अली ख़ाँ ने शाही आज्ञानुसार अजीतसिंह पर आक्रमण किया, तो अमरसिंह ने अजीतसिंह को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। सम्भवतः इसका कारण यह था कि सन् १७०८ ई. में स्थापित त्रिगुट में इससे पूर्व ही दरारें पड़ने लगी थीं, और जयसिंह तथा अजीतसिंह में पहले का सा सौहार्द नहीं रहा था।

हुसैन अली के आक्रमण में जयसिंह ने अजीतसिंह को कोई सहायता नहीं दी थी। सम्भवतः यह देखकर ही राणा ने भी मुग़ल-शासक से सम्बन्ध बिगाड़ना उचित नहीं समझा। संकट के समय सहायता न मिलने से अजीतसिंह भी राणा के प्रति उदासीन हो गया।[८]

राणा अमरसिंह के उत्तराधिकारी राणा संग्रामसिंह के समय में मुग़ल-दरबार में बादशाह तथा सैयद बन्धुओं के दो दल स्पष्ट रूप से बन गये थे, और अजीतसिंह दूसरे दल का निकटतम सहयोगी था। संग्रामसिंह अपने राज्य को छोड़कर दिल्ली की राजनीति में फँसना सम्भवतः उचित नहीं समझता था, अतः उसने न फ़र्रुख़सियर का पक्ष लिया, न सैयद बन्धुओं का। दूसरी ओर अजीतसिंह दिल्ली की राजनीति में अच्छी तरह फँस गया था। फलस्वरूप अजीतसिंह तथा संग्रामसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध अजीतसिंह की मृत्यु तक उदासीन ही रहे, उनमें परस्पर घनिष्टता नहीं बढ़ी।

(ख) आम्बेर:—

महाराजा जसवंतसिंह के समय में जोधपुर तथा आम्बेर के शासकों के बीच प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति बनी रही और जसवंतसिंह तथा आम्बेर का शासक मिर्ज़ा राजा जयसिंह दोनों ही बादशाह से एक दूसरे से अधिक सम्मान पाने के लिए प्रयत्न-शील रहे। परन्तु जयसिंह की मृत्यु के बाद आम्बेर के राजघराने का महत्त्व घट गया। उसके अगले दोनों उत्तराधिकारी—रामसिंह और बिशनसिंह—का राजत्व-काल विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं था, और इन दोनों का जीवन अधिकतर अपने राज्य से दूर अफ़ग़ानिस्तान में बीता था।[९] फलतः जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ राज्य में जो उथल-पुथल हुई उसमें उन्हें कोई सरोकार नहीं रहा। बिशनसिंह का उत्तराधिकारी सवाई जयसिंह भी अपने राज्यत्व के आरम्भिक सात वर्षों (सन् १६९९-१७०६ ई.) में रहकर शाही सेवा करता रहा,[१०] और उसने अजीतसिंह के साथ

---

७. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ५ व अध्याय ६; खंड क।

८. पीछे देखिये पृ० २९०।

९. पूर्व १५०

१०. मआसिर (हिन्दी) भाग १. १६४।

किसी प्रकार का मैत्री-भाव प्रकट करने का कोई प्रयत्न किया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

परन्तु बहादुरशाह के शासनारम्भ में अजीतसिंह और जयसिंह एक दूसरे के मित्र के रूप में सामने आये। उनकी यह पारस्परिक मित्रता कब विकसित हुई यह कहना कठिन है, क्योंकि इसके विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। औरंगज़ेब की मृत्यु के समय जयसिंह शाहज़ादा बेदारबख़्त के साथ अहमदाबाद में नियुक्त था।[११] अजीतसिंह इन दिनों जालौर के परगने में उपद्रव कर रहा था।

सम्भवतः इसी समय इन दोनों राजाओं के बीच मित्रता स्थापित हुई। चूँकि अजीतसिंह तथा मुग़ल सम्राट के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, अतः अवसर पाकर किसी भी राजपूत शासक से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उसका उत्सुक रहना नितान्त स्वाभाविक था। सम्भव है, अपने निवास स्थान के निकट के प्रदेश में जयसिंह की नियुक्ति हो जाने पर उसने आम्बेर के शासक के साथ सम्पर्क स्थापित किया हो। यह नहीं कहा जा सकता कि औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया, तो उसे जयसिंह का कुछ सहयोग मिला अथवा नहीं। परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि जब बहादुरशाह ने आम्बेर को ख़ालसा कर लिया और जोधपुर में शाही फ़ौजदार भेज दिया तो अजीतसिंह और जयसिंह दोनों की समस्याएँ एक समान हो गईं। फलतः धीरे-धीरे उनकी मैत्री घनिष्ट होती गई।

सन् १७०७ में जोधपुर तथा जयपुर के शासकों के बीच जो घनिष्ठता आरम्भ हुई, वह सन् १७१२-३ ई. तक अबाध रूप से बनी रही। अजीतसिंह १३ फ़रवरी, सन् १७०८ ई. को जब बहादुरशाह से प्रथम बार मिला तो जयसिंह भी शाही शिविर में ही था। दोनों राजाओं की यह सम्भवतः प्रथम भेंट थी। अगले लगभग नौ-दस महीने (फ़रवरी से नवम्बर) तक अजीतसिंह और जयसिंह साथ-साथ ही रहे। बादशाह के साथ दक्षिण की ओर जाते हुए उन्होंने एक दूसरे की सहमति से ही शाही शिविर छोड़ा और राणा की शरण में चले गये। जुलाई,सन् १७०८ ई. में जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर पुनः अधिकार किया तो न केवल जयपुर के सैनिकों ने उसे सहयोग दिया, वरन् जयसिंह स्वयं भी उसके साथ था। कुछ दिन उपरान्त २६ जुलाई को अजीतसिंह ने अपनी पुत्री सूरजकुँवर की सगाई जयसिंह के साथ करके उससे पारिवारिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। ३ अक्तूबर, सन् १७०८ई. को सांभर में राजपूत सैनिकों की जो विजय हुई, वह दोनों शासकों के सम्मिलित प्रयत्न का फल था। फलतः यहां पर दोनों का सम्मिलित शासन स्थापित हुआ। ११ जून सन् १७१० ई. को बहादुरशाह के साथ दोनों शासकों ने साथ-साथ सन्धि की, और सिक्खों के विरुद्ध अभियान में भी उन्होंने इकट्ठे ही भाग लिया।[१२]

इन पाँच-छः वर्षों (सन् १७०७—१७१२-३ ई.) में अजीतसिंह व जयसिंह की घनिष्ठता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। वे दोनों परस्पर पत्रों द्वारा एक

---

११. बहादुरशाह १०० टि०।

१२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ५।

दूसरे को सारी स्थिति से परिचित कराते रहते थे। दरबार में उपस्थित अपने वक़ीलों की प्रगति, शत्रु की सेनाओं व शाही अधिकारियों की स्थिति, अपनी सेनाओं की प्रगति तथा अपनी नीति आदि सभी बातों का विवरण वे एक दूसरे को देकर परस्पर सलाह से कार्य करते थे। शाही फ़रमानों तथा महत्त्वपूर्ण पत्रों की प्रतिलिपि भी वे एक दूसरे को भेजा करते थे।[13]

इन वर्षों में दोनों राजाओं के बीच केवल एक बार मनमुटाव हुआ। १६ फ़रवरी, सन् १७०६ ई. को अजीतसिंह ने जब अजमेर पर आक्रमण किया तो जयसिंह ने उसे कोई सहायता नहीं दी। इस पर अजीतसिंह का असन्तोष स्वाभाविक था। सम्भवतः जयसिंह आम्बेर की शासन व्यवस्था में व्यस्त था, और अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने से पूर्व शाही अधिकारियों से उलझना नहीं चाहता था।[14] परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह का यह तनाव अधिक दिन नहीं रहा। राणा अमरसिंह ने तत्काल दोनों को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया।[15]

बादशाह जहाँदारशाह के समय में सन् १७१३ ई. में अजीतसिंह ने मालपुरा से जयसिंह के थाने हटाकर अपने थाने स्थापित कर लिये और रूपनगर व टोडा में भी अपने थाने बनाये। सम्भवतः अपने राज्य में अजीतसिंह का यह अनाधिकार प्रवेश जयसिंह को भला नहीं लगा। फलस्वरूप उनके सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये और वे मन ही मन एक दूसरे से असन्तुष्ट हो गये। सम्भवतः इसी कारण सन् १७१४ ई. में जब अमीर-उल–उमरा हुसैनअलीखाँ फ़र्रुखसियर की आज्ञानुसार अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये गया तो जयसिंह ने बादशाह के साथ अपना सम्बन्ध, बिगाड़ना उचित न समझकर उसे कोई सहायता नहीं दी। फलस्वरूप इनकी सात वर्ष पुरानी मित्रता समाप्त हो गई।[16]

फ़र्रुख़सियर के दरबार की दलबन्दी में अजीतसिंह और जयसिंह भिन्न–भिन्न दलों के समर्थक रहे। अजीतसिंह ने सैयद-बन्धुओं का पक्ष लिया और जयसिंह ने बादशाह का। फलतः उनके पारस्परिक सम्बन्ध भी धीरे-धीरे कटु होते गये। अजीतसिंह ने सीकदार दयालदास को एक पत्र लिखा जिसमें बताया कि जयसिंह के परामर्श पर फ़र्रुखसियर ने उसको मरवाने के कई प्रयत्न किये हैं।[17] अजीतसिंह को भी दरबार में जयसिंह की उपस्थिति असहनीय थी। फलतः जब सैयद–भाइयों ने बादशाह के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि जयसिंह को आम्बेर लौटने की आज्ञा दी जाय, तो अजीतसिंह की भी सहमति इसमें थी। फर्रुख़सियर विवश था। उसने

१३. रा. पु. बी. में इस काल के पत्रों का महत्वपूर्ण संग्रह है, जिसमें इस प्रकार की घनिष्टता की पुष्टि होती है।

१४. पीछे देखिये पृ० १६२।

१५. इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, मैसूर १६६६।

१६. पीछे देखिये पृ. १८७।

१७. ग्लोरीज़ परिशिष्ट ब ६, ११४-५।

जयसिंह को इस प्रकार का आदेश दिया। फलस्वरूप जयसिंह आम्बेर लौट गया, और अगले कुछ महीनों तक दिल्ली की राजनीति से विलग रहा।

उधर सैयद-बन्धुओं और अजीतसिंह ने फर्रुख़सियर को सिंहासन से हटा दिया। सन् १७१९ ई. के फरवरी से सितम्बर तक के केवल सात महीनों में दिल्ली में रफ़ीउद्दरजत, रफ़ीउद्दौला व मुहम्मदशाह नामक तीन बादशाह हुए। इसी बीच जब आगरा में नेकुस्सियर का विद्रोह हुआ, और जयसिंह भीससैन्य आम्बेर से निकलकर टोडा तक आ पहुँचा, तो अजीतसिंह बादशाह से आज्ञा लेकर जयसिंह से मिला। उसके प्रयत्न से जयसिंह ने अपने राज्य को लौटना स्वीकार कर लिया। अजीतसिंह के इस कार्य से उसके तथा जयसिंह के बीच की कटुता कुछ कम हो गई। अजीतसिंह जयसिंह को साथ लेकर जोधपुर लौटा, और सम्भवतः मैत्री बढ़ाने के विचार से १९ मई, सन् १७२० ई. को उसने अपनी पुत्री सूरजकुँवर का विवाह जयसिंह के साथ कर दिया। इस प्रकार यद्यपि दोनों में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो गया, परन्तु मन ही मन वे विरोधी पक्षों के समर्थक बने रहे, जिससे आन्तरिक विरोध बना ही रहा और उनमें पहले की सी घनिष्ठता न हो सकी।[१८] नवम्बर, सन् १७२० ई. में सैयद-भाइयों का पतन हो जाने का समाचार जब जोधपुर पहुँचा तो जयसिंह बिना अजीतसिंह को सूचना दिये ही चुपचाप जोधपुर से दिल्ली चला गया।[१९]

४ अगस्त, सन् १७२१ ई को जब बादशाह ने अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया, और उसने अजमेर में विद्रोह कर दिया, तो जयसिंह ने उसे कोई सहायता नहीं दी। वह शाही आज्ञानुसार जाटों के विरुद्ध अभियान में लगा रहा।[२०] उसकी शाही सेवाओं के फलस्वरूप मुहम्मदशाह के दरबार में उसका महत्त्व बढ़ता गया। इस स्थिति में अजीतसिंह और जयसिंह के बीच मित्रता होना अस्वाभाविक था। सन् १७२३ ई. में मुहम्मदशाह ने जो सेना अजीतसिंह के विरुद्ध अजमेर की ओर भेजी थी, उसमें जयसिंह भी था। जयसिंह के समझाने पर अजीतसिंह ने शाही अधीनता स्वीकार कर ली और जोधपुर वापस चला गया।[२१] परन्तु इससे उनके सम्बन्धों पर कोई प्रभाव न पड़ा। सम्भवतः अजीतसिंह ने जयसिंह के प्रभाव से नहीं, वरन् शाही सेना की शक्ति की अधिकता के कारण बादशाह से सन्धि की थी।

जयसिंह स्पष्ट देख रहा था कि सैयद-भाइयों के पश्चात् अजीतसिंह का महत्त्व बहुत कम हो गया है। सम्भवतः इसीलिये उसने अजीतसिंह से मित्रता न रखकर बादशाह को प्रसन्न रखना अपने लिये अधिक हितकर समझा। फलतः

---

१८. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ६ खण्ड ४।

१९. ख्यात भाग २; १७८; मूंदियाड़ २६०; अजितोदय सर्ग २८, श्लोक ५९–६४।

२०. इरविन भाग २, १२२–३।

२१. पीछे देखिये पृ. २२७–८।

मुहम्मदशाह के कहने पर अजीतसिंह के पुत्र अभयसिंह को उकसाकर अजीतसिंह की हत्या करवादी।[२२]

इस प्रकार आम्बेर के सवाई जयसिंह के साथ अजीतसिंह के सम्बन्ध आरम्भ में न केवल मित्रतापूर्ण थे वरन् घनिष्टतापूर्ण रहे; फर्रुखसियर के समय में इनमें तनाव आने लगा, और धीरे-धीरे यह कटुता इतनी अधिक हो गई कि जयसिंह ने अजीतसिंह को मरवाने में भी संकोच नहीं किया।

(ग) नागोर:—

महाराजा गजसिंह ने सन् १६३२ ई. में अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह से अप्रसन्न होकर अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। फलस्वरूप सन् १६३८ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् बादशाह शाहजहाँ ने उसकी इच्छानुसार जसवन्तसिंह को जोधपुर राज्य का अधिपति स्वीकार कर लिया, और उसके ज्येष्ठ भाई अमरसिंह को तीन हज़ार ज़ात, तीन हज़ार सवार का मनसब व राव की पदवी देकर नागोर-प्रदेश का अधिकार सौंप दिया। इस समय से नागोर पर सदैव अमरसिंह के वंशजों का अधिकार बना रहा। जोधपुर राज्य से वंचित रहने के कारण नागोर के शासकों का जोधपुर राज्य के शासक से असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक था। सम्भवतः इसी कारण जसवन्तसिंह के साथ अमरसिंह तथा उसके पुत्र रायसिंह ने कोई सम्पर्क नहीं रक्खा, और वे सदैव स्वामी-भक्ति पूर्वक शाही सेवा में रत रहे। सम्भवतः जोधपुर व नागोर के पारस्परिक वैमनस्य को देखकर ही औरंगज़ेब ने १६५९ ई० में जसवन्तसिंह के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर रायसिंह को जोधपुर का अधिकार सौंपने का प्रयास किया था।[२३]

जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय अमरसिंह का पौत्र इन्द्रसिंह नागोर का अधिपति था, और वह अपने पिता और पितामह की तरह शाही मनसबदार था, और इन दिनों दक्षिण के युद्धों में भाग ले रहा था। महाराजा की मृत्यु के बाद जब जोधपुर में अव्यवस्था फैल गई, तो बादशाह औरंगज़ेब ने दक्षिण से बुलाकर २५ मई, सन् १६७९ ई० को उसे इस आशा से जोधपुर का अधिकार सौंप दिया कि वह वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करने में समर्थ होगा।[२४] परन्तु जोधपुर के राठौड़ सरदारों को यह रुचिकर नहीं लगा। यद्यपि इन्द्रसिंह ने पद का लालच देकर व समझा-बुझाकर जोधपुर के कुछ राठौड़ सरदारों को अपनी ओर मिला लिया और उसका जोधपुर पर अधिकार स्थापित हो गया; परन्तु यह स्थिति अधिक दिन तक न बनी रह सकी, और कुछ ही दिन बाद ये राठौड़ सरदार उसके व्यवहार से अप्रसन्न होकर अजीतसिंह के पक्ष में चले गये। सन् १६७९ से १७०७ ई० तक जोधपुर के राठौड़ों एवं मुग़ल सम्राट के बीच जो संघर्ष हुआ उसमें इन्द्रसिंह, सदैव शाही

---

२२. पीछे देखिये पृ. २२९।

२३. जसवन्तसिंह ३०, ३८ व ६४-५।

२४. पीछे देखिये पृ. ४४।

सेना में बना रहा, और उसे स्थान-स्थान पर राठौड़ सरदारों के दमन के लिये भेजा गया। फलस्वरूप निकटतम पारिवारिक सम्बन्ध होने के बावजूद भी अजीतसिंह व इन्द्रसिंह कभी एक दूसरे के निकट नहीं आ सके। जब इन्द्रसिंह जोधपुर राज्य में सुव्यवस्था स्थापित नहीं कर सका, और बादशाह ने २६ मार्च, सन् १६८१ ई० को उससे जोधपुर का राज्याधिकार वापस ले लिया, तब भी इनमें सौहार्द्र नहीं स्थापित हो सका।[२५] सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह और इन्द्रसिंह दोनों ही जोधपुर राज्य के लिए प्रतिद्वन्द्वी थे। सम्भव है इन्द्रसिंह को यह आशा रही हो कि शाही सेवा में रहकर वह पुनः जोधपुर का राज्याधिकार पा सकेगा। कारण कुछ भी रहा हो, औरंगजेब के सम्पूर्ण राज्यकाल में सन् १७०७ ई० तक जब जोधपुर के राठौड़ सरदार मुग़ल-सम्राट के विरुद्ध उपद्रव करते रहे तो इन्द्रसिंह ने उनसे कोई सम्पर्क नही रक्खा। इतना ही नही, सन् १७०५ ई० में जब अजीतसिंह के चाँपावत उदयसिंह तथा जैतावत अर्जुनसिंह नामक प्रधान सरदारों ने असन्तुष्ट होकर इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को निमन्त्रित किया तो उसने अजीतसिंह से अपने परिवारिक सम्बन्ध का कोई ध्यान नहीं रक्खा, और ६ जनवरी, सन् १७०६ ई० को जालोर पर आक्रमण कर दिया।[२६] यद्यपि उसका यह प्रयत्न विशेष सफल न हो सका, तथापि इसके फलस्वरूप अजीतसिंह नागोर के राजवंश के साथ रुष्ट हो गया और बहादुरशाह के राज्यकाल में अवसर पाकर उसने २५ नवम्बर, सन् १७०८ ई० को नागोर पर आक्रमण करने के लिये जोधपुर से प्रस्थान किया। अजीतसिंह की विशाल सेना देखकर इन्द्रसिंह उसका सामना करने का साहस न कर सका, और उसने अपनी माँ के द्वारा अजीतसिंह से अनुनय-विनय करवाकर उससे सन्धि कर ली।

परन्तु इस सन्धि के बाद भी अजीतसिंह और इन्द्रसिंह के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित न हो सका। अगले वर्ष सन् १७०९ ई० के अन्त में जब अजीतसिंह ने बादशाह के विरुद्ध इन्द्रसिंह से सहायता माँगी तो इन्द्रसिंह ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग एक वर्ष पूर्व उसने अजीतसिंह के साथ जो सन्धि की थी, वह केवल आकस्मिक आपत्ति को टालने के लिए ही की थी, और अजीतसिंह के साथ मैत्री करने का उसका कोई विचार नहीं था। अजीतसिंह को जब इस उत्तर का पता चला, तो उसने क्रोधित होकर नागोर के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेज दीं और इन्द्रसिंह को पुनः दूसरी बार उससे सन्धि करने के लिये बाध्य होना पड़ा।[२७]

फर्रुखसियर के शासनारम्भ में जब वह अजीतसिंह से अप्रसन्न था, तो दिल्ली में उपस्थित इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने अजीतसिंह के विरुद्ध बादशाह को भड़काकर जोधपुर का राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। इसका समाचार

---

२५. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ३।

२६. पीछे देखिये पृ. १३३-४।

२७. पीछे देखिये पृ. १५० व १५५-६।

पाकर अजीतसिंह ने क्रोधित होकर अगस्त, सन् १७१४ ई० में मोहकमसिंह का वध करवा दिया।[२८] इसी वर्ष अमीर-उल-उमरा हुसैन अली खाँ के आक्रमण के फलस्वरूप अजीतसिंह का सम्बन्ध सैयद बन्धुओं से स्थापित हो गया। सम्भवतः उनके प्रभाव से ही सन् १७१६ ई० में बादशाह ने उसे नागोर का अधिकार सौंप दिया। अजीतसिंह ने एक विशाल सेना नागोर पर आक्रमण करने के लिये भेजी। यह अजीतसिंह का नागोर पर तीसरा आक्रमण था। इन्द्रसिंह परास्त हुआ और ३० जून, सन् १७१६ ई० को उसने नागोर छोड़ दिया।[२९] इस प्रकार फर्रुखसियर के शासन-काल में भी जोधपुर व नागोर राज्य के बीच वैमनस्य बना रहा और दोनों राज्यों के शासकों को जब भी अवसर मिला, उन्होंने एक दूसरे के राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया।

अपने पैतृक राज्य को खोकर इन्द्रसिंह का मन ही मन अप्रसन्न रहना स्वाभाविक था; परन्तु मुग़ल-दरबार में अजीतसिंह का प्रभुत्व इतना अधिक बढ़ गया था कि विवश होकर उसे शान्त रहना पड़ा। अगले लगभग सात वर्षों तक नागोर पर अजीतसिंह का प्रभुत्व बना रहा। सन् १७२३ ई० में जब अजीतसिंह ने अजमेर में मुहम्मदशाह से सन्धि की, तब उसने नागोर से अपना अधिकार हटाना स्वीकार किया, और बादशाह ने २७ मई, सन् १७२३ ई० को इन्द्रसिंह को नागोर का अधिकार सौंप दिया।[३०]

इस प्रकार लगभग पैंतालीस वर्ष के जीवन-काल में अजीतसिंह का सम्बन्ध नागोर के राव इन्द्रसिंह के साथ कभी सौहार्द्रपूर्ण न हो सका।

(घ) अन्य राज्य :—

बीकानेर:—

महाराजा जसवन्तसिंह के समय में जोधपुर एवं बीकानेर राज्य में यद्यपि निकट सम्बन्ध होने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद बीकानेर के शासक अनूपसिंह ने अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य देने के लिये औरंगजेब से जो प्रार्थना की थी[३१] उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा था।

औरंगजेब के सम्पूर्ण राज्य-काल में जब अजीतसिंह निरन्तर मुग़ल बादशाह का विरोधी रहकर उपद्रव में संलग्न रहा, अनूपसिंह ने न तो उसे किसी प्रकार की सहायता दी और न ही उससे कोई सम्पर्क रक्खा। वह सदैव बादशाह की ओर से दक्षिण के विभिन्न युद्धों में भाग लेता रहा। सम्भवतः इसका कारण यह

२८. पीछे देखिये पृ. १८१।

२९. पीछे देखिये पृ. १९६।

३०. ख्यात भाग २, १८१; मुंदियाड़ २६४; खफ़ी खाँ भाग २ ५१०; इरविन भाग २, ११३।

३१. पीछे देखिये पृ. ४३-४।

था कि वह बिना किसी व्यक्तिगत कारण के बादशाह से सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहता था।

औरंगजेब की मृत्यु होते ही जोधपुर पर अधिकार करने के बाद अजीतसिंह ने अप्रेल, सन् १७०७ ई० में बीकानेर पर आक्रमण किया। उसका वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह कहना कठिन है। चूँकि बीकानेर का शासक सुजानसिंह इन दिनों दक्षिण में था, और वहाँ के सीमावर्ती प्रदेशों के बीदावत सरदार अपने शासक से असन्तुष्ट थे, इसलिये सम्भवतः अनुकूल परिस्थिति को देखकर अजीतसिंह ने वहाँ अपना अधिकार स्थापित करना चाहा था। परन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी।[32] सम्भवतः इस घटना के बाद अजीतसिंह का सुजानसिंह के साथ अच्छा सम्बन्ध नहीं रहा। सन् १७१६ ई० में जब फ़र्रुख़सियर के दरबार में अजीतसिंह का प्रभुत्व बहुत अधिक बढ़ गया, तब उसने सुजानसिंह को बन्दी बनाकर बीकानेर पर अपना अधिकार स्थापित करने का एक और असफल प्रयत्न किया।[33] इस प्रकार अजीतसिंह के समय में इन दोनों राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण नहीं था।

सिरोही :—

महाराजा जसवन्तसिंह का सिरोही राज्य के साथ वैवाहिक सम्बन्ध था। फलतः उसके समय में इन राज्यों में पारस्परिक मित्रता बनी रही। अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त जब औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया और राजकुमार का मेवाड़ में सुरक्षित रहना सम्भव न रहा तो उसे उसका संरक्षक मुकुन्ददास खीची सिरोही राज्य में ले गया। यद्यपि वहाँ के शासक बैरीसाल ने शिशु को अपने रनिवास में रखकर बादशाह को असन्तुष्ट करना उचित नहीं समझा परन्तु जसवन्तसिंह की विधवा रानी देवड़ी इन दिनों अपने मायके में थी; अतः उसने बालक अजीतसिंह की सुरक्षा का प्रबन्ध कालन्द्री नामक एक गाँव में करवा दिया।[34] इस प्रकार अजीतसिंह का बाल्यकाल सिरोही राज्य में ही व्यतीत हुआ। १७०२ ई० में जब बादशाह ने सिरोही व आबू की जागीर राणा अमरसिंह को दे दी, तब अजीतसिंह ने राणा का अधिकार वहाँ स्थापित होने में कुछ बाधा डाली थी।[35] इसके बाद इन दोनों राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहा, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अनुमानतः इनमें सदैव मित्रता बनी रही।

बूँदी :—

जसवन्तसिंह का विवाह बूँदी के राव छत्रसाल की पुत्री कर्मावती से हुआ था। परिणामस्वरूप महाराजा का सम्बन्ध छत्रसाल तथा उसके पुत्र भावसिंह के

---

३२. पीछे देखिये पृ. १३९–४० ।
३३. पीछे देखिये पृ. २०३ टि. ११० ।
३४. पीछे देखिये पृ. ६०७ ।
३५. पीछे देखिये पृ. ११७ ।

साथ मैत्रीपूर्ण रहा। परन्तु जब अजीतसिंह का जन्म हुआ, तो बूँदी का शासक अनिरुद्धसिंह बादशाह की ओर से दक्षिण के युद्धों में भाग ले रहा था और उसने मारवाड़ के विद्रोही राठोड़ सरदारों को कोई सहायता नहीं दी। सम्भवतः इसी कारण बूँदी का विद्रोही सरदार दुर्जनसिंह सन् १६८६ ई० में जब बूँदी से भागकर इन विद्रोही राठौड़ सरदारों के पास पहुँचा तो उन्होंने उसका स्वागत किया। अजीतसिंह जिस समय प्रकट हुआ था दुर्जनसिंह ही सर्वप्रथम उससे मिला था। अगले लगभग दो वर्ष तक वह राठौड़ सरदारों के साथ रहा, और उसने शाही सेना के विरुद्ध कई युद्धों में भाग लिया।[३६] सन् १६८८ ई. के लगभग जब उसकी मृत्यु हो गई तब दुर्गादास ने बूँदी के शासक के साथ सम्भवतः अच्छा सम्बन्ध बनाने के लिये दुर्जनसिंह के पुत्रों को अनिरुद्धसिंह के समक्ष नतमस्तक करवाकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया।[३७] परन्तु औरंगज़ेब के सम्पूर्ण शासन-काल में जब अजीतसिंह अपने समर्थकों के साथ शाही सैनिको का विरोध करता रहा, बूँदी के शासक ने उसे कोई सहायता नहीं दी।

बहादुरशाह के समय में भी जब सन् १७०७ ई० में जयसिंह ने कई राजपूत राजाओं को पत्र लिखकर सहायता भेजने का अनुरोध किया, तब बूँदी के शासक बुधसिंह का भी अजीतसिंह से पत्र व्यवहार हुआ,[३८] परन्तु इनमें मैत्री सम्बन्ध स्थापित न हो सका। बुधसिंह ने बादशाह के विरुद्ध महाराजा को किसी प्रकार की सहायता नहीं भेजी। सम्भवतः वह बादशाह से सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहता था।

लेकिन फ़र्रुख़सियर के समय में जब अजीतसिंह ने सैयदों का पक्ष लिया और बुधसिंह ने बादशाह का, तब इनमें स्वाभाविक रूप से दूरी बढ़ गई। साथ ही बुधसिंह का विरोधी कोटा का महाराव भीमसिंह चूँकि सैयदों के पक्ष में था, अतः उसके साथ अजीतसिंह की मैत्री स्थापित हो गई। इस स्थिति के परिणामस्वरूप अजीतसिंह और बुधसिंह का पारस्परिक तनाव धीरे-धीरे बढ़ता गया और सन् १७१९ ई० के प्रारम्भ में इन दोनों का सम्बन्ध इतना कटु हो गया कि अजीतसिंह, भीमसिंह और राजसिंह की सम्मिलित सेनाओं ने दिल्ली में बुधसिंह के शिविर पर आक्रमण कर दिया। फलतः बुधसिंह को भागना पड़ा।[३९] इस प्रकार बूँदी के शासकों के साथ अजीतसिंह का सम्बन्ध प्रायः अच्छा नहीं रहा, और सन् १७१९ ई० से उनमें पारस्परिक कटु सम्बन्ध हो गये जो उसके जीवन के अन्त तक बना रहा।

रतलामः—

जोधपुर व रतलाम के शासक परस्पर निकट सम्बन्धी थे, अतः जसवन्तसिंह के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। अजीतसिंह के जन्म का समाचार सुनकर यद्यपि

---

३६. पीछे देखिये पृ. १०८ व ११३-४।
३७. पीछे देखिये पृ. ११०-१।
३८. पीछे देखिये पृ. १३४।
३९. पीछे देखिये पृ. २०७।

रतलाम के शासक रामसिंह ने नवजात-शिशु को जोधपुर राज्य देने की प्रार्थना करवाई,[४०] परन्तु सन् १६७६ ई० से सन् १६८१ ई० तक जब जोधपुर के विद्रोही राठौड़ सरदार औरंगज़ेब से संघर्ष कर रहे थे तब रामसिंह शाही सेना में रहकर उनको दबाने का प्रयत्न करता रहा ।[४१] सम्भवतः जोधपुर राज्य के व्यक्तिगत हित के लिये वह बादशाह को अप्रसन्न करके अपने राज्य को संकट में नहीं डालना चाहता था। उसके दोनों उत्तराधिकारी—शिवसिंह व केशवदास—बादशाह की ओर से दक्षिण के युद्धों में ही व्यस्त रहे।[४२] फलतः उनका अजीतसिंह से कोई सम्पर्क नहीं रहा।

यद्यपि रतलाम के शासकों के साथ अजीतसिंह का सम्बन्ध नहीं रहा, परन्तु रामसिंह का भाई अखेराज सन् १६८७ ई० के बाद दो-तीन वर्ष तक विद्रोही राठौड़ों का सहयोगी बना रहा और उसने शाही सेना और राठौड़ों के कई संघर्षों में सक्रिय भाग लिया।[४३]

किशनगढ़ :—

अजीतसिंह का सम्बन्ध किशनगढ़ के राजा राजसिंह के साथ औरंगज़ेब के समय में कैसा था, इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। परन्तु फ़रवरी, सन् १७०६ ई० में जब अजीतसिंह ने अजमेर का घेरा डाला था, तब राजसिंह ने अजीतसिंह और शुजात ख़ाँ के बीच मध्यस्थ बनकर उनमें सन्धि करवाई थी।[४४] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे पूर्व भी उनमें मैत्री-सम्बन्ध रहा होगा।

दो वर्षों के बाद जनवरी, सन् १७११ ई० के लगभग अजीतसिंह ने राजसिंह पर आक्रमण कर दिया। उसका वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह कहना कठिन है। चूँकि इस समय अजीतसिंह और बहादुरशाह के बीच सन्धि हो चुकी थी, और जोधपुर में पूर्ण शान्ति थी; अतः सम्भव है महाराजा ने निकटवर्ती छोटे से राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया हो।[४५] राजसिंह ने चार दिन तक अजीतसिंह की सेना का सामना किया, परन्तु अन्त में उसे सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की शर्तों के अनुसार उसने अजीतसिंह से स्वयं भेंट करना, अपने पुत्र को

---

४०. पीछे देखिये पृ. ४३–४।
४१. पीछे देखिये पृ. ७७।
४२. रतलाम अध्याय ६ व ७।
४३. पीछे देखिये पृ. ११४।
४४. पीछे देखिये पृ. १६२।
४५. वंश भास्कर के अनुसार अजमेर पर महाराजा अजीतसिंह का अधिकार हो गया था फलतः राजसिंह उससे ईर्ष्या करने लगा था और उसने बहादुरशाह से अजीतसिंह की शिकायत की थी। इसी कारण अजीतसिंह ने उस पर आक्रमण किया। परन्तु यह ठीक नहीं है। अजीतसिंह का इस समय अजमेर पर अधिकार नहीं था।

महाराजा की सेवा में भेजना, तथा दो तोपें देना स्वीकार किया। इसके बदले में अजीतसिंह ने किशनगढ़ और रूपनगर से अपने सैनिकों को हटा लिया।[४६]

फ़र्रुख़सियर के शासन-काल में राजसिंह भी बादशाह के विरोधी पक्ष का समर्थक था।[४७] फलतः अजीतसिंह के साथ उसकी घनिष्टता हो गई। अनुमानतः यह सम्बन्ध अजीतसिंह के अन्तिम दिनों तक बना रहा।

प्रतापगढ़ :—

जसवन्तसिंह के समय में जोधपुर और प्रतापगढ़ के शासकों का पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा था। अजीतसिंह के जन्म के बाद जोधपुर के विद्रोही राठौड़ों तथा मुग़ल-सम्राट के बीच जो संघर्ष होता रहा, उसमें महारावत प्रतापसिंह ने बादशाह की ओर से युद्ध में भाग लिया था।[४८]

सन् १६९६ ई० में जब अजीतसिंह का विवाह उदयपुर की राजकन्या से हुआ, तब प्रतापसिंह ने भी २१ जून, सन् १६९६ ई० को अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।[४९] चूँकि प्रतापगढ़ व उदयपुर राज्य में सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध नहीं था, सम्भवतः इसीलिये प्रतापसिंह ने जब उदयपुर राज्य के साथ अजीतसिंह का गठबन्धन देखा तो स्वयं भी उसके साथ अच्छा सम्बन्ध रखना आवश्यक समझा ताकि संकट के समय अजीतसिंह उदयपुर का पक्ष न ले सके। इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप इन दोनों राज्यों में सदैव मैत्री बनी रही, और सन् १७०८ ई० में जब अजीतसिंह बहादुरशाह के शिविर से भाग कर प्रतापगढ़ आया तो प्रतापसिंह ने उसका आदर व सम्मान किया। अगले वर्ष ११ मार्च, १७०९ ई० को उसने अपनी पौत्री का विवाह भी अजीतसिंह से कर दिया।[५०] इस प्रकार अजीतसिंह व प्रतापसिंह का सम्बन्ध सदैव मैत्रीपूर्ण रहा।

---

४६. अखबारात, लन्दन संग्रह, भाग १,१२५; ख्यात-भाग २,१५०-२; जुनी. ८८-९; मूंदियाड़ २४६; वीर-भाग २,८४०; दानेश्वर २३०; अजितोदय-सर्ग २०, श्लोक १-१७; वंश भाग ४, ३०४० १०; प्राचीन राजवंश. २१९ व ३७४; ओझा. भाग ४, खण्ड २,५५०; मूल. २१८।

ख्यातों व राजस्थानी ग्रन्थों तथा आधुनिक इतिहासकारों ने किशनगढ़ पर आक्रमण करने की तिथि अगस्त, सन् १७११ ई० (भाद्रपद संवत् १७६८) स्वीकार की है। परन्तु इस महीने में अजीतसिंह व जयसिंह शाही आज्ञानुसार सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने के लिये साधौरा की ओर जा रहे थे। इसके अतिरिक्त अखबारात में स्पष्ट रूप से लिखा है १५ जनवरी, सन् १७११ ई० (६ ज़िल्हिज, ११२२ हि०) को बादशाह को यह समाचार मिला कि अजीतसिंह के आदेशानुसार रामचन्द्र ने रूपनगर को लूटा है। अतः इसी तिथि को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है।

४७. पीछे देखिये पृ. २०७।

४८. ओझा भाग ३, खंड ३, १७८–१८१।

४९. पीछे देखिये पृ. १२३।

५०. पीछे देखिये. पृ. १५२ व १६३।

जाट :—

सन् १७१४-५ ई. में हुसैन अली के आक्रमण के बीच अजीतसिंह व चूड़ामन जाट की प्रथम भेंट हुई ; जिसमें दोनों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हुए और अजीतसिंह ने जयसिंह के विरुद्ध चूड़ामन को सुरक्षा प्रदान करने का आश्वासन दिया।[५१]

फ़र्रुख़सियर के समय में अजीतसिंह व चूड़ामन का सहयोग बना रहा। ८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई. को दिल्ली शहर में जब अजीतसिंह के सैनिकों और बीका हज़ारी नामक शाही अधिकारी के सैनिकों के बीच संघर्ष हुआ, तो उसमें जाट सैनिकों ने राठौड़ों का पूरा साथ दिया था। अप्रेल, सन् १७१९ ई. में जब अजीतसिंह और सैयदों ने फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाया, तब चूड़ामन जाट ने भी उन्हें पूरा सहयोग दिया।[५२]

मुहम्मदशाह के सिंहासनारोहण के उपरान्त सन् १७२० ई० में अजीतसिंह व चूड़ामन जाट के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों ने आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे को सहायता देने का आश्वासन दिया।[५३] इस सन्धि का पालन दोनों ने सदैव किया। सन् १७२१ ई० में जब मुहम्मदशाह ने अकबराबाद के सूबेदार सआदत ख़ाँ को अजीतसिंह के विरुद्ध अजमेर जाने की आज्ञा दी तो, चूड़ामन जाट ने सआदत ख़ां का मार्ग अवरोध किया, और अपने पुत्र मोहकमसिंह की अधीनता में एक जाट सेना भी अजीतसिंह की सहायता के लिये भेजी।[५४] अजीतसिंह ने भी सन् १७२२ ई. में भण्डारी विजयराज की अधीनता में एक बड़ी सेना भेजकर चूड़ामन की सहायता की थी।[५५] चूड़ामन जाट की मृत्यु के उपरान्त जब जाट पूर्णतया परास्त हो गये, तब अजीतसिंह ने चूड़ामन के पुत्र मोहकमसिंह को आश्रय दिया। चूड़ामन के उत्तराधिकारी बदनसिंह के साथ भी अजीतसिंह का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहा।[५६]

मरहठे :—

मरहठों के साथ अजीतसिंह के सम्बन्ध के विषय में अजीतसिंह द्वारा छत्रपति शाहू को लिखा हुआ एक पत्र प्राप्य है, जिसमें उसने सन् १७१९ ई. की लगभग सभी घटनाओं की उसे सूचना दी है।[५७] इसके साथ ही यह उल्लेख भी मिलता

---

५१. हिस्टौरिकल एसेज़ ६० व ६३।

५२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ६, खण्ड ४।

५३. कानूनगो–हिस्ट्री ऑव जाट्स. ५७।

५४. हिस्टौरिकल ऐसेज़. ६३; इरविन भाग २, ११० व १२१।

५५. जयपुर रिकार्डस, हिन्दी, भाग ३, खण्ड ५,१५।

५६. कानूनगो, हिस्ट्री ऑव जाट्स. ५९ व ६३।

५७ यह पत्र सेणा सदन, चाँदपोल, जोधपुर से प्रकाशित है। इसके लिखने की तिथि २० मई, सन् १७१८ (ज्येष्ठ सुदि २, संवत् १७७५) का लिखा हुआ है। परन्तु घटनाएँ सन् १७१९ ई० की हैं। सम्भवतः यह पत्र संवत् १७७६ का लिखा है।

है कि मालवा में मरहठों के उपद्रवों में महाराजा गुप्त रूप से उनका पक्ष लेता था।[५८] इससे इन दोनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार अजीतसिंह को बिना किसी विशेष प्रयोजन के किसी राज्य के साथ सम्बन्ध बिगाड़ना रुचिकर न था और अपने समकालीन लगभग सभी शासकों के साथ उसका संबन्ध बहुधा अच्छा रहा।

---

५८. आम्बे. रीपे ३०१।

९

शासन-व्यवस्था

(क) राज्य-विस्तार और शासन-पद्धति

अजीतसिंह के जन्म के समय तक जोधपुर का राज्य उत्थान- पतन की कई करवटें ले चुका था। जब २८ नवम्बर, सन् १६७८ ई. को जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई, तो उसके अधिकार में जोधपुर के अन्तर्गत जोधपुर मेड़ता, जैतारण, सोजत, सिवाना, पोकरण, फलोदी व जालोर नामक आठ परगने थे। इसके अतिरिक्त जोधपुर राज्य के बाहर हिण्डौन, मलारना, मरूका, बदनोर, तानापुर, रोहतक, थिराद, राधणपुर, चकला हिसार, पितलाद धन्धूका तथा जाजपुर पर भी उसका अधिकार था। चूंकि जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय उसका कोई पुत्र जीवित नहीं था और जोधपुर में उसकी मृत्यु का समाचार पहुँचते ही अव्यवस्था फैल गई थी अतः औरंगज़ेब ने सोजत व जैतारण के दो परगनों को स्वर्गीय शासक के राजपरिवार के भरण-पोषण के लिये छोड़कर शेष सभी को ख़ालसा कर लिया। इस प्रकार अजीतसिंह के जन्म के समय उसका अधिकार-क्षेत्र केवल इन्हीं दो परगनों तक सीमित था। परन्तु दिल्ली से सुरक्षित निकल कर जोधपुर पहुँचने के समय तक औरंगज़ेब ने इन दो परगनों को भी शाही अधिकार में ले लिया और अजीतसिंह के पास उसके पैतृक राज्य का कोई भी अंश शेष न रहा। अगले लगभग बीस वर्ष तक उसे किसी भी परगने का वैधानिक अधिकार प्राप्त न हो सका। मई, सन् १६९८ ई. में उसे बादशाह औरंगज़ेब ने जालोर व सांचोर के परगने प्रथम बार दिये। केवल सात ही वर्षों के बाद औरंगज़ेब गकी मृत्यु होते ही उसने बल-प्रयोग द्वारा जोधपुर, मेड़ता, पाली व सोजत के परगनों पर अधिकार कर लिया। अगले वर्षों में धीरे-धीरे उसकी शक्ति बढ़ती गई। अपनी शक्ति तथा मुग़ल-दरबार में अपने प्रभाव से द्वारा उसने अपना अधिकार-क्षेत्र बहुत बढ़ा लिया। सन् १७१९-२० में उसके अधिकार में जोधपुर राज्य के जालोर, सांचोर, पाली, सोजत, सिवाना, फलोदी, मेड़ता, जोधपुर, सांभर, डीडवाना, नागोर, तथा परबतसर नामक बारह परगने थे। इसके अतिरिक्त मारोठ, बधवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, केकड़ी, बवाल और अनहलपाटन (गुजरात) पर भी उसका अधिकार था। इसके अतिरिक्त तोडा, मालपुरा व रूपनगर में अजीतसिंह ने अपने थाने बना रक्खे थे। इस समय गुजरात व अजमेर जैसे साम्राज्य के दो प्रमुख सूबों का वह सूबेदार भी था। अपने पिता जसवन्तसिंह से ही नहीं, वरन् जोधपुर के सभी शासकों की अपेक्षा अजीतसिंह का राज्य-विस्तार इन वर्षों में सम्भवतः

सबसे अधिक था। मुग़ल-दरबार में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने के कारण यह स्थिति अधिक दिन तक बनी न रह सकी। अगले ही वर्ष सन् १७२१ ई. में गुजरात व अजमेर के सूबे उससे लिये गये और सन् १७२३ ई. में उसने बादशाह मुहम्मदशाह से जो सन्धि की, उसके फलस्वरूप सांभर, डीडवाना, परबतसर तथा नागोर पर भी उसका अधिकार न रहा। फिर भी अजीतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकार में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत जालोर, सांचोर, जोधपुर, पाली, सोजत, सिवाना, फलोदी व मेड़ता नामक आठ परगने थे। जोधपुर से बाहर बधवाड़ा तथा विजयगढ़ पर उसका अधिकार था और रूपनगर व मालपुरा में भी उसके थाने थे।[1]

१७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजपूताने में जिस शासन पद्धति का प्रचलन था, उसका स्वरूप सन् १५८० ई० में ही स्पष्ट होने लगा था जब अकबर ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को बारह सूबों में विभाजित किया। उसने राजपूताने के सभी राज्यों को शासन की सुविधा के अनुसार अजमेर, चित्तौड़, रणथम्भोर, जोधपुर, नागोर, बीकानेर व सिरोही नामक सात सरकारों में बाँटा और इन सभी सरकारों को मिलाकर एक सूबा बनाया, जिसे 'अजमेर' नाम दिया। अजमेर व नागोर की सरकार पर मुग़ल-सम्राट का अपना नियंत्रण था और शेष पाँच में पूर्ववत् वंशानुगत राजपूत राजाओं का शासन रहा।[2] यद्यपि ये राज्य अजमेर सूबा के अंग थे, और अजमेर का सूबेदार आवश्यकता पड़ने पर उनसे सैनिक सहायता ले सकता था एवं शाही आज्ञाएं उसी के माध्यम से राजाओं तक पहुँचाई जाती थीं। तथापि अपने आन्तरिक शासन में ये पूर्ण स्वतंत्र थे। अजमेर का सूबेदार उनकी निजी समस्याओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, और वे बिना उसकी मध्यस्थता के भी मुग़ल-सम्राट से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे।[3]

मेवाड़ के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यों के शासकों के लिये यह आवश्यक था कि या तो वे स्वयं मुग़ल-दरबार में उपस्थित हों, अथवा उनका पुत्र या भाई दरबार में उनका प्रतिनिधित्व करे।[4] राजपूत शासकों को सैनिकों की एक निश्चित संख्या बादशाह की सेवा में भेजनी पड़ती थी और बादशाह उन्हें जिस स्थान पर नियुक्त करता था उन्हें जाना पड़ता था[5]। मुगल-सम्राट का इन राज्यों की साधारण जनता से कोई सम्पर्क नहीं रहा, और वह एक निश्चित राशि राजाओं से पेशकश के रूप में लिया करता था।[6] बादशाह राजपूत राजाओं को उनकी

---

१. अजीतसिंह के राज्य विस्तार के लिये देखिए परिशिष्ट 'ङ'।
२. आईन भाग २, १२९, २७३, २७८-८२; पूर्व ६७-८ टि०; सरन. १२६-८; जयसिंह-१६; जसवन्तसिंह ६।
३. सरन- १२९; शर्मा, स्टडीज़. २०४; जयसिंह. १६; जसवन्तसिंह. ६ व १५३-४।
४- सरन-१३७-८; पूर्व. ८७; जयसिंह. १७; जसवन्तसिह ६।
५. सरन. १२६; पूर्व ८७; शर्मा स्टडीज़. २०३-४, शर्मा एडमिनिस्ट्रेशन. २२८; जयसिंह.१७
६. सरन-१२६; शर्मा स्टडीज़ २०२-३ व २०५; टाड भाग १, १२३-४; पूर्व. ६९ व ८८ जयसिंह. १७-८; जसवन्तसिंह ७।

योग्यता एवं मुग़ल साम्राज्य के प्रति उनकी स्वामिभक्ति व सेवा के अनुसार उन्हें मनसब व जागीरें दिया करता था। उनकी जागीरें कभी-कभी बदली भी जाती थीं, ताकि उनका स्थानीय प्रभाव न बढ़ सके। सिद्धान्ततः बादशाह का राजपूत राजाओं पर पूर्ण अधिकार था। यहां तक कि उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी उसकी स्वीकृति आवश्यक थी। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को फ़रमान, सनद, टीका व खिलअत देकर राज्याधिकार सौंप सकता था। परन्तु साधारणतया वह ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकार के नियम को ही स्वीकार कर लेता था जो कि साधारण रूप से सारे राजपूताने में प्रचलित था। नये शासक को अपने पूर्ववर्ती शासक का मनसब व सभी जागीरें नहीं मिलती थीं। उसकी अपनी योग्यता व सेवा के आधार पर नया मनसब व जागीर दिया जाता था। लेकिन वतन-जागीर बहुधा उत्तराधिकारी को मिल जाती थी।[७] सम्भवतः यही कारण था कि राजपूत शासक वतन-जागीर को अपनी निजी सम्पत्ति समझने लगे थे। मुद्रा-चलन बादशाह का एकाधिकार माना जाता था, अतः सारे राजपूताने में मुग़ल-सिक्कों का ही प्रचलन था।[८]

मुग़ल शासक से सम्पर्क स्थापित हो जाने पर राजपूत शासकों का मुग़ल-शासन-पद्धति से परिचय हुआ और धीरे-धीरे यह शासन-प्रणाली, स्थानीय शासन-प्रणाली को प्रभावित करने लगी। ज्यों-ज्यों राजाओं का सम्पर्क मुग़ल-दरबार से बढ़ा, त्यों-त्यों यह प्रभाव अधिक होने लगा। १७ वीं शताब्दी तक राजपूताने की शासन-व्यवस्था पर मुग़ल-शासन-प्रणाली का प्रभाव काफी बढ़ चुका था।

जोधपुर राज्य की प्रारम्भिक शासन-व्यवस्था के विषय में कुछ विवरण नहीं मिलता। अनुमानतः राजपूताने के अन्य राज्यों की भाँति यहां के शासक जनसाधारण के कार्यों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे, और न जनता से विशेष सम्पर्क रखते थे। उनका प्रमुख कर्त्तव्य युद्ध करना, राज्य में शान्ति स्थापित करना तथा कर वसूल करना ही था। राव मालदेव के समय (सन् १५३२–१५६२ ई०) में भी सम्भवतः यही शासन-प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु जब उसका राज्य विस्तृत हो गया तो उसे सुव्यवस्थित करने की समस्या उसके सामने उठ खड़ी हुई। इसी बीच मुग़ल शासक के सम्पर्क में आने से उसे मुग़ल-शासन-पद्धति का ज्ञान हुआ और उसने इससे इससे पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। उसने अपने राज्य में मुग़लों की भाँति फ़ौज-दार व शिकदार आदि कर्मचारी नियुक्त किये। चूँकि मुग़लदरबार में सारा कार्य फारसी भाषा में होता था, अतः बादशाह से पत्र व्यवहार करने के लिये उसने अपने दरबार में फ़ारसी जानने वाले कुछ व्यक्तियों को भी रक्खा। उसको उत्तराधिकारी राव चन्द्रसेन (सन् १५६२–१५८१ ई०) का सम्बन्ध बादशाह अकबर से अच्छा नहीं रहा और धीरे-धीरे नागोर, जालोर व डीडवाना नामक प्रदेशों पर शाही अधिकार हो गया। फलतः इन प्रदेशों में शाहीं शासन-प्रणाली की झलक आ गई। यद्यपि

७. सरन. १३१; जयसिंह. १८; जसवन्तसिंह. ७।

८. सरन. १३२; जयसिंह. १८; जसवन्तसिंह. ७।

जोधपुर राज्य के अन्य सभी प्रदेशों पर पूर्ववत् राठौड़ों का ही अधिकार था और पहले की सी शासन पद्धति चल रही थी, तथापि इन प्रदेशों की शासन व्यवस्था का प्रभाव वहाँ भी पड़ने लगा। चन्द्रसेन के पश्चात् मोटा राजा उदयसिंह (सन् १५८३-१५९५ ई०) जोधपुर का अधिपति बना। वह अपने राज्यारोहण से पूर्व ग्वालियर में मुग़ल जागीरदार रह चुका था, अत: उसे मुग़ल-शासन-प्रणाली का समुचित ज्ञान था। फलत: स्थानीय शासन-प्रणाली में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। उसके उत्तराधिकारी सूरसिंह (सन् १५९५-१६१९ ई०) का प्रधानमन्त्री गोविन्ददास शासन प्रबन्ध में विशेष कुशल था, और उसने मुग़ल शासन व्यवस्था का अध्ययन करके अपने राज्य के प्रशासन को नवीन ढंग से संगठित किया। राज्य में दीवान, बख्शी व हाकिम आदि पद प्रथम बार प्रारम्भ हुये। इस प्रकार धीरे-धीरे स्थानीय शासन-पद्धति पर मुग़ल शासन-प्रणाली का प्रभाव बढ़ता गया और उन दोनों में विशेष अन्तर नहीं रह गया।[९]

अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक अट्ठाईस वर्ष अव्यवस्था की अटूट शृंखला थे। इन दिनों जोधपुर पर बादशाह का अधिकार रहा, परन्तु जैसे ही २१ फ़रवरी, सन् १७०७ ई० को औरंगज़ेब की मृत्यु हुई अजीतसिंह ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया। शासन की बागडोर हाथ में लेने के पश्चात् उसने अपने पूर्वजों की शासन-प्रणाली का ही अनुकरण किया। मुग़ल सम्राट की भाँति राठौड़ राजा भी अपने राज्य का सर्वोच्च था। वह राज्य के समस्त अधिकारियों को नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकता था, परन्तु राज्य के सभी कार्यों में वह अपने उच्चाधिकारियों से परामर्श कर लिया करता था। यदि कभी उसका निर्णय उसके सरदारों को अरुचिकर प्रतीत होता था, तो वे उससे प्रार्थना कर सकते थे। यद्यपि उनकी बात मानने के लिये राजा बाध्य नहीं था, परन्तु उचित होने पर वह बहुधा उनकी बात स्वीकार कर लिया करता था।[१०]

जोधपुर राज्य में दरबार लगाने की प्रथा बहुत पहले से थी। दरबार में सरदारों के बैठने के लिये राव जोधा (सन् १४५३-१४८९ ई०) ने कुछ नियम बनाये थे, जिनका पालन पूर्ववत् होता रहा। इसके अनुसार दरबार में जीवणी (दाईं) व डाबी (बाईं) दो मिसलें (पंक्तियाँ) थीं। दाहिनी पंक्ति में राव जोधा के भाइयों के वंशज बैठा करते थे जिनमें चांपावत, कूंपावत, जेतावत राठौड़ थे। बाईं तरफ़ राव जोधा के पुत्रों के वंशज ऊदावत, जोधा व करमसोत राठौड़ बैठते थे। जब जोधपुर के शासक मुग़ल दरबार के सम्पर्क में आये, तो राजकीय दरबार को शाही दरबार के ढंग पर सुव्यवस्थित किया गया। राजा सूरसिंह (सन् १५९५-१६१९ ई०) के समय में यद्यपि दरबार में बैठने की परम्परागत प्रथा बनी रही, तथापि समस्त जागीरदारों तथा शासन के भाई-बेटों की मान-मर्यादा निश्चित कर

---

९. शर्मा स्टडीज़. १९७-९; जसवन्तसिंह. १५१-३; पूर्व. ८८-९; जयसिंह. १९।
१०. टाड. भाग १, १२१।

दी गई, और धीरे-धीरे शाही दरबार की भाँति राजकीय दरबार में वैभवपूर्ण नियमबद्ध स्वरूप दिखाई देने लगा। कुछ चुने हुए व्यक्तियों को राजा के पास दायें व बायें बैठने का अधिकार दिया जाता था। इनको 'सिरायत' कहते थे। दरबार में बैठने के नियमों के अतिरिक्त दरबार में उपस्थित होने के समय जागीरदारों द्वारा अभिवादन करने तथा राजा द्वारा अभिवादन स्वीकार करने के कुछ नियम राजा सूर-सिंह ने आरम्भ किये थे, जो 'क़ुर्ब' व 'ताज़ीम' कहलाते थे। पहला क़ुर्ब 'बाँह-पसाव' का था जिसमें सरदार जब राजा के सामने उपस्थित होता था तो तलवार उसके पैरों के पास रखकर राजा के घुटने या अचकन के पल्ले को छूता था, और राजा उसके उत्तर में उसके कन्धे पर हाथ रखता था। दूसरा क़ुर्ब 'हाथ का क़ुर्ब' था जो पहले से अधिक ऊँचा माना जाता था। इसमें जागीरदार ऊपर वर्णित प्रक्रिया से ही अभिवादन करता था, परन्तु राजा उसके कन्धे को छूने के बाद वही हाथ अपने सीने तक ले जाता था। ताजीमें भी दो प्रकार की होतीं थीं—इकेवड़ी व दोवड़ी। इकेवड़ी में जब ड्योढ़ीदार जागीरदार के आने की सूचना देता था तो राजा खड़ा हो जाता था, परन्तु उसके दरबार से वापस जाते समय नहीं खड़ा होता था। दोवड़ी में राजा दोनों समय खड़ा होता था। क़ुर्ब व ताजीम का प्रयोग अजीतसिंह के समय भी पूर्ववत् होता रहा।[११]

जिस प्रकार मुग़ल शासन-प्रणाली में शासकीय कार्यों का प्रधान 'दीवान' कहलाता था, उसी प्रकार जोधपुर राज्य में भी शासकीय कार्यों के लिये 'दीवान' हुआ करता था। जोधपुर राज्य के दीवान के कर्त्तव्य व अधिकार लगभग वही थे जो शाही दीवान के। राज्य के समस्त शासन प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी कार्यों के लिए वह उत्तरदायी था, और राज्य के जमा-खर्च का समस्त कार्य उसके अधीन हुआ करता था। विभिन्न परगनों से होने वाली पैदावार के जमा-खर्च का ब्योरा, तथा जागीरदारों द्वारा दिये गये वार्षिक कर का विवरण उसी के पास रहता था। राज्य के सभी पदाधिकारी उसके अधीन थे और वह सब के कार्यों का पूरा-पूरा ध्यान रखता था। यदि कहीं कोई त्रुटि दिखाई पड़ती तो वह तुरन्त महाराजा को सूचित करता और उसमें सुधार करवाता था। वह प्रतिदिन दरबार में जाता था और महाराजा को जमाखर्च की सूची सुनाता था। परगनों के हाकिमों को यद्यपि शासक स्वयं नियुक्त करता था, परन्तु दीवान का उन पर पूरा नियन्त्रण रहा करता था।[१२] महाराजा अजीतसिंह के समय में भण्डारी विट्ठलदास ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, सम्वत् १७६५) से अक्टूबर, सन् १७०८ ई०

---

११. हरदयालसिंह, तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़; शर्मा, स्टडीज़ २००; रेउ. भाग १, ६३२; पूर्व. ८६।

१२. ब्याव री बही नं. १; हरदयालसिंह, मजमुए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, अध्याय ११; इब्न हसन. २०५-६; शर्मा, एडमिनिस्ट्रेशन. ४०-२।

टाड (भाग १; १५०) व शर्मा. (स्टडीज़ २००) ने भी लिखा है कि प्रशासकीय कार्यों का अधिकार 'प्रधान' को नहीं होता था। उसके लिये अलग कर्मचारी हुआ करता था।

(कार्तिक, सम्वत् १७६५) तक तथा १७ जून, सन् १७०९ ई० (आषाढ़ बदि ६, सम्वत् १७६६) से २९ सितम्बर, सन् १७०९ ई० (आश्विन सुदि ७, सम्वत् १७६६) तक लगभग चार-चार महीनों के दो बार दीवान के पद पर कार्य किया। इन दो कालों के बीच अक्टूबर, सन् १७०८ ई० से १६ जून, सन् १७०९ ई० सिंघवी बख्तावर मल, जोघमल तथा जीवनमल ने सम्मिलित रूप से दीवान के कार्यों को सम्भाला। २९ सितम्बर, सन् १७०९ ई० को अजीतसिंह ने भण्डारी विट्ठलदास को हटा कर भण्डारी रघुनाथ को दीवान बनाया। इसने सम्भवतः लगभग सवा तीन वर्ष इस पद पर कार्य किया। फ़रवरी, सन् १७१३ ई० (फाल्गुन, संवत् १७६९) को भण्डारी माईदास तथा मुहता गोकुलदास को सम्मिलित रूप से दीवान के अधिकार सौंपे गये। सन् १७१५-६ ई० (संवत् १७७२) में भण्डारी रघुनाथ पुनः दीवान नियुक्त हुआ।[13] सम्भवतः वह अजीतसिंह के राज्यत्व के अन्त तक इसी पद पर बना रहा।

राज्य का दूसरा प्रमुख अधिकारी 'ख़ानेसामान' था। मुग़ल-दरबार में भी इसी नाम का एक पदाधिकारी हुआ करता था जो बादशाह के गृह-प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होता था और राजकीय भवन, मार्ग व बाग आदि का ध्यान रखता था। परन्तु जोधपुर राज्य में 'ख़ानेसामान' के अधिकार व कर्त्तव्य इतने विस्तृत नहीं थे, वह केवल राजकीय अन्न के भण्डार का अध्यक्ष होता था। पट्टों पर दी गई राजा की निजी भूमि से होने वाली समस्त पैदावार को वह पट्टेदारों से उचित दामों पर ख़रीद लेता था, और भण्डार में अन्य सभी आवश्यक वस्तुओं की देख-रेख किया करता था। जोधपुर में इस पदाधिकारी को 'अन्न रै कोठार का दरोग़ा' भी कहा जाता था।[14] अजीतसिंह ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, सम्वत् १७६५) को रणछोड़ जयदेवोत को इस पद पर नियुक्त किया था।[15]

जोधपुर राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये 'दफ्तर रा दारोग़ा' नामक अधिकारी हुआ करता था वह सर्वसाधारण पर दृष्टि रखता था और राज्य की सभी घटनाओं की ठीक-ठीक सूचना राजा तक पहुँचाता था। राज्य-कोश के प्रबन्ध के लिये 'ख़ज़ाञ्ची' नामक अधिकारी था। वह कोश में जमा होने और निकाले जाने वाले धन का पूरा-पूरा हिसाब रखता था, और इस विवरण की एक सूची पर प्रतिदिन महाराजा के हस्ताक्षर भी करवाता था। क़िले की सुरक्षा का भार 'क़िलेदार' पर होता था। क़िले के सारे सामान की देखरेख करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। क़िले में तोपों व अन्य अस्त्र-शस्त्र का प्रबन्ध भी उसके हाथ में रहता था। वह क़िले की सुरक्षा के लिये स्वयं ही अन्य पदाधिकारियों को नियुक्त करता

---

१३. ख्यात भाग २, १४७, १४८, १४९, १४९-५०, १६१ व १६४; मूंदियाड़ २३५, २३६, २३६-७ २४७ व २४९।

१४. ब्यावरी वही नं०१; इब्न हुसन २३८-४३; शर्मा; एडमिनिस्ट्रेशन. ४७-८।

१५. ओहदा, ३८; ख्यात. भाग, २,१४७; मूंदियाड़. २३५।

था, परन्तु इसके लिये राजा की अनुमति आवश्यक थी। किले के विभिन्न द्वारों पर एक-एक व्यक्ति नियुक्त किया जाता था, जिसे 'पोलांरा नायक' (द्वार का नायक) कहते थे। राजा के महल तथा रनिवास की ड्योढ़ी पर 'ड्योढ़ीदार' अथवा 'चोबदार' रहा करते थे। राज्य की सुरक्षा का पूरा दायित्व 'कोतवाल' अथवा 'सीकदार' नामक अधिकारी पर होता था। रात्रि के समय शहर भर में पहरा लगा दिया जाता था और एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने के बाद कोई भी व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकता था। कुछ घोड़ों को शहर से बाहर सदैव तैयार रक्खा जाता था, ताकि आकस्मिक आवश्यकता उत्पन्न होने पर उनका उपयोग किया जा सके। शहर में यदि कोई नया व्यक्ति आता था तो कोतवाल को इसकी सूचना दे दी जाती थी, और जब तक कोई व्यक्ति उसका उत्तरदायित्व नहीं ले लेता था उसे शहर में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता था। चोरी व लूटमार उस समय के प्रचलित अपराध थे। कोतवाल ऐसे अपराधियों पर निगाह रक्खा करता था, और चोरों के पकड़े जाने पर उनसे उनकी सम्पत्ति व अस्त्र छीन लिये जाते थे। हत्या करने वाले व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिया जाता था। राजा का विरोध करके शत्रु पक्ष से मिल जाने वाले व्यक्ति को कठोर दण्ड दिया जाता था। अपराध के अनुसार कभी उससे नकद दण्ड लिया जाता था और कभी उसकी भूमि [illegible] ली जाती थी। दण्ड राजा की इच्छा पर ही निर्भर हुआ करता था, परन्तु बहुधा ऐसे अपराधियों को क्षमा नहीं किया जाता था।[१६] पिता के राज्य-द्रोह के अपराध का दण्ड उसके पुत्रों को भी भुगतना पड़ता था।[१७] तहखानों तथा किलों से ही जेल का काम लिया जाता था। साधारण अपराधियों को तहखाने में तथा उच्च पद के व्यक्तियों को किले के किसी भाग में रक्खा जाता था।[१८] अजीतसिंह ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, सम्वत् १७६५) को खीचीशिवराम कल्याणदासोत को दफ्तर रा दरोगा, गूजर विजैराम अहीर को ड्योढ़ीदार, तथा सोभावत दयालदास बेणीदासोत को कोतवाल के पद पर नियुक्त किया था।[१९]

व्यापारिक वस्तुओं पर कर वसूल करने के लिए 'सायर रा दारोगा' नामक अधिकारी था। वह सभी व्यापारियों से सम्बन्ध रखता था और उनसे कर वसूलता था। नमक की झीलों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था. क्योंकि नमक राज्य की प्रमुख व्यापारिक वस्तु थी। यह अधिकारी अन्य स्थानों पर नमक उत्पन्न करने के लिये व्यापारियों को प्रोत्साहित भी करता था। शासन संबन्धी

---

१६. ख्यात री बही नं. १।

१७. ख्यात. भाग २, १४९–५० व १५७।

१८. हरदयालसिंह, मजमुए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, अध्याय २७।

१९. ख्यात भाग २, १५७; मुंदियाड़. २३५; जोधा. २१०।

अन्य सभी विभागों पर दारोग़ा नियुक्त किये जाते थे।[२०] अजीतसिंह के समय में 'पुरोहित' भी होते थे, जो सम्भवत: राजगुरु होते थे। इसके अतिरिक्त 'व्यास' तथा 'बारहठ' का भी उल्लेख मिलता है। सम्भवत: यह पदाधिकारी राज्य के धर्म सम्बन्धी कार्य किया करते थे। अजीतसिंह ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, सम्वत् १७६५) को अखेराज को 'पुरोहित', नाथावत दीपचन्द को 'व्यास' तथा केसरीसिंह को 'बारहठ' नियुक्त किया था।[२१]

जोधपुर राज्य में स्थान-स्थान पर संदेश भेजने का भी समुचित प्रबन्ध था। दस-दस कोस पर एक डाक-चौकी हुआ करती थी, जहाँ का अधिकारी 'मिरदा' कहलाता था। उसके अधीन बहुत से पत्रवाहक होते थे। डाक भेजने के लिए जागीरदारों के घोड़ों का प्रयोग किया जाता था। राजा के तीर्थ-यात्रा, भ्रमण अथवा अभियान के समय भी पत्रवाहक साथ रहा करते थे। गाँव में थोड़ी दूर संदेश भेजने के लिये नीची जाति के व्यक्तियों को पैदल ही भेज दिया जाता था। साधारण जनता संदेश भेजने के लिये इन्हें पारिश्रमिक दिया करती थी। ये लोग दूर सन्देश पहुँचाने के लिये सांड़नी का भी प्रयोग करते थे जिसे 'ओठी' नाम से पुकारा जाता था।[२२]

सम्पूर्ण राज्य कई परगनों में विभक्त था। यहाँ का सर्वोच्च अधिकारी 'हाकिम' कहलाता था। हाकिम की नियुक्ति राजा स्वयं करता था, और यह दीवान के अधीन हुआ करता था। दीवान के माध्यम से ही राजा के आदेश उसके पास पहुँचते थे और उसकी प्रार्थना राजा के पास पहुँचती थी। अपने परगने की सुरक्षा का पूर्ण दायित्व उस पर रहता था। वह परगने के सरदारों से सम्पर्क रखता था, चोरी और लूटमार से व्यापारियों की रक्षा करता था, वस्तुओं के भाव का निरीक्षण करता और जनता से कर वसूल करता था।[२३] अजीतसिंह ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, संवत् १७६५) को भंडारी विट्ठलदास को, अक्टूबर, सन् १७०८ ई० (कार्तिक संवत् १७६६) को भंडारी रघुनाथ को, सन् १७१०-१ में रघुनाथ के पुत्र अनूपचन्द को, फ़रवरी, सन् १७१३ ई० (फाल्गुन, संवत् १७६७, में मुहता गोपालदास कल्याणदासोत को, तथा सन् १७२३-४ (संवत् १७८०) में भंडारी अनूपचन्द को जोधपुर का का हाकिम नियुक्त किया था।[२४] मेड़ता परगने में ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को

---

२०. ब्याव री बही नं. १।

जोधपुर राज्य के लगभग सभी पदाधिकारियों का विवरण ब्याह बही नं. १ (२१३-८) पर आधारित है। इस बही में अन्य विभागों के नाम इस प्रकार लिखे हुये है :—

१ कपड़ा रैं कोठार २ जरगरखाना ३ गऊखानो ४ घोड़ा रैंतबेलो ५ सुतर खानो, ६ बागां रै कोठार ७ जिनावर खानो ८ रसोड़ो ६ जलखानो।

२१. ख्यात. भाग २, १४७; मूंदियाड़. २३५।

२२. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़. अध्याय १७।

२३. ब्याव री बही. नं. १।

२४. बाहवा. २०३; ख्यात. भाग २. १३६, १६१; मूंदियाड़ २३७ व २४७।

भंडारी नारायणदास भगवानदासोत, अक्टूबर, सन् १७०९ ई० में भंडारी देवराज, फ़रवरी, सन् १७१३ ई० में मुँहतामाईदास का भाई सन् १७१५–६ ई० में भंडारी पोमसी तथा ४ अगस्त, सन् १७१६ ई० को भंडारी गिरधरदास नियुक्त हुआ था।[२५] ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को भंडारी देवराज जगनाथोत जैतारण का हाकिम नियुक्त हुआ[२६]। सन् १७१०-१ ई० में भंडारी पोमसी रासावत जालोर व सांचोर का हाकिम नियुक्त हुआ। कुछ वर्षों के बाद ४ अगस्त, सन् १७१६ ई० (भाद्रपद बदि १३, संवत् १७७३) को मुहणोत नैणसी के वशंज सांवतसिंह को जालोर का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। इसी दिन भंडारी पोमसी को नागोर के हाकिम का पद सौंपा गया।[२७]

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थी। यहाँ का सारा कार्य-भार पंचायत सम्भालती थी। राजा यहाँ के प्रशासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था।[२८]

राज्य का सर्वोच्च सैन्य पदाधिकारी 'प्रधान' हुआ करता था। राजा की सम्पूर्ण सेना का नेतृत्व वही सम्भालता था।[२९] सन् १६८७ ई० में अजीतसिंह के गुप्तावस्था से बाहर आने के बाद से सन् १६९३ ई० तक दुर्गादास ने ही सम्भवतः प्रधान के पद पर कार्य किया था। सन् १६९३ ई० में दुर्गादास के अप्रसन्न हो जाने पर अजीतसिंह ने चांपावत उदयसिंह को अपना प्रधान नियुक्त किया। सम्भवतः सन् १६९७ ई० (संवत् १७५४) में दुर्गादास ने पुनः यह कार्य भार सम्भाला। केवल एक वर्ष बाद सन् १६९८ ई० में जब वह पाटन की फ़ौजदारी पर चला गया, तो उदयसिंह दूसरी बार राज्य का प्रधान नियुक्त हुआ। अजीतसिंह ने राज्यारोहण के बाद राठौड़ दुर्गादास को सम्भवतः जुलाई सन् १७०७ ई० में प्रधान नियुक्त किया। वह लगभग एक वर्ष तक इस पद पर कार्य करता रहा। ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को चांपावत मुकुन्ददास को यह पद सौंपा गया। इसके बाद सन् १७१३-४ ई० में भंडारी भगवानदास तथा एक वर्ष बाद सन् १७१४–५ ई० में भंडारी खींवसी जोधपुर राज्य के 'प्रधान' नियुक्त हुये।[३०]

मुग़ल शासक से जब जोधपुर के राजाओं का सम्बन्ध बहुत बढ़ गया, और यहाँ के शासक बहुधा बादशाह की सेवा में रहने लगे, तब 'तन-दीवान' नामक एक और पद की सृष्टि की गई। यह पदाधिकारी महाराजा के साथ बाहर रहा

---

२५. ख्यात. भाग २; १४७, १४९, १६१, १६३ व १६६; मूंदियाड़. २३५, २३७; २४७, २४९ व २५०।

२६. मूंदियाड़. २३५।

२७. ख्यात भाग २, १४९ व १६६; मूंदियाड़. २३७, २५०. २५१।

२८. टाड. भाग १, १२०; शर्मा स्टडीज़. २०१; जसवन्तसिंह. १५५।

२९. टाड. भाग १, १५०; शर्मा स्टडीज़. २००; जसवन्तसिंह. १५४।

३०. ओहदा. १८; ख्यात-भाग २, ९१, १४७, १५० व १६४; मूंदियाड़. २०५, २०७. २३५ व २४६; अजितोदय. सर्ग १६, श्लोक ९–११।

करता था। स्वदेश के बाहर रहते हुए राजा बादशाह की आज्ञा से जहाँ और जब भी अपनी सेना भेजता था, तब 'तन-दीवान' ही उस सेना का संचालन करता था। यदि राजा स्वयं युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित होता था तो 'तन-दीवान' उसे परामर्श देता था। मुग़ल-दरबार में प्रशासकीय विभाग के सभी कर्मचारियों के नक़द वेतन सम्बन्धित कार्य करने वाले पदाधिकारी को 'दीवाने-तन' नाम से पुकारा जाता इस प्रकार नाम की समानता होने पर भी दिल्ली के 'दीवाने-तन' तथा जोधपुर के 'तन-दीवान' के अधिकार व कर्त्तव्य एक से नहीं थे।[३१] अजीतसिंह के समय में अक्टूबर, सन् १०७६ ई० में भंडारी भाईदास देवराजोत तथा सन् १७१०-११ ई० में भंडारी खीमसी रासोत को 'तनदीवान' के पद पर नियुक्त किया गया था।[३२]

जोधपुर राज्य की सेना के संगठन व नियन्त्रण के लिये 'बख्शी' नामक पदाधिकारी हुआ करता था। उसके अधिकार व कर्त्तव्य लगभग वही थे जो मुगल सेना में 'मीर बख्शी' के थे। जिस प्रकार मुगल सम्राट के अधीनस्थ जागीरदार उसे सैनिक सहायता देते थे, उसी प्रकार जोधपुर राज्य के जागीरदार भी अपने महाराजा की सेवा में निश्चित संख्या में सैनिकों को भेजा करते थे। उनकी यह सैनिक-सेवा 'चाकरी' कहलाती थी। इस प्रकार महाराजा की सेना मुख्यतः इन जागीरदारों के सहयोग पर ही निर्भर थी। परन्तु उसकी एक अपनी सेना भी हुआ करती थी। महाराजा तथा जागीरदारों की सेना का निरीक्षण करना, जागीरदारों की सेना तथा उनकी सेवाओं का विवरण राजा को देना, तथा राज्य के सभी अधिकारियों को वेतन देना—बख्शी के प्रमुख कार्य थे।[३३] अजीतसिंह ने पंचोली हरकिशन रामचंदोत को ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को अपना बख्शी नियुक्त किया था।[३४]

कहा जाता है कि महाराजा अजीतसिंह ने अपने नाम की मुद्रा चलाई थी और निजी नाप व तौल के साधन भी चलाये थे।[३५] परन्तु किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

राजा की आय के विभिन्न साधन थे। उसकी निजी भूमि होती थी, जिसे वह पट्टे पर दिया करता था और इसके बदले में पट्टेदारों से निर्धारित राशि लेता था। भूमि-कर आय का अन्य साधन था। इसकी दर उपज की केवल $\frac{१}{३}$ व $\frac{१}{२}$ हुआ करती थी, तथा अधिकतर इसे अनाज के रूप में ही लिया जाता था। राज्य में से होकर जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं पर भी राजा कर लेता था। इसके अति-

३१. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़; अध्याय ११; इब्न हसन २०६; शर्मा, स्टडीज़ २०१।

३२. ख्यात. भाग २, १४६; मूंदियाड़. २३७।

३३. ब्याव री बही नं. १; हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, अध्याय ३३; हरदयालसिंह, तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़।

३४. ओहदा. १३; ख्यात. भाग २, १४७; मूंदियाड़. २३५।

३५. टाड. भाग २, ६६।

रिक्त उसके जागीरदार समय-समय पर राजा को भेंट व नजराना भी दिया करते थे।[३६] जिस प्रकार मुगल-दरबार में मनसब व जागीर मिलने पर लोग बादशाह को पेशकश नज़र किया करते थे, उसी प्रकार जोधपुर राज्य में भी जब राजा किसी व्यक्ति को जागीर देता था तो वह उसे पेशकश देता था। फ़र्रुख़सियर के शासनकाल में २१ अगस्त, सन् १७१८ ई० को जब अजीतसिंह को राज राजेश्वर की पदवी मिली थी, उस समय उसने इस पेशकश का नाम 'हुक्मनामा' कर दिया था।[३७] अजीतसिंह के समय में 'तागीरात' नामक एक अन्य कर भी आरम्भ हुआ था। उसकी बाल्यावस्था में मारवाड़ पर शाही अधिकार हो गया था; परन्तु वहाँ की प्रजा राजा व सरदारों को ही अपना असली मालिक समझती थी और वह सम्भवतः राजा के खर्च के लिये कुछ रुपया प्रतिवर्ष सरदारों को दिया करती थी, और इसके बदले में राठौड़ सरदार अपने सैनिकों के आक्रमण से प्रजा की रक्षा करते थे। प्रजा द्वारा दी गई इस राशि को 'तागीरात' कहा जाता था। जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया तो इस राशि को 'हुक्मनामा' में मिला दिया गया।[३८]

जोधपुर राज्य में न्याय व्यवस्था का भी समुचित प्रबन्ध था। शासन की सबसे छोटी इकाई गाँव था जहाँ न्याय का अधिकार पंचायत को था। धन सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय धर्मशास्त्रों के आधार पर होता था और अन्य झगड़े रीति-रिवाज के अनुसार निर्णीत किये जाते थे। पारस्परिक लड़ाई-झगड़ों को व्यक्तिगत अपराध समझा जाता था और उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। लोग आपस में ही इसका फ़ैसला कर लिया करते थे।[३९] परगनों में न्याय का कार्य हाकिम किया करते थे। उन्हें दीवानी व फौजदारी दोनों अधिकार प्राप्त थे। हाकिम के निर्णय से असन्तुष्ट होने पर प्रार्थी को 'अदालत रा दारोगा' नामक अधिकारी के पास अपील करने का पूरा अधिकार था। इसके निर्णय के विरुद्ध 'दीवान' के पास अपील की जा सकती थी। न्याय की सर्वोच्च शक्ति राजा के हाथ में थी। न्याय कार्य अधिकतर मौखिक होते थे और लिखा पढ़ी कम होती थी।[४०]

इसी प्रकार अजीतसिंह के समय में प्रशासन के सभी विभागों का समुचित प्रबन्ध था। यद्यपि यहाँ की शासन-प्रणाली पर मुगल शासन-प्रणाली का प्रभाव बहुत बढ़ चुका था, तथापि स्थानीय परम्परायें पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थीं,

---

३६. आईन. भाग २. २७३; सरन १२६,१२७ टि०, १३०-१; एग्रेरियन सिस्टम आव मुस्लिम इंडिया. ११६; शर्मा, स्टडीज. २०१; टाड- भाग १, १२६-३०; पूर्व. ६७; जयसिंह. १८, १६-२०; जसवन्तसिंह ७।

३७. हरदयालसिंह, तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़; रेउ. भाग २, ६२८-६।

३८. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़. ४४०; रेउ. भाग २, ६२६।

३९. शर्मा, स्टडीज.२०१; टाड- भाग १, ११६-२०; जसवन्तसिंह, १५५।

न्याव री बही नं० १ में भी लिखा है कि दंड धर्मशास्त्र के अनुसार दिया जाता था।

४०. हरदयाल सिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ ६८७; न्याव री बही नं० १।

यहाँ के पदाधिकारियों के अधिकार व कर्त्तव्य स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार ही निश्चित किये जाते थे।

(ख) शासक व सामन्त :—

मुगल शासकों के सम्पर्क में आने से पूर्व राजपूत शासक तथा उनके सामन्तों के बीच अधिकारी व अधीनस्थ का प्रश्न नहीं था। जिस प्रकार राजा का अधिकार एक निश्चित भू-प्रदेश पर था, उसी प्रकार सामन्तों के पास भी अपनी-अपनी जागीरें हुआ करती थीं। राजा की ही भाँति अपनी जागीर पर सामन्त का वंशानुगत अधिकार होता था। चूँकि जागीर उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति थी और उनकी शक्ति का आधार थी, अतः जिन व्यक्तियों के पास जागीर नहीं थी वे राजा से जागीर पाने, तथा जिनके पास जागीर थी वे उसे बढ़वाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। राजा जागीरदारों से ऊँचा व्यक्ति नहीं समझा जाता था। वरन् शासक व सामन्त में परस्पर भ्रातृत्व व समानता का सम्बन्ध था। अपने क्षेत्र में सामन्त पूर्ण स्वतन्त्र थे। फलतः वे किसी के आश्रित रहना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। उनकी इस प्रवृति के कारण जब भी उन्हें अवसर मिलता था, वे अपनी शक्ति बढ़ा लिया करते थे और कभी-कभी राजा को निर्बल पाकर उसकी उपेक्षा भी कर देते थे। परन्तु जब वे मुगल-बादशाह के सम्पर्क में आये, तो जिस प्रकार उनकी शासन-प्रणाली मुगल शासन-पद्धति से प्रभावित हुई, उसी प्रकार शासक एवं सामन्त के पारस्परिक सम्बन्ध में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और राजपूत शासक भी मुग़ल-सम्राट की भाँति अपने जागीरदारों पर प्रभुत्व जमाने की चेष्टा करने लगे।[४१]

अन्य सभी राजपूत राज्यों की भांति जोधपुर राज्य में भी आरम्भ में शासक एवं सामन्तों का पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण था। राव गांगा के समय (सन् १५१५-१५३२ ई.) में यहां के सरदार बहुत शक्तिशाली हो गये थे और स्वतन्त्र बन बैठे थे।[४२] उनकी इस प्रवृत्ति से जोधपुर के शासकों की चिन्ता स्वाभाविक थी। फलतः जैसे ही वे मुग़ल-सम्राट के सम्पर्क में आये और उन्हें बादशाह तथा उसके सरदारों के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान हुआ, उन्होंने भी अपने सामन्तों के प्रति अपने व्यवहार में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया और धीरे-धीरे दोनों की आपसी दूरी बढ़ने लगी।[४३]

मोटा राजा उदयसिंह के समय (सन् १५८३-१५९५ ई.) में 'पेशकश' या 'नज़राना' देने की प्रथा का चलन हुआ, जिसके अनुसार जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र को कुछ धन-राशि राजा को भेंट करके जागीर का नया पट्टा प्राप्त करना पड़ता था। यह स्पष्टतया मुग़ल प्रभाव था। जोधपुर के राजा स्वयं भी

४१. जसवन्तसिंह १५६; जयसिंह १८।
४२. पूर्व २२ व २७; जसवन्तसिंह १५६।
४३. जसवन्तसिंह १५६।

राज्य का अधिकार पाने के लिये बादशाह को 'नज़राना' दिया करते थे। अजीत-सिंह के राज्यत्व-काल में इसे पेशकश या नज़राना के स्थान पर 'हुक्मनामा' कहा जाने लगा था।[४४] जोधपुर के राजा इस विषय में विशेष सजग रहने लगे कि सामन्तों की शक्ति इतनी न बढ़ जाय कि वे विद्रोही हो जायं। इसी कारण जागीर देते समय उस जागीर से होने वाली आय पर भी ध्यान दिया जाने लगा और जागीरदार को पट्टा देते समय इस आय का उल्लेख भी पट्टे में किया जाने लगा[४५]। अजीतसिंह द्वारा दिये गये पट्टों में न केवल सम्पूर्ण जागीर का ही विवरण मिलता है, वरन् जागीर के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न गाँवों की आय का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[४६]

शासक व सामन्तों के पारस्परिक सम्बन्ध में इस प्रकार का अन्तर आ जाने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दोनों में सदियों से चली आ रही बन्धुत्व की भावना धीरे-धीरे समाप्त हो गई। अब शासक न केवल सामन्तों से, वरन् राजवंश के अन्य सदस्यों से भी ऊँचा माना जाने लगा था। धीरे-धीरे यह पारस्परिक दूरी बढ़ती गई और सामन्तों का एक अलग वर्ग पनपने लगा। जोधपुर के राजाओं ने इनकी शक्ति कम करने के लिये तथा इन्हें अपने प्रति स्वामिभक्त बनाये रखने के लिये जागीरदारों को कई भागों में विभाजित किया। प्रथम श्रेणी में वे सामन्त आते थे, जो शासक के निकट सम्बन्धी होने के कारण जागीरें प्राप्त करते थे। दूसरी श्रेणी के सामन्त वे थे, जिन्हे 'मुन्ड कटाई' (राजा के लिये युद्ध करना) के बदले में जागीरें दी जातीं थीं। जिन्हें राजा प्रसन्न होकर जागीरें दिया करता था, वे सामन्त 'इनामदार' कहलाते थे। इन तीनों के अतिरिक्त 'भूमिया' नामक एक अन्य श्रेणी भी थी। इसमें वे व्यक्ति थे जिनके पूर्वजों को राजा ने किसी पद पर कार्य करने के बदले में भूमि दी थी, और वह पद वंशानुगत हो गया और साथ ही साथ दी हुई भूमि पर अधिकार भी वंशानुगत हो गया[४७]।

राजपूताने के सभी राज्यों में सामन्त आजीवन राजा की सेवा में प्रस्तुत रहते थे। राजा जब जिस स्थान पर चाहे-देश अथवा विदेश—उनकी सेवा माँगने का अधिकार रखता था। राज्य की रक्षा व प्रतिष्ठा के लिये सामन्तों का एक समूह सदैव राजधानी में उपस्थित रहा करता था। थोड़े दिन उपरान्त जब इन सामन्तों को अपनी जागीर को लौटने की अनुमति मिलती थी, तो उनके स्थान पर दूसरा समूह राजधानी में आ जाया करता था। राजा जब कभी स्वयं सैन्य संचालन करता था तो सभी सामन्तों का एकत्र होना अनिवार्य था। सामन्त बिना अवकाश लिये दरबार से अनुपस्थित नहीं हो सकते थे। राजा के साथ वे शिकार पर जाया करते

४४. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ ४३९-४०; हरदयालसिंह, तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़; शर्मा, स्टडीज १९९; जसवन्तसिंह १५७।

४५. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड, अध्याय ११; शर्मा, स्टडीज १९९।

४६. रा. पु. बी. में अजीतसिंह द्वारा दिये गये बहुत से पट्टों की नकलें हैं।

४७. शर्मा, स्टडीज १९९-२००; पूर्व ८९; जसवन्तसिंह १५६-७।

थे, और युद्धों में अथवा शाही दरबार में भी राजा अपनी इच्छानुसार उन्हें साथ ले जाया करता था। राजा की कन्या का विवाह अथवा शत्रु का आक्रमण होने पर सामन्तों को राजा को आर्थिक सहायता देनी पड़ती थी।[४८] इस प्रकार सामन्तों को पूर्णरूप से अपने अधीन रखने के साथ-साथ राजा समय-समय पर इनाम व जागीरें देकर उन्हें सन्तुष्ट भी रक्खा करते थे। प्रधान मंत्री, अन्य उच्चाधिकारियों, विभिन्न परगनों के हाकिम तथा राजा के नायब सूबेदार अथवा नायब फ़ौजदार का चुनाव इन्हीं सामन्तों में से किया जाता था।[४९]

---

४८. टाड भाग १, १२१, १२८ व १३०-१।
४९. जसवन्तसिंह १५६।

१०

साहित्य एवं कला तथा सामाजिक दशा

(क) साहित्य :

राजस्थान की वीर प्रसविनी भूमि ने जगत प्रसिद्ध वीरों को ही जन्म नहीं दिया वरन् साहित्य के क्षेत्र में भी वह प्रसिद्ध कवियों की धात्री रही है। राजपूताना के अन्य राज्यों की भाँति जोधपुर राज्य में भी साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इस परम्परा का प्राचीनतम प्राप्य ग्रन्थ 'वीरमायरण' है, जिसकी रचना ढाढी जाति के बादर या बहादर नामक व्यक्ति ने की थी। महाराजा गजसिंह से पूर्व बारहठ आशानन्द, दुरसा जी आढ़ा, ईसरदास तथा माधोदास दधवाड़िया आदि अनेक कवि यहाँ हुए, परन्तु सर्वाधिक ख्याति राजरानी मीरा को ही प्राप्त हुई। गजसिंह के समय में इस क्षेत्र में अधिक प्रगति हुई। गाउरण शाखा का चारण कवि केशवदास, हेम कवि, हरिदास बानावत तथा बारहठ राजसी उसके समय के प्रसिद्ध कवि थे। महाराजा की प्रशंसा में केशवदास ने 'गुरण-रूपक' तथा हेमकवि ने 'गुरण भाषा चरित्र' की रचना की थी।

जोधपुर राज्य की यह साहित्यिक परम्परा महाराजा जसवन्तसिंह के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। जसवन्तसिंह स्वयं एक उत्कृष्ट कवि था, और उसका स्थान रीतिकालीन कवियों में बहुत ऊँचा है। 'भाषा-भूषरण' उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसमें अलंकारों का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है और अलंकारों के लक्षरण के साथ-साथ उदाहरण भी दिये गये हैं। 'भाषा भूषरण' के अतिरिक्त 'अपरोक्ष-सिद्धान्त', 'अनुभव-प्रकाश', 'आनन्द-विलास', 'इच्छा-विवेक', 'प्रबोध-चन्द्रोदय', 'पूली-जसवन्त संवाद', 'फुटकर-दूहा संग्रह', 'सिद्धान्त-सार', और 'सिद्धान्त-बोध' नामक वेदान्त और तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ भी उसने लिखे।

जसवन्तसिंह का मन्त्री मुहरणोत नैरणसी राजस्थान के साहित्यकारों में उच्च स्थान का अधिकारी है। उसके द्वारा रचित 'ख्यात' में राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, बघेलखण्ड एवं बुन्देलखंड का इतिहास है। इसके अन्तिम भाग—'जोधपुर रा परगना री विगत' में जोधपुर राज्य के परगनों व गाँवों का ऐतिहासिक व भौगोलिक वर्णन तथा राठौड़ों की विभिन्न जातियों का विस्तृत वर्णन है। जसवन्तसिंह के आश्रित कवियों में से दलपति मिश्र ने 'जसवन्तउद्योत' की रचना की, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। नरहरिदास बारहठ, नवीन एव

निधान महाराजा के अन्य आश्रित कवि थे। इनमें से प्रथम नरहरिदास ने 'अवतार-चरित्र', 'दसमस्कन्ध भाषा', 'रामचरित्र कथा', 'अवतार-गीता', 'नरसिंह अवतार-कथा' आदि अनेक भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की और उसे काफ़ी ख्याति प्राप्त हुई। जसवन्तसिंह के आश्रय से बाहर भी जोधपुर में कई कवि हुए जिनमें से वृन्द का नाम उल्लेखनीय है। उसकी 'सतसई' साहित्य की अमूल्य निधि है।[1]

इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह के शासन-काल तक साहित्य की यह धारा पूर्ण पल्लवित हो चुकी थी। चूँकि अजीतसिंह का सम्पूर्ण जीवन युद्ध एवं संघर्षों में ही व्यतीत हुआ था, अतः इस काल में हमें साहित्य की प्रगति में वह तीव्रता दृष्टिगत नहीं होती जो उसके पिता के समय में थी। यद्यपि इस काल के साहित्य-कारों में कोई भी उच्चकोटि का विद्वान न था, तथापि अजीतसिंह अपने वंशानुगत साहित्य-प्रेम से वंचित नहीं था। उसने यथासम्भव इस साहित्यिक परम्परा के विकास में योगदान दिया और अपने पिता की भाँति कई ग्रन्थों की रचना की। यद्यपि उसकी रचनाओं को मीराबाई, जसवन्तसिंह तथा महाराजा मानसिंह की कृतियों की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त न हो सकी, तथापि उसकी साहित्य-साधना अपना विशेष महत्त्व रखती है।

महाराजा अजीतसिंह की सर्वश्रेष्ठ रचना 'गुणसार'[2] है। यह रचना एक बृहद् ग्रन्थ न होकर अनेक रचनाओं का संग्रह है।[3] आरम्भिक चौबीस दोहों में कवि ने गणेश एवं शक्ति की वंदना की है। इसके उपरान्त हिंगुलाज देवी की स्तुति की गई है। गुणसार की अगली रचना 'देवी चरित्र शुंभ-निशुंभ-वध' में शुंभ व निशुंभ नामक राक्षसों के विरुद्ध देवताओं का हिंगुलाज देवी से सहायता माँगना,

---

१. जोधपुर राज्य की साहित्यिक परम्परा के विकास तथा जसवन्तसिंह के समय में साहित्य की परम्परा के विस्तार के लिये देखिये डॉ० एन. सी. राय. का अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ- 'लाइफ एण्ड टाइम्ज़ ऑव महाराजा जसवन्तसिंह' अध्याय ८ खंड 'क'।

२. रेउ. भाग १, २१; अगरचन्द नाहटा–'महाराजा अजीतसिंह की अन्य रचनाएँ', मरु-भारती, वर्ष १०, अंक ४; नारायणसिंह भाटी, परम्परा, अंक १७, भूमिका, ११।

रिपोर्ट (सन् १९०२ ई., क्र.सं. ८३); विवरण (३); खोज, (देवी. ५); राज. भाषा (२७९); राज. साहि. (२३४); पिंगल (१२३); मिश्र (भाग २, ५५६-७); लालस (१५६) ने इस रचना का नाम 'गुणसागर' लिखा है। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि कवि ने स्वयं ही रचना के अन्त में इसका नाम 'गुणसार' स्वीकार किया है–

"प्रथम वरण शृंगार को, राज्य नीत निरधार।
ज्योग कुमति यामें सबै, ग्रंथ नाम गुणसार।"
(गुणसार-ग्रन्थ संख्या १५, पुस्तक-प्रकाशन जोधपुर, १६१।)

३. नारायणसिंह भाटी, परम्परा, अंक १७, भूमिका, १२-३।

रिपोर्ट (सन् १९०२ ई. क्रम-संख्या ८३); विवरण (३); खोज (देवी ५); राज. भाषा (२७९); राज. साहि. (२३४); पिंगल (१२३); मिश्र (भाग २, ५५६-७), लालस (१५६) आदि लगभग सभी ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है कि गुणसार एक बृहद् ग्रन्थ है। परन्तु गुणसार के अध्ययन करने से इस मत की पुष्टि नहीं होती।

देवी का उनकी सहायता के लिये जाना, तथा राक्षसों को मारना वर्णित है। चौथी रचना 'सर्वांग-रक्षा-कवच' में देवी की स्तुति, उसकी सर्वव्यापकता तथा कृपा का वर्णन है। 'भवानी-सहस्त्रनाम' गुणसार ग्रन्थ की पांचवी रचना है। इसमें अजीतसिंह ने देवी को अन्य सभी देवताओं में श्रेष्ठ बताकर उसके सहस्त्र नामों का वर्णन किया है। अगली रचना केवल पन्द्रह छन्दों की है, जिसका नाम 'भवानी-स्तुति' है। सातवीं रचना 'दुहां श्री ठाकुरां रा' में अजीतसिंह ने कृष्ण-चरित्र के दो प्रसंगों यमुना तट पर गोपियों का चीर-हरण तथा कंस-वध–का सुन्दर वर्णन १७१ दोहों में किया है। अगली रचना 'दुहा श्री अज्यीतसिंह जी रा कह्या' में कवि ने १२८ दोहों में अपने जन्म की कथा का वर्णन किया है और अपने को देवी का अवतार बताया है। गुणसार की नवीं व अन्तिम पद्य–रचना है— 'निर्वाण दुहा'। इसमें मोक्ष प्राप्त करने से सम्बन्धित दोहे हैं और भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का साधन माना गया है।

इन नौ रचनाओं के अतिरिक्त गुणसार में 'रतना कँवर रतनावतीरी बात' नामक एक कथा भी संगृहीत है। यह मुख्यतः गद्य में है, परन्तु बीच-बीच में दोहे भी लिखे हुए हैं। इसमें निम्नलिखित शीर्षकों में अनेक प्रसंगों का वर्णन हैं—

(क) रागों का वर्णन
(ख) राजा सुमति का ऋषिश्वरों को उपदेश
(ग) गीता का दसवाँ अध्याय
(घ) पापी की गति
(ङ) भागवत का चौथा स्कंध
(च) ध्रुव वर्णन
(छ) एक धार्मिक नृप की कथा
(ज) महाभारतीय-राज्य–स्थिरता
(झ) एकादशी कथा
(ञ) हेमाद्रि प्रयोग
(ट) माता का सतीत्व, पिता की अन्तिम स्वराज्य क्रिया
(ठ) हास्य-विनोद
(ड) ऋतुओं के दोहे
(ढ) स्वप्नों के दोहे
(ण) पपीहे के दोहे
(त) पखवाड़े के दोहे
(थ) परस्पर दम्पत्ति पत्री
(द) पति आगमन, वसंत वर्णन
(ध) कृतज्ञ लक्षण पुत्र-पाठन
(न) सिंहादि गुण वर्णन
(प) पुत्र को विविध शिक्षा
(फ) हिंगलाज स्तुति
(ब) गंगा स्तुति[४]

'गज-उद्धार-ग्रन्थ' अजीतसिंह की द्वितीय महत्त्वपूर्ण रचना है।[५] यह भागवत की कथा पर आधारित है। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में भगवान के नाना-

---

४. गुणसार–ग्रन्थ संख्या.१५, पुस्तक प्रकाश जोधपुर।
नारायणसिंह भाटी (परम्परा, अंक १७, भूमिका, १२-३) ने भी ऐसा ही विवरण दिया है।

५. यह ग्रन्थ 'परम्परा' के १७ वें अंक में श्री नारायणसिंह भाटी के सम्पादन में प्रकाशित हो गया है।

रूपों और चमत्कारों का वर्णन करने की जो परिपाटी पाई जाती है, 'गज-उद्धार-ग्रन्थ' उसी परम्परा की एक कड़ी प्रतीत होता है। कवि ने गज के माध्यम से अत्यन्त मार्मिक आत्मनिवेदन किया है।

अजीतसिंह की अन्य उल्लेखनीय रचना 'भाव-विरही' है।[६] सन् १७११–२ ई० (संवत् १७६८) में इसकी रचना हुई थी।।[७] इसमें नायक व नायिका के विरह सम्बन्धी तिरासी दोहे हैं।[८] प्राप्य प्रतिलिपि में इन दोहों के बाद कुछ पृष्ठ रिक्त हैं, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना अपूर्ण है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त अजीतसिंह ने बहुत से दोहों की रचना भी की। उसके लिखे हुये लगभग दो सौ चौंतीस दोहे 'अजीतसिंह रे बिरवे रे दोहे' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[९] इन दोहों में अजीतसिंह के संकट के दिनों में सहायता करने वाले तथा विरोधी बने रहने वाले सरदारों का उल्लेख किया गया है। प्रसंगवश कहीं-कहीं घटनाओं का भी संकेत मिलता है। यह कृति भी अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें मोहकमसिंह द्वारा जालोर पर अधिकार करने का उल्लेख है, परन्तु अजीतसिंह का पुनः वहाँ अधिकार कर लेना वर्णित नहीं है।

'दुर्गासप्तशती का भाषानुवाद', 'महाराजा श्रीअजीतसिंह जी री कविता' व 'महाराजा अजीतसिंह जी रा गीत' नामक तीन अन्य रचनाएँ भी अजीतसिंह द्वारा लिखित कही जाती हैं।[१०] मिश्र-बन्धुओं ने 'राजारूप का ख्याल' नामक एक अन्य कृति का उल्लेख भी किया हैं।[११] परन्तु ये सभी रचनाएँ अप्राप्य हैं।

अजीतसिंह का सर्वाधिक रुचिकर विषय हिंगुलाज देवी की स्तुति था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वह स्वयं को देवी का अवतार समझता था,

---

६. इस रचना के केवल चार पत्र गुणसार ग्रन्थ (ग्रन्थ संख्या १६, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर) में हैं। रेउ. (भाग १, २१) तथा मेनारिया (राज. भाषा. २७९) ने भी इस रचना का उल्लेख किया है।

७. पिंगल (७८) में भाव-विरही का रचना काल सन् १७१३ ई. स्वीकार किया गया है। परन्तु भाव विरही (पत्र २ दोहा १९) में कवि ने लिखा है—

"संवत् सतरह अढसठे। छठ अनें सिव............।
सपना में वे ही सज्जन। मुझ मिले करप्पा.........॥"

इससे स्पष्ट होता है कि इसकी रचना १७११-२ ई. में ही हुई थी।

८. नारायणसिंह भाटी (परम्परा; अंक १७; भूमिका, १२) ने लिखा है—"भाव विरही में भी स्फुट विषयों पर लिखी हुई रचनाएँ हैं।" परन्तु इसकी पुष्टि इस रचना की प्राप्य प्रतिलिपि से नहीं होती।

९. सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर में इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि है। मुंदियाड़ की ख्यात व राठौड़ां री ख्यात में ये दोहे पाये जाते हैं।

१०. रिपोर्ट सन् १९०२ ई., क्र० सं. ८६, २०५ व २०८; विवरण १ व ६७; खोज (देवी) ८ व १५; पिंगल १२३; लालस १५६।

११. मिश्र. भाग २, ५५६–७।

और शक्ति की उपासना किया करता था। इसके अतिरिक्त उसने विविध विषयों पर रचनाएँ की थीं। अजीतसिंह ने विषयों का चुनाव एवं प्रतिपादन बड़ी कुशलता से किया है। धर्म सम्बन्धी विषय प्राचीन होने पर भी, अभिव्यक्ति की सुन्दरता के कारण अपने में एक नवीनता रखते हैं। अजीतसिंह में किसी प्रसंग का वर्णन करने की अद्भुत क्षमता है। 'ठाकुरां रा दुहा' में 'चीर-हरण' प्रसंग में यह अत्यन्त स्पष्ट है। व्यंग्य एवं उपालम्भ का सुन्दर वर्णन 'कंस-वध' प्रसंग में दृष्टिगत होता है। 'गज-उद्धार' में हथिनियों का करुण विलाप, गज और ग्राह का युद्ध, गज की आर्त पुकार आदि स्थलों पर अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है। शृङ्गार रस के दोनों पक्षों—संयोग व वियोग–, करुण, शान्त एवं वीर रस के सुन्दर उदाहरण महाराजा अजीतसिंह की रचनाओं में पाये जा सकते हैं।

अजीतसिंह की भाषा साहित्यिक स्तर की होते हुए भी कठिन नहीं है। भाषा सर्वत्र विषय एवं प्रसंग के अनुकूल है। उसमें इतना प्रवाह है कि रचनाओं को पढ़ते समय कहीं भी दुरूहता का सामना नहीं करना पड़ता। उसकी भाषा में प्रसाद गुण का प्रभाव है। अजीतसिंह ने गद्य व पद्य दोनों में रचनाएँ की थीं। राजस्थानी गद्य पर भी उसका पूर्ण अधिकार था।

अजीतसिंह ने अपनी रचनाओं में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया। उसकी रचनाओं में दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि प्रसिद्ध छन्दों के अतिरिक्त सार्दूल विक्रीडित, अनुष्टुप्, आर्या, मनोहर, नाराच, हरिगीतिका, भुजंगी आदि का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है। अलंकारों का भी कहीं-कहीं सुन्दर प्रयोग दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार अजीतसिंह ने अपनी रचनाओं में भावपक्ष व कलापक्ष का जो सुन्दर समन्वय किया उसके आधार पर उसे एक उच्च कोटि का साहित्यकार स्वीकार करना अत्युक्तिपूर्ण न होगा।

अजीतसिंह ने स्वयं रचना करने के साथ-साथ विभिन्न कवियों को अपने आश्रय में रखकर साहित्य की उन्नति में सहयोग भी दिया। भट्ट जगजीवन उसके दरबार का प्रमुख कवि था। उसने संस्कृत भाषा में 'अजितोदय' नामक एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में बत्तीस सर्गों में अजीतसिंह के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्पूर्ण घटनाओं का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है।[१२]

बालकृष्ण दीक्षित नामक एक अन्य कवि ने भी अजीतसिंह की प्रशंसा में 'अजितचरित्र' नामक संस्कृत भाषा का ग्रन्थ लिखा। इसमें अजीतसिंह के जीवन

---

१२. रेउ. भाग १, २१; मारवाड़ २११।

इसकी मूल प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में है और भाषानुवाद रा. पु. बी. में बस्ता सं० ४३ में प्राप्य है।

की कुछ मुख्य घटनाओं का प्रशंसायुक्त विवरण है। यह भी सम्भवतः अजीतसिंह का दरबारी कवि था।[13]

इन दोनों संस्कृत के कवियों के अतिरिक्त द्वारकादास दधवाड़िया, हरीदास तथा श्यामराम अजीतसिंह के अन्य प्रमुख आश्रित कवि थे। द्वारकादास, जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध कवि माधोदास दधवड़िया का पुत्र था। सन् १७१५–६ ई० में उसने 'महाराजा अजीतसिंह री दवावैत' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें महाराजा के शौर्य, पराक्रम और वैभव का सुन्दर वर्णन है। इसके साथ ही इसमें महाराजा की शासन व्यवस्था सम्बन्धी सूचनाएँ तथा जोधपुर के पूर्ववर्ती कवियों का संकेत भी मिलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। अजीतसिंह ने इस रचना पर प्रसन्न होकर द्वारकादास को जैतारण परगने में स्थिति बासनी नामक गाँव प्रदान किया था। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त द्वारकादास के फुटकर गीत भी पाये जाते हैं। द्वारकादास की भाषा सरल है, तथा उसकी रचनाओं में सर्वत्र प्रसाद गुण पाया जाता है।[14]

हरिदास भाट का जीवन सम्बन्धी इतिवृत्त अंधकार में है। केवल इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह महाराजा का आश्रित कवि था। हरिदास ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में अजीतसिंह-चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक अट्ठाईस वर्षों की घटनाओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'भ्रमर बत्तीसी' तथा 'राव अमरसिंह गजसिंघोत रा रूपक सवैया' उसकी अन्य रचनाएँ हैं। डिंगल भाषा का यह एक अच्छा कवि था।[15]

श्यामराम अथवा रामश्याम कायस्थ भी अजीतसिंह का एक अन्य आश्रित कवि था। इसका रचना-काल सन् १७२०–१ ई० के लगभग माना जाता है। 'ब्रह्माण्ड—वर्णन' इसका प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें भूगोल, खगोल, स्वर्ग, पाताल आदि का वर्णन है।[16]

अजीतसिंह के समय में उसके आश्रय से बाहर भी कई कवियों का प्रादुर्भाव जोधपुर में हुआ। इन कवियों में से रामस्नेही पंथ की रैणशाखा के प्रवर्तक दरियाव जी का नाम प्रमुख है। दरियाव जी ने सन् १७१२–३ ई० के लगभग अपने गुरु प्रेमदास से दीक्षा ली थी, और तदुपरान्त रैण नामक स्थान पर अपनी गद्दी स्थापित

---

१३. रेउ. भाग १, २१; मारवाड़ २११।
इसकी प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में प्राप्य है।

१४. लालस १५७।
'दवावैत' की प्रतिलिपि रा. पु. बी. में हैं।

१५. राज. भाषा १७६-८०: राज साहि २३०; पिंगल १६८; डिंगल ४४; डि साहि (भूमिका) १८।

१६. मिश्र. भाग २, ५७८; विवरण १८६; खोज (देवी) १३; रिपोर्ट सन् १६०२ ई. क्र० सं. ८०; रेउ. भाग १, २१ टि.।

की जो आजतक विद्यमान है। यहाँ पर दरियाव जी का एक बड़ा-सा चित्र रखा है, और चैत्र के महिने की पूर्णिमा को बहुत से लोग इनके दर्शन के लिये आते हैं। कुछ लोग इन्हें मुसलमान मानते हैं, परन्तु इनके शिष्य इसे स्वीकार नहीं करते हैं। इन्होंने लगभग दस हजार पद के 'वाणी' नामक एक वृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। दरियावजी की भाषा सुव्यवस्थित एवं कवित्वपूर्ण है।[१७]

अजीतसिंह के समय में मेड़ता परगने में माधवराम, रूपजी एवं तिलोकराम नामक कवि हुये। माधवराम ने 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश', 'शंकर-पचीसी' एवं 'माधवराम-कुण्डली' नामक ग्रन्थों की रचना की।[१८] रूपजी ने सन् १६८२–३ ई० के लगभग नायिका-भेद से सम्बन्धित 'रसरूप' तथा तिलोकराम ने सन् १७१०–१ ई० के लगभग 'रस-प्रकाश' व 'भावदीपक' नामक ग्रन्थ लिखे।[१९] सन् १७२२–३ ई० के लगभग पीपाड़ के जागीरदार राठौड़ माधोसिंह के आश्रय में बेनीराम नामक एक जैन मतावलम्बी कवि हुआ, जिसने 'जिनरस' नामक ग्रन्थ की रचना की।[२०] एक अन्य कवि सतीभाटदास द्वारा रचित सोलह दोहे मिलते हैं। यह दोहे सन् १७०७ ई० में जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया था, उस समय के हैं, और इनमें महाराजा के यश का वर्णन तथा राजा द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को गाँव दिये जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इस कवि का न तो कोई उल्लेख मिलता है, न अन्य कोई रचना।[२१]

इस प्रकार अजीतसिंह ने अपनी व्यक्तिगत साहित्य-साधना द्वारा तथा विभिन्न कवियों को प्रश्रय देकर जोधपुर राज्य की साहित्यिक परम्परा को आगे बढ़ाने में पूरा सहयोग दिया।

(ख) कला :

(अ) चित्रकला :—

ईसा की १६ वीं शताब्दी में राजस्थान में चित्रकला की नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'राजपूत–शैली' के नाम से पुकारा गया। राजपूताने के विभिन्न राज्यों में इस चित्र-शैली का विकास कुछ स्थानीय विशेषताओं के साथ हुआ और राज्य के नाम पर ही वहाँ की चित्र–शैली का नामकरण हुआ जैसे, मेवाड़-शैली, बीकानेर–शैली, किशनगढ़–शैली आदि। अन्य राज्यों की भाँति जोधपुर राज्य में भी अलग चित्र-शैली का विकास हुआ, जो 'जोधपुर–शैली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। जोधपुर में इस चित्र–शैली का प्रादुर्भाव राव मालदेव के समय में हुआ। मुग़ल

---

१७. राज. भाषा. ३०८-१०; राज. साहि. ८५-६; मिश्र. भाग ४, ५२-३।
१८. विवरण. ११६।
१९. पिंगल १६९-७०; मिश्र. भाग ४, ४५ व ५४।
२०. विवरण. १०२।
२१. यह सोलह दोहे 'अजीतसिंह की विरदा रे दोहे' नामक हस्तलिखित ग्रंथ (सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर) के अन्त में लिखे हुये हैं।

सम्पर्क में आने के पश्चात् इस स्थानीय चित्र-शैली पर धीरे-धीरे मुग़ल चित्र-शैली का प्रभाव पड़ने लगा।[२२]

बादशाह शाहजहाँ के समय तक चित्रकारों को मुग़ल दरबार में प्रश्रय मिलता रहा; परन्तु औरंगज़ेब के सिंहासनारोहण के उपरान्त शाही दरबार में उनके लिये कोई स्थान नहीं रहा और वे अन्य राज्यों में आश्रय ढूँढने लगे। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने कई प्रवीण चित्रकारों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। फलस्वरूप उसके समय के चित्रों में मुग़ल-शैली का प्रभाव अधिक पड़ने लगा। परन्तु स्थानीय कलाकार भी अपना अस्तित्व खोने को तैयार न थे। इस कारण जसवन्तसिंह के समय में स्थानीय चित्र-शैली एवं मुग़ल चित्र-शैली का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है। इस काल के चित्रों में चित्रित राजाओं, सामन्तों, उच्च-पदाधिकारियों की वेश-भूषा तथा इमारतों में मुगल-शैली की स्पष्ट छाप है; परन्तु नारियों की वेश-भूषा और रंगों का प्रयोग पूर्णतया स्थानीय चित्र-शैली के अनुसार किया गया है। मुग़ल चित्रकारों के प्रभाव से चित्रों में अंकित रेखाओं में यद्यपि प्रौढ़ता व गाम्भीर्य दिखाई पड़ता है, तथापि उनमें स्थानीय चित्र-शैली की सादगी पूर्ववत् विद्यमान है।[२३] इन दोनों शैलियों के अतिरिक्त चित्रों में कहीं-कहीं दक्षिण भारत की चित्र-शैली का भी सकेत मिलता है। सम्भवतः इसका कारण यह था कि जसवन्तसिंह शाही सेवा के लिये काफ़ी समय तक दक्षिण में रहा था।[२४]

अपने पूर्वजों की भाँति अजीतसिंह ने भी चित्रकला के विकास में सहयोग दिया। उसके राज्य-काल की चित्र-शैली को दो भागों में बाँटा जा सकता है—प्रथम, सन् १६७९ ई. से सन् १७१४-५ ई. तक तथा द्वितीय, सन् १७१५ ई. से सन् १७२४ ई. तक। प्रथम काल में जोधपुर राज्य में ठीक उसी शैली का प्रयोग किया जाता रहा जो जसवन्तसिंह के समय में प्रचलित थी। सम्भवतः इसका कारण यह था कि एक ओर तो मुग़ल सत्ता से निरन्तर संघर्ष होता रहा, अतः मुग़ल-चित्र शैली का प्रभाव बढ़ नहीं सका; दूसरी ओर शासक एवं सामन्त सभी युद्ध में व्यस्त होने के कारण स्थानीय चित्र-शैली को प्रोत्साहित न कर सके। फलस्वरूप दोनों चित्र-शैलियों का प्रभाव का क्षेत्र पूर्ववत् बना रहा, और चित्रों में राजपूत व

---

२२. हरमन गोयट्ज, मार्ग, भाग ११, खण्ड २, मार्च १९५८, ४२, ४५-६; पूर्व ६०।

२३. वही, ४६; पूर्व १०९-१० व १३५; जसवन्तसिंह, १८८-९।

२४. सन् १६४० ई. के लगभग चित्रित महाराजा जसवन्तसिंह का एक चित्र इस काल की शैली का सुन्दर उदाहरण है। (हरमन गोयट्ज, मार्ग, भाग ११, खण्ड २, मार्च १९५८, ४५, चित्र संख्या ८) इस चित्र में राजा तथा कुछ सामन्तों के वस्त्र, आभूषण तथा हुक्का पूर्णतया मुग़ल चित्र-शैली के अनुसार बने हुए हैं। दो राजकुमारों तथा परिचारिकाओं के वस्त्र पूर्णतया स्थानीय चित्र-शैली पर आधारित हैं। चित्र में जो भवन चित्रित हैं उसमें इन दोनों शैलियों का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है तथा जसवन्तसिंह की चित्रित पगड़ी दक्षिणी-शैली से प्रभावित है।

मुगल दोनों चित्र–शैलियों का समन्वित रूप चित्रित किया जाता रहा। इस काल के अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। सम्भवत: इसका कारण यही था कि युद्ध में व्यस्त होने के कारण अजीतसिंह न तो इस ओर अधिक ध्यान दे सका और न धन ही लगा सका।[२५]

फ़र्रुख़सियर के शासन-काल में जब महाराजा अजीतसिंह का सम्बन्ध मुगल-दरबार से मैत्रीपूर्ण हो गया, और धीरे-धीरे उनका सम्पर्क बढ़ने लगा, तो स्वाभाविक रूप से स्थानीय चित्र–शैली पर भी मुग़ल-चित्र-शैली का प्रभाव बढ़ने लगा। फलत: सन् १७१५ ई. से सन् १७२४ ई. में जोधपुर चित्र–शैली का दूसरा रूप प्रकट हुआ। इस समय स्थानीय चित्र–शैली पर मुग़ल चित्र–शैली पूर्णतया छा गई। जोधपुर के चित्रों में मुग़ल चित्र-शैली का प्रभाव क्रमिक रूप से धीरे-धीरे विकसित नहीं हुआ, वरन् एकाएक ही चित्रों मे मुग़ल हरम, फव्वारा, तुर्की स्नानागार आदि का चित्रण बहुलता से होने लगा और चित्र पूर्णतया मुग़ल चित्र-शैली में ही बनने लगे। विषय यद्यपि स्थानीय थे, परन्तु उनका प्रस्तुतीकरण पूर्णतया मुग़ल था। चित्रों में जोधपुर-शैली का प्रभाव बहुत कम हो गया। इस अकस्मात् परिवर्तन से ऐसा जान पड़ता है कि अजीतसिंह ने अपने दरबार में मुग़ल चित्रकारों को अवश्य ही प्रश्रय दिया होगा।[२६]

इस काल के चित्रकारों ने अनेक विषयों का चित्रांकन किया। पाबू जी राठौड़ डूंग जी, जुझार जी, आदि वीरों की तथा ढोला-मारू, मूमल दे, निहाल दे आदि प्रेमियों की लोक कथाओं का आलेखन हुआ। इनमें से ढोल मारू की कथा यहाँ के चित्रकारों को अधिक प्रिय थी। षट्-ऋतु एवं बारहमासा का चित्रण हुआ, तथा विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित रागमाला चित्र भी आँके गये। युद्ध के दृश्यों का चित्रण चित्रकारों का अन्य प्रिय विषय था।[२७] राधा-कृष्ण का चित्रण कम किया गया। यदि हुआ भी तो उसमें कृष्ण का वह सुकुमार चित्रण नहीं मिलता, जो कांगड़ा व बूँदी की चित्र-शैलियों में मिलता है। न ही वह मनोहारी प्रवाह है, जो अन्य राज्यों के चित्रों में है।[२८]

व्यक्ति-चित्रों (Portrait) में रुचि पूर्ववत् बनी रहने के कारण महाराजा अजीतसिंह एवं विभिन्न ठाकुरों तथा उनके दरबारियों एवं दरबारों के कई चित्र मिलते हैं। राठौड़ दुर्गादास चित्रकारों को सर्वाधिक प्रिय था, अत: इस योद्धा के कितने ही व्यक्ति-चित्र उपलब्ध हैं जिनमें उसे घोड़े पर चित्रित दिखाया गया है।[२९]

---

२५. हरमन गोयट्ज, मार्ग, भाग ११, खंड २, मार्च १९५८, ४६।
२६. वही. ४६; शर्मा. २१।
२७. विजय. ३०–१, सत्य. ३१।
२८. विजय. ३२।
२९. वही ३०।

व्यक्ति चित्रों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों का भी चित्रण किया गया। जानवरों में घोड़े एवं ऊँट का चित्रण सर्वाधिक हुआ। सम्भवतः इसका कारण जीवन में इनकी विशेष उपयोगिता है। घोड़े मोटे, भरे हुए पट्टों से युक्त एवं अंलकरण से सज्जित चित्रित होते थे। मयूर का चित्रण बहुत हुआ, परन्तु मयूर बूँदी शैली के मयूरों की भाँति भाव-वाही नहीं थे।[30]

चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का प्रयोग किया गया। चित्रों में सरिता, सरोवर, उद्यान और भवनों की सुन्दर छटाएँ देखने को मिलती हैं। वृक्षों में आम का चित्रण सर्वाधिक हुआ। रक्त किसलयों से युक्त आम का चित्रण अपनी निजी विशेषता रखता है।[31]

पुरुष आकृति सुकुमार न होकर कुछ कठोर दिखाई गई है। इनकी आकृतियाँ क़द में छोटी एव स्थूलकाय, सिर गोल एवं मस्तक पीछे को झुके हुये, दाढ़ी घनी व मूंछे कान तक खिंची हुईं चित्रित की गईं हैं। वस्त्रों पर मुग़ल प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। पुरुष अधिकतर लम्बे जामे पहिने हुये अंकित किये गये। इनकी पगड़ी का चित्रण निजी विशेषता रखता है, ये विशेष भारी एवं ऊँची चित्रित की गईं। कमर में लटकती लम्बी तलवार तथा हाथ में भाले का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। सम्भवतः यह राजपूतों की वीर पूजा की भावना का परिणाम है। स्त्रियों की आकृति पुरुषों की अपेक्षा लम्बी दिखाई गई। उनके वस्त्रों एवं आभूषणों पर भी अब मुग़ल-प्रभाव पड़ गया। घाघरे, चोटी आदि में काले फुंदनों का चित्रण अधिकता से किया गया। नेत्रों की खंजनाकृति जोधपुर चित्र-शैली की निजी विशेषता हैं। कभी-कभी तो जोधपुर के चित्रों एवं मुग़ल चित्रों को केवल नेत्र-भेद से ही पहचाना जाता है। झरोखे में बैठी राजकुमारी तथा चौकी पर बैठी सुन्दरियों का भी चित्रण किया गया।[32]

चित्रों में चटकीले रंगों का प्रयोग किया गया जैसाकि राजपूत-शैली में सर्वत्र मिलता है। जोधपुर में पीला रंग सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ। चित्रों के किनारे लाल एवं उनकी सीमान्त रेखाए पीले रंग की बनाई गईं। किनारों पर कभी-कभी पक्षियों का भी चित्रण हुआ। बहुधा गोलाकार, घने काले अथवा नीले बादलों का चित्रण किया गया, जिसमें लाल अथवा सुनहरे रंग से विद्युत रेखाएँ सर्पाकार बल खाती हुईं तथा प्रखर प्रकाश से युक्त चित्रित हुईं।[33] रंगों के सुन्दर प्रयोग के कारण ये चित्र विशेष आकर्षण रखते हैं।

१८ वीं शताब्दी में जोधपुर में रामा, नाथू, छज्जू, कृपाराम आदि कई प्रमुख हिन्दू चित्रकार हुये। इसके अतिरिक्त नूरा, मुहम्मद, सेफ़ू आदि मुस्लिम चित्रकार भी थे।[34]

---

३०. वही. ३१; सत्य. ३१।
३१. वही. ३० व ३१; सत्य ३१।
३२. वही ३१ व ३२; गैरोला. १६०।
३३. वही. ३१ व ३९; सत्य. ३१।
३४. हरमन गोयट्ज–मार्ग, भाग ११, खड २, मार्च १९५८, १६; गोपीनाथ ६।

इस प्रकार अजीतसिंह के राज्य के आरम्भिक लगभग छत्तीस वर्षों में यद्यपि चित्रकला के क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हुई, परन्तु अन्तिम नौ वर्षों में इस क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। जोधपुर राज्य में मुगल-चित्र-कला से प्रभावित चित्र सबसे अधिक इसी काल में बने। उसके उत्तराधिकारियों के समय में चित्रों में पुनः स्थानीय चित्र-शैली की विशेषताएँ उभरने लगी थीं।

(ब) स्थापत्य-कला :

जोधपुर के शासक स्थापत्य-कला एवं मूर्ति-कला में भी पर्याप्त रुचि रखते थे। जोधपुर का सुदृढ़ किला उनकी कलात्मक अभिरुचि का सुन्दर उदाहरण है। इसकी स्थापना राव जोधा ने सन् १४५९ ई० में की थी।[३५] इसके पश्चात् लगभग सभी शासकों ने इसमें अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार वृद्धि की। राव मालदेव, राजा सूरसिंह तथा राजा गजसिंह जोधपुर के प्रसिद्ध निर्माता हुये हैं। जोधपुर-दुर्ग के अतिरिक्त राज्य के कई प्रमुख स्थानों पर वास्तु-कला के सुन्दर नमूने सुदृढ़ किलों तथा सुन्दर महलों के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य-भर में स्थान-स्थान पर सुन्दर मन्दिर बने हैं, जो शासकों की कलात्मक रुचि का परिचय देते हैं। न केवल शासक, वरन् उनकी रानियाँ भी इस क्षेत्र में रुचि रखती थीं, और कई रानियों ने विभिन्न बावड़ियों तथा तालाबों का निर्माण करवाया था।

महाराजा अजीतसिंह की इस क्षेत्र में विशेष रुचि थी। समस्त जीवन-भर राजनीतिक उलझनों में फँसे रहने पर भी उसने अनेक सुन्दर स्मारक बनवाये जो आज भी उसकी कलात्मक रुचि के परिचायक हैं।

अजीतसिंह ने जोधपुर के किले में अनेक इमारतें बनवाईं। किले के छः द्वारों में से दक्षिणी-पश्चिमी कोने पर स्थित फ़तहपोल का निर्माण अजीतसिंह ने सन् १७१८-९ ई० में करवाया था। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, यह द्वार महाराजा की मुगलों पर विजय का प्रतीक है।[३६] सन् १७१८-९ ई० में 'दौलतखाना' नामक एक बड़े महल का निर्माण महाराजा ने करवाया, जिसे बाद में 'अजीत विलास' के नाम से पुकारा जाने लगा। इसी महल में अजीतसिंह की हत्या की गई थी। इस महल की छत १२-१२ फीट की दूरी पर बने हुये छोटे एवं भारी स्तम्भों पर टिकाई गई थी।[३७] दौलतखाने के ऊपर व मोती-महल के सामने का 'बीच का महल' भी महाराजा ने ही बनवाया था।[३८]

---

३५. रेउ. भाग १, ९२।

३६. मूंदियाड़. २५२; राठौड़ा. ६०; दानेश्वर. १५२; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३१९ टि.; ओझा. भाग ४, खंड २; २२-३।

३७. ख्यात. भाग २, १६८; मूंदियाड़ २५२; राठौड़ा ६१; दानेश्वर २५१; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि; ओझा. भाग ४, खंड २, ५९९; एडम-दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स. ८४।

३८. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९: रेउ. भाग १, ३२९ टि.।

सन् १७११-२ ई० में उसने मुगलों को निकालकर जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लेने की स्मृति में 'फतह महल' नामक महल बनवाया था और फतहपोल से गोपाल पोल के बीच उसने दो अन्य महल भी बनवाये थे।[३९] महाराजा ने सम्भवतः सामूहिक भोज के लिये एक 'भोजन-साल'[४०] तथा अपने शयन के लिये 'ख्वाबगाह के महल' का निर्माण करवाया था।[४१] अजीतसिंह ने अपने रनिवास के लिये 'जनाना-महल' बनवाया था, जिसमें छोटे-छोटे पृथक्-पृथक् चौबीस निवास स्थान थे। जनाना में एक 'रंग-साल' का भी निर्माण करवाया गया था।[४२] सन् १७११-२ ई० में उसने जोधपुर के किले में स्थित चामुण्डा जी के मन्दिर की मरम्मत भी करवाई थी।[४३]

ऊपर वर्णित सभी भवन जोधपुर के वर्तमान किले में दिखाई नहीं देते। महाराजा हनवन्तसिंह के समय में विभिन्न भवनों के नाम बदल दिये गये, तथा इमारतों में इतना नवीनीकरण कर दिया गया है कि उसमें प्राचीन स्मारकों के चिह्न शेष नहीं रहे हैं। यह प्रक्रिया अभी भी चल रही है। इसके साथ ही जनाना महल व रंगसाल आदि कुछ भवन बन्द भी पड़े हैं।

जोधपुर नगर में महाराजा ने कुछ नये मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा पुरानों का जीर्णोद्धार किया। ठाकुर मूलनायक जी का मन्दिर, जो गुदी के मुहल्ले में बरगद के नीचे है, औरंगजेब के राज्य-काल में नष्ट कर दिया गया था, महाराजा ने सन् १७१८-९ ई० में उसका पुनरुद्धार करवाया।[४४]

जोधपुर की जुनी धान मंडी के निकट 'घनश्याम जी के मन्दिर' का निर्माण महाराजा ने करवाया था। इसे 'पंच-देवरिया' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें प्रमुख मन्दिर के अतिरिक्त चार अन्य छोटे मन्दिर भी हैं।[४५]

घनश्याम जी के मन्दिर के निकट ही एक अन्य 'गंगाश्याम जी के मन्दिर' का निर्माण भी अजीतसिंह ने करवाया था।[४६] यह मन्दिर, राव गांगा के समय में बनवाया गया था, परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जब जोधपुर पर शाही अधिकार स्थापित हो गया, तब इसे तोड़कर इसके स्थान पर मस्जिद बनवा दी

---

३९. दस्तूर १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.; ओझा, भाग ४, खंड २, ५११।

४०. दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १. ३२९ टि.।

४१. दानेश्वर २५२: रेउ. भाग १, ३२९ टि.।

४२. दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.।

४३. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.।

४४. ख्यात-भाग २, १६९; मूंदियाड़. २५२; दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; राठौड़ां. ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि.; ओझा-भाग ४, खण्ड २, ५१६।

४५. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३३० टि.।

४६. ख्यात. भाग २, १६९; मूंदियाड़. २५२; दस्तूर. १५१; राठौड़ा. ६१।

गई थी। परन्तु अजीतसिंह ने जब जोधपुर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया तो यहाँ पुनः मन्दिर बनवा दिया। कई वर्षों बाद महाराजा विजयसिंह ने इसमें बहुत परिवर्तन किये। फलस्वरूप अजीतसिंह के समय के मन्दिर के दर्शन नहीं होते।[४७]

मंडोर में महाराजा अजीतसिंह ने कई भवन निर्मित किये। चूंकि यहाँ की कलाकृतियों में बाद में कोई परिवर्तन नहीं किये गये, अतः अजीतसिंह के समय की स्थापत्य-कला का वास्तविक रूप मंडोर में ही दिखाई पड़ता है।

मंडोर में जोधपुर के कई शासकों के देवल[४८] बने हैं। अजीतसिंह ने अपने पूर्वजों की भाँति अपने पिता जसवन्तसिंह की स्मृति में एक 'देवल' सन् १७१८-९ ई० में मंडोर में बनाया।[४९] जसवन्तसिंह का देवल, महाराजा अजीतसिंह के देवल के अतिरिक्त अन्य सभी देवलों से आकार में बड़ा है। साधारणतया देवल उसी स्थान पर बनवाया जाता है जहाँ स्वर्गीय व्यक्ति की दाह-क्रिया होती है। परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु चूंकि पेशावर में हुई थी, अतः इसका निर्माण उसकी दाह-क्रिया के स्थान पर नहीं हुआ है। जसवन्तसिंह का देवल भूमि से लगभग सात फीट ऊँची विस्तृत वर्गाकार चौकी पर स्थित है। यह तीन मंजिल का है; परन्तु सीढ़ियाँ केवल बीच की मंजिल के लिये ही हैं। दूसरी मंजिल पर सामने तथा दोनों ओर छज्जे बने हुये हैं। देवल में स्तम्भों का प्रयोग बहुलता से किया गया है; परन्तु यह स्तम्भ बिल्कुल सादे बने हैं। देवल की परिपाटी के अनुसार इसके दो भाग हैं-सभामंडप तथा भीतर का कक्ष (दाह-स्थान का कक्ष)। सभामंडप के ऊपर गुम्बद बना है, तथा भीतर के कक्ष के ऊपर लम्बा शिखर बना हुआ है। इस देवल में गुम्बद के अन्दर के भाग तथा शिखर में सुन्दर पच्चीकारी की हुई है।

जसवन्तसिंह के देवल के बाईं ओर की सड़क सीधी 'एक थम्भा महल' की ओर जाती है। यह भवन एक स्तम्भ के रूप में दिखाई देता है, इसी कारण इसे 'एक थम्भा-महल' कहा जाता है। यह तीन मंजिल ऊँची अष्टभुजी इमारत है जिसमें क्रमशः एक भुजा में द्वार तथा दूसरी भुजा में जाली बनी है। इसका निर्माण महाराजा अजीतसिंह ने सन् १७१८-९ ई० के लगभग करवाया था।[५०]

---

४७. मन्दिर मे प्राप्त विवरण।

४८. किसी व्यक्ति की स्मृति में तीन प्रकार के भवन बनाये जाते हैं-थड़ा, छतरी व देवल। देवल स्मारक भवनों में सर्वश्रेष्ठ होता है। यह अधिकतर तीन मंजिल का होता है जिसमें विभिन्न कक्ष, सीढ़ियाँ व छज्जे बनाये जाते है और सम्पूर्ण भवन में पच्चीकारी का काम खूब रहता है। इनका निर्माण मन्दिर की ही शैली में किया जाता है। मन्दिर की ही तरह इनमें लम्बा शिखर होता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि मन्दिर देवताओं को समर्पित होते हैं तथा देवल उस व्यक्ति को जिसकी स्मृति में उसका निर्माण किया जाता है।
(आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑव इण्डिया भाग २३, ७५)

४९. ख्यात-भाग २, १९९: मूंदियाड़. २५३; दानेश्वर, २५२; दस्तूर. १५०; राठौड़ा ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि., ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५९९।

५०. ख्यात. भाग २, १९९; मूंदियाड़. २५२; दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; राठौड़ा. ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि०।

एक थम्भा महल के बाई ओर एक छोटा-सा द्वार है, जो जनाना-महल' का प्रवेश द्वार है। यह एक बड़ा-सा बाग़ है, जिसमें दाहिनी ओर काफी ऊँची कुर्सी पर चौबीस छोटे-छोटे निवास-स्थान बने हैं। यह दो मंजिल ऊँची इमारत है।[५१]

अजीतसिंह को बावड़ियों का भी शौक़ था। उसके द्वारा निर्मित कई बावड़ियों का उल्लेख मिलता है।[५२] महाराजा की रानियों ने भी मन्दिर एवं तालाब बनवाये। रानी राणावत ने गोल में तंवर जी के झालरे के निकट शिखरबन्द मन्दिर बनवाया तथा रानी जाड़ेची ने चाँदपोल के बाहर एक झालरा बनवाया।[५३] महाराजा के सरदारों ने भी कई तालाबों का निर्माण करवाया। तिवारी सुखदेव श्रीमाली ने सन् १७१९-२० ई० में जोड़ेची जी के झालरे के पीछे एक झालरा बनवाया। भंडारी रघुनाथ ने रामेश्वर जी महादेव के मन्दिर के पीछे एक बावड़ी तथा बाग़ बनवाया। पुष्करणा ब्राह्मण रिणछोड़दास ने रामेश्वर जी के मन्दिर के निकट एक वेरा (कुंआ) बनवाया। नाजर दौलतराम ने दाऊ जी के मन्दिर के एक तरफ़ एक बावड़ी बनवाई।[५४]

चित्रकला की ही भाँति स्थापत्य-कला पर भी मुग़ल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। राजस्थान की सभी मध्यकालीन इमारतों में मुग़ल प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। जोधपुर में भी, जब मुग़ल शासकों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ तो वास्तु-कला पर भी मुग़ल प्रभाव का सूत्रापात हुआ। एक ओर जहाँ यह प्रभाव निरन्तर विकसित होता गया, वहाँ दूसरी ओर पूर्ववर्ती राजपूत-शैली अपना प्रभुत्व छोड़ने को तैयार नहीं थी। फलस्वरूप चित्रकला की भाँति स्थापत्य-कला में भी दोनों शैलियों का मिश्रण होने लगा। १७ वीं शताब्दी में बने जोधपुर राज्य के भवनों में दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है।

महाराजा अजीतसिंह ने लगभग सभी भवनों का निर्माण सन् १७१८-९ ई० में करवाया। यह वह समय था जब महाराजा का प्रभुत्व दिल्ली दरबार में बढ़ गया था। मुगल-सम्राट से निकट सम्बन्ध होने के कारण स्थापत्य-कला में भी मुग़ल प्रभाव अधिक पड़ने लगा। परन्तु चित्रकला की भाँति इस समय के भवन पूर्णतया मुग़ल वास्तु-शैली पर नहीं बने। इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम प्रभाव दिखाई पड़ता है। भवनों में पच्चीकारी, छज्जों तथा कार्निस (दीवारगीर bracket) का प्रयोग तथा स्तम्भों की बहुलता राजपूत-स्थापत्य-शैली के प्रभुत्व का सूचक हैं। हिन्दू मन्दिरों की भाँति देवल में लम्बा पच्चीकारी युक्त शिखर मिलता है। दूसरी ओर मेहराब व गुम्बद में मुग़ल-स्थापत्य-शैली का प्रभाव स्पष्ट है। एक थम्भा महल की

५१. ख्यात., भाग २,१६६; मूंदियाड़. २५२; दस्तूर. १५०; राठौड़ा. ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि.; ओझा. भाग ४. खण्ड २. ५९९।

५२. मूंदियाड़ २५५; दस्तूर. १४९।

५३. दानेश्वर. २५३; दस्तूर. १५०; ओझा भाग ४, खण्ड. २, ५९९।

५४. दस्तूर. १५०।

वाली पूर्णरूपेण मुगल है। इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह के समय में राजपूत स्थापत्य-कला का ही प्रभुत्व था यद्यपि मुगल शैली का प्रभुत्व भी काफी बढ़ चुका था।

(स) मूर्ति-कला :

महाराजा अजीतसिंह की रुचि केवल स्थापत्य-कला तक ही सीमित नहीं थी। उसके शासन-काल में हमें मूर्ति-कला के भी उदाहरण मिलते हैं। उसने पत्थर व चाँदी की कई मूर्तियाँ बनवाई थीं। किले में मुरली मनोहरजी का चतुर्भुज रूप, हिंगुलाज देवी, महादेव तथा पार्वती की पूरे क़द की चाँदी की मूर्तियाँ सन् १७१९-२० में बनवाई थी।

मंडोर में महाराजा ने 'भैरों जी की साल' का नवीनीकरण करवाया।[५५] भैरों जी की बावड़ी तो पहले ही बनी हुई थी, महाराजा ने इसकी मरम्मत करवाई और गणेश जी की छोटी मूर्ति के स्थान पर बड़ी मूर्ति की स्थापना करवाई। इसके साथ ही काला व गोरा की नई मूर्तियाँ भी स्थापित की गईं।[५६] वर्तमान अवस्था में इस साल में बीच में गणेश जी की मूर्ति है, और उसके दोनों ओर काला-गोरा की। इसके साथ ही चार चाकरों की मूर्तियाँ भी हैं। अपने मूलरूप में ये लाल पत्थर की हैं; परन्तु कालान्तर में इस पर चूने का प्लास्टर कर दिया गया तथा ऊपर से चमकीली पन्नियाँ चिपका दी गईं।

'भैरों जी की साल' के निकट ही 'वीरों की साल' है, जिसे 'तेंतीस करोड़ देवताओं की साल' भी कहते हैं। यह एक लम्बा बरामदा है, जिसमें एक ही पहाड़ को काटकर सोलह दीर्घकाय मूर्तियाँ बनाई गई हैं। इनमें से दो देवियों की—चामुण्डा तथा महिषासुर मर्दिनी हैं और एक श्री गुसाईं की है। शेष में से—मल्लिनाथ, पाबु रामदेव, हड़बु, गोगा व मेहा नामक छः वीरों की मूर्तियाँ हैं। शेष सात प्रमुख देवताओं की हैं, जिनके नाम हैं—ब्रह्मा, सूर्य, रामचन्द्र, कृष्ण, महादेव, जालन्धरनाथ तथा गणेश।

इस साल का निर्माण किसने किया, इस विषय में विभिन्न विचार हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस सम्पूर्ण साल का निर्माण महाराजा अजीतसिंह ने करवाया था।[५७] अन्य इसे महाराजा अभयसिंह के काल का बताते हैं।[५८] कुछ का विचार है कि इसमें देवताओं की मूर्तियाँ अजीतसिंह ने बनवाई थी।[५९] अन्य के अनुसार वीरों की मूर्तियों का निर्माण अजीतसिंह के समय हुआ था तथा देव-

---

५५. ख्यात. भाग २, १६६; मुंदियाड़ २५२ व २५३; दानेश्वर. २५२ दस्तूर. १५०; राठौर ६१; रेउ भाग १, ३३० टि.।

५६. दस्तूर. १५०।

५७. गहलोत (मारवाड़) ५८-६; मूल २२४।

५८. आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑव इण्डिया भाग २३, ८५।

५९. दस्तूर. १४६।

ताओं की मूर्तियाँ अभयसिंह ने बनवाई थीं।[६०] वीरों की मूर्तियों में से भी कुछ राव जोधा ने बनवाई थीं, ऐसा मत भी मिलता है।[६१]

इन विभिन्न मतों को देखते हुये निष्कर्ष रूप में केवल इतना कहा जा सकता है कि इन मूर्तियों में से कुछ का निर्माण अवश्य ही अजीतसिंह के समय में हुआ था। इनका निर्माण-काल मंडोर के अन्य भावनों के समकालीन मानना ही उचित प्रतीत होता है।

इन मूर्तियों में कलात्मकता का नितान्त अभाव है। प्रत्येक मूर्ति लगभग पन्द्रह फीट ऊँची है, और इनमें सौन्दर्य के स्थान पर शौर्य व वीरत्व पर अधिक ध्यान दिया गया है। इन प्रतिमाओं की आँखें निजी विशेषता रखती हैं। इनमें वीरता एवं शौर्य दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त वीरों के कपड़ों की सिलवटों का प्रदर्शन, चहरे की बनावट, आभूषण तथा मूँछें इनकी कुछ अन्य विशेषताएँ हैं। परन्तु मूर्तियों में सूक्ष्म विस्तारों तथा भावनात्मक पक्ष की कमी है। यद्यपि मूर्ति-कला के दृष्टिकोण से ये मूर्तियाँ अत्यन्त निम्न श्रेणी की हैं, तथापि इनसे अजीत-सिंह की इस क्षेत्र में अभिरुचि का अवश्य पता चलता है।

इस प्रकार यद्यपि अजीतसिंह का अधिकांश जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ, तथापि सन् १७१० ई० के उपरान्त उसे जब-जब समय मिला, उसने अपने राज्य के सांस्कृतिक विकास का प्रयत्न किया। फलस्वरूप उसके राज्यत्व-काल में कई सुन्दर रचनाएँ लिखी गईं। चित्रकला, स्थापत्य कला तथा मूर्ति-कला के भी सुन्दर उदा-हरण मिलते हैं। सक्षेप में जोधपुर राज्य के सांस्कृतिक विकास की जो परम्परा अजीतसिंह को उत्तराधिकार में मिली थी, उसने उसे आगे बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयास किया।

(ग) सामाजिक स्थिति :

विस्तृत विवरण के अभाव में केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अजीतसिंह के समय में जोधपुर राज्य का समाज तीन श्रेणियों में विभक्त था। प्रथम श्रेणी राजा व उसके परिवार की, द्वितीय श्रेणी जागीरदारों की, तथा अन्तिम श्रेणी कामदारों की थी। जोधपुर में प्रमुखतया राठौड राजपूत ही निवास करते थे। बहुत पहले से ही यहाँ राजा के पुत्रों तथा भाई बन्धुओं के नाम पर भिन्न-भिन्न जातियाँ (खांप) बन गईं थीं, जैसे—चांपावत, कूंपावत, जोधा, मेड़तिया आदि। इस समय भी ये जातियां पूर्ववत् पाई जाती थीं।

समाज में धर्म का विशेष स्थान था। लोग पूजा-पाठ में विशेष रुचि रखते थे और ग्रहों, शुभलग्न एवं जन्मपत्रियों पर विश्वास करते थे। यज्ञों का भी प्रचलन समाज में था। विभिन्न अवसरों पर जैसे—पूर्णिमा, एकादशी, संक्राति आदि पर लोग व्रत रक्खा करते थे। कन्या के विवाह में माता-पिता उसकी विदाई से पूर्व

---

६०. मूंदियाड़. २५२; दानेश्वर. २५२; राठौड़ां ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि. व ३५८।

६१. प्राचीन राजवंश. १४७।

जल भी ग्रहण नहीं करते थे। एकादशी, संक्रांति आदि अवसरों पर सारी रात कीर्तन करने की प्रथा, जिसे रात्रि-जागरण कहा जाता था, खूब प्रचलित थी। लोगों में दान देने की प्रवृत्ति भी पाई जाती थी।[६२] जोधपुर के शासक तुलादान भी किया करते थे। राजा को सोना, चाँदी, मोती, कपड़ा आदि से तोला जाता था और ये वस्तुएँ ब्राह्मणों को दान दे दी जातीं थीं। सम्भवतः तुला-दान की प्रथा मुगल प्रभाव ही था।[६३]

जोधपुर में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। गणेश, आनन्दघन, कल्याणराय, भैंरू गंगश्याम, सांखला, चतुर्भुज, मुरलीमनोहर, जुगल-किशोर, लक्ष्मीनारायण आदि अनेक देवताओं तथा नागणेची, चामुण्डा व हिंगुलाज आदि अनेक देवियों की पूजा की जाती थी। देवताओं में गणेश जी सर्वाधिक पूज-नीय थे और कार्यारम्भ से पूर्व सर्वप्रथम उन्हीं की पूजा की जाती थी।[६४]

नागणेची देवी जोधपुर राज्य की कुलदेवी थी। चूंकि इस देवी का निवास स्थान नीम के वृक्ष के नीचे माना जाता था, अत: जोधपुर में नीम के वृक्ष का आदर किया जाता था, और उसकी लकड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता था।[६५] नागणेची जी की पूजा का उत्सव बहुत धूम-धाम से मनाया जाता था। इस दिन यथाविधि देवी की पूजा होती थी, और राज-प्रसाद में सभी को लापसी बाँटी जाती थी। इस दिन सेवग[६६] सात धागों को मिलाकर उनमें सात गाँठे लगाकर एक राखी तैयार करता था। यह विशेष राखी देवी के प्रसाद स्वरूप राजा को बाँधी जाती थी और उसके बाद राजकुमारों को और ब्राह्मणों को भी राखियाँ बाँधी जाती थीं। इसी प्रकार रनिवास में सेवगणियाँ क्रमशः रानियाँ, राजकुमारियों, पड़दायतों व गायणियों[६७] को राखियाँ बांधती थीं। सेवग व सेवगणियों को इसके लिये रुपये दिये जाते थे।[६८]

जोधपुर राज्य में अनेक उत्सव मनाये जाते थे। तीज, जन्माष्टमी, रिख-पंचमी, राधा-अष्टमी, बावन-द्वादसी, महालक्ष्मी रो व्रत, अगस्त्य को अर्घ देना, गवर-पूजा, राम व अन्य अवतारों की जन्मतिथियाँ आदि अन्य धार्मिक पर्व थे।[६९]

समाज में जन्म, विवाह एवं मृत्यु के समय विभिन्न रीति-रिवाज प्रचलित थे। गर्भावस्था के पाँचवे मास में नागणेची, गणेश व अन्य देवी-देवताओं को भेंट

---

६२. व्याव री बही. नं. १, २३ व २४।

६३. दस्तूर. ४६।

६४. व्यावरी बही. नं. २१, २।

६५. दस्तूर. २०; रेउ. भाग १, २७।

६६. देवी या देवता की सेवा में नियुक्त व्यक्ति को 'सेवग' कहा जाता था।

६७. राजा की उपपत्नी को 'पड़दायत' तथा महल में गाने वाली स्त्रियों को; गायणियाँ कहा जाता था।

६८. दस्तूर-२०।

६९. वही।

देने की प्रथा थी।[७०] बच्चे के जन्म के दसवें दिन 'दसठौन' का उत्सव होता था, जिसमे सम्बन्धियों को भोज दिया जाता था। शुभ-लग्न देखकर ही बच्चा सौर-गृह से बाहर लाया जाता था।[७१]

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विवाह किस प्रकार होता था, इसका प्रामाणिक विस्तृत वर्णन प्राप्त है।[७२] विवाह निश्चित करने के लिये लड़की के पक्ष से वर के लिये टीका भेजा जाता था।[७३] यह कार्य-भार ऐसे भाट सम्पन्न करते थे जो दोनों पक्षों को भली-भाँति जानते थे। लेकिन कभी-कभी शीघ्रता के कारण टीके के स्थान पर वर को केवल 'बीड़ा' देकर ही काम चला लिया जाता था।[७४] विवाह निश्चित होने की सूचना देने के लिये सभी स्वजनों में गुड़ बाँटा जाता था।[७५] विवाह से कई दिन पूर्व ही कन्या को उबटन लगाने से कार्य प्रारम्भ हो जाता था। इस अवसर पर शुभलग्न में कन्या को पटरे पर बिठाकर उसके पैर के नीचे नारियल व रुपये रक्खे जाते थे, जिन्हें कार्य समाप्त होने पर नाईन ले लिया करती थीं। सर्वप्रथम पुरोहित पूजा करता था, तदुपरान्त कन्या को उबटन लगाया जाता था। फिर पुरोहित की पत्नी कन्या को तिलक लगाती थी, विभिन्न सुहागिनें चार प्रकार का अन्न छाज (सूपा) में डालकर फटकती थीं, और कन्या की बुआ उसकी आरती करती थी। अन्त में सभी को लापसी बाँटी जाती थी। पुरोहित की पत्नी तथा कन्या की बुआ को अपने-अपने कार्यों के लिये नेग मिलता था।[७६]

विवाह से कुछ दिन पूर्व गणेश जी की स्थापना की जाती थी। इस उत्सव में कुछ लोग गाते-बजाते कुम्हार के घर जाते थे और कपड़े में लपेटकर एक टोकरी में गणेश जी की मूर्ति लाकर महल में उस स्थान पर स्थापित कर देते थे, जहाँ कुलदेवी नागणेची जी की मूर्ति स्थापित थी। कुम्हार को इसके लिये गेहूँ, चावल, घी, गुड़, मैंदा, कुमकुम, नारियल आदि वस्तुएँ दी जाती थीं। तदुपरान्त कन्या को गणेश जी के समीप लाया जाता था। गणेश जी की पूजा के उपरान्त कन्या को 'कंकण-डोरा'[७७] बाँधा जाता था। तत्पश्चात् कन्या के पटरे एवं पैर के नीचे रुपये

---

७० वही, ४७।

७१. अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त ये उत्सव हुये थे। यह कहना कठिन है कि ये उत्सव राजघराने तक ही सीमित थे अथवा जनसाधारण में भी प्रचलित थे।

७२. ब्याव री बही. न. १, १-५३।

७३. महाराणा जयसिंह ने अजीतसिंह को टीका भेजकर अपनी भतीजी से उसका विवाह निश्चित किया था। जैसलमेर के रावल अमरसिंह ने भी अजीतसिंह को टीका भेजा था, जिसका विस्तृत वर्णन जुनी-बही में मिलता है।

७४. ब्यावरी बही नं. १, १। जयसिंह व सूरजकुँवर के विवाह में ऐसा ही हुआ था।

७५. ब्याव री बही नं. १, ३-१६।

७६. वही, १-३।

७७. वधू के बायें हाथ व पैर में धारण करने का सूत का रंगीन डोरा जिसमें कौड़ी, लाख, लोहे

व नारियल रखकर उसे 'पीठी'[७८] लगाने का कार्यक्रम होता था। पीठी के उपरान्त उसे स्नान कराया जाता था, फिर सभी उसकी निछावर करते थे।[७९]

विवाह से एकाध दिन पूर्व चौदह मातृकाओं[८०] की स्थापना नागणेची जी के मंदिर में की जाती थी। विवाह से एक दिन पूर्व 'रात्रि-जागरण' होता था जिसमें स्त्रियाँ रात भर नाचती गाती थीं। विवाह के दिन 'बिन्दौला' नामक कार्य-क्रम होता था। इस उत्सव में सुहागिन स्त्रियाँ एक थाली में कुमकुम, चावल, मौली, सुपारी तथा गुड़ या मिश्री रखकर कन्या के पास जाती थीं, और उसे सगुन के रुपये देती थीं। इसी दिन कुम्हार के घर से 'बेह'[८१] लाने की प्रथा भी होती थी। विवाह के लिये मण्डप का निर्माण होता था, जिसे रंग-बिरंगी ध्वजाओं, पताकाओं रेशमी चादरों आदि से सजाया जाता था, और इसके स्तम्भो की पूजा की जाती थी।[८२]

वर के लिये वधू–पक्ष से कपड़े भेजने की प्रथा थी। दूल्हा कपड़ों को पहन-कर विवाह के लिये आता था। विवाह के दिन सायकाल को वर विशेष साज-सज्जा के साथ बारात लेकर वधू के घर जाता था। बारात में खूब धूमधाम से बाजे बजाने एवं आतिशबाज़ी चलाने की प्रथा थी। वधू के द्वार पर तोरण तोड़ने[८३] के उपरान्त वह प्रवेश करता था। पुरोहित उसकी आरती करता व तिलक लगाता था। दूल्हे का उचित आदर व सत्कार किया जाता था। रात्रि में शुभ-लग्न देखकर विवाह होता था। विवाह में 'गठजोग'[८४] 'हथलेवा'[८५] आगोलीया[८६]

की कड़ी व जायफल बँधे रहते थे 'कंकन–डोरा' कहलाता था।

७८. 'पीठी' में आटा, मेंहदी, सरसों का तेल, जौ, कपूरकाचरी, अगर, धूप, गुलाब तथा केवड़ा आदि सुगन्धित पदार्थ होते थे।

७९. ब्यावरी बही नं. १, १८, व २०।

८०. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी व चामुण्डा नामक सात देवियाँ मातृ-काएँ कहलातीं है। सूरजकुँवर के विवाह के समय पहले उनकी सादी मूर्तियाँ स्थापित की गईं थी; परन्तु जब पुरोहित ने चाँदी की मूर्तियाँ स्थापित करने के लिये कहा, तब चाँदी की मूर्तियाँ स्थापित कीं गईं। अतः इनकी संख्या दुगुनी हो गई थी (ब्यावरी–बही न. १, २३)।

८१. 'बेह' का तात्पर्य छोटी-छोटी नौ या ग्यारह लकड़ियों से होता था जिन पर तलवार खड्ग या कटार बने होते थे।

८२. ब्यावरी बही नं. १, २३ से २५ व २८।
सूरजकुँवर के विवाह के लिये अत्यन्त सुन्दर मण्डप बनाया गया था जिसका विस्तृत वर्णन ब्यावरी बही में है।

८३. जब दूल्हा मुख्य द्वार पहुँचता है तो एक छोटी-सी बरछी से द्वार खटखटाता है। इसी प्रथा को तोरण तोड़ना कहा जाता था।

८४. विवाह में वर-वधू के वस्त्रों को परस्पर बांधने की रस्म को 'गठजोग' कहा जाता था।

८५. वर-वधू का हाथ एक दूसरे के हाथ पर रखना 'हथलेवा' कहलाता था।

८६. 'आगोलिया' वह प्रथा थी जिसमें वर-वधू को ध्रुव-तारा के दर्शन कराये जाते थे।

तथा 'कुँवर-कलेवा'[८७] प्रमुख रस्में हुआ करती थीं। तदुपरान्त वर-वधू को विदा कराकर लाता था। ससुराल में कन्या का स्वागत उसकी ननद आरती उतारकर करती थी।[८८]

समाज के उच्च वर्ग में बहु-विवाह की प्रथा थी। राजाओं की अनेक रानियाँ और उपपत्नियाँ हुआ करतीं थीं।[८९] राजपूत अपने वंश की लड़की से विवाह नहीं किया करते थे।[९०] दहेज-प्रथा[९१] तथा सती-प्रथा[९२] का प्रचलन समाज में था। सम्भवतः पर्दा-प्रथा[९३] भी समाज में विद्यमान थी।

सिंहासनारोहण के अवसर पर भी विभिन्न रीति-रिवाजों का प्रचलन था। शासक की मृत्यु के तेरहवें दिन नये शासक का सिंहासनारोहण होता था। निश्चित दिन से एक दिन पूर्व होने वाले राजा को व्रत रखना पड़ता था। अगले दिन नगर के मुख्य ब्राह्मण क़िले में एकत्र होते थे। राजा गंगा, यमुना एवं पुष्कर के जल से स्नान करता था। तत्पश्चात् गणेश शिव, विष्णु, एवं ब्रह्मा आदि देवताओं की शस्त्रों तथा राजकीय चिह्नों—छत्र, ध्वजा आदि की पूजा होती थी। तदुपरान्त राजा सिंहासन पर बैठता था, जिसे 'शृङ्गार-चौकी' कहा जाता था। सोजत पर-गने में स्थित बगड़ी नामक स्थान का सरदार उसे टीका करता और तलवार बाँधता था[९४] तथा राजपुरोहित उसे तिलक करके आशीर्वाद देता था। इसके उपरान्त राजा वहाँ से उठकर 'दौलतख़ाना' में चला जाता था, जहाँ सभी सामन्त उसे नज़र देते थे। सिंहासनारोहण अथवा अन्य किसी अवसर पर जब राजा को भेंट दी जाती थी तो चांपावत सरदार ही सर्वप्रथम भेंट देता था। चांपावत राठौड़ों के इस विशेषा-

---

८७. विवाह के दूसरे दिन प्रातःकाल दूल्हे को कराया जाने वाला भोजन कुँवर-कलेवा कहलाता था।

८८. ब्यावरी बही नं. १, २८ व ३२-५।
विवाह का विवरण सूरजकुँवर तथा जयसिंह के विवाह पर आधारित है। अतः यह रीतियाँ प्रमुखतया राजघराने की हैं। परन्तु अनुमानतः थाड़े बहुत अन्तर के साथ यही प्रथाएँ अन्य वर्गों में भी प्रचलित रही होंगी। राजस्थानी विवाह मे आज भी लगभग यही रीति-रिवाज प्रचलित है।

८९. महाराजा अजीतसिंह के १८ रानियाँ व ४ उपपत्नियाँ थी (पीछे देखिये पृ० ३५४-६)।

९० टॉड भाग १, १३२।

९१. अजीतसिंह ने सूरजकुँवर को दहेज दिया था। (ब्याव री बही नं. १, ४९)

९२. जसवन्तसिंह तथा अजीतसिंह की मृत्यु के बाद उनकी कई रानियाँ व उपपत्नियाँ सती हुईं थीं (पीछे देखिये पृ. १७, ३३ व ३५४)।

९३. सूरजकुँवर के विवाह के अवसर पर जब जयसिंह बरात लेकर आया था तो सास स्वयं बाहर नहीं आई थी; राजपुरोहित ने उसकी ओर से आरती की थी। (ब्याव री बही नं १, ३०)

९४. राव जोधा ने जब वि. सं. १५१० में मेवाड़ की सेना को हटाकर मण्डोर पर अधिकार किया, तो उसके बड़े भाई अखेराज ने अपने अंगूठे को चीरकर उसके रक्त से राव जोधा को राजतिलक किया। अखेराज की जागीर बगड़ी थी जो उस समय मेवाड़ वालों के अधिकार में थी। राव जोधा ने उस पर विजय करके उसे अपने भाई को सौंपा। इसी समय से यह प्रथा चली कि राजा के मरने पर बगड़ी जब्त करने की आज्ञा दी जाती थी। नये राजा को बगड़ी का ठाकुर अंगूठे को चीर कर रुधिर से राजतिलक करता था, तत्पश्चात् आज्ञा वापिस ले ली जाती थी (रेउ भाग १, ८७-८)।

धिकार का प्रारम्भ अजीतसिंह के समय में ही हुआ था। चांपावत मुकुन्ददास द्वारा महाराजा के बाल्यकाल में की गई सेवा के बदले में उन्हें यह विशेषाधिकार मिला था।[६५]

प्रत्येक शुभ अवसर पर नौबत बजाई जाती थी। साधारण दिनों में जोधपुर नगर में प्रतिदिन चार बार नौबत बजाने की रीति थी। किसी उच्चाधिकारी की मृत्यु हो जाने पर राजा मृतक की स्थिति के अनुसार एक अथवा अधिक बार नौबत बन्द करवा कर उसे सम्मान दिया करता था।[६६] नौबत की भाँति 'बडबेहरा' का प्रयोग भी शुभ अवसरों पर किया जाता था, और इसे मांगलिक समझा जाता था। यह अनेक छेदों वाला मिट्टी का घड़ा होता था जिसमें दीपक जलाया जाता था और अन्य मांगलिक वस्तुएँ रक्खी जातीं थीं।[६७]

मारवाड़ के स्त्री–पुरुषों का पहनावा बड़ा आकर्षक था। स्त्रियाँ अधिकतर ऊद्र्ध्व भाग के लिये काचली एवं कुरता का तथा निम्न भाग के लिये घाघरा का प्रयोग करतीं थीं। इसके ऊपर से दुपट्टा ओढ़ा जाता था। साड़ी का भी उस समय प्रचलन था। उनके कपड़ों में जाली, ज़री व गोटे आदि का काम होता था। इसके साथ ही बूटीदार तथा मोठड़ीदार (जिसमे गोल-गोल ठप्पे छपे होते थे,) कपड़े भी होते थे। पुरुष अधिकतर पाग, बालाबन्दी (एक प्रकार का कुरता); सूथन, पोतीयों (साफ़ा) व गोसपेच (कंधे पर रखने का वस्त्र) पहना करते थे। राजा लोग 'वागा' नामक एक वस्त्र पहनते थे जो ऊपर से नीचे तक हुआ करता था। ये लोग पगड़ी में सिरपेच व कलँगी लगाते थे। उच्च-वर्ग के वस्त्र रेशमी तथा मूल्यवान हुआ करते थे। कमख्वाब (कीनखाप), मखमल, तास (अत्यन्त बरीक वस्त्र) तथा इलायचौ (यह भी एक बहुमूल्य वस्त्र था) उस समय के कीमती वस्त्र थे। बनारसी साड़ी का भी उल्लेख मिलता है। साधारण जनता किन वस्त्रों का प्रयोग करती थी, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु निश्चय ही उनके वस्त्र कम मूल्य के रहते होंगे।[६८]

स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण-प्रिय थे। पुरुष गले में माला तथा बाहों में पहुँची पहना करते थे।[६९] स्त्रियाँ बहुत से गहने पहनती थीं। अणवट (पैर के अंगूठे में पहनने का छल्ला) बिछिया, नथ, सीसफूल, बाजूबन्द, कड़ा, दुगदुगी (गले में पहनने का एक गहना), चौलड़ी माला, वैणा (माथे की वीणा) हथफूल, कमरबन्द,

---

६५. गैजेटियर ऑव् मारवाड़ एण्ड मलानी, २७–८।

६६. चांपावत भगवानदास की मृत्यु पर अजीतसिंह ने दिन में दो बार नौबत बन्द करने का आदेश दिया था (ख्यात-भाग २, १६४)।

६७. ब्याव री बही नं. १, २२।

६८. ब्याव री बही नं. १, २२, २८, ३३-४ व ५२-३।

६९. ब्याव री बही नं. १, २२ व ५२।

टीका, रीमझेल (पायल), कंगरा वीन्टी (अंगूठी) आदि प्रचलित आभूषण थे। आभूषण सोने व चांदी दोनों के बनते थे, और मोती, हीरा, मानिक, मूँगा, गोमेदक, नीलम, पन्ना, फ़ीरोज़ा, आदि नगों का प्रयोग किया जाता था।[१००]

राजपरिवारों में सोने-चाँदी के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था। साधारण जनता के बर्तनों के विषय में कोइ उल्लेख नहीं मिलता। थाल, कटोरी, झारी, चलनी, पानदान, कलस, चकला, बेलन, कड़छी, आदि सभी दिन-प्रतिदिन के प्रयोग के बर्तनों का उल्लेख मिलता हैं।[१०१]

जोधपुर में गेहूँ, चावल, बेसन, मूँग, मैदा व मोठ लगभग सभी खाद्यान्नों का प्रयोग होता था। घृत एवं गुड़ व खाँड़ का भी प्रचलन था। जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग आदि मसालों से भी यहाँ के निवासियों का परिचय था। विवाह आदि अवसरों पर घुघरी, चूरमा, लड्डू, जलेबी, छुहारों की खीर आदि मिष्ठान बनाये जाते थे। लापसी जोधपुर का शुभ भोज्य पदार्थ माना जाता था और प्रत्येक शुभ अवसर पर लापसी अवश्य बनती थी। बादाम, पिस्ता, किशमिश आदि मेवों तथा केला, आम, अनार आदि फलों का प्रचलन था। समाज में पान खाने की प्रथा भी प्रचलित थी।[१०२] यह कहना कठिन है कि जनसाधारण किस प्रकार का भोजन करते थे।

राज्य में राजा की वर्ष-गाँठ अत्यन्त धूमधाम से मनाई जाती थी। इस दिन नगर के निवासी तथा राज्य के सरदार सभी खुशी मनाते थे। राजा अपने जन्म के दिन नागणेची जी की पूजा करके भेंट करता था। इस दिन विधिवत् दरबार लगाया जाता था और सभी सरदार राजा को नज़र व निछावर करते थे। रनिवास में भी इस उत्सव को धूमधाम से मनाया जाता था। सर्वप्रथम पटरानी गुड़, नारियल, मिश्री, मेवा, बादाम, किशमिश, पिस्ता तथा मिठाई आदि महल के सभी व्यक्तियों को बँटवाती थी, और फिर अन्य रानियों द्वारा मिठाई बाँटी जाती थी।[१०३]

आजकल की भाँति दशहरा, दीवाली, राखी, आखातीज व होली उस समय के प्रमुख त्यौहार थे। राजा इन अवसरों को खूब धूमधाम से मनाता था। राखी के अतिरिक्त चारों अवसरों पर राजा सामन्तों को दावत देता था, जिसमें राजा व सामन्त एक साथ बैठकर भोजन करते थे। भोज में सभी सरदार अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार निश्चित स्थान पर बैठा करते थे, और उन्हें अलग-अलग थाल परोसा जाता था। सर्वप्रथम लापसी परोसने की प्रथा थी।[१०४]

---

१००. व्याव री बही नं. १, ३८ व ५०-१।

१०१. व्याव री बही नं. १, ५१-२।

१०२. व्याव री बही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर इन वस्तुओं का उल्लेख मिलत

१०३. दस्तूर, २३।

१०४. दस्तूर, २३-४ व २८।

दीवाली के दिन जनाना दरबार भी लगता था। इस त्योहार में राजा दो दिन (दीवाली तथा उसके अगले दिन) भोज देता था। इस दिन दो सामन्त सर्वप्रथम दीप जलाकर राजा को नज़र करते थे, और उन्हें यथोचित इनाम दिया जाता था। दशहरा के अवसर पर भी नवमी व दशमी दो दिन सम्मिलित भोज होता था। इसमें नौरात्र की स्थापना की जाती थी, और इन दिनों माता के मन्दिरों में धूम-धाम से पूजन होता था। जोधपुर के क़िले में स्थित चामुण्डा जी के मन्दिर में यज्ञ, पूजन व बलिदान किया जाता था। नवमी के दिन विशेष पूजन होता था जिसमें राजा स्वयं हाथी, घोड़ा, शस्त्र, नगाड़ा, निशान व माही भरातिब की पूजा करता था। उसकी अनुपस्थिति में राजपुरोहित यह कार्य करता था। दशहरे के दिन नगर में राजा की सवारी निकाली जाती थी।[१०५] राखी के अवसर पर दरबार में क़ुर्ब दिये जाते थे तथा राजा को नज़र व निछावर होती थी। इस दिन जनाना दरबार भी होता था।[१०६]

त्यौहारों के अतिरिक्त जुआ मनोरंजन का एक अन्य साधन था। राजा लोग शिकार के भी शौकीन थे। शिकार राजपूताने में बहुत पहले से खेला जाता था, परन्तु मनोरंजन के लिये शिकार खेलना राजाओं ने सम्भवतः मुग़ल प्रभाव से ही आरम्भ किया था। शिकार में उनके सामन्त भी साथ जाया करते थे।[१०७]

आर्थिक स्थिति :—

जोधपुर में अधिकांश जनता खेती करके ही अपना जीविकोपार्जन करती थी। स्त्री-पुरुष व बच्चे सभी सम्मिलित रूप से खेतों में कार्य करते थे। गाँव के अन्य पेशे के लोग भी इन्हें अपनी सेवा प्रदान करके सहायता करते थे।

राज्य में पाँच प्रकार की भूमि हुआ करती थी। राजा की निजी भूमि को 'खालसा' कहा जाता था। वह इस भूमि को पट्टे पर दे दिया करता था। जबतक ये पट्टेदार भूमिकर देते रहते थे, भूमि पर उनका स्वामित्व बना रहता था। इस भूमि को गिरवी रखने, बेचने अथवा ठेके पर देने का उन्हे पूर्ण अधिकार था। राजा अपने सामन्तों को जो भूमि उनकी सेवा के बदले में दिया करता था, वह 'जागीर' कहलाती थी। सामन्त इसके लिये राजा को रेख (वार्षिक कर तथा चाकरी (सैनिक सहायता) दिया करता था। यह भूमि वंशानुगत होती थी, और जागीरदार के मरने पर उसका उत्तराधिकारी राजा को नज़राना देकर पुनः भूमि अधिकार प्राप्त कर लेता था। तृतीय प्रकार की भूमि 'भूम' कहलाती थी, और इसके स्वामी को 'भूमिया' कहा जाता था। ये लोग गाँव, सड़कों एवं कोश की सुरक्षा का

---

१०५. दस्तूर. २८।

१०६. दस्तूर. २३ व २४।
गैज़ेटियर ऑव् मारवाड़ एण्ड मलानी (२७) में भी लिखा है कि राजा वर्ष में प्रमुख छः दरबार करता था—वर्ष गाठ, दशहरा, दीवाली, राखी, आखातीज व होली।

१०७. टॉड भाग १, १५४।

ध्यान रक्खा करते थे। इनको भूमि के लिये थोड़ा-सा कर देना पड़ता था। जबतक ये अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे, इनका भूमि पर अधिकार बना रहता था; परन्तु ये भूमि को बेच नहीं सकते थे। 'सासण' अथवा 'मुआफी' वह भूमि थी जो राजा ब्राह्मण, गोसाईं, भाट व चारण आदि को दान में देता था। इन व्यक्तियों का अपनी भूमि पर वंशानुगत अधिकार होता था, परन्तु वे भूमिया की भाँति उसे बेच नहीं सकते थे। अन्तिम प्रकार की भूमि 'चारनोत' कहलाती थी। यह गाँव की सामूहिक चरागाह हुआ करती थी।

१७वीं १८वीं शताब्दी में भूमि का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया जाता था। इसे पिवाला, तलाई, कनकदा, गुलातहन्स, विडा, नादी, माला, मगरो, वाडी आदि नामों से पुकारा जाता था। यह नाम अधिकतर भूमि की स्थिति अथवा प्रयोग के अनुसार होते थे। उदाहरणार्थ, नदी के निकट की भूमि को नादी तथा बागों के लिये प्रयुक्त भूमि को वाडी कहा जाता था। भूमि के टुकड़ों को 'कतका' या 'बतका' तथा इनसे छोटे विभागों को 'क्यारी' के नाम से पुकारा जाता था। फ़सल पकने पर उसकी विशेष रूप से 'रखवाली' की जाती थी।

खेती के लिये हल, कुदाल, फावड़ा का प्रयोग होता था। हल को बैल खींचते थे। सिंचाई के लिये कुएँ व तालाबों से निकाली गई छोटी-छोटी नहरें हुआ करती थीं। जोधपुर में सियालू (रबी) तथा उन्हालू (ख़रीफ़) दोनों फ़सलें उत्पन्न की जातीं थीं। बाजरा, मूँग, चना, कपास, गेहूँ, यहाँ की मुख्य उपज की वस्तुएं थीं।[१०८]

खेती के अतिरिक्त विभिन्न अन्य कार्य भी लोग किया करते थे। महाजन, बढ़ई, भिश्ती, सिलवट, कुम्हार, ओझा, पंडित, भाट, पुरोहित, जोशी, वैदिया, नाई आदि अन्य विभिन्न पेशेवर लोग थे।[१०९]

गाँवों में सम्भवतः परस्पर वस्तुओं के लेन-देन की ही प्रथा थी। परन्तु बड़े क्षेत्रों में नक़द सिक्के देकर वस्तुएं ख़रीदी जातीं थीं। इसके लिए जोधपुर में रुपये व टकों का प्रयोग किया जाता था। किसी वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई 'हाथ' व अंगुल में नापी जाती थी।[११०]

उस काल में ज़रीदार बढ़िया साड़ी का मूल्य चौरानवे रुपये के लगभग तथा घाघरे का मूल्य चौरासी रुपये के लगभग था। ज़रीदार दुपट्टा उनहत्तर रुपये के लगभग तथा बढ़िया काँचली अठारह रुपये के लगभग मिलती थी। आभूषणों में

---

१०८. डॉ. गोपीनाथ शर्मा—एग्रीकल्चर इन मिडीवल राजस्थान।

१०९. इन सब का उल्लेख व्याव री बही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर मिलता है।

११०. रुपये व टके का उल्लेख व्याव री बही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर मिलता है। सूरजकुँवर के विवाह के लिये जो मण्डप बनाये गये थे उनके स्तम्भादि हाथ व अंगुल में नापे गये हैं।

कीमती जड़ाऊ वैणा दो सौ इक्यावन रुपये के लगभग मिलता था। जड़ाऊ सीसफूल तीस रुपये नवसेरी हार एक हजार पांच सौ रुपये, दुगदुगी एक सौ पच्चीस रुपये, अणावट तीन सौ रुपये तथा बिछिया पचहत्तर रुपये के लगभग मिला करते थे। हीरे की अंगूठी दो सौ पचास रुपये तथा पन्ने की पचास रुपये के लगभग मिल जाती थी। राजाओं की बढ़िया पाग का मूल्य एक सौ बीस रुपये, साफ़े का पचहत्तर रुपये बालाबन्दी का पचास रुपये तथा गोसपेच का आठ रुपये के लगभग था।[१११]

पालकी, हाथी व घोड़ा यातायात के प्रमुख साधन थे। शीघ्र संदेश भेजने के लिये सांड़नी का प्रयोग भी किया जाता था।

जोधपुर में उद्योग-धन्धों के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस दृष्टि से यह राज्य पिछड़ा हुआ था। सम्भवतः यही कारण है कि आज भी जोधपुर विशेष उद्योगशील प्रदेश नहीं है। इसलिये आर्थिक दृष्टि से इसे सम्पन्न राज्य नहीं कहा जा सकता।

---

१११. ब्याव री बही ११-४, ६८, ५९।

परिशिष्ट 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि व स्थान

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु किस तिथि को और किस स्थान पर हुई इस विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। फ़ारसी इतिहासकारों में ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७३ ब); भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा. भाग १, १६४); ख़फ़ी ख़ाँ (मुन्तख़ब-उल-लुबाब, भाग २, २५६); तथा शाहनवाज ख़ाँ (मश्रासिर, हिन्दी भाग १, १७४) ने केवल इतना लिखा है कि यह दुर्घटना १०८६ हि० (सन् १६७८-६ ई०) में हुई थी। इस प्रकार राजस्थानी इतिहासकार सूर्य्यमल्ल मिश्रण (वंश. भाग ४, २६४३-४) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि सवत् १७३२ (सन् १६८२-३ ई०) तथा अंग्रेज़ी इतिहासकार कर्नल टॉड (भाग २,४०) ने संवत् १७३७ (सन् १६८०-१ ई०) निर्धारित की है। परन्तु इनमें से कोई भी इतिहासकार निश्चित तिथि नहीं देता, अतः समस्या का समाधान नहीं होता।

इस दुर्घटना की निश्चित तिथि का उल्लेख करने वाले इतिहासकारों में से मनूची (भाग ३,२३३ टि०) एवं फ्रायर (१६०-१) ने इसे १८ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० की बताया है। परन्तु विदेशी यात्रियों का विवरण सुनी-सुनाई बातों पर अधिक निर्भर होने के कारण इन पर निर्भर रहना उचित नहीं है। रेउ (प्राचीन राजवंश २०५) तथा गहलोत (मारवाड़ १५६) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि ७ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० निर्धारित की है परन्तु समकालीन इतिहासकारों के समर्थन के अभाव में इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

औरंगजेब के समय के राजकीय इतिहासकार साक़ी मुस्ताद ख़ाँ (मश्रासीर १०६) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि ६ ज़िल्क़ाद, १०८६ हि० (१० दिसम्बर, सन् १६७८ ई०) स्वीकार की है। परवर्ती इतिहासकार कामवर (१६२) ने भी इसी तिथि को मान्यता दी है। देवीप्रसाद (औरंगजेबनामा. ७६) ने ६ ज़िल्क़ाद (११ दिसम्बर=पौष सुदि ८) का उल्लेख किया है। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब, भाग ३,३२५); डॉ० रघुबीरसिंह (पूर्व. १३२); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) आदि ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। परन्तु समकालीन राजस्थानी इतिहासकार पंचोली (२४-अ व १५४-अ) तथा वीरभाण (राजरूपक १७) ने स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि बृहस्पतिवार, पौष बदि १०, संवत् १७३५ (२८ नवम्बर, सन् १६७८ ई०) को जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई थी। कविराजा श्यामलदास (वीर-भाग २, ८२७) ने भी इसी तिथि का उल्लेख किया है। जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग १,२५६; भाग २,१); मूंदियाड़ की ख्यात (१७४); फ़ौजचन्द री तवारीख़ (१); बांकीदास री ख्यात (३३); कविराजा मुरारीदान री ख्यात. (६६३); जोधपुर रै राठोड़ा री ख्यात (६-ब) आदि लगभग सभी ख्यातों में इसी तिथि की पुष्टि की गई

है। आधुनिक इतिहासकारों में रेउ.(भाग १,२४१) तथा ओझा (भाग ४, खंड १, ४६७) ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। जन्म, मृत्यु, विवाह, सन्तानोत्पत्ति आदि पारिवारिक घटनाओं के लिये राजस्थानी ग्रन्थों विशेषकर ख्यातों की विशेष मान्यता होने के कारण २८ नवम्बर को ही जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि स्वीकार करना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। सम्भव है साक़ी मुस्ताद ख़ाँ द्वारा लिखी गई तिथि (१० दिसम्बर) वह तिथि हो जिस दिन यह समाचार दरबार में पहुँचा।

जसवन्तसिंह की मृत्यु किस स्थान पर हुई इस सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में मतभेद हैं। फ़ारसी इतिहासकारों में से साक़ी मुस्ताद ख़ाँ (मआसीर १०६) ने पेशावर से समाचार प्राप्ति का उल्लेख किया है, परन्तु मृत्यु-स्थान का कोई उल्लेख नहीं किया है। ख़फ़ी ख़ाँ तथा शाहनवाज ख़ाँ ने भी मृत्यु-स्थान का सुस्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।

वंशभास्कर (भाग ४, २९४३) तथा उमराए-हनूद (९८) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु काबुल में हुई थी। भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा. भाग १, १६४) ने इस घटना का काबुल के निकट घटित होना स्वीकार किया है। परन्तु इस मत को स्वीकार करना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि जसवन्तसिंह को २१ मई, सन् १६७१ ई. में जमरूद की थानेदारी पर नियुक्त किया गया था। यहाँ से जसवन्तसिंह १४ जून, सन् १६७४ ई. को औरंगज़ेब से मिलने रावलपिण्डी गया था और फिर शाही आज्ञानुसार जमरूद वापस आ गया था। इसके उपरान्त वह कभी काबुल की ओर गया हो, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता। वह अपने क्षेत्र की सुव्यवस्था एवं सुरक्षा में ही व्यस्त रहा। (मुस्ताद ख़ाँ ६७ व ८२; जसवन्तसिंह १३६ व १४१ - २) अतः उसकी मृत्यु अपने नियुक्ति-क्षेत्र में ही हुई होगी।

फ़ारसी के महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थों में केवल फ़ुतूहात–ए–आलमगीरी (७३ ब) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु जमरूद में हुई थी। चूँकि जसवन्तसिंह को बादशाह ने अन्तिम बार जमरूद की थानेदारी पर नियुक्त किया था, अतः सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३, ३२५) ने भी इसी स्थान पर जसवन्तसिंह की मृत्यु होना स्वीकार किया है। ओझा (भाग ४, खण्ड २, ४६७); रेउ (भाग १, २४१); डॉ० रघुवीरसिंह (पूर्व. १४१); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) आदि लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु जमरूद में हुई थी। पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ (१५४ अ); जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, १९); मूंदियाड़ की ख्यात (१७४) तथा अजितोदय (सर्ग ४, श्लोक २९) आदि राजस्थानी आधार-ग्रन्थों में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु पेशावर में हुई थी। इतना ही नहीं, पंचोली ने इसका पूर्ण विवरण देते हुए यह भी लिखा है कि महाराजा* का स्वर्गवास पूर्णमल बुन्देला के बाग में स्थित हवेली में हुआ था।

वास्तव में जमरूद की थानेदारी के साथ ही जसवन्तसिंह पेशावर ज़िले की देख-रेख भी कर रहा था। चूँकि जमरूद केवल एक सैनिक चौकी थी, अतः वहाँ रनिवास को रखने की सुविधा नहीं थी। इसलिये स्पष्टतया उसका प्रधान कार्यस्थल पेशावर में ही रहा होगा। उसकी रानियाँ तथा अन्य लोग पूर्णमल बुन्देला के बाग़ की हवेली में ही रहते थे। चूँकि जमरूद और पेशावर के बीच की दूरी अधिक नहीं है (वर्तमान सड़क से दूरी १६ मील है); अतः स्वाभाविक है कि जसवन्तसिंह का जमरूद से पेशावर आना-जाना लगा रहता होगा। इसके अतिरिक्त उसके एकमात्र जीवित पुत्र जगतसिंह की मृत्यु २२ फ़रवरी, सन् १६७६ ई. को हुई थी। इस घटना से उसे अत्यधिक दुःख हुआ और धीरे-धीरे उसकी मनः-स्थिति का असर उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ने लगा (जसवन्तसिंह १४२ – ३)। दूसरी ओर काबुल के नये सूबेदार अमीर ख़ाँ ने जून, सन् १६७८ ई. में वहाँ पहुँचकर अफ़ग़ानों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे, फलतः उत्तर-पश्चिमी सीमा में शान्ति स्थापित हो गई थी (सरकार भाग ३, २४४)। इस स्थिति में स्वाभाविक है कि जसवन्तसिंह जमरूद की अपेक्षा पेशावर में अधिक रहता होगा।

पंचोली हस्तलिखित-ग्रन्थ (१६२ ब) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, ६) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जमरूद की देख-भाल जसवन्तसिंह की ओर से पंचोली हरराय कर रहा था। जब उसे महाराजा की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने सैनिकों सहित जमरूद से पेशावर के लिये प्रस्थान किया और वहाँ ६ जनवरी, सन् १६७६ ई. (माघ सुदी ८) को पहुँचा। इन्हीं दोनों ग्रन्थों में यह उल्लेख भी मिलता है कि इस दुर्घटना का समाचार पाकर काबुल का सूबेदार अमीर ख़ाँ काबुल से पेशावर आया था। जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद की यह दोनों घटनाएँ स्पष्ट रूप से संकेत करती हैं कि महाराजा की मृत्यु पेशावर में हुई थी।

इस प्रकार यह स्वीकार करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है कि महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु बृहस्पतिवार, २८ नवम्बर को पेशावर में हुई थी।

परिशिष्ट 'ख'

महाराजा अजीतसिंह के जन्म की तिथि एवं जन्म से सम्बन्धित दन्तकथा

महाराजा अजीतसिंह के जन्म की तिथि के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। फ़ारसी इतिहासकारों में मुस्ताद ख़ाँ (मआसीर. १०७) : ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात. ७३ ब) तथा शाहनवाज़ ख़ाँ (मआसिर. १७३) ने अजीतसिंह के जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं किया है। आधुनिक इतिहासकारों में मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए ६८) तथा टॉड (भाग २, ४४) ने भी उसकी जन्म-तिथि पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब, भाग ३, ३२६) ने लिखा है कि अजीतसिंह का जन्म फ़रवरी, सन् १६७६ ई० में हुआ था ; परन्तु निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं किया।

राजस्थानी ग्रन्थों में से अभय-विलास (६ ब); गुटका (३०६ अ) बाँकीदास री ख्यात (३३) व कविराजा मुरारीदान री ख्यात (६६४) में इस घटना के लिए २० फरवरी, सन् १६७६ ई० (चैत्र बदि ५, सवत् १७३६) को स्वीकार किया गया है। परन्तु ये ग्रंथ कुछ समय बाद के हैं। पंचोली (१६८ अ) ; राजरूपक (२६) ; अजितोदय (सर्ग ६ श्लोक १-१०) व अजित चरित्र (सर्ग ७, श्लोक ६) आदि समकालीन ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह का जन्म १६ फ़रवरी, सन् १६७६ ई० (चैत्रबदि ४, सवत् १७३६) को हुआ था। ख्यात. (भाग २, १ व १६); जुनी. (६१-२); मूंदियाड़. (१७४) ; दानेश्वर. (१७२ व १८६) ; फ़ौजचन्द (१) ; अजितविलास. (२०८ ब) ; वीर (भाग २, ८२८) ; राठौड़ा (१) में भी इसी तिथि को स्वीकार किया गया है। रेउ. (भाग १, २४८) ; ओझा. (भाग ४, खण्ड २, ४७८) ; रामकर्ण आसोपा (मूल. १६२) ; फ़ारूक़ी (२११-२) व गहलोत. (मारवाड़ १५६) आदि लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों ने इसी तिथि का समर्थन किया है। अतएव अजीतसिंह के जन्म के लिये १६ फ़रवरी को स्वीकार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

अजीतसिंह का जन्म लाहौर में हुआ था, इस विषय में लगभग सभी समकालीन व आधुनिक इतिहासकार एकमत हैं। केवल सूर्यमल्ल मिश्रण ही एकमात्र ऐसा इतिहासकार है जिसके अनुसार जब बादशाह ने जसवन्तसिंह की नियुक्ति उत्तर-पश्चिमी सीमा पर की थी तो उसके परिवार को दिल्ली में रख लिया था और वहीं पर जसवन्तसिंह की मृत्यु से पूर्व ही अजीतसिंह का जन्म हुआ था। परन्तु यह कथन नितान्त अप्रामाणिक है।

अजीतसिंह की जन्म-कुण्डली इस प्रकार है :—

(मूंदियाड़ २३३; फौजचन्द १; शोध संस्थान चौपासनी से प्राप्त एक पत्र)

अजीतसिंह के जन्म के विषय में एक दन्तकथा प्रचलित है जो लगभग सभी राजस्थानी ख्यातों में पाई जाती है। कहा जाता है कि अलकपन्थी रामपुरी (अथवा हररामपुरी) का एक शिष्य सन्यासी रिषपुरी था, जिसने हिंगुलाज देवी की पाँच वर्ष तक कठिन तपस्या की। देवी ने उस पर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि वह महाराजा जसवन्तसिंह की रानी जादम के गर्भ से उत्पन्न होकर मारवाड़ का राज्य करे। यह संन्यासी १ अगस्त, सन् १६७८ ई. (भाद्रपद बदि ९, संवत् १७३५) को गोरखटीले होते हुये पेशावर पहुँचा। उसने राठौड़ दुर्गादास को बुलाकर उसके द्वारा जसवन्तसिंह को यह सन्देश भेजा कि मैं माता हिंगुलाज की आज्ञा से आपकी रानी की कोख से जन्म लूँगा। आप स्वयं आकर मेरे दर्शन करें तथा समाधि दिलायें। जसवन्तसिंह ने उसे समाधि दिलाने के लिये कुछ व्यक्ति भेज दिये और भोज भी दिया, परन्तु वह स्वयं नहीं गया (खरड़े की ख्यात के अनुसार जसवन्तसिंह इस भय से नहीं आया था कि संसार के व्यक्ति उस पर व्यंग्य करेंगे कि पुत्र की इच्छा से सन्यासियों के पास जाता है।) इस पर संन्यासी ने समाधि लेते समय कहा कि महाराजा ने इतने निकट होते हुए भी मेरे दर्शन नहीं किये हैं, अतः मैं भी जसवन्तसिंह का मुँह नहीं देखूँगा। उसने दुर्गादास को विभूति (भस्म) एवं एक पोथी सौंपी और कहा कि यह मैं तुमसे आठवें वर्ष ले लूँगा। (ख्यात. भाग २, १९; पंचोली. १६८ अ; मूंदियाड़. १७४; अजितविलास २०७ अ; दानेश्वर. १७१-२; बांकीदास. ३५; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात. ६ ब; खरड़े की ख्यात. ३२२; आसोपा. ४३४)।

'जसवन्तसिंह री वार्ता' व 'अजीतसिंह री वार्ता' में इस किंवदन्ती को कुछ भिन्न रूप में वर्णित किया गया है। उसके अनुसार सन्यासी का नाम सुन्दर भारथी था। इसमें हिंगुलाज देवी की आज्ञा का उल्लेख नहीं है। राठौड़ दुर्गादास सन्यासी के दर्शन के लिए आया था। जब सन्यासी को दुर्गादास से पता चला कि समस्त मारवाड़ उत्तराधिकारी न होने के कारण चिन्तित है तो उसके मन में करुणा उत्पन्न हुई और उसने समाधि लेने का निश्चय किया। इस ग्रन्थ के अनुसार जसवन्तसिंह किसी सन्यासी को जीवित समाधि दिलाकर कष्ट नहीं देना चाहता था, इसी कारण उसने सन्यासी के पास आकर समाधि दिलाना स्वीकार नहीं किया था (वार्ता. ३२ अ ब)।

परिशिष्ट 'ग'

राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा का विवरण

(पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ एवं जोधपुर राज्य की ख्यात-आधारित)

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
मंगलवार, १४ जनवरी, सन् १६७६ ई.	आधा कोस	×	×	ख्यात में एक कोस
बुधवार १५ जनवरी	×	,,	काबुल के सूबेदार अमीर खाँ ने राठौड़ों के लिए शराब व अन्य सामग्री भेजी।	
बृहस्पतिवार, १६ जनवरी	पाँच कोस	खांनेदौरां की सराय	जसवन्तसिंह की कुछ सामग्री पर शाही मुहर न लग सकी थी, अतः राठौड़ दुर्गादास, पंचोली हरिकिशन व रघुनाथ यहाँ रुक गए।	
शुक्रवार, १७ जनवरी	नौ कोस	नौशहरा	×	
शनिवार, १८ जनवरी	सात कोस	आँकोड़े	×	ख्यात में स्थान के नाम का उल्लेख नहीं है।
रविवार, १९ जनवरी	×	,,	अटक पार करने के लिए पंचोली जैकरण को नावों के प्रबन्ध के लिए भेजा, उसने स्थानीय दारोगा की सहायता से प्रबन्ध किया, परन्तु उसके द्वारा लाई हुई नावें छोटी व अपर्याप्त थीं।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
सोमवार, २० जनवरी	×	आँकोड़े	राठौड़ संग्रामसिंह व पंचोली आनन्दरूप ने नावों का प्रबन्ध किया ।	
मंगलवार, २१ जनवरी	अटक पार किया	अटक पार पड़ाव	अटक का फ़ौजदार राठौड़ सरदारों से मिलने आया ।	
बुधवार, २२ जनवरी	×	,,	सांहणी जोगीदास को जोधपुर भेजा गया और वहाँ के राठौड़ सरदारों को शाही विरोध न करने का संदेश भेजा गया ।	
बृहस्पति-वार, २३ जनवरी	×	,,	×	इस तिथि के विषय में पंचोली व ख्यात दोनों शांत हैं । पंचोली में २४ जनवरी दोबार दी गई है । संभवतः प्रथम उल्लेख २३ जनवरी का है । इस मतानुसार वर्षा के कारण इस दिन यात्रा न हो सकी थी ।
शुक्रवार, २४ जनवरी	चार कोस	मधुरोटै	×	
शनिवार, २५ जनवरी	चार कोस	झींगरा रै नाले सराय	×	
रविवार, २६ जनवरी	पाँच कोस	हसन अब्दाल	(i) रोहितासगढ़ के फ़ौजदार को हस्बुलहुक्म आया कि वह राठौड़	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
			सूरजमल को लेकर आगे आ जाय। उसके स्थान पर पेशावर में उपस्थित अजमेरी खाँ राठौड़ों को लेकर दिल्ली आयेगा। (ii) जोधपुर से राघोदास लौटकर आया और उसने वहाँ रानी चन्द्रावत और .बीस उपस्त्रियों के सती होने का समाचार दिया एवं जोधपुर राज्य में स्थान-स्थान पर होने वाले उपद्रवों का विवरण दिया। (iii) राजगुरु पुरोहित (गांगजै) कल्याणदास कायस्थ, पंचोली जयसिंह साइलोत, राठौड़ सादूलोत गहलोत को जसवन्तसिंह की अस्थियाँ प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार भेजा गया।	
सोमवार, २७ जनवरी	सात कोस	खरबूजा की सराय	मार्ग में कालापाणी पार किया था।	
मंगलवार, २८ जनवरी	×	,,	नवाज बेग अप्रसन्न होकर कालापाणी पर ही रुक गया। उसे मनाने के लिए पंचोली जयकरण को भेजा गया, परन्तु वह असफल रहा।	
बुधवार, २९ जनवरी	×	,,	राठौड़ संग्रामसिंह नवाज बेग को मनाकर लाया।	
बृहस्पतिवार, ३० जनवरी	सात कोस	रावलपिण्डी	×	ख्यात में इस स्थान का नाम पालड़ी लिखा है।

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
शुक्रवार, ३१ जनवरी	×	तूटी व रेवात की सराय	×	×
शनिवार, १ फ़रवरी	आठ कोस	पके की सराय	×	पंचोली मे इस मुक़ाम का उल्लेख नही है।
रविवार, २ फ़रवरी	आठ कोस	गाखड के तालाब	बादशाही फरमान आया, जिसमे राठौडों को पुन सांत्वना दी गई थी।	ख्यात मे तालाब का नाम नहीं लिखा गया है।
सोमवार, ३ फ़रवरी	नौ कोस	रोहितास गढ़	राठौड़ दुर्गादास व रघुनाथ आ पहुँचे।	
मंगलवार व बुधवार, ४ ५ फ़रवरी	×	,,	वर्षा के कारण यात्रा स्थगित रही। इसी बीच रेबा[illegible] राघो गोरखटीले से प्रसाद लेकर लौटा।	
बृहस्पतिवार, ६ फ़रवरी	छः कोस	बेहत नदी पार की	×	
शुक्रवार, ७ फ़रवरी	×	खारिये की सराय	×	
शनिवार, ८ फ़रवरी	×	,,	वर्षा के कारण यात्रा न हो सकी।	
रविवार, ९ फ़रवरी	दस कोस	दोला री गुजरात	×	
सोमवार, १० फ़रवरी	×	,	×	
मंगलवार, ११ फ़रवरी	पाँच कोस	वज़ीराबाद	चेनाब नदी पार की।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
बुधवार, १२ फ़रवरी	सात कोस	तलोड़ी	×	
बृहस्पतिवार, १३ फरवरी	दस कोस	एमिनाबाद	×	ख्यात में स्थान का नाम नहीं दिया है।
शुक्रवार, १४ फ़रवरी	नौ कोस	नबी की सराय	जोधपुर से एक दूत आया, जिसने सैयद अब्दुल्ला खां के जोधपुर किला देखने तथा जोधपुर पर शाही अधिकार हो जाने की सूचना दी।	
शनिवार, १५ फ़रवरी	आठ कोस	रावी नदी पार करके लाहौर हवेली	×	
रविवार, १६ फ़रवरी	×	,,	होली का त्यौहार मनाया गया।	
बुधवार, १९ फ़रवरी	×	,,	अजीतसिंह व दलथम्भन का जन्म।	
बृहस्पतिवार, २० फ़रवरी	×	,,	जोधपुर के राठौड़ों बादशाह, अमीर खां तथा रामसिंह के पास राजकुमारों के जन्म का समाचार भेजना और विभिन्न शाही अधिकारियों को भेंट भेजना।	
२० फ़रवरी से २७ फ़रवरी	×	,,	राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में विभिन्न व्यक्तियों की ओर से दावतें दी गईं।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
२८ फ़रवरी	×	,,	'दसठौन' का उत्सव मनाया गया।	
शुक्रवार, २८ फ़रवरी	आधा कोस	रूतीवाध	×	ख्यात में इस स्थान का नाम ततीवाध लिखा है।
शनिवार, १ मार्च	×	,,	'दसठौन' का भोज हुआ।	ख्यात में दो दिन पूर्व दशोटण का उत्सव लिखा है।
रविवार व सोमवार, २ व ३ मार्च	×	,,	राठौड़ संग्रामसिंह की अस्वस्थता के कारण यात्रा न की गई।	
मंगलवार, ४ मार्च	नौ कोस	राजा के तालाब	×	
बुधवार, ५ मार्च	नौ कोस	नूर दी कुवा की सराय	×	ख्यात में आठ कोस
बृहस्पतिवार, ६ मार्च	नौ कोस	फ़तियाबाद	×	पंचोली में इस दिन यात्रा न करना लिखा है।
शुक्रवार, ७ मार्च	नौ कोस	सुलतानपुर	×	ख्यात में गोयन्ददास के तालाब पर पड़ाव दिया है।
शनिवार, ८ मार्च	आठ कोस	मुकर्रम खाँ दख्खिनी की सराय	×	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
रविवार; ९ मार्च	सात कोस	नूरमहल की सराय	×	
सोमवार, १० मार्च	×	,,	'दशरावों' का उत्सव हुआ।	
मंगलवार, ११ मार्च	आठ कोस	फिलौर	×	
बुधवार, १२ मार्च	पाँच कोस	लुधियाना (लैधाणां)	५ मार्च का लिखा हुआ हस्बुलहुक्म आया कि बादशाह अजमेर से दिल्ली जा रहा है, तुम सब शीघ्र वहाँ आओ। वहीं जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को नाम, मनसब व राज्य दिया जाएगा।	
बृहस्पतिवार, १३ मार्च	आठ कोस	दुराहे की सराय	अजमेरी ख़ाँ को शाही हुक्म आया कि वह आगे आय, सो वह विदा हो गया।	
शुक्रवार, १४ मार्च	×	×	×	
शनिवार, १५ मार्च	सात कोस	खानोर की सराय	×	पंचोली में चैत्र सुदि १३ दो बार दी है। दूसरी बार सींहनद पर डेरा होना बताया है।
रविवार, १६ मार्च	छः कास	अलुणा की सराय	×	
सोमवार, १७ मार्च	×	,,	हस्बुलहुक्म आया कि श्यामदास ने राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में दो	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
			सौ मुहरें नज़र की, जो बादशाह ने स्वीकार कीं।	
मंगलवार, १८ मार्च	तीन कोस	राजा की सराय	×	
बुधवार, १९ मार्च	चार कोस	मुग़ल की सराय	×	
बृहस्पतिवार, २० मार्च	तीन कोस	अम्बाला	जोधपुर से सुरताण नामक दूत आया।	
शुक्रवार, २१ मार्च	दस कोस	शाहाबाद	×	
शनिवार, २२ मार्च	आठ कोस	कुरुक्षेत्र, थानेश्वर	×	
रविवार, २३ मार्च	सात कोस	×	×	
सोमवार, २४ मार्च	सात कोस	कर्नाल	×	
मंगलवार, २५ मार्च	सात कोस	×	×	
बुधवार, २६ मार्च	सात कोस	पांणीपंथाई	×	
बृहस्पतिवार, २७ मार्च	आठ कोस	संनाल		
शुक्रवार, २८ मार्च	बारह कोस	सोनेपत (सुंनपत)	(i) जोधपुर से एक दूत आया। (ii) नवाज बेग को यहाँ से आगे भेज दिया गया।	ख्यात में यह घटनाएँ एक दिन बाद दी गई हैं।

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
शनिवार, २९ मार्च	×	तूटी	×	
रविवार, ३० मार्च,	सात कोस	नालरै	×	
सोमवार, ३१ मार्च	तीन कोस	एक झील पर	×	
मंगलवार, १ अप्रेल	डेढ़ कोस	बादली से एक कोस आगे	×	
बुधवार, २ अप्रेल	×	मनोहरपुर	जोधपुर से एक दूत आया, जिसने बताया कि वहाँ से कुछ राठौड़ दिल्ली आ रहे हैं, और वे १५ अप्रेल तक आ जायेंगे।	
बृहस्पतिवार, ३ अप्रेल	×	,,	(i) कुछ राठौड़ सरदार बख्शी सरबुलन्द खाँ से मिलने गये। (ii) राघोदास ने जोधपुर से आकर बताया कि राठौड़ों ने कोटपुतली से प्रस्थान कर दिया है।	
शुक्रवार, ४ अप्रेल	×	,,	राठौड़ सरदार पुनः सरबुलन्द खाँ से मिले।	
शनिवार, ५ अप्रेल	—	दिल्ली में जसवन्तपुरा में महाराजा की हवेली में	—	

परिशिष्ट 'घ'

अजीतसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में विभिन्न मत

राजस्थानी तथा फारसी के लगभग सभी ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह की हत्या उसके दूसरे पुत्र बख्तसिंह ने की थी; परन्तु पितृहत्या का यह घृणित कार्य क्यों किया गया, इस विषय में विभिन्न मत हैं। कुछ फारसी ग्रन्थों में अजीतसिंह के चरित्र को कलंकित करते हुए यह लिखा गया है कि अजमेर से जोधपुर लौटने पर अजीतसिंह का अपने पुत्र बख्तसिंह की पत्नी से अनुचित सम्बन्ध हो गया। इससे बख्तसिंह को गहरा आघात लगा और उसने आवेश में आकर अपने पिता की हत्या की (कामवर जिसका उल्लेख इरविन लेटर मुगल्स, (भाग २, ११६-७) ने किया है; (तारीख—ए—मुजफ्फरी ३३३)। परन्तु वारिद, ख़फी खां तथा शाहनवाज ख़ाँ आदि फारसी के प्रमुख इतिहासकारों ने इसका कोई संकेत नहीं किया है। यदि यह बात सत्य होती तो ये इतिहासवेत्ता इसका उल्लेख अवश्य करते। इतना ही नहीं, इनमें से वारिद (मीरात-उल-वारिदात, १७८ ब, १७६ अ) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मुहम्मदशाह ने अभयसिंह को जोधपुर राज्य तथा अहमदाबाद सूबे का लालच देकर इस कार्य के लिए प्रेरित किया था। शाहनवाज ख़ाँ (मआसिर, १७५) ने लिखा है कि मुहम्मदशाह के दरबारियों की प्रेरणा से राजकुमार ने यह कार्य किया।

टॉड का मत है कि फर्रुखसियर के गद्दी से हटाये जाने के बाद अजीतसिंह व सैयद बन्धुओं के बीच मतभेद हो गया। महाराजा उनकी अन्य घृणित योजनाओं के पक्ष में नहीं था। फलतः वह अपने बड़े पुत्र को दरबार में छोड़कर जोधपुर लौट गया। उसके चले जाने के बाद सैयदों और अन्य उच्चाधिकारियों ने अभयसिंह को डराया कि अजीतसिंह की नीति से जोधपुर राज्य का विनाश हो जायेगा। उन्होंने यह भी समझाया कि जोधपुर की रक्षा एवं उसकी अपनी प्रगति का एकमात्र उपाय यही है कि या तो उसके पिता को सिंहासन से हटा दिया जाय अथवा उसकी मृत्यु हो जाय। पहले तो अभयसिंह हिचकिचाया, परन्तु बाद में उसने उनकी बात मानकर अपने भाई को पिता का वध करने के लिये पत्र लिखा और इस कार्य के बदले में उसे ५५५ गाँवों सहित नागोर देना स्वीकार किया (टॉड भाग १,५८३-४)। परन्तु टॉड का मत ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। सैयद भाई इस समय से पहले ही मारे जा चुके थे, अतः वे अभयसिंह के प्रेरक नहीं हो सकते। साथ ही सैयदों एवं अजीतसिंह के बीच आजीवन मैत्री सम्बन्ध रहा। अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यह भी कहा जाता है कि जिस समय अजीतसिंह ने अजमेर में विद्रोह किया था, उस समय वजीर-उल-मुमालिक एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन ख़ाँ ने बख्तसिंह को

जोधपुर दिलवाने का वचन दिया था, अतः इसी लालच से उसने यह कार्य किया (तारीख़-ए-मुज़फ्फरी ३३३)। आधुनिक इतिहासकार श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ के अनुसार अभयसिंह के दिल्ली पहुँचने पर मुहम्मदशाह ने उससे घनिष्टता बढ़ानी आरम्भ कर दी थी। राजा जयसिंह के द्वारा उसने भण्डारी रघुनाथ को भी अपनी ओर मिला लिया और फिर इन दोनों के द्वारा उसने महाराजकुमार के पिता के विरुद्ध भड़काना आरम्भ किया, परन्तु अभयसिंह पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। तब एक दिन उसने जयसिंह व रघुनाथ के द्वारा एक पत्र लिखवाया जिसमें बख़्तसिंह को पिता को मारने के लिए लिखा था। किसी प्रकार इस जाली पत्र पर अभयसिंह के हस्ताक्षर करवा लिये गये। यही पत्र बख़्तसिंह के पास भेज दिया गया (रेउ, भाग १,३२७)। रासमाला में लिखा है कि एक दिन बादशाह मुहम्मदशाह महाराजकुमार अभयसिंह को साथ लेकर यमुना में नौकाविहार के लिए गया। जब वे नदी के मध्य पहुँचे तो बादशाह ने यह आज्ञा दी कि अभयसिंह को नदी में फेंक दिया जाय। जब राजकुमार ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि यदि वह अपने भाई बख़्तसिंह को एक पत्र लिखकर पिता को मारने का आदेश दे, तभी उसे जीवित छोड़ा जायेगा। विवश होकर अभयसिंह ने भंडारी रघुनाथ को आज्ञा दी कि वह इस आशय का एक पत्र बख़्तसिंह को लिख दे और इस कार्य के लिए नागोर देने का आश्वासन दे (रासमाला १२३)। परन्तु इन तथ्यों की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती, अतः इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अधिकतर राजस्थानी ख्यातों एवं ग्रन्थों में लिखा है कि मुहम्मदशाह के कहने पर आम्बेर के शासक जयसिंह तथा उसके अन्य उच्चाधिकारियों ने अभयसिंह को बताया था कि बादशाह अजीतसिंह के कार्यों से और उसकी सैयदों से मित्रता के कारण उससे अप्रसन्न है, और जोधपुर पर आक्रमण करने के लिए सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। अवसर पाते ही वह वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर लेगा। इससे राठौड़ों का विनाश होगा और राज्य भी हाथ से निकल जायेगा। उसने समझाया कि उचित यही है कि अजीतसिंह को किसी न किसी प्रकार मरवा दिया जाय। इससे बादशाह का क्रोध दूर हो जायेगा, और वह प्रसन्न होकर अभयसिंह को जोधपुर का अधिकार भी सौंप देगा। राजकुमार ने भंडारी रघुनाथ से सलाह पूछी तो उसने भी जयसिंह का ही समर्थन किया। तब उसने अपने छोटे भाई को एक पत्र लिखा जिसमें सम्पूर्ण स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए उसे यह कार्य करने के लिए लिखा (ख्यात भाग २, १८३; वीर भाग २, ८४२ व ६६७; वंश. भाग ४, ३०८२-३; दानेश्वर २४८-९; कविराजा ६५७; वार्ता १२६ ब)।

सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन करने से इस मत को स्वीकार करना युक्तिसंगत जान पड़ता है। बादशाह मुहम्मदशाह अपने शासनारम्भ से ही सैयद भाइयों तथा सैयद बन्धुओं के प्रभाव से पूर्ण परिचित था। सम्भवतः इसी कारण उसने यथाशीघ्र दोनों सैयद भाइयों को अपने मार्ग से हटा दिया। अब त्रिकुट में से केवल

अजीतसिंह शेष रहा था; अहमदाबाद तथा अजमेर की सूबेदारी से हटाकर सम्भवतः बादशाह ने उसकी शक्ति को कम करने का प्रयाम किया था। अतः यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि अभयसिंह के दरबार में आने पर उसने जयसिंह व अन्य लोगों के द्वारा उसे आतंकित करके इस कार्य के लिए प्रेरित किया हो।

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि अजीतसिंह की हत्या में जयसिंह का मुख्य हाथ था। फर्रुखसियर के समय से ही उसका सम्बन्ध अजीतसिंह के साथ बिगड़ चुका था और मुहम्मदशाह के समय में उसका प्रभाव दरबार में बढ़ गया था। अभयसिंह के अजमेर से दिल्ली आने के बाद उससे भी जयसिंह की घनिष्टता बढ़ती जा रही थी। अतः यह कहना न्यायोचित प्रतीत होता है कि जयसिंह ने बादशाह की इच्छा-पूर्ति के लिए और सम्भवतः अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए अभयसिंह को उत्तेजित किया हो। महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के केवल दो ही दिन उपरान्त भूकरका (बीकानेर) के ठाकुर कुशलसिंह ने बीकानेर के राजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा, जिसमें अजीतसिंह की हत्या की सूचना दी है। इसमें उसने स्पष्ट लिखा है कि मारवाड़ के लोग जयसिंह को गालियाँ देते हैं कि इसने ही अभयसिंह से कहकर बख्तसिंह को पत्र लिखवाया तथा महाराजा की हत्या करवाई (प्रतिलिपि रा०पु०बी०)।

जयसिंह की ही भाँति भंडारी रघुनाथसिंह ने भी अभयसिंह को प्रेरणा दी थी, इसमें सन्देह नहीं है। अभयसिंह के शासनारम्भ में भंडारियों के विरुद्ध विद्रोह हुआ और अभयसिंह को मजबूर होकर अपने इस अन्तरंग साथी को बन्दी बनाना पड़ा। (वीर भाग २,८४४; ग्लोरीज़ परिशिष्ट ब ११,१३०-१)। इससे स्पष्ट होता है कि महाराजा की हत्या में भंडारियों ने भी योग दिया था।

अन्त में यह प्रश्न शेष रह जाता है कि बख्तसिंह ने पितृ-हत्या का यह घृणित कार्य क्यों किया? कहा जाता है कि अभयसिंह ने अपने अनुज को नागोर तथा उसके ५५५ गाँव, अथवा आधा राज्य तथा नागोर के राजा की पदवी, अथवा नागोर व मेड़ता देना स्वीकार किया था (टॉड भाग १, ५८४; वंश. भाग ४, ३०८३; वार्ता १२६ ब)। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अजमेर छोड़ते समय महाराजा ने बादशाह के साथ जो सन्धि की थी, उसके अनुसार उसने नागोर से अपना अधिकार हटाना स्वीकार कर लिया था। फलतः इस समय नागोर पर उसका अधिकार नहीं था। अतः अभयसिंह इसके विषय में कोई वचन देने का अधिकार नहीं रखता था। विलियम इरविन का मत है कि महाराजा की स्वाभाविक मृत्यु होने के बाद बख्तसिंह को स्वाभावतः नागोर मिलता (इरविन भाग २, ११६)। परन्तु जोधपुर राज्य में छोटे भाइयों के लिए ऐसी व्यवस्था करने का कोई नियम था, ऐसा आभास नहीं मिलता जैसाकि श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ने लिखा है, यदि अभयसिंह के सभी भाइयो को नागोर के बराबर स्थान दिया जाता तो अभयसिंह के लिए जोधपुर के क़िले से बाहर पैर रखने को भी स्थान न बचता (ग्लोरीज़, परिशिष्ट ब १०, १२२)। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह ने अभयसिंह के माध्यम

से बख्तसिंह को नागौर का प्रदेश तथा राजाधिराज की पदवी देना स्वीकार किया था। श्री रेउ ने भी इसी मत को स्वीकार किया है (ग्लोरीज, परिशिष्ट ब १०, १२२)।

पितृ-हत्या के निन्दनीय कार्य के लिए यह पुरस्कार अधिक नहीं था; फिर भी बख्तसिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि बख्तसिंह बहुत महत्वाकांक्षी था और उसे यह आशा थी कि नागोर का अधिकार पाकर वह अपनी शक्ति बढ़ा सकेगा और फिर अवसर पाकर जोधपुर पर अधिकार करना कठिन न होगा। वास्तव में उसकी यह आशा सफलीभूत भी हुई और सन् १७५१ ई० में उसने अपने भतीजे रामसिंह को हटाकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अजीतसिंह की हत्या, बादशाह मुहम्मदशाह की इच्छा, सवाई राजा जयसिंह तथा भंडारी रघुनाथ की प्रेरणा तथा महाराजकुमार अभयसिंह तथा राजकुमार बख्तसिंह के कुकृत्य का परिणाम था।[1]

---

1. अजीतसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में ग्लोरीज ऑव् मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौरज् के परिशिष्ट ब १० व ब ११ विशेष उपयोगी हैं।

परिशिष्ट ङ

समय-समय पर अजीतसिंह के अधिकृत परगने

परगने	अधिकार	हाथ से निकलना
सोजत व जैतारण	दिसम्बर, सन् १६७८ ई०	सम्भवतः अगस्त, सन् १६७९ ई.
जोधपुर	सम्भवतः जुलाई, सन् १६७९ ई०	२ सितम्बर सन् १६७९ ई.
मेड़ता व सिवाना	अगस्त, सन् १६७९ ई.	नवम्बर, सन् १६७९ ई.
सिवाना	सन् १६८७ ई.	मार्च, सन् १६८८ ई.
मेड़ता	जून, सन् १६९२ ई.	जुलाई, सन् १६९२ ई.
सिवाना	जून, सन् १६९२ ई.	जनवरी, सन् १६९३ ई.
जालोर व सांचोर	मई, सन् १६९८ ई.	
जोधपुर	१२ मार्च, सन् १७०७ ई.	मार्च-अप्रेल, सन् १७०८ ई.
मेड़ता	मार्च, सन् १७०७ ई.	नव०-दिस०, सन् १७०७ ई.
पाली	मार्च सन् १७०७ ई.	
सोजत	मई, सन् १७०७ ई.	
सोजत, सिवाना, फलोदी	अप्रेल, सन् १७०८ ई.	
मेड़ता	जून सन् १७०८ ई.	
जोधपुर	४ जुलाई, सन् १७०८ ई.	
सांभर	३ अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	
डीडवाना	अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	सन् १७२३ ई.
मारोठ	१६ अप्रेल, सन् १७१० ई.	
जोधपुर राज्य	१९ मई, सन् १७१० ई.	
सोरठ की फ़ौजदारी	१० नवम्बर, सन् १७११ ई.	सम्भवतः अधिकार नहीं किया।
बधवाड़ा भिणाय, विजयगढ़	सन् १७१२ ई.	सन् १७२३ ई. में भिणाय हाथ से निकल गया।
रूपनगर व मालपुरा में थाने	सन् १७१२ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	१४ नवम्बर, सन् १७१२ ई.	अधिकार नहीं किया।
तोड़ा में थाने	सन् १७१३ ई.	सन् १७२३ ई.
पिसांगण (जोधपुर)	मई, सन् १७१३ ई.	
थट्टा की सूबेदारी	१५ अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	अधिकार नहीं किया।
जोधपुर, मेड़ता, सोजत	५ अगस्त, सन् १७१४ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	२० अप्रेल, सन् १७१५ ई.	मई, सन् १७१७ ई.

परगने	अधिकार	हाथ से निकलना
मारोठ, परबतसर, कोंकड़ी व बवाल	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
अनहलपाटन (गुजरात)	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
नागोर	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
जोधपुर राज्य	२३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	२८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई	
गुजरात की सूबेदारी	फ़रवरी, सन् १७१९ ई	
गुजरात की सूबेदारी	५ अक्तूबर, सन् १७१९ ई.	मई, सन् १७२१ ई.
अजमेर की सूबेदारी	२६ अक्तूबर, १७१९ ई.	४ अगस्त, सन् १७२१ ई.
सांभर	अगस्त, सन् १७२० ई.	सन् १७२३ ई.
अजमेर की सूबेदारी	फरवरी, सन् १७२२ ई.	२३ मार्च, सन् १७२३ ई.

परिशिष्ट 'च'

अजीतसिंह को मुगल शासकों द्वारा प्रदत्त मनसब व अन्य उपहार

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
जनवरी, सन् १६८१ ई.	७००० ज़ात ७००० सवार।	दस हज़ार अशर्फ़ियाँ और जोधपुर का राज्य।	शाहज़ादा अकबर	अकबर की स्वातन्त्र्य घोषणा पर।	जयपुर अख़बारात, औरंगज़ेब, वर्ष १, २४४-५।
मई, सन् १६९८ ई.	१५०० ज़ात ५०० सवार।		बादशाह औरंगज़ेब	दुर्गादास द्वारा अजीतसिंह के अपराध क्षमा करने की प्रार्थना पर।	ख्यात भाग २, ९६; मूंदियाड़ २०७; जुनी ७८; दानेश्वर २१४।
,,	—	जालोर व सांचोर की फ़ौजदारी व जागीरदारी।	,,	,,	मीरात ३०२; जुनी ७८; दानेश्वर २१४।
९ नवम्बर, सन् १७०० ई.।	—	ख़िलअत भेजी गई।	,,	अजीतसिंह को दरबार में बुलाने के लिए।	अख़बारात, लन्दन संग्रह, औरंगज़ेब, वर्ष ४४, ३५१ ब।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार ग्रन्थ
१६ नवम्बर, सन् १७०० ई.	—	अजमेर के कोषागार से तीन हजार रुपया देने की आज्ञा ।	बादशाह औरगज़ेब	अजीतसिंह को दरबार में बुलाने के लिए ।	अख़बारात, लन्दन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष ३५४ व ३५५ अ ।
६ अप्रेल, सन् १७०७ ई.	—	ख़ास-ख़िलअत ।	शाहज़ादा मुईज्जुद्दीन	आज़म के विरुद्ध अपने पिता शाहआलम के लिए अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए ।	निशान नं. १२, रा. पु. बी.
१२ मई, सन् १७०७ ई.	७००० जात ७००० सवार ।	पूर्व प्रदत्त जागीर ।	शाहज़ादा आज़म	मुअज्ज़म के विरुद्ध अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए ।	जयपुर अख़बारात, आज़म, वर्ष १, १२० ।
१७ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	पचास हज़ार रुपया नक़द व ख़ास ख़िलअत ।	बादशाह बहादुरशाह	अजीतसिंह के दरबार में आने पर ।	बहादुर, ८४ ब; जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ३ ।
१८ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	दो सौ रुपया नक़द व चाँदी की जीन सहित घोड़ा ।	,,	,,	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ५; बहादुर ८५ अ ।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२२ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	एक हजार रुपया व एक हाथी।	बादशाह बहादुरशाह	अजीतसिंह के दरबार में आने पर।	जयपुर अख़बारात बहादुरशाह, वर्ष २, १७; बहादुर ८६ अ।
२९ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	'महाराजा' लिखने का अधिकार व खास खिलअत।	,,	,,	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ३२; बहादुर ९० ब।
६ मार्च, सन् १७०८ ई.	—	जड़ाऊ सिरपेच।	,,	,,	बहादुर ९० ब।
११ अप्रेल, सन् १७०८ ई.	३५०० जात ३००० सवार १००२ अस्पा	अलम व नक्कारा।	,,	दक्षिण की ओर जाते हुए मार्ग में।	बहादुर ९८ ब; कामवर ३१०।
,,	—	सोजत, सिवाना, फलोदी के परगने जागीर में।	,,	,,	ख्यात भाग २, १२६; जुनी ८६; दानेश्वर २२२।
२६ सितम्बर, सन् १७०८ ई.	४००० जात ३५०० सवार	एक लाख दाम।	,,	—	जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, १०६।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२ अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	—	राजा की पदवी, खिलअत अदवीसी तथा हाथी।	बादशाह बहादुरशाह	—	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह वर्ष २, ११०।
१९ मई, सन् १७१० ई.	—	जोधपुर का राज्य दिया गया।	,,	—	फ़रमान नं. २०, रा. पु. बी., जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ८१; कामवर ३४८।
१७ जून, सन् १७१० ई.	४००० जात ४००० सवार।	—	,,	दरबार में उपस्थित होने पर।	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, १११-२।
'जून सन् १७१० ई०	—	खिलअत बड़ी तलवार, जड़ाऊ जमधर, हाथी, ईराकी घोड़े।	बादशाह बहादुरशाह	जोधपुर जाने के लिए विदा देने समय।	कामवर ३४८।
१० नवम्बर, सन् १७११ ई.	४००० जात ४००० सवार।	सोरठ की फ़ौजदारी।	,,	अजीतसिंह के साधोरा पहुँचने पर।	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, ४४९; फ़रमान नं. ५ रा. पु. बी. (तिथिहीन)।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२४ मई, सन् १७१२ ई.	७००० ज़ात ७००० सवार।	जोधपुर राज्य व महाराजा की पदवी।	बादशाह जहाँदारशाह	—	मुतफ़रिक अहलकारान, नं. १८०१, रा पु बी.; मुतफ़र्रिक अहलकारान तिथिहीन, नं ६३८, रा. पु. बी.; फ़ारसी पत्र, न. १५२७, रा. पु. बी.; मुतफ़र्रिक महाराजगान, नं. २६४६, रा. पु. बी.।
१४ नवम्बर, सन् १७१२ ई.	६००० ज़ात ६००० सवार।	गुजरात की सूबेदारी, जड़ाऊ सिरपेच, कंठा, ख़ास ख़िलअत पाँच थान, एक हाथी।	,,	—	जयपुर अख़बारात, जहाँदारशाह, वर्ष १, ३०६; राजस्थानी पत्र, नं. २४५, २६६ रा. पु. बी; रोज़नामचा १२२; गुटका ३११ अ।
२५ फरवरी, सन् १७१३ ई.	५००० ज़ात ५००० सवार।	—	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	जयपुर अख़बारात, नं. २००४, रा. पु. बी.।
१८ अप्रेल, सन् १७१३ ई.	—	एक तलवार व जड़ाऊ पदक।	,,	—	जयपुर अख़बारात नं. २०६४, रा. पु. बी.।
११ मई, सन् १७१३ ई.	—	ख़ास ख़िलअत, तलवार, जड़ाऊ चोग़ा।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड १, २२४।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
१८ जुलाई, सन् १७१३ ई.	—	एक जोड़ा कुंडल का मोती व जड़ाऊ पदक।	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ६।
१ अगस्त, सन् १७१३ ई.	—	ख़ास-ख़िलअत व कुछ जवाहरात।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ३८।
३ अगस्त, सन् १७१३ ई.	—	बरसाती-ख़िलअत।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ४७–८।
१५ अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १४१।
अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	७००० ज़ात ७००० सवार।	—	,,	—	रोज़नामचा १२३।
२० अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	—	ख़ास-ख़िलअत, सिरपेच व बालाबन्द।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १५१।
१ नवम्बर, सन् १७१३ ई.	—	एक जड़ाऊ पदक, मोतियों का गोशवारा ख़िलअत, पाँच थान, एक जड़ाऊ तलवार।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १६६।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
५ अगस्त, सन् १७१४ ई.	—	बरसाती-खिलअत	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ३, खण्ड ३, ११।
नव.- दिसम्बर, सन् १७१४ ई.	—	जोधपुर, मेड़ता, व सोजत जागीर में।	,,	—	मुतफर्रिक अहलकारान, नं. ६६१, रा. पु. बी.।
१६ मार्च, सन् १७१५ ई.	—	ख़ास-खिलअत	,,	—	जयपुर अखबारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ४, खंड १, ३७।
२० मार्च, सन् १७१५ ई.	—	,,	,	—	जयपुर अखबारात, फ़र्रुख़सियर वर्ष ४, खंड १, ६६।
११ अप्रेल, सन् १७१५ ई.	—	खिलअत, हाथी, घोड़ा व तलवार	,,	—	जयपुर अखबारात, नं. २५६६ रा. पु. बी.।
२० अप्रेल, सन् १७१५ ई.	६००० ज़ात ५००० सवार २००२ अस्पा और एक हजार सवार गुजरात की सूबेदारी के लिए।	गुजरात की सूबेदारी और बीस लाख दाम इस सूबेदारी के लिए।	,,	—	जयपुर अखबारात, फ़र्रुख़सियर वर्ष ४, खंड १, ८५।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
९ दिसम्बर, सन् १७१५ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी का फ़रमान जारी हुआ व ख़िलअत भेजी गई।	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	फ़रमान न. १०, रा. पु. बी.
२४ जनवरी, सन् १७१६ ई.	—	ख़िलअत व जड़ाऊ सिरपेच।	,,	—	जयपुर अख़बारात फ़र्रुख़सियर, वर्ष ४, खण्ड २, २६०।
६ फरवरी, सन् १७१६ ई.	—	दो बाज व दो साहीबीन।	,,	शिकार के समय	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ४, खण्ड २, २७७।
सन् १७१६ ई.	—	नागौर की फौजदारी, बहुमूल्य ख़िलअत, जड़ाऊ सिरपेच।	,,	—	मीरात ३७०।
५ नवम्बर, सन् १७१६ ई.	७००० जात ७००० सवार डेढ़ हजार दो अस्पा और एक हजार सवार नागौर के लिए।	अहमदाबाद की सूबेदारी जोधपुर व नागौर की जमीन्दारी व पचास लाख दाम और एक करोड़ दाम अहमदाबाद के लिये।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर वर्ष ५, खण्ड १, १६३।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
९ अक्टूबर, सन् १७१७ ई.	—	ख़िलअत व पुरस्कार।	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ६, खण्ड १, ३४४।
१८ अगस्त, सन् १७१८ ई.	—	जड़ाऊ कमरपटका।	,,	अजीतसिंह के दिल्ली के निकट पहुँचने पर।	जयपुर अख़बारात, भाग २१, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ७, ७९–८०।
२१ अगस्त, सन् १७१८ ई.	७००० ज़ात ७००० सवार एक हज़ार दो अस्पा।	'राजराजेश्वर' की पदवी, एक करोड़ पचास लाख दाम इनाम, जड़ाऊ सिरपेच, जड़ाऊ खंजर, दो घोड़े, एक हाथी, माही मरातिब ६ थान और पुनः एक हज़ार सवार एक करोड़ दाम।	,,	दिल्ली में दरबार में उपस्थित होने पर।	जयपुर अख़बारात, भाग २१, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ७, ८१; ख्यात भाग २, २००–१।
११ सितम्बर, सन् १७१८ ई.	—	ख़ास–ख़िलअत, जड़ाऊ किलंगी एक मोतियों की माला।	,,	,,	जयपुर अख़बारात, भाग २१, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ७, १०२, कामवर ४३०, ख्यात भाग २, १७०।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
१३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	खिलअत, जड़ाऊ सिरपेच, दो घोड़े।	बादशाह फर्रुखसियर	फर्रुखसियर के अजीतसिंह के घर से लौटते समय।	रोज़नामचा २१६-२०; कामवर ४३४।
१८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	वस्त्र चुग़ा व जड़ाऊ सिरपेच।	"	अजीतसिंह के दरबार में जाने पर।	कामवर ४३५।
२३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	पूर्व मनसब	जोधपुर का राज्य।	"	—	फरमान नं. ६, रा. पु. बी।
२८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी, कमरपटका, जड़ाऊ सिरपेच, घोड़ा व हाथी।	"	—	रोज़नामचा २२७; कामवर ४३४।
फरवरी, सन् १७१९ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी।	बादशाह रफीउद्दरजात।	—	मीरात ३८६; ख़फ़ी ख़ाँ भाग २, ८१९।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२६ अप्रेल, सन् १७१९ ई.	—	ख़ास ख़िलअत, यराक सहित तलवार, चार बड़े मोती, दो याकूत, एक जड़ाऊ सिरपेच, साज सहित ईराकी घोड़ा, सुनहरी जीन सहित दो ईराकी घोड़े, दो हाथी।	बादशाह रफीउद्दरजत	जोधपुर जाने के लिए विदा देते समय।	कामवर ४४६।
२८ मई सन् १७१९ ई.	—	ख़ास ख़िलअत व मोतियों की माला।	बादशाह रफीउद्दौला।	—	कामवर ४४७।
११ जून, सन १७१९ ई.	—	ख़ास ख़िलअत, जड़ाऊ सिरपेच, यराक सहित तलवार, मोतियों की माला।	"	—	"
५ अक्टूबर, सन् १७१९ ई.	—	अहमदाबाद की सूबेदारी सिरपेच, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की माला, अरबी घोड़ा, सुनहरे साज़ सहित हाथी।	बादशाह मुहम्मद-शाह	जोधपुर जाने के लिए विदा देते समय।	शिवदास ३२ ब।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२६ अक्टूबर, सन् १७१९ ई.	—	अजमेर की सूबेदारी।	बादशाह मुहम्मदशाह	—	कामवर, ४५५; ख़फ़ी ख़ां भाग २, ८३८, राजरूपक ५१८।
सम्भवत: फरवरी, सन् १७२२ ई.	—	अजमेर की सूबेदारी दूसरी बार मिलना।	,,	अजीतसिंह के क्षमा माँगने पर।	शिवदास, ८५ अ।

परिशिष्ट 'छ'

जोधपुर के राजराजेश्वर महाराजा अजीतसिंह (सन् १६७९ ई. से सन् १७२४ ई.)

तिथि-क्रम

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६७८	२८ नवम्बर	महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु ।
,,	१६ दिसम्बर	जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर पहुँचना ।
,,	३१ दिसम्बर	शाही फ़रमान द्वारा सोजत और जैतारण के अतिरिक्त समस्त परगनों पर शाही अधिकार में लेने की सूचना । पुत्र उत्पन्न होने पर समस्त प्रदेश वापस करने का आश्वासन, अटक पार उतारने की दस्तक तथा ख़र्च के लिए बीस हज़ार रुपया मिलना ।
१६७९	१ जनवरी	अटक पार करने की दस्तक वापस लिया जाना ।
,,	१३ जनवरी	बादशाह का जोधपुर में फ़ौजदार, क़िलेदार, अमीन व कोतवाल नियुक्त करना ।
,,	१४ जनवरी	राठौड़ों का पेशावर से प्रस्थान ।
,,	२४ जनवरी	औरंगज़ेब का दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान ।
,,	१५ फरवरी	राठौड़ों का लाहौर पहुँचना ।
,,	१९ फरवरी	अजीतसिंह का जन्म ।
,,	१९ फरवरी	कुछ घड़ी उपरान्त दलथम्भन का जन्म ।
,,	१९ फरवरी	बादशाह का अजमेर पहुँचना ।
,,	२६ फरवरी	बादशाह को अजीतसिंह व दलथम्भन के जन्म का समाचार मिलना ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६७६	२७ फरवरी	राठौड़ सरदारों व ख़ानेजहाँ को उक्त समाचार मिलना।
,,	२८ फरवरी	राठौड़ों का लाहौर से प्रस्थान।
,,	२ मार्च	जोधपुर पर शाही अधिकार।
,,	१० मार्च	औरंगज़ेब का अजमेर से दिल्ली की ओर प्रस्थान।
,,	१८ मार्च	इन्द्रसिंह का दक्षिण से आकर बादशाह से मिलना।
,,	२ अप्रैल	बादशाह का दिल्ली पहुँचना।
,,	२ अप्रैल	जज़िया कर लगाना।
,,	५ अप्रैल	पेशावर वाले राठौड़ सरदारों के दल का दिल्ली पहुँचना।
,,	८ अप्रैल	जोधपुर से आये हुये राठौडों का दिल्ली पहुँचना।
,,	१४ अप्रैल	राठौड़ सरदारो का अजीतसिंह को राज्य देने के लिये बादशाह से प्रार्थना करना।
,,	२६ मई	इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य देना।
,,	सम्भवतः जून	दलथम्भन की मृत्यु।
,,	जुलाई	अजीतसिंह को गुप्त रूप से दिल्ली से निकालना।
,,	१५ जुलाई	रानियों व राजकुमारों को नूरगढ़ बुलाना और इस कार्य के लिए फ़ुलाद ख़ाँ को राठौड़ों के पास भेजना।
,,	१६ जुलाई	दिल्ली में राठौड़-मुग़ल संघर्ष का आरम्भ।
,,	जुलाई	राठौड़ों का जोधपुर पर बलपूर्वक अधिकार।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
	२३ जुलाई	राजकुमार का दुर्गादास व अन्य राठौड़ों के साथ जोधपुर के निकट पहुँचना।
	सम्भवतः अगस्त	सोजत व जैतारण के परगने खालसा किया जाना।
	अगस्त	मेड़ता व सिवाना के परगनों पर राठौड़ों का अधिकार।
	१७ अगस्त	बादशाह का सरबुलन्द खाँ को जोधपुर पर पुनः अधिकार करने के लिए विशाल सेना के साथ नियुक्त करना।
१६७९	२१ अगस्त	पुष्कर में मेड़तिया राजसिंह तथा तहव्वर खाँ के बीच युद्ध।
,,	१ सितम्बर	अजीतसिंह का राज्यारोहण।
,,	२ सितम्बर	इन्द्रसिंह का जोधपुर के क़िले में निर्विरोध प्रवेश।
,,	३ सितम्बर	औरंगज़ेब का दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान।
,,	२५ सितम्बर	बादशाह का अजमेर पहुँचना।
,,	सम्भवतः सितम्बर	अजीतसिंह का राणा राजसिंह की शरण में पहुँचना।
,,	३० नवम्बर	औरंगजेब का अजमेर से उदयपुर के लिए प्रस्थान।
	सितम्बर, सन् १६७९ ई. से दिसम्बर सन् १६८० ई.	मारवाड़ तथा मेवाड़ में स्थान-स्थान पर उपद्रव।
१६८१	३ जनवरी	शाहज़ादा अकबर की स्वातंत्र्य घोषणा।
	१५ जनवरी	तहव्वर खाँ का वध और राजपूतों का अकबर के शिविर से भाग जाना।

सन्	तिथि	विशेष विवरण
१६८१	१६ जनवरी	अकबर का पलायन ।
"	२५ मार्च	इन्द्रसिंह से जोधपुर का राज्याधिकार वापस लेना ।
"	१ जून	अकबर का राठौड़ दुर्गादास के साथ मरहठा राजा शंभाजी के आश्रय में पहुँचना ।
"	१४ जून	राणा राजसिंह तथा बादशाह औरंगजेब में सन्धि ।
सन् १६८१ ई. से सन् १६८७ ई.	—	मारवाड़ में राठौड़ सरदारों के उपद्रव ।
१६८७ ई.	१८ मार्च	अजीतसिंह का गुप्तावस्था से बाहर आना ।
"	८ अगस्त	दुर्गादास का दक्षिण से लौटकर अपने गाँव भीमरलाई पहुँचना ।
"	२० अक्तूबर	अजीतसिंह और दुर्गादास की प्रथम भेंट ।
"	—	इनायत खाँ का अजीतसिंह को सिवाना का अधिकार देना ।
१६८७ से १६९२	—	मारवाड़ में राठौड़ सरदारों के उपद्रव ।
१६९२	मार्च–अप्रैल	अजीतसिंह का दुर्गादास को भेजकर राणा जयसिंह व उसके पुत्र अमरसिंह का मतभेद दूर करवाना ।
१६९२	—	अजीतसिंह का सिवाना पर अधिकार ।
"	९ अक्तूबर	अजीतसिंह का सिवाना से अजमेर जाना ।
१६९३	१९ जनवरी	अजमेर के सूबेदार सफी खाँ से मिलना ।
"	—	अजीतसिंह का दुर्गादास को मनाने के लिए भीमरलाई जाना ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६६३	२१ दिसम्बर	दुर्गादास का अजीतसिंह के पास लौटना।
१६६४	—	अजीतसिंह का बिलाड़ा में उपद्रव करना।
१६६४-५	—	शुजात खाँ का अजीतसिंह को गुप्त रूप से चौथ व राहदारी देना स्वीकार करना।
१६६६	२८ जनवरी	अजीतसिंह का बीजापुर में शाही सेना को परास्त करना।
,,	मई—जून	अजीतसिंह का राणा व राजकुमार का मनोमालिन्य दूर करने के लिये स्वयं उदयपुर जाना।
,,	१२ जून	अजीतसिंह का राणा जयसिंह के भाई गजसिंह की पुत्री के साथ विवाह।
,,	२८ जून	देवलिया के शासक प्रतापसिंह की कन्या से विवाह।
,,	-	दुर्गादास का शाहजादा अकबर की पुत्री सफ़ियतुन्निसा को बादशाह के पास भेजना।
१६६६—७	-	बादशाह की दुर्गादास को एक लाख रुपया देने की आज्ञा व मेड़ता परगना देना।
१६६७—८	-	दुर्गादास को धांधुका व कुछ अन्य महल का अधिकार मिलना।
१६६८	मई	दुर्गादास का औरंगजेब से मिलना उसे मनसब व अन्य उपहार तथा मेड़ता, जैतारण व सिवाने के परगने जागीर में मिलना।
,,	,,	अजीतसिंह को मनसब तथा जालोर व सांचोर के परगने जागीर में मिलना।
,,	२ जुलाई	अजीतसिंह का जालोर पर अधिकार।
१६६६	२२ जून	जैसलमेर के राव अमरसिंह की पुत्री से विवाह।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७००	अप्रैल	गुजरात के हलवद नामक स्थान के अधिकारी चन्द्रसेन की कन्या से विवाह ।
,,	१४ जून	रोहचे के पृथ्वीराज के पुत्र फतेहसिंह की बेटी से विवाह ।
१७००–१	–	अजीतसिंह का बार-बार शाही सेवा में बुलाये जाने पर भी दरबार में नहीं जाना ।
१७०१	२२ जनवरी	होटलू के चौहान चतुरसिंह की लड़की से विवाह ।
१७०१–२	—	देरावर के मालिक भाटीदलशाह की पुत्री से विवाह ।
१७०१–२	—	सांचोर के चौहान सहसमल की कन्या से विवाह ।
१७०३	—	आज़म का दुर्गादास को मारने का असफल प्रयत्न ।
१७०३–५	—	अजीतसिंह व दुर्गादास का मारवाड़ में उपद्रव करना ।
१७०५	—	अजीतसिंह व दुर्गादास में मनोमालिन्य, दुर्गादास का पुनः शाही मनसब स्वीकार करना ।
१७०६	५ जनवरी	अजीतसिंह को मोहकमसिंह के ससैन्य जालोर की ओर आने का समाचार मिलना और उसका जालोर से चले जाना ।
१७०६	९ जनवरी	मोहकमसिंह का जालोर पर अधिकार ।
,,	१५ जनवरी	मोहकमसिंह का जालोर छोड़ देना ।
,,	—	अजीतसिंह का रायचाँ के चौहान, देवड़ों व राड़-धड़ा के शाही अधिकारियों को लूटना ।
,,	नवम्बर	देवलवीटी सूराचन्द से पेशकश वसूलना ।
१७०७ ई.	२१ फरवरी	औरंगज़ेब की मृत्यु ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०७	६ मार्च	सूराचन्द देवलवीटी से जोधपुर के लिये प्रस्थान।
"	१२ मार्च	जोधपुर पर अधिकार।
"	२० मार्च	जोधपुर के क़िले में प्रवेश।
"	मार्च	मेड़ता व पाली पर अधिकार।
"	मार्च-अप्रैल	बीकानेर पर आक्रमण।
"	अप्रैल	दुर्गादास का जोधपुर आना।
"	"	मुअज्ज़म का अजीतसिंह को सहायता के लिये बुलाना।
"	मई	दलथम्भन के नाम पर विद्रोह व सोजत पर अधिकार।
"	१२ मई	आज़म द्वारा मनसब व महाराजा की पदवी मिलना।
"	११ जून	बहादुरशाह का सिंहासनारोहण।
"	जुलाई	दुर्गादास को प्रधान का पद सौंपना।
"	६ अगस्त	अजीतसिंह का बधाई-पत्र व भेंट बहादुरशाह के दरबार में पहुँचाना।
"	८ अक्तूबर	मेहराब ख़ाँ को जोधपुर का फ़ौजदार नियुक्त करना।
"	२ नवम्बर	बहादुरशाह का दहरआर बाग से अजमेर के लिये प्रस्थान।
"	१५ नवम्बर	बादशाह का भुसावर पहुँचना।
	२६ नवम्बर	मेहराब ख़ाँ का भुसावर से जोधपुर के लिये बिदा होना।

सन्	तिथि	विशेष विवरण
१७०७	नवम्बर-दिसम्बर	मेड़ता पर शाही अधिकार ।
१७०८ ई.	जनवरी	आम्बेर पर शाही अधिकार ।
,,	१० फरवरी	बहादुरशाह का मेड़ता पहुँचना और ख़ानेजमाँ का अजीतसिंह को लाने के लिये जोधपुर जाना ।
,,	१२ फरवरी	अजीतसिंह का मेड़ता आना ।
,,	१३ फरवरी	बहादुरशाह से मिलना ।
	१७-१८-२२, २६ फरवरी व ६ मार्च	ख़िलअतें व इनाम मिलना ।
,,	१२ मार्च	बादशाह के साथ मेड़ता से अजमेर के लिये प्रस्थान ।
,,	१४ मार्च	अजमेर पहुँचना ।
,,	२३ मार्च	बादशाह के साथ दक्षिण के लिये प्रस्थान ।
,,	अप्रैल	जोधपुर में मेहराब ख़ाँ तथा मेड़ता में मख़सूस ख़ाँ को फ़ौजदार नियुक्त करना ।
,,	११ अप्रैल	मनसब, सोजत, सिवाना व फलोदी के परगने तथा अलम व नक्कारा मिलना ।
,,	१४ अप्रैल	अजीतसिंह का मन्दसौर में दुर्गादास व अन्य सरदारों के साथ परामर्श करना ।
,,	१५ अप्रैल	अजीतसिंह का जयसिंह से मिलना ।
,,	२० अप्रैल	अजीतसिंह व जयसिंह का शाही शिविर से भाग जाना ।
,,	२ मई	अजीतसिंह का राणा अमरसिंह और जयसिंह के साथ उदयपुर पहुँचना ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०८	मई	अजीतसिंह, अमरसिंह व जयसिंह का संगठन स्थापित होना।
,,	जून	मेड़ता पर अधिकार करना।
,,	जून	जोधपुर, जयपुर व उदयपुर की सेनाओं का आम्बेर हिण्डौन व बयाना पर अधिकार।
,,	४ जुलाई	जोधपुर पर पुनराधिकार।
,,	२६ जुलाई	अजीतसिंह की पुत्री सूरजकुंवर की जयसिंह के साथ सगाई।
,,	अगस्त के अन्त में	अजीतसिंह का जयसिंह व दुर्गादास के साथ अजमेर की ओर प्रस्थान।
,,	१६ सितम्बर	मेड़ता पहुँचना।
,,	२६ सितम्बर	मनसब व एक लाख दाम मिलना।
,,	३० सितम्बर	सांभर के फ़ौजदार अलीअहमद को परास्त करना।
,,	२ अक्तूबर	राजा की पदवी व खिलअत आदि मिलना।
,,	३ अक्तूबर	सांभर का युद्ध व अधिकार।
,,	अक्तूबर	डीडवाना पर अधिकार।
,,	,,	अजीतसिंह का जोधपुर जाना।
,,	२५ नवम्बर	नागोर की ओर प्रस्थान।
,,	—	नागोर में इन्द्रसिंह का समर्पण स्वीकार करना।
१७०९ ई.	फरवरी	अजीतसिंह का ससैन्य अजमेर की ओर प्रस्थान
,,	१६ फरवरी	अजमेर पर आक्रमण।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०९	११ मार्च	देवलिया की राजकुमारी के साथ विवाह।
"	१९ मार्च	जोधपुर पहुँचना।
"	सम्भवतः अप्रैल	असद खाँ द्वारा सांभर व डीडवाना से अधिकार हटाने तथा काबुल में नियुक्ति स्वीकार करने की शर्त पर वतन देना स्वीकार करना।
"	सितम्बर	ग़ाज़ीउद्दीन फीरोज़ जंग का अजीतसिंह से मैत्री करने का प्रयत्न।
"	सम्भवतः नवम्बर	नागोर पर आक्रमण।
	"	रामपुरा के कई गाँव लूटना।
१७१० ई.	१६ अप्रैल	मारोठ पर अधिकार।
"	२८ जुलाई	देवगाँव के अधिकारी नाहर खाँ से पेशकश वसूलना।
"	अप्रैल	अजीतसिंह के वकील का दरबार में आना।
"	९ व २३ अप्रैल	अजीतसिंह की अर्जदाश्त बादशाह के सम्मुख पहुँचाना।
"	१४ मार्च	नाहर खाँ को अजीतसिंह व जयसिंह को लाने के लिये सांभर भेजना।
"	१७ मई	महावत खाँ को अजीतसिंह व जयसिंह को दरबार में लाने के लिए भेजना।
"	मई के तीसरे सप्ताह में	बहादुरशाह का अजीतसिंह व जयसिंह के पास दूत भेजकर वतन देने का फ़रमान भेजना।
"	मई के अन्त में	सांभर से बहादुरशाह से भेंट करने के लिए प्रस्थान।
"	११ जून	अजीसिंह का बादशाह से मिलना।
"	१७ जून	मनसब और इनाम मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१०	जुलाई	जोधपुर वापस पहुँचना ।
१७११	जनवरी	अजीतसिंह का किशनगढ़ पर आक्रमण ।
,,	आरम्भ में	बहादुरशाह का अजीतसिंह को सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने के लिए बुलाना ।
,,	२१ मार्च	अजीतसिंह को बुलाने के लिए फ़रमान देकर शाही दूत को भेजा जाना ।
,,	—	राजगढ़ से केसरीसिंह की कन्या से विवाह ।
,,	मई	मनोहरपुर से साधौरा के लिए प्रस्थान ।
,,	३ जून	नाहरखेरा पहुँचा ।
,,	१० जून	नारनौल पहुँचा।
,,	१५ जुलाई	दिल्ली से बारह कोस दूर पहुँचा ।
,,	६ अक्तूबर	साधौरा पहुँचा ।
,,	१० नवम्बर	मनसब व सोरठ की फ़ौजदारी मिलना ।
१७११	—	नाहन के उपद्रवी शासक भूपप्रकाश का दमन ।
१७१२	जनवरी	अपने राज्य के लिए प्रस्थान ।
,,	१८ फरवरी	बहादुरशाह की मृत्यु ।
,,	फरवरी–मार्च	बधवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़ पर अधिकार ।
,,	,,	रूपनगर व मालपुरा में थाने बनाना ।
,,	११ मार्च	जहाँदारशाह का सिंहासनारोहण ।
,,	२७ अप्रैल	फ़र्रुखसियर के विरुद्ध ऐज्जुद्दीन की सेना में सम्मिलित होने का आदेश दिया जाना ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१२	२४ मई	मनसब व महाराजा की पदवी मिलना।
"	२८ मई	अजीतसिंह की बधाई की अर्जदाश्त व भेंट व गुजरात के लिए प्रार्थना-पत्र दरबार में पहुँचना।
"	१४ नवम्बर	मनसब, गुजरात की सूबेदारी व अन्य पुरस्कार मिलना।
"	नवम्बर के अन्त में	जोधपुर से गुजरात के लिये प्रस्थान।
"	३ दिसम्बर	जहाँदारशाह का अजीतसिंह को सहायता के लिये बुलाना।
"	दिसम्बर	अजीतसिंह का विजयसिंह के नेतृत्व में सेना भेजना।
१७१३ ई.	६ जनवरी	फ़र्रुख़सियर का सिंहासनारोहण।
"	१८ जनवरी	अजीतसिंह का बधाई-पत्र दरबार में पहुँचना।
"	२६ जनवरी, ५ फरवरी, ६फरवरी	अजीतसिंह द्वारा भेजे गये अर्जदाश्त, व भिन्न भेंट।
"	२३ अप्रैल	दरबार में मनसब मिलना।
"	१८ अप्रैल, ११ मई, १८ जुलाई १ अगस्त, ५ अगस्त	अजीतसिंह को विभिन्न पुरस्कार मिलना।
"	मई	अजीतसिंह का पिसांगण पर अधिकार।
"	अगस्त	बार-बार बुलाये जाने पर भी अजीतसिंह का शाही सेना में न जाना।
"	अगस्त	नागौर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को मरवाना।
	—	तोड़ा में थाने बनाना।
	१५ अक्तूबर	मनसब व थट्टा की सूबेदारी मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१३	२० अक्टूबर व १ नवम्बर	अजीतसिंह के लिये विभिन्न पुरस्कार भेजना।
,,	६ दिसम्बर	हुसैनअली ख़ाँ को जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये दरबार से विदा किया गया।
,,	मार्च-अप्रैल	हुसैनअली का अजमेर पहुँचना।
,,	—	हुसैनअली का मेड़ता पहुँचकर थाना स्थापित करना।
१७१४ ई.	२६ अप्रैल	महाराज कुमार अभयसिंह का हुसैनअली से मिलकर सन्धि करना।
,,	१४ मई	अजीतसिंह का अपनी सेना को थट्टा की ओर भेजना।
,,	२१ मई	हुसैनअली का वापस अजमेर पहुँचना।
,,	३ जून	अजीतसिंह का जोधपुर से थट्टा के लिये प्रस्थान।
,,	६ जुलाई	अभयसिंह का हुसैनअली के साथ दरबार में जाना।
,,	६ जुलाई व १ अगस्त	अभयसिंह को खिलअत मिलना।
,,	५ अगस्त	अजीतसिंह के लिए बरसाती खिलअत भेजा जाना।
,,	नवम्बर–दिसम्बर	अजीतसिंह को जोधपुर, मेड़ता व सोजत जागीर में मिलना।
१७१५	१६ मार्च, २० मार्च ११ अप्रैल	अजीतसिंह के लिये उपहार भेजा जाना।
,,	२० अप्रैल	मनसब व गुजरात की सूबेदारी मिलना।
,,	१६ अगस्त	अजीतसिंह की पुत्री इन्द्रकुंवर का फर्रुखसियर के साथ निकाह।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१५	७ दिसम्बर	इन्द्रकुंवर व फर्रुखसियर का हिन्दू रीति से विवाह।
१७१६	—	मारोठ, परबतसर, केकड़ी व बवाल का अधिकार मिलना।
,,	सम्भवत: आरम्भ में	अजीतसिंह का जोधपुर से गुजरात की ओर प्रस्थान।
,,	—	आबू पर्वत के निकट सगतसिंह का समर्पण करना।
,,	—	अनहिलपाटन पर अधिकार।
,,	—	पालनपुर, बापी, कोलीवाड़ा, मालगढ़ के अधिकारियों पर आधिपत्य स्थापित करना व धन वसूलना।
,,	२४ जनवरी व ६ फरवरी	अजीतसिंह के लिये दरबार से इनाम भेजा जाना।
,,	२२ फरवरी	अहमदाबाद के निकट शाहीबाग में पहुँचना।
,,	—	नागोर की फ़ौजदारी मिलना।
,,	२३ जून	जोधपुर की सेना का नागोर को घेरना।
,,	३० जून	नागोर पर अधिकार।
,,	—	इन्द्रसिंह के पुत्र मोहनसिंह का वध करवाना।
,,	५ नवम्बर	मनसब अहमदाबाद की सूबेदारी जोधपुर व नागोर की फ़ौजदारी मिलना।
१७१७	१३ जनवरी	फ़र्रुखसियर का अजीतसिंह को दिल्ली बुलाना।
,,	आरम्भ में	नवानगर के जाम तमाईची से पेशकश वसूलना।
,,	मार्च	द्वारिका की ओर जगत शिरोमणी के दर्शन के के लिये जाना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१७	—	मार्ग में स्थान-स्थान पर पेशकश वसूलना।
"	मई	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाया जाना।
"	जुलाई	अजीतसिंह का जोधपुर पहुँचना।
"	६ नवम्बर	जोधपुर से दिल्ली के लिये प्रस्थान।
१७१८	अगस्त के मध्य	अजीतसिंह का दिल्ली के निकट पहुँचना।
"	२० अगस्त	अजीतसिंह से इतिक़ाद ख़ाँ का मिलना और बादशाह के पास चलने का अनुरोध करना।
१७१८	२१ अगस्त	फ़र्रुख़सियर से भेंट और मनसब, राजराजेश्वर की पदवी व उपहार मिलना।
"	८ सितम्बर	अजीतसिंह का अब्दुल्ला ख़ाँ के घर जाना।
"	११ सितम्बर	अजीतसिंह का दरबार में जाना।
"	—	अजीतसिंह को क़ैद करने का फ़र्रुख़सियर का असफल प्रयत्न।
"	१४ दिसम्बर	अजीतसिंह का ख़ानेदौरां के घर जाना।
"	१८ नवम्बर	अजीतसिंह का दरबार में जाना।
"	८ दिसम्बर	अजीतसिंह के सैनिकों का बीका हज़ारी के सैनिकों से युद्ध।
"	६ दिसम्बर	अजीतसिंह पुनः दरबार में गया।
"	१३ दिसम्बर	फ़र्रुख़सियर का अजीतसिंह के घर जाना।
"	२३ दिसम्बर	पूर्व मनसब व राज्य मिलना।
"	२८ दिसम्बर	गुजरात की सूबेदारी व उपहार मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१६	१० फरवरी	अजीतसिंह का हुसैनअली खाँ से भेंट करना।
,,	१४ फरवरी	अजीतसिंह और अब्दुल्ला खाँ का महल व तोपखाने पर अधिकार करना।
,,	—	बूंदी के राव बुधसिंह के शिविर पर आक्रमण।
,,	१७ फरवरी	सैयदों और अजीतसिंह का शाही अधिकारियों को हटाकर अपने अधिकारियों को नियुक्त करना।
,,	१८ फरवरी	रफीउद्दरजत का सिंहासनारोहण।
,,	—	अजीतसिंह के अनुरोध पर जजिया तथा तीर्थों पर से कर हटाया जाना।
,,	—	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना।
,	२६ अप्रैल	जोधपुर प्रस्थान करने के लिये विदा किया जाना।
,,	२७ मई	रफ़ीउद्दौला का सिंहासनारोहण।
,,	२८ मई व ११ जून	अजीतसिंह को उपहार मिलना।
,,	६ जुलाई	इन्द्रकुँवर का अपनी सम्पत्ति सहित पिता के पास लौटना।
,,	जुलाई	अजीतसिंह का बादशाह के साथ आगरे की ओर जाना।
,,	२५ जुलाई	अजीतसिंह का बादशाह की अनुमति लेकर मथुरा जाना।
,,	१६ अगस्त	अजीतसिंह का मथुरा से लौटकर शाही सेवा में उपस्थित होना।
,,	१८ सितम्बर	मुहम्मदशाह का सिंहासनारोहण।
,,	५ अक्तूबर	अहमदाबाद की सूबेदारी, अन्य उपहार देकर जोधपुर जाने कि अनुमति मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१६	अक्तूबर	अजीतसिंह का जयसिंह से मिलना।
,,	२६ अक्तूबर	अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी मिलना।
,,	—	जयसिंह से पुनः भेंट।
,,	—	मनोहरपुर में गौड़ कन्या से विवाह।
१७२०	अप्रेल	भंडारी अनूपसिंह को अपना नायब नियुक्त करके अहमदाबाद भेजना।
,,	सम्भवतः अप्रेल	भंडारी विजयराज को अपना नायब नियुक्त करके अजमेर भेजना।
,,	१६ मई	पुत्री सूरज कुँवर का जयसिंह से विवाह करना।
१७२१	मई	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाना।
,,	४ अगस्त	अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी से हटाना।
,,	—	अजीतसिंह का ससैन्य अजमेर जाना।
,,	—	सांभर पर अधिकार।
,,	—	नारनौल, अलवर, तिजारा, शाहजहाँपुर को लूटना।
१७२२	सम्भवतः जनवरी	अजीतसिंह का बादशाह से सन्धि करने का निश्चय।
,,	सम्भवतः फरवरी	अजीतसिंह को पुनः अजमेर का सूबा मिलना।
,,	२७ दिसम्बर	नाहर खाँ का वध करवाना।
१७२३	२३ मार्च	अजमेर की सूबेदारी से हटाया जाना।
,,	मई	अजीतसिंह का अजमेर से मेड़ता चले जाना।
,,	७ जून	शाही सेना का गढ़ पुतली घेरना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७२३	—	अजीतसिंह का बादशाह से सन्धि करना।
,,	नवम्बर	जोधपुर वापस पहुँचना।
१७२४	२३ जून	अजीतसिंह की मृत्यु।

संदर्भ-ग्रंथ

(क) फ़ारसी—ग्रन्थ (मूल, अनूदित, प्रकाशित)

	ग्रन्थ	विवरण
१.	अख़बारात-ए-दरबार-ए-मुअल्ला, जयपुर संग्रह, औरंगज़ेब, भाग २० से ३९	मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
२.	अख़बारात, जयपुर संग्रह, भाग १ से २३	,,
३.	अख़बारात, लन्दन संग्रह, भाग १ से १६	,,
४.	अख़बारात, जयपुर संग्रह,	मूल, रा. पु. बी ।
५.	अजायब-उल-अफ़ाक़	मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
६.	अहवाल-उल ख़वाकीन	मुहम्मद क़ासिम, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
७.	औरंगज़ेब्स सक्सैसर्स	अनु० जोनाथन स्काट, हिस्ट्री आव् डकन, भाग २, खंड ५, आई. एण्ड. डब्ल्यू. ईडोज़, १७९४ ।
८.	आईन-ए-अकबरी (भाग, २)	अबुलफ़ज़ल, अनु. जैरेट एण्ड सरकार, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, १९४९ ।
९.	आदाब-ए-आलमगीरी (भाग २)	मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
१०.	इबरतनामा	कामराज, माइक्रोफ़िल्म, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
११.	इबरतनामा	सैयद मुहम्मद क़ासिम हुसैनी लाहौरी, माइक्रो-फ़िल्म, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
१२.	खुजिस्ता क़लाम	मूल, श्री रघुबीर, लाइब्रेरी सीतामऊ ।
१३.	तज़किरा इरादत खाँ,	इरादतखाँ अनु. जोनाथन स्काट, हिस्ट्री आव् डकन भाग २, खण्ड ४, आई. डब्ल्यू. ईडोज़, १७९४ ।
१४.	तज़किरात-उस्सलातीन-ए- चग़तई (भाग २)	मुहम्मद हादी कामवर खाँ, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
१५.	तारीख़-ए-मुज़फ़्फ़री	मूल, इलाहाबाद विश्व विद्यालय, लाइब्रेरी ।
१६.	तारीख़-ए-हिन्द	रुस्तम अली खाँ, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।
१७.	नुस्ख़ा—ए-दिलकुशा (२ भाग)	भीमसेन बुरहानपुरी, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी सीतामऊ ।

१८. फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी : ईश्वरदास नागर, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।

१९. बहादुरशाहनामा : नियामत अली ख़ाँ, माइक्रोफ़िल्म, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।

२०. बालमुकुन्दनामा : सं. शेख़ अब्दुर्रशीद मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ १९५७ ।

२१. मआसिर-उल-उमरा (२ भाग) : शाहनवाज़ ख़ाँ, अनु. वेणीप्रसाद व बेवरिज, एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, क्रमशः १९११ व १९५२ ।

२२. मआसिर-उल-उमरा (भाग १ व २) : शाहनवाज़ ख़ाँ, अनु. ब्रजरत्न दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, क्रमशः १९३१-२ व १९३८-९ ।

२३. मआसीर-ए-आलमगीरी : साक़ी मुस्ताद ख़ाँ, अनु. सर जदुनाथ सरकार, रायल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, १९४७ ।

२४. मीरात-उल-वारिदात : मुहम्मद शफ़ी वारिद तेहरानी, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।

२५. मीरात-ए-अहमदी (२ भाग) : अली मुहम्मद ख़ाँ, अनु. एम. एफ. लोखान्डवाला ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९६५ ।

२६. मीरात-ए-अहमदी (भाग १) : अली मुहम्मद ख़ाँ, मूल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी ।

२७. मुनव्वर-उल-कलाम : शिवदास लखनवी, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ ।

२८. मुन्तखब-उल-लुबाब : मुहम्मद हाशिम ख़फ़ी ख़ाँ, मूल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, १८७४ ।

२९. रोज़नामचा : मिर्ज़ा मुहम्मद, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ

३०. वाक़या सरकार अजमेर वा रणथम्भोर : मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी सीतामऊ ।

३१. सीयर-उल-मुताख़रीन : सैयद ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ, अनु. नोटा मानस, आर. कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी ।

(ख) प्राथमिक राजस्थानी व हिन्दी ग्रन्थ

१. अजितविलास : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर ।

२. अजीतसिंघ जी री तवारीख़ : फ़ौजचन्द, प्रतिलिपि, रा. पु. बी. ।

३. अजीतसिंघ री विखा रे दोहे : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर ।

४. अभयविलास : सांदू पृथ्वीनाथ, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

५. ओहदा बही नं० १ : जोधपुर पुरालेखागार, जोधपुर।

६. कूर्म्मवंसविलास : कवि चन्द, प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

७. खरड़े की ख्यात (जसवंतसिंह) : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

८ ख्यात-वात : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

९. गुटका (संवत् १७८० से १७८८ तक) : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

१०. गुणसार-ग्रन्थ : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

११. चतुरकुल-चरित्र : चतुरसिंह, राजपूताना सेन्ट्रल प्रेस, अजमेर, १९०७।

१२. छत्रपति शाहु को अजीतसिंह का एक पत्र : प्रकाशक—यज्ञदत्त भट्ट, सणा सदन, चाँदपोल जोधपुर।

१३. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, (खण्ड १, ३, ४, ५, ८ व ९) : प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

१४. जसवंतसिंघ री वार्ता व अजीतसिंघ री वार्ता : प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

१५. जोधपुर राज्य की ख्यात (२ भाग) : प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

१६. जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात : प्रतिलिपि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।

१७. जन्मपत्री (अजीतसिंह) : रा. शो. सं चौ० जोधपुर से प्राप्य एक पत्र।

१८. दवावैत महाराजा अजीतसिंघ जी री : द्वारकादास दधवाड़िया, प्रतिलिपि, रा. पु बी.।

१९. दस्तूर री बही : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

२०. पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ : प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

२१. पुस्तक प्रकाश री जुनी बही में लिखियो तीण री वीगत : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

२२. बांकीदास री ख्यात : बांकीदास, पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर १९५६।

२३. भाव-विरही : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर, (गुणसार ग्रन्थ में ही प्राप्य कुछ पत्र)।

२४. मुरारिदान री ख्यात : कविराजा मुरारिदान, प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

२५. मूंदियाड़ री ख्यात : प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

२६. राजरूपक : वीरभाण रतनू, सं. रामकर्ण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १६४१।

२७. राजविलास : मानकवि, सं. मोतीलाल मेनारिया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १६५८।

२८. राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

२६. राठौड़ा री ख्यात : जोधपुर के श्री बालमुकुन्द खीची से प्राप्य प्रति।

३०. वंश-भास्कर (भाग ३ व ४) : सूर्यमल्ल मिश्र

३१. वीर-विनोद (भाग २) : कविराजा शयमलदास, राज्य यंत्रालय, उदयपुर, १८८६।

३२. व्याव री बही नं० १ : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

३३. सूरजप्रकाश : करणीदान, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १६६१।

(ग) फ़रमान, निशान, पत्र व वकील रिपोर्ट्स

(राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर से प्राप्त)

१. ख़तूत अहलकारान
२. ख़रीता उदयपुर
३. ख़रीता जयपुर रिकार्ड्स
४. फ़रमान व निशान
५. फ़ारसी पत्र
६ मुतफ़र्रिक अहलकारान
७ मुतफ़र्रिक अहलकारान, तिथिहीन
८. मुतफ़र्रिक महाराजगान
९. मुतफ़र्रिक महाराजगान, तिथिहीन
१०. राजस्थानी पत्र
११. वकील रिपोर्ट्स, फ़ारसी
१२. वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी

(घ) प्राथमिक उर्दू, अंग्रेजी एवं संस्कृत ग्रन्थ

१. अजितचरित्र : बालकृष्ण दीक्षित, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

२. अजीतोदय : भट्ट जगजीवन संस्कृत से राजस्थानी भाषा में अनूदित, प्रतिलिपि, रा पु. बी।

३, उमराये हनूद : मुहम्मद सैयद अहमद साहब, अन्जुमन, औरंगाबाद, १६३२।

४. एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आव् राजस्थान (२ भाग) : कर्नल जेम्स टाड, रटलज, केगन पाल, लन्दन, १६५७।

(ङ) यात्रा-विवरण

१. न्यू एकाउन्ट आव् ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया बीइग नाइन ईयर्स ट्रैवल्स (भाग ३) : हकलूत सोसाइटी, लन्दन।

२. स्टोरिया-डो-मोगोर (भाग २ व ४) : निकोलाइ मनूची, अनु. विलियम इरविन, जान मरे, लन्दन (भारत सरकार के लिए) क्रमशः १६०७ व १६०८।

(च) शोध-प्रबन्ध

१. लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् बहादुरशाह फर्स्ट : उदयराजचन्द, इलाहाबाद विश्वविद्यालय १६६५

२. लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् मिर्ज़ा राजा जयसिंह : चन्द्रभूषण त्रिपाठी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १६५३।

३. लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् महाराजा जसवन्तसिंह : निर्मलचन्द्र राय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १६६४।

(छ) गैज़ेटियर

१. इम्पीरियल गैज़ेटियर आव् इण्डिया, भाग १४ व २१ : दि क्लेरेंडन प्रेस, आक्सफ़ोर्ड, १६०८।

२. गैज़ेटियर आव् दि बाम्बे प्रेसिडेन्सी, भाग १, खण्ड १ : कैम्पबेल, गवर्नमेंन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १८६६।

३. गैज़ेटियर आव् दि बीकानेर स्टेट : पाउलेट, गवर्नमेन्ट प्रेस, बीकानेर, १६०७।

४. गैज़ेटियर आव् दि मारवाड़ मलानी एण्ड जैसलमेर : वाल्टर, फौरेन डिपार्टमेन्ट प्रेस, कलकत्ता, १८७७।

५. राजपूताना गैजेटियर (भाग २ ए व भाग ३ ए) : असंकिन, क्रमशः स्काटिश मिशन इन्डस्ट्रीज, अजमेर, १६०८ व दि पायनियर प्रेस इलाहाबाद, १६०६।

(ज) गौण-ग्रन्थ-हिन्दी

१ औरंगज़ेबनामा : मुन्शी देवीप्रसाद, श्री वेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस, १६०६।

२. उदयपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग २ खण्ड १) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६३१।

३. जोधपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग ४, खण्ड १-२) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६३८ व १६४१।

४. डिंगल में वीर रस : मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १६४०।

५. डिंगल-साहित्य : जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १६६०।

६. डूंगरपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग ३, खण्ड १) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६३६।

७. तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़ : मुन्शी हरदयालसिंह, जोधपुर सरकार की आज्ञा से प्रकाशित, १८६४।

८. प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग ३, खण्ड ३) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६४०।

६. पूर्व-आधुनिक राजस्थान : रघुबीरसिंह, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर १६५१।

१०. बांसवाड़ा राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग ३, खण्ड २) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६३७।

११. बीकानेर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १६३६।

भाग ५, खण्ड १)

१२. बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला : भगवानदास गुप्त, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, १९५८ ।

१३. भारत के प्राचीन राजवंश (भाग ३) : विश्वेश्वरनाथ रेउ, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९२५ ।

१४. भारतीय चित्रकला : वाचस्पति गैरोला, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६३ ।

१५. मारवाड़ का इतिहास (२ भाग) : विश्वेश्वरनाथ रेउ, आर्कियालाजीकल डिपार्टमेंट जोधपुर, १९३८ ।

१६. मारवाड़ का मूल इतिहास : रामकर्ण आसोपा, स्व प्रकाशित, जोधपुर, १८७१

१७. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास : रामकर्ण आसोपा, दधिमति नामक पत्रिका में प्रकाशित, जोधपुर, सम्भवतः १९३३ ।

१८. मारवाड़ राज्य का इतिहास : जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, १९२५ ।

१९. मिश्रबन्धु-विनोद (चार भाग) : मिश्रबन्धु, प्रथम व तृतीय ग्रन्थ प्रसारक, खंडवा, १९१३; द्वितीय व चतुर्थ—गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, क्रमशः १९२७, १९३४ ।

२०. रतलाम का प्रथम राज्य : रघुबीरसिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९३९ ।

२१. राजपूताने का इतिहास (भाग १) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १९२६ ।

२२. राजपूताने का इतिहास (२ भाग) : जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, क्रमशः १९३७ व १९६० ।

२३. राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज और उनकी सूची : मुंशी देवीप्रसाद, १९११ ।

२४. राजस्थान का पिंगल साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर, १९५२ ।

२५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (४ भाग) : शोध-संस्थान, उदयपुर, क्रमशः ९४२, १९४७, १९५२ व १९५४ ।

२६. राजस्थानी-चित्रकला : रामगोपाल विजयवर्गीय विजयवर्गीय कलामंडल, जयपुर, १९५३ ।

२७. राजस्थानी भाषा और साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५१ ।

२८. राजस्थानी भाषा और साहित्य : हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, १९६० ।

२९. राजस्थानी-सबद-कोस : सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, १९६२ ।

३०. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : मोतीलाल मेनारिया, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, १९३९ ।

३१. रिपोर्ट मजमूई हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़ : मुंशी हरदयालसिंह, जोधपुर सरकार की आज्ञा से प्रकाशित, १८८५ ।

३२. वीर दुर्गादास राठौड़ : जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, १९६६ ।

३३. वीर शिरोमणी राठौड़ दुर्गादास : रामरतन हालदार, स्वप्रकाशित, अजमेर, १९३७ ।

३४. शिवसिंह-सरोज : शिवसिंह सेंगर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२६ ।

३५. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण : श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२३ ।

(ऋ) गौण-ग्रन्थ-अंग्रेजी

१. अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव : हरबिलास सारदा, स्काटिश मिशन इन्डस्ट्रीज़ कम्पनी लिमिटेड, अजमेर, १९११ ।

२. आर्कियालाजीकल सर्वे आव् इण्डिया (भाग २३) : एच० बी० डब्ल्यू० गैरिक

३. इण्डिया एट दि डैथ आव् अकबर : मोरलैण्ड, मैकमिलन एण्ड को०, लन्दन १९२० ।

४. एग्रेरियन सिस्टम आव् मुस्लिम इण्डिया : मोरलैण्ड, सैन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १९०५ ।

५. औरंगजेब एण्ड हिज़ टाइम्स : ज० फ़ारूकी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सम्भवतः १९३५ ।

६. ग्लोरीज़ आव् मारवाड़ एण्ड दि ग्लोरियस राठौर्स : विश्वेश्वर नाथ रेउ, आर्कियालाजीकल डिपार्टमेन्ट : जोधपुर, १९४३ ।

७. डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आव् बार्डिक हिस्टो- : टैसीटोरी, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९१८ ।

रिकल (जोधपुर व बीकानेर)

८. थर्टी डिसाइसिव बैटल्स आव् जयपुर : ठाकुर नरेन्द्रसिंह, १६३६ ।

६. पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट : सतीशचन्द्र, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, १९५६ ।

१०. प्राविन्शियल गवर्नमेंट आव् दि मुग़ल्स : परमात्मासरन, किताबिस्तान, इलाहाबाद, १६४१ ।

११. फ़र्स्ट निजाम : युसुफ़ हुसैन, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, १६६३ ।

१२. मारवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स : वी० एस० भार्गव, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १६६६ ।

१३. मुग़ल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन : श्रीराम शर्मा, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई, १६५१ ।

१४. मुग़ल नोबिल्टी अंडर औरंगजे़ब : अतहर अली, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, १६६६ ।

१५. मेवाड एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स : गोपीनाथ शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लि०, आगरा, १९५४ ।

१६. राठौड़ दुर्गादास : विश्वेश्वर नाथ रेउ, आर्कियालाजीकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, १६४८ ।

१७. रासमाला (भाग २) : फोर्ब्स, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, ११२४ ।

१८. लेटर मुगल्स (२-भाग : विलियम इरविन, एम० सी० सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता ।

१६. वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स : कर्नल आर्किबाल्ड एडम्स, १६०० ।

२०. सर्च रिपोर्ट्स १६००–१६४० (२१ भाग) : प्रदेश सरकार के लिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

२१. सैन्ट्रल स्ट्रक्चर आव् दि मुग़ल एम्पायर : इब्न हसन, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६३६ ।

२२ स्टडीज इन मिडीवल इण्डियन हिस्ट्री : श्री राम शर्मा, स्वप्रकाशित, १६५६ ।

२३. हिस्ट्री आव् इण्डिया (भाग ७ व ८) : इलियट एण्ड डाउसन, फ़्यूबनर एण्ड कं०, लन्दन, १८७७ ।

२४. हिस्ट्री ग्राव् ग्रौरंग- : जदुनाथ सरकार, एम० सी० सरकार, कलकत्ता, क्रमशः
जेब (भाग ३, ४ व ५) १९२८, १९३० व १९५२

२५. हिस्ट्री ग्राव् गुज- : कामसेरिएट, ग्रोरियन्ट लांगमैन्स, कलकत्ता, १९५७।
रात (भाग २)

२६. हिस्ट्री ग्राव् गुजरात : वाटसन, गवर्नमेन्ट सैन्ट्रल प्रेस, बम्बई १८७६।

२७. हिस्ट्री ग्राव् जाट्स : क़ानूनगो, कलकत्ता, १९२५।

२८. हिस्टोरिकल एसेज़ : क़ानूनगो. शिवलाल अग्रवाल, आगरा १९६०।

(ज) लेख (हिन्दी व अंग्रेजी)

१. अजीतसिंह ग्राव् : विश्वेश्वर नाथ रेउ, जनरल ग्राव् इण्डियन हिस्ट्री,
मारवाड़ भाग १२, १९३३।

२. अजीतसिंह की परीक्षा उदयराज उज्जवल, राजस्थान भारती, जुलाई, १९५४।
का एक गीत

३. अजीतसिंह के जीवन : जुगलसिंह खीची, राजस्थान भारती, जुलाई १९५४।
का एक परिच्छेद

४. ग्रौरंगज़ेब्स एटीट्यूड - सुन्दरी शर्मा, दि क्वार्टरली रिव्यू ग्राव् हिस्टोरिकल
टुवर्ड्स मारवाड़ स्टडीज़, भाग ७, नं० २, १९६७–६८।
ग्राफ्टर दि डैथ ग्राव्
महाराजा जसवन्तसिंह

५. जोधपुर के दस्त्री : गोपीनाथ शर्मा, शोध पत्रिका, सितम्बर, १९५५।
रेकार्ड का महत्त्व

६. जोधपुर के सिंहासन के : ब्रजमोहन जावलिया, मरु भारती, जुलाई, १९६८।
दावेदार दलथंभन से
सम्बन्धित कुछ अज्ञात
तथ्य

७. दुर्गादास के पत्र का : रघुबीरसिंह, राजस्थान भारती, जुलाई, १९५१।
सही संवत्

८. महाराजा अजीतसिंह : अगरचन्द नाहटा, मरु भारती, जनवरी, १९६३।
की अन्य रचनाएँ

९. महाराजा अजीतसिंह : सं. नारायणसिंह भाटी, परम्परा, ग्रंक १७।
विरचित गज उद्धार ग्रन्थ

१०. महाराजा अजीतसिंह : नारायणसिंह भाटी, मरु-भारती, अक्तूबर, १९६२।
विरचित गज उद्धार
ग्रन्थ

११ मारवाड़ की मेवाड़ को : विश्वेश्वर नाथ रेउ, हिन्दुस्तानी, भाग ६, १९३६।
समय-समय पर दी हुई
कुछ समस्याएँ

१२. मारवाड़ पेन्टिंग्स : हरमन गोयट्ज, मार्ग, मार्च, १९५८।
१३. राठौड़ वीर दुर्गादास का एक पत्र : विश्वेश्वर नाथ रेउ, राजस्थान-भारती, अप्रेल, १९५०,
१४. राजपूत पालिसी आव् औरंगजेब : खुरशीद मुस्तफा, इस्लामिक कल्चर, भाग २१, नं० ४, १९४७।
१५. राजस्थानी पेन्टिंग्ज ; सत्यप्रकाश, सोवेनेर, १९५९।
१६. राजथानी पेन्टिंग्ज एण्ड देयर इम्पैक्ट आन सोसाइटी एण्ड कल्चर : गोपीनाथ शर्मा, सेकेन्ड सेमिनार आन हिस्ट्री आव् राजस्थान, एम० बी कॉलेज, उदयपुर, फ़रवरी, १९६२।
१७. राजस्थानी पेन्टिंग्ज एण्ड मुग़ल इम्पैक्ट : गोपीनाथ शर्मा, सेमिनार आन आइडियाज, यूनिवर्सिटी आव् दिल्ली, नवम्बर १९६५।
१८. राजा जयसिंहस् कान्ट्रीब्यूशन टू इम्पीरियल पालिटिक्स सतीशचन्द्र, प्रोसीडिंग्स आव् इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस ११ वाँ सेशन, १९४८।
१९. सम एसपैक्ट्स आव् सोसाइटी एण्ड कल्चर आव् राजस्थान एज रिवील्ड इन बियाहबही : गोपीनाथ शर्मा, जनरल आव् इन्डियन हिस्ट्री, अप्रेल १९५६।
२०. हाडीरानी व औरंगज़ेब का युद्ध : मांगीलाल व्यास 'मयंक', मरु-भारती, जुलाई, १९६८।

कुछ विशेष आधार ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ

(क) राजस्थानी ग्रन्थ—

अजितचरित्र :—

संस्कृत भाषा में लिखे गये इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि पुस्तक-प्रकाश जोधपुर में प्राप्य है। इसकी रचना अजीतसिंह के समय में ही बालकृष्ण दीक्षित ने की थी। अजितचरित्र दस सर्गों की रचना है जिसमें से प्रथम छः सर्गों में अजीतसिंह के पूर्वजों का वर्णन है। पिछले चार सर्गों में अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक बत्तीस वर्ष की कुछ घटनाओं का वर्णन है। यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

२. अजितविलास :—

राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर में एक बृहद् ग्रन्थ है, जिसमें धर्म, भूगोल तथा इतिहास आदि विषयक विवरण है और जोधपुर के राठौड़ शासकों का राव सीहा से राजा मानसिंह तक का इतिहास वर्णित है। इसी के अन्तर्गत पृ० १६६ से २४७ तक "अजितविलास" नामक रचना है जिसमें अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवनकाल का विस्तृत-वर्णन है। इस रचना में एक घटना के उल्लेख के उपरान्त बहुधा उससे सम्बन्धित कवित्त अथवा, दोहा लिखा गया है। अजितविलास के लेखक अथवा रचना काल के विषय में निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु अजितोदय, राजरूपक व सूरजप्रकाश आदि समसामयिक ग्रन्थों की भाँति इसमें भी बख्तसिंह द्वारा अजीतसिंह की हत्या किये जाने का उल्लेख नहीं है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रचना अजीतसिंह के जीवनकाल की रही होगी। सम्पूर्ण विवरण क्रमबद्ध है तथा स्थान स्थान पर तिथियों का भी उल्लेख किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। सन् १६६३ ई. में अजीतसिंह के अजमेर जाने तथा अजमेर के सूबेदार सफ़ी खाँ से बातचीत करने का सबसे अधिक विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलता है।

३. अजीतसिंघ री तवारीख़ :—

यह तवारीख़ भण्डारी फ़ौजचन्द द्वारा लिखी गई है, रचना किस समय की है, यह कहना कठिन है यह केवल ४७ पृष्ठों की रचना है जिसमें अजीतसिंह के जन्म से लेकर अगले आठ-नौ वर्षों का इतिहास वर्णित है। इसमें से भी सन् १६७८-१६८१ ई. तक की घटनाएँ संक्षेप में लिखी गई हैं। पिछले छः वर्षों (सन १६८१ ७ ई.) में होने वाले राठौड़ों के संघर्ष का लेखक ने विस्तृत वर्णन किया है। इस काल की घटनाओं के

लिये ही इस ग्रन्थ का उपयोग किया गया है। इसकी प्रतिलिपि राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर में बस्ता नं० ४० में प्राप्य है।

४. अजितोदय :-

अजीतसिंह के आश्रित कवि भट्ट जगजीवन द्वारा संस्कृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर में प्राप्य है। राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर बस्ता नं. ४३ में इस ग्रन्थ का राजस्थानी भाषा में अनुवाद प्राप्य है। उसी का उपयोग इस शोध-ग्रन्थ में किया गया है। यह इकतीस सर्गों का बृहद् ग्रन्थ है, जिसमें अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवन का अत्यन्त विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि राजकीय आश्रय में लिखे जाने के कारण ग्रन्थ में अनावश्यक प्रशंसा तथा कहीं-कहीं पक्षपातपूर्ण विवरण मिलता है, फिर भी समकालीन ग्रन्थ होने के नाते इसका विशेष महत्त्व है।

५. जुनीबही :—

यह बही पुस्तक–प्रकाश, जोधपुर की एक पुरानी बही से की गई नक़ल है। इसकी प्रतिलिपि राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर के बस्ता नं ४३ में प्राप्य है। इसमें अनेक छुट-पुट घटनाओं के उल्लेख के अतिरिक्त जोधपुर के राठौड़ शासकों का भी इतिहास वर्णित है जिसके अन्तर्गत महाराजा अजीतसिंह के जीवनकाल की लगभग सभी घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन है। इसका महत्त्व इस दृष्टि से है कि इसकी घटनाएँ जोधपुर राज्य की ख्यात से पूर्णतया मिलती हैं। अतएव ख्यात की भाँति इसका भी ऐतिहासिक महत्त्व है। जैसलमेर के रावल अमरसिंह द्वारा अपनी लड़की के विवाह के लिये अजीतसिंह को भेजे गये टीके का विस्तृत विवरण इस बही में मिलता है।

६. जोधपुर राज्य की ख्यात :—

इस ख्यात की प्रतिलिपि श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य है। इसके प्रथम भाग में राव सीहा से महाराजा जसवन्तसिंह तक, तथा दूसरे भाग में महाराजा अजीतसिंह से महाराजा मानसिंह तक का इतिहास वर्णित है। रचयिता के विषय में कुछ उपलब्ध नहीं हो सका। अजीतसिंह के जीवन की समस्त घटनाओं का विस्तृत एवं क्रमबद्ध विवरण इस ख्यात में मिलता है। सन् १७०७ ई. में बहादुरशाह द्वारा दिये गये परगनों के नाम, इन्द्रकुँवर का विवाह, अजीतसिंह की हत्या आदि कई ऐसे स्थल हैं, जिनका विस्तृत वर्णन केवल इसी ख्यात में उपलब्ध है। चूँकि इस ख्यात में वर्णित तथ्यों की पुष्टि फ़ारसी ग्रन्थों से भी होती है, अतः इस शोध-प्रबन्ध में इसका उपयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया गया है।

७. दस्तूर-बही

१६१ पृष्ठ की यह बही राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर में प्राप्य है। इसकी प्रतिलिपि सन् १८६२ ई. की है। इस बही में जोधपुर राज्य में मनाये

जाने वाले उत्सवों का विस्तृत वर्णन मिलता है। जोधपुर की सामाजिक एवं धार्मिक दशा के लिये यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त महाराजा गजसिंह से लेकर महाराजा तख्तसिंह तक के शासनकाल की विभिन्न घटनाओं का यत्र-तत्र उल्लेख भी इसमें मिलता है। इस शोध प्रबन्ध की दृष्टि से इस बही में इन्द्रसिंह के शासन का तथा अर्जीतसिंह, उसकी रानियों एवं सरदारों द्वारा निर्मित स्थानों का वर्णन प्राप्य है। जोधपुर पर मुग़ल शासन के दिनों में तोड़े जाने वाले मन्दिरों के नाम केवल इसी बही में मिलते हैं।

८. पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ :—

श्री रघुबीर लाईब्रेरी, सीतामऊ में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि है, जिसमें कुल १७४ पत्र हैं। इस ग्रन्थ का न तो समुचित रूप से आरम्भ किया गया है और न अन्त ही है। ग्रन्थकार अथवा प्रतिलिपिकार के विषय में भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता। इसमें सन् १६५७–७६ ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की दृष्टि से यह ग्रन्थ केवल द्वितीय अध्याय के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा का दिन-प्रतिदिन का विवरण इसमें मिलता है। इसी यात्रा के बीच प्रसंगवश जोधपुर में होने वाले राठौड़ों के विरोध तथा घटनाओं का भी संकेत किया गया है। इस विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः लेखक स्वयं भी इस दल के साथ यात्रा कर रहा था।

९. राजरूपक :—

इस वृहद् ग्रन्थ की रचना महाराजा अभयसिंह के समय में कवि वीरभाण ने की थी। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है। इस ग्रन्थ में अजीतसिंह के राजत्व काल का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है। चूँकि राजरूपक अभयसिंह के लिये लिखा गया था, अतः इसका वर्णन कहीं-कहीं पक्षपात पूर्ण हो गया है। युद्धों में राठौड़ सरदारों के वीरत्व का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, तथा अजीतसिंह की हत्या जैसी घटनाओं का उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। कवि ने घटनाओं की तिथि, मास व वर्ष का ठीक-ठीक उल्लेख किया है। बहुधा दिन का भी उल्लेख मिलता है। सम्पूर्ण विवरण क्रमबद्ध है। अतः शोध-प्रबन्ध में यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। सन् १६८१ ई. से सन् १६८७ ई. तक की अवधि में राठौड़ सरदारों के उपद्रवों का सबसे अधिक विस्तृत विवरण राजरूपक में मिलता है।

१०. राजविलास :—

इसकी रचना राणा राजसिंह के समय में मानकवि ने की थी। इस शोध-प्रबन्ध की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिये है कि इसमें राठौड़ों व

सीसोदियों की मैत्री होने का उल्लेख मिलता है। अजीतसिंह को राणा राजसिंह द्वारा कैलवा की जागीर मिलने का उल्लेख केवल इसी ग्रन्थकार ने किया है। इसे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने प्रकाशित कर दिया है।

११. ब्याव री बही :—

राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर में नौ ब्याव बहियाँ हैं। इनमें से बही नं. १ में पृ. १ से ५७ तक अजीतसिंह की पुत्री सूरजकुंवर के सवाई राजा जयसिंह के साथ विवाह का विस्तृत वर्णन है। इससे जोधपुर के सामाजिक रीति-रिवाज़, धार्मिक विश्वासों, व आर्थिक दशा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसी बही में पृ. २१३-८ तक कुछ ऐसे पदाधिकारियों के अधिकार और कर्त्तव्यों का वर्णन है, जो जोधपुर राज्य में प्रचलित थे। इससे जोधपुर की प्रशासनिक-व्यवस्था के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। इस शोध-प्रबन्ध में यह बही अध्याय नवम् व दशम् के लिये विशेष उपयोगी रही है।

१२. सूरजप्रकाश :—

राजरूपक की भाँति सूरजप्रकाश की रचना भी महाराजा अभयसिंह के समय में हुई थी। इसका रचयिता कवि करणीदान है। अभयसिंह का इतिहास लिखने से पूर्व कवि ने उसके पूर्ववर्ती शासकों का इतिहास लिखा है। यद्यपि अजीतसिंह के शासनकाल का विस्तृत वर्णन किया गया है, परन्तु कवि ने न तो सभी तथ्यों का उल्लेख किया है और न तिथियों का ही उल्लेख किया है। बहुधा प्रसंगों में अजीतसिंह की प्रशंसा एवं युद्ध-कौशल का ही वर्णन मिलता है। राजकीय ग्रन्थ होने के नाते सावधानीपूर्वक इसका उपयोग किया गया है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया है।

(ख) फ़ारसी ग्रन्थ

१. आदाब-ए-आलमगीरी :—

यह बादशाह औरंगजेब तथा शाहज़ादा अकबर के पत्रों का सादिक मुतालिबी द्वारा किया गया महत्त्वपूर्ण संग्रह है। अकबर की मारवाड़ में दूसरी बार नियुक्ति और वहां उसकी तथा उसके सेनापति तहव्वर ख़ाँ की गतिविधियों का सबसे अधिक विस्तृत एवं विश्वसनीय विवरण इसी ग्रन्थ में मिलता है। अकबर के राजपूतों से मिलकर विद्रोही हो जाने का प्रमाण भी उसके अपने दो पत्रों में मिलता है, जो उसने राणा राजसिंह व जयसिंह को लिखे थे। इस प्रकार सन् १६८० ई. की घटनाओं के लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार ग्रन्थ है। इसकी प्रतिलिपि श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य है।

२. फ़रमान, निशान, पत्र व वकील रिपोर्ट्स :-

राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर में फ़ारसी तथा राजस्थानी की वकील

रिपोर्ट्स, अर्जदाश्त तथा पत्रों का वृहद् संग्रह है। इनमें महाराजा अजीतसिंह तथा अन्य राजाओं, विशेष रूप से जयसिंह के पारस्परिक पत्र-व्यवहार, उनके द्वारा बादशाह तथा शाही अधिकारियों द्वारा उन्हें लिखे गये पत्र, राजाओं के वकीलों द्वारा भेजी गई सूचनाएँ, अथवा राजाओं द्वारा वकीलों को भेजे गये आदेशों का विवरण मिलता है। इन विभिन्न पत्रों से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने में बहुत सहायता मिलती है। अजीतसिंह तथा सवाई जयसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतया इसी सामग्री के आधार पर निश्चित किये जा सके हैं।

३. फुतूहात-ए-आलमगीरी :—

इस ग्रन्थ की रचना ईश्वरदास नागर ने की थी। इसमें राठौड़ों एवं शाही सैनिकों के संघर्ष का विवरण मिलता है। परन्तु इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वह अंश है जिसमें लेखक ने दुर्गादास द्वारा औरंगजेब के पौत्र व पौत्री को लौटाये जाने का वर्णन किया है। ईश्वरदास नागर ने इस कार्य में स्वयं सक्रिय भाग लिया था और उसी के प्रयत्न से दुर्गादास ने अकबर के बच्चों को बादशाह के पास भेजना स्वीकार किया था। फलतः इस घटना के लिये यह ग्रन्थ विशेष रूप से प्रामाणिक है। श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य प्रति का उपयोग किया गया है।

४. मीरात-उल-वारिदात :—

मुहम्मद शफ़ी वारिद तेहरानी द्वारा लिखित यह एक वृहद् ग्रन्थ है, जिसमें दो भागों में बाबर से लेकर मुहम्मदशाह तक का इतिहास वर्णित है। यथाप्रसंग अजीतसिंह का उल्लेख इसमें मिलता है, परन्तु इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व सांभर-युद्ध के वर्णन के लिये है। अक्तूबर, सन् १७०८ ई. में हुये इस युद्ध का विस्तृत वर्णन केवल इसी ग्रन्थ में प्राप्य है।

५. मीरात-ए-अहमदी :—

अली मुहम्मद खाँ द्वारा लिखित यह ग्रन्थ गुजरात सूबे के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है। अजीतसिंह की गुजरात में दोनों सूबेदारियों का विस्तृत वर्णन केवल इसी ग्रन्थ में मिलता है। फलतः इस काल के लिये शोध-प्रबन्ध में मीरात-ए-अहमदी का समुचित प्रयोग किया गया है।

१६. रोजनामचा :—

श्री रघुबीर लाइब्रेरी. सीतामऊ में प्राप्य इस ग्रन्थ का लेखक मिर्ज़ा मुहम्मद फ़र्रुखसियर के समय में उपस्थित था। उसने अपने ग्रन्थ में बहादुरशाह, जहाँदारशाह तथा फर्रुख़सियर के शासन-काल का वर्णन किया है। फर्रुख़सियर के समय की घटनाओं के लिये इस ग्रन्थ की विशेष उपयोगिता है। बादशाह तथा इन्द्रकुँवर के विवाह में लेखक ने स्वयं भाग लिया था, अतः इस विवाह का आँखों

देखा हाल हमें रोजनामचा में मिलता है। अजीतसिंह के दिल्ली दरबार में उपस्थित होने, उसकी सैयदों से मित्रता बढ़ने तथा फर्रुखसियर को सिंहासन से हटाने का सर्वाधिक प्रामाणिक विवरण इस ग्रन्थ में प्राप्य है।

१७. वाक़या सरकार अजमेर वा रणथम्भोर

इस ग्रन्थ में अजमेर के तत्कालीन वाक़यानवीस द्वारा सन् १६७८ से १६८० ई. तक के बीच रणथम्भोर व अजमेर से भेजी गई सूचनाओं का संग्रह है। जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् जोधपुर की स्थिति, रानी हाड़ी व राठौड़ सरदारों की गतिविधियों का सर्वाधिक विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलता है। इसमे कई सूचनाएँ है जिनका अन्यत्र कहीं उल्लेख नही है। जैसे अजीतसिंह को दिल्ली से निकाल कर जोधपुर पर लाने के उपरान्त राठौड़ सरदारों ने उसका राज्याभिषेक किया था; इसका उल्लेख एकमात्र इसी ग्रन्थ में है। श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य प्रति का उपयोग किया गया है।
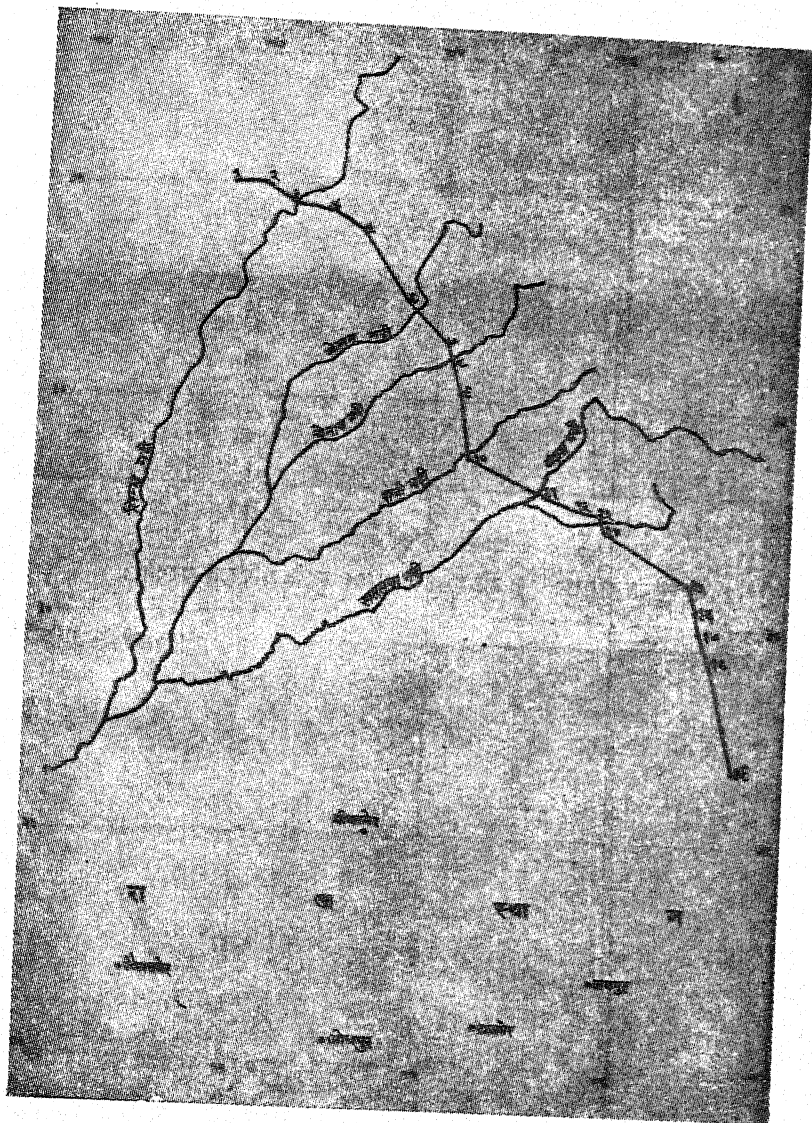
मानचित्र 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त राठौड़ सरदारों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के मुख्य पड़ाव ।
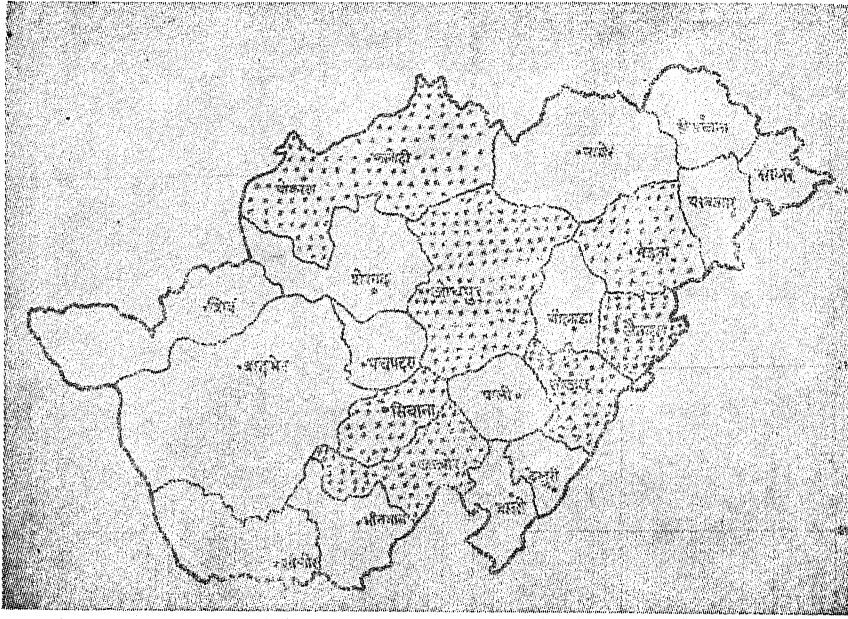
मानचित्र 'ख'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने ।
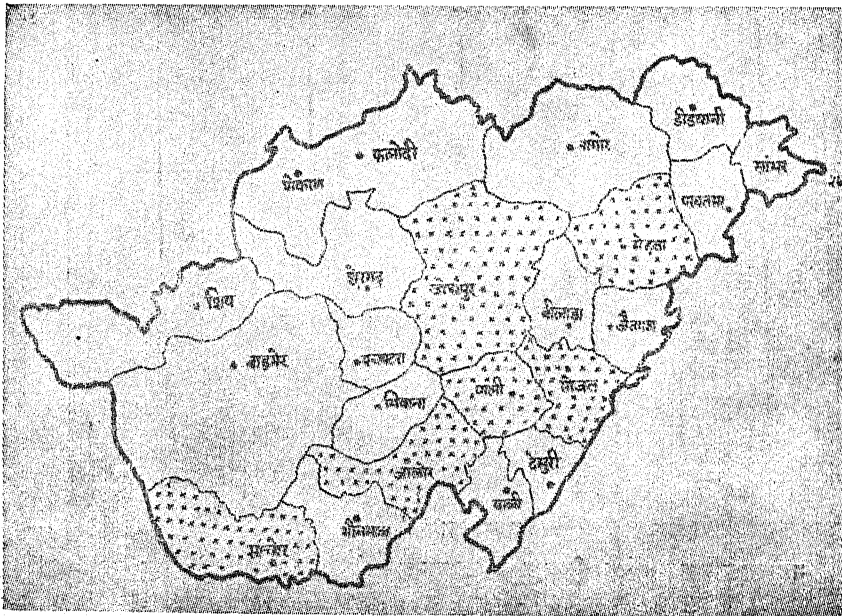
मानचित्र 'ग'

शाहआलम बहादुरशाह के सिंहासनारोहण के समय अजीतसिंह के अधिकृत परगने

मानचित्र 'घ'

सन् १७१९-२० ई० में राजराजेश्वर अजीतसिंह के अधिकृत परगने ।
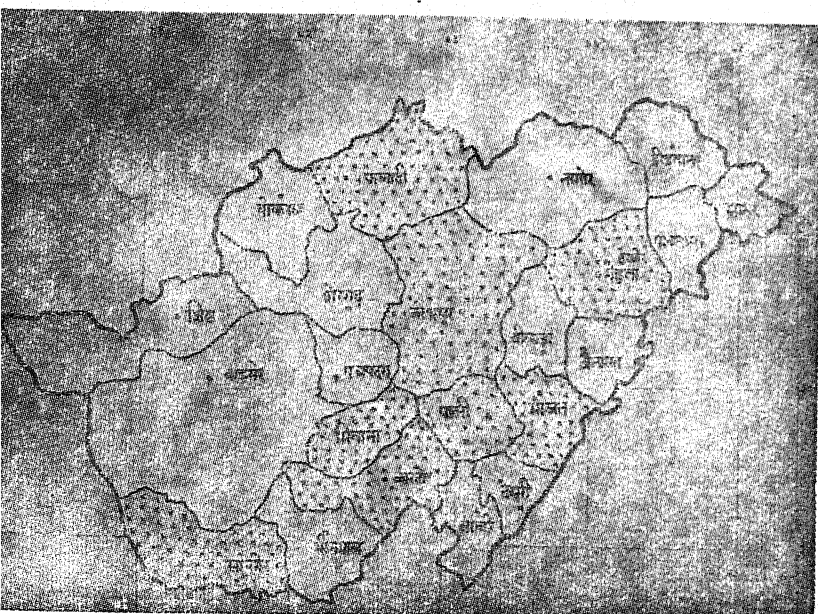
मानचित्र 'ङ'

महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने ।

मानचित्र 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त राठौड़ सरदारों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के मुख्य पड़ाव

(१४ जनवरी, सन् १६७६ ई० से ५ अप्रेल, सन् १६७६ ई०)

संकेत :—

पेशावर	लाहौर
नौशहरा	सुलतानपुर
अटक	नूरमहल
हसनअब्दाल	फिलौर
रावलपिण्डी	लुधियाना
रोहितासगढ़	अम्बाला
गुजरात	शाहाबाद
	थानेश्वर
वजीराबाद	कर्नाल
एमिनाबाद	दिल्ली

मानचित्र 'ख'

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने

(सन् १६७८ ई०)

संकेत :—

जसवन्तसिंह के अधिकृत प्रदेश

विशेष-विवरण :—

जोधपुर-राज्य की सीमा के बाहर महाराजा जसवन्तसिंह के अधिकार में हिण्डौन, मलारना, मरूका, बदनोर, तानापुर, रोहतक, थिराद, राधणपुर, चकला-हिसार, पितलाद, धन्धूका, जाजपुर नामक परगने भी थे।

मानचित्र 'ग'

शाहआलम बहादुरशाह के सिंहासनारोहण के समय अजीतसिंह के अधिकृत परगने

(सन् १७०७ ई०)

संकेत :—

• अजीतसिंह के अधिकृत प्रदेश

विशेष-विवरण—

अजीतसिंह को जालोर व साँचोर के परगने मई, सन् १६६८ ई० में बादशाह औरंगज़ेब ने दिये थे। जोधपुर पर उसने १२ मार्च, सन् १७०७ ई० को जाफ़र क़ुली को हराकर अधिकार किया था। इसी महीने उसने अपनी सेनाएँ भेजकर मेड़ता व पाली पर और मई के महीने सोजत मे अपने कुछ विरोधी सरदारों को हराकर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

मानचित्र 'घ'

सन् १७१९-२० ई० में राजराजेश्वर अजीतसिंह के अधिकृत परगने

संकेत :—

अजीतसिंह के अधिकृत प्रदेश

फलोदी व पोकरण के बीच की यह सीमा अनुमानित है।

विशेष विवरण—

जोधपुर-राज्य की सीमा के बाहर अजीतसिंह के अधिकार में मारोठ, बधवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, अनहिलपाटन (गुजरात), केकड़ी तथा बवाल नामक परगने थे और रूपनगर, मालपुरा व टोड़ा में भी उसके थाने थे। इसके साथ ही इस समय वह गुजरात व अजमेर का सूबेदार था।

मानचित्र 'ङ'

महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने

संकेत :—

अजीतसिंह के अधिकृत परगने

मेड़ता परगने का यह स्थान (हरसोर) अजीतसिंह

के अधिकार में नहीं था।

फलोदी व पोकरण के बीच की सीमा अनुमानित है।

विशेष विवरण :—

जोधपुर राज्य की सीमा से बाहर अजीतसिंह के अधिकार में बधवाड़ा, विजयगढ़ नामक स्थान थे तथा रूपनगर व मालपुरा में भी उसके थाने थे।

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	११	कसाल	करनाल
२५	नीचे से ५	यह	भट्ट
३३	अन्तिम	वाकया १६२	(अनावश्यक है)
३५	नीचे से १२	पृ०	पृ. २३-४
४१	नीचे से २१	देखिये	देखिये २५
४२	नीचे से १२	दि. ६७	टि. ६०
५८	अन्तिम	अनिश्चित	अनिर्णीत
७६	नीचे से ८	सिध	युद्ध
८०	नीचे से ११	दीनद	दीनदार
१०१	नीचे से १७	सोकलसर	मोकलसर
१०३	७	सामन्नसिंह	सामन्तसिंह
१०३	नीचे से २	*१८	२१८
१०४	नीचे से ५	मूंबियाड़	मूंदियाड़
१०४	नीचे से ४	७*	७२
१०६	नीचे से ४	हरिनास	हरीदास
१०७	२०	सियाना	सिवाना
१११	नीचे से १५	तमीरात	मीरात
१२७	नीचे से ११	भारती	फ़ारसी
१२९	४	७२	७१
१४०	पाद टिप्पणी का अन्तिम अनुच्छेद अनावश्यक है।		
१४३	१	ने जयसिंह को	को जयसिंह ने
१४५	२५	पूतों	दूतों
१४६	३	३	३६
१४६	पाद टिप्पणी ३८ का अनुच्छेद २ अनावश्यक है।		
१४९	अन्तिम	१३	रेउ
१५१	नीचे से १५	खरीफ	खफ़ी
१५२	नीचे से ८	खरीफ	खफ़ी

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	नीचे से ५	जनी	जुनी
१६०	नीचे से ४	३	रेउ
१६१	नीचे से १५	ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्ण	इरविन (भाग १, ७१) व सतीशचन्द (३५) ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्व
१६६	नीचे से ८	माधव	माघ
१७२	नीचे से ८	कुदसतुल्लमा	कुदरुतुल्ला
२७१	१६	१	१/५
२७१	नीचे से १०	तेम	पेम
२७१	नीचे से २	विरवा	विखा
२८३	नीचे से ४	१।	२
२८५	नीचे से १४	३५४–६	२३०–१
२८५	नीचे से १०	१७, ३३ व ३५४	१४, २५ व २३०
२८६	नीचे से ५	राजस्थान	राजस्थाना (अप्रकाशित लेख)
३२५	३	२ मार्च	मार्च
३३३	४ पर जोड़ें—१५ अगस्त कामबख्श पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह की भेंट बादशाह के पास पहुँचना		
३३५	६ फरवरी के बाद जोड़ें—२३ अप्रेल दरबार में मिलना		
३३५	—	२३ अप्रेल	२५ फरवरी
३३८	—	१४ दिसम्बर	१४ सितम्बर
३४५	४	रतनू	रतन्
३४५	१०	मिश्र	मिश्र प्रताप प्रेस जोधपुर १८६६
४४६	१	अन्जुमन,	अन्जुमन, औरंगजेब,
३६०	हैडिंग	राजराजेश्वर	राजराजेश्वर महाराजा